नहिं राम बिन ठांव

अनुक्रम

1. राम-संकेत...2
2. मैं सिखाने नहीं, जगाने आया हूं..15
3. रासलीलाः पुरुष और प्रकृति का खेल...31
4. मुट्ठी में हवा...44
5. राम नाम की चदरिया..60
6. रामः शून्यता की खोज..74
7. सीताः प्रेम की अनन्य घटना..88
8. एक कथाः दो अर्थ..102
9. दो पक्षीः कर्ता और साक्षी..115 10..माया मिली न राम
.... 132
11...होतेई का झोला
.... 147
12...शिवलिंगः परमभोग का आस्वाद
.... 163
13..शरीर--एक मंदिर
.... 177
14..कबीर की उलटबांसी
.... 193
15..मंदिर के द्वार खुले हैं
.... 209
16...नहिं राम बिन ठांव
.... 223

नहिं राम बिन ठांव
पहला प्रवचन

राम-संकेत

प्रश्नः ओशो, इसके पूर्व कि हम पूछें, हम अपने प्रणाम और आभार निवेदित करते हैं। संतों ने सदा कहा हैः नहिं राम बिन ठांव। यही आप भी कहते हैं। शाब्दिक तल पर हम इससे परिचित हैं, इससे अधिक नहीं। कृपापूर्वक बताएं कि इससे क्या अभिप्रेत है?

शब्द के तल पर जो परिचय है उसे परिचय कहना भी ठीक नहीं। धर्म के आयाम में, शब्द से बड़ा कोई धोखा नहीं है।
शब्द तो समझ में आ जाता है, उसमें जरा भी कठिनाई नहीं, लेकिन शब्द में
जो छिपा है वह समझ के बाहर रह जाता है। वहीं असली कठिनाई है।
और शब्द समझ में आ जाए, शब्द में जो छिपा है वह समझ के बाहर रह जाए, तो जीवन में बड़ा उपद्रव पैदा होता है। अज्ञानी रहते हुए ज्ञानी होने का भ्रम शुरू हो जाता है। इससे बड़ी मुसीबत दूसरी नहीं है। जानते नहीं हैं; और लगता है, जानते हैं।
और जीना तो वहां से होगा, जहां जानना है। जीवन तो जानने से रूपांतरित होगा। इस भ्रांति के कारण कि शब्द को जान लिया, इसलिए धर्म को जान लिया, हमारा जीवन एक दिशा में और हमारा मन दूसरी दिशा में यात्रा करता है। अक्सर वे दिशाएं विपरीत होती हैं।
पाखंड, हिपोक्रेसी इसलिए तथाकथित धार्मिक आदमी की जीवन-चर्या बन जाता है। तथाकथित धार्मिक आदमी नितांत पाखंडी मालूम होता है। कहता कुछ है, जीता कुछ है। और उसके जीवन और उसके कहने में, कहीं कोई तालमेल नहीं दिखाई पड़ता। यह जो गैर-तालमेल है, यह पैदा होता है शब्द को समझ लेने से। इस संबंध में कुछ बातें और विचार कर लें, फिर हम प्रश्न को लें।
ईश्वर, आत्मा, मोक्ष, सुनते ही समझ में आ जाते हैं। क्योंकि अर्थ हमें शब्दकोश में जो लिखा है वह पता है। मोक्ष का अर्थ हमें मालूम है, ईश्वर का अर्थ हमें मालूम है, आत्मा का अर्थ हमें मालूम है। लेकिन अर्थ तो अस्तित्व नहीं है। ईश्वर कहने से, ईश्वर सुनने से, ईश्वर का कोई भी पता नहीं चलता। ईश्वर शब्द तो ईश्वर नहीं है। जो बोल रहा है, उसने अगर जाना है, तो भी वह अपने ज्ञान को आप तक नहीं पहुंचा सकता। शब्द ही जाएंगे, ज्ञान तो पीछे रह जाएगा। शब्द याददाश्त के हिस्से हो जाएंगे, स्मृति भरी-पूरी हो जाएगी, स्मृति सघन हो जाएगी, स्मृति का बोध हो जाएगा, स्मृति शास्त्र बन जाएगी। और आपको भ्रांति पैदा होगी कि ईश्वर को मैं जानता हूं, क्योंकि ईश्वर शब्द को आपने सुना, पढ़ा और भाषाकोश में अर्थ लिखा है।
लेकिन बिना ईश्वर तक गए कोई कैसे ईश्वर को जान सकेगा? काश, इतना सरल होता कि भाषाकोश को जानकर हम ईश्वर को जान लेते, तो अब तक पृथ्वी पर कोई अज्ञानी न बचता, अभी तक सभी ज्ञानी हो गए होते। अगर मोक्ष का अभिप्राय, मोक्ष शब्द की व्युत्पत्ति में, उसके व्याकरण में छिपा होता, तो सभी मुक्त हो गए होते, बंधन में कोई भी न होता।
शब्द को जानना कितना सरल है!
लेकिन मन यात्रा से बचना चाहता है, तो भ्रांति पैदा करता है। मन यात्रा से बचना चाहे, यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि यह यात्रा मृत्यु- यात्रा होने वाली है। ईश्वर को खोजने जो निकलेगा, वह स्वयं को खो देगा। भाषाकोश को देख लेने से स्वयं के खोने का कोई संबंध नहीं। शास्त्र को कंठस्थ कर लेने से स्वयं के मिटने का कोई सवाल नहीं। लेकिन जो मोक्ष खोजने जाएगा, वह मिटेगा। क्योंकि मिटे बिना कोई मोक्ष नहीं, कोई मुक्ति नहीं। मूलतः, मैं ही मेरा बंधन हूं, तो जब तक मेरा मैं विसर्जित न हो जाए तब तक कैसा मोक्ष? मैं ही मेरे और परमात्मा के बीच दीवार हूं, जब तक यह दीवार न गिर जाए तब तक कैसे परमात्मा की अनुभूति?
यह यात्रा मृत्यु-यात्रा है। साधक मरने ही निकला है।

लेकिन मरकर ही परम जीवन उपलब्ध होता है। खोकर ही स्वयं को पाया जाता है।
और इसलिए मन डरता है। मन भ्रांतियां पैदा करता है। मन परिपूरक खोजता है।
इस परिपूरकता के नियम को ठीक से समझ लें। मन की सबसे बड़ी कला परिपूरक, सब्सटीट्यूट खोजना है। जो जीवन में न मिल पाए, मन उसे स्वप्न में दे देता है।
आप प्यासे हैं, रात गहरी नींद में सोए हैं। प्यास तड़फाती है, नींद टूटेगी, उठना पड़ेगा, पानी खोजना पड़ेगा, झरने तक जाना पड़े। तो मन एक परिपूरक निर्मित करता है, एक स्वप्न शुरू हो जाता है। झरना बह रहा है, आप झरने तक पहुंच गए हैं, खूब हृदयपूर्वक प्यास को बुझा रहे हैं। नींद जारी रहती है, नींद को टूटने की कोई जरूरत नहीं है। यह तो सुबह उठकर ही पता चलता है कि रात जो पानी पीया वह झूठा था, जिस सरोवर पर गए वह स्वप्न था और जो प्यास मिट गई वह मिटी नहीं थी, वह भ्रांति थी। लेकिन यह तो सुबह जागने पर ही पता चलता है। रात नींद निश्चिंतता से पूरी हो जाती है। नींद न टूटे, इसलिए मन परिपूरक पैदा करता है।
जीवन में भी, नींद न टूटे, मन परिपूरक पैदा करता है।
ईश्वर को जानने चलेंगे, तो नींद टूटेगी। और नींद में हमारा बड़ा स्वार्थ है, क्योंकि हमने अब तक जन्मों-जन्मों तक नींद को ही संवारा है, वही हमारी निर्मिति है। परिवार हो हमारा, मित्र हों, पत्नी हो, बच्चे हों, धन हो, दौलत हो, पद-प्रतिष्ठा हो, सब हमारी नींद का हिस्सा है। नींद के टूटते ही यह सब भी बिखर जाएगा। इस सबमें भी जो जोड़ हैं, वे नष्ट हो जाएंगे। नींद टूटेगी तो यह पूरा संसार, जिसे हम अब तक संसार समझे हैं, जिन्हें अपना समझा है, वे सब खो जाएंगे। सुबह जागकर सपने के मित्र वापस नहीं मिल सकते। सुबह जागकर सपने के महल वापस नहीं पाए जा सकते। सुबह जागकर सपने की जो संपदा थी, उसे खोजने का कोई भी उपाय नहीं, वह खो गई, सदा को खो गई।
यह सब हमने स्वप्न में बनाया है। इसलिए डर है, स्वप्न टूट न जाए, नींद टूट न जाए, तो हम मूर्च्छित जीते हैं।
मन मूर्च्छा का नाम है।
और जहां भी टूटने का डर पैदा होता है, मन तत्क्षण परिपूरक पैदा करता है।
ईश्वर को जानने में नींद टूटेगी। लेकिन शब्द ईश्वर को जानने में नींद
को टूटने का कोई भी कारण नहीं, बल्कि नींद और मजबूत हो जाती है, नींद और गहरी लग जाती है। ईश्वर को खोजने जाएंगे तो संसार मिटेगा। यह शब्द ईश्वर को कंठस्थ कर लेने से, ईश्वर भी संसार का ही हिस्सा हो जाता है। इसलिए हम मंदिर बनाते हैं, मस्जिद बनाते हैं, गुरुद्वारा बनाते हैं। जहां हमने दुकान बनाई, जहां हमने मकान बनाया, उन्हीं के पास हम मंदिर-मस्जिद भी बना देते हैं, वे भी हमारे इस संसार के हिस्से हो जाते हैं। हिंदू है, मुसलमान है, ईसाई है, सिक्ख है, जैन है, संसार के झगड़े हैं, हम धर्मों के झगड़े भी उसमें जोड़ देते हैं। जैसे कि झगड़े कम हों, जैसे कि राजनीति काफी न हो, जैसे कि और उपद्रव पर्याप्त नहीं हैं, तो हम धर्मों के उपद्रव भी जोड़ देते हैं, हम उनके लिए भी लड़ते हैं। वैसे ही प्रतिस्पर्धा काफी है--राष्ट्रों की है, धन की है, पद की है--हम धर्मों की प्रतिस्पर्धा भी जोड़ते हैं। हम धर्म को भी संसार का हिस्सा बना लेते हैं, यह मन की कला है।
आपको ख्याल हो, आप सबने ऐसे सपने देखे होंगे, जिनमें ऐसा लगता है कि हम जाग रहे हैं। सपने में जागने का सपना देखा जा सकता है। सपने में आप देख सकते हैं कि अलार्म बज गया, सुबह हो गई, मैं उठ खड़ा हुआ, सपना टूट गया--और यह भी सपना है। यह तो सुबह ही, जब असली सुबह आएगी, तब पता चलेगा कि सपने में भी जागने का सपना देखा जा सकता है। और सबसे खतरनाक सपना वही है जिसमें जागने का सपना देखा जा सके, क्योंकि फिर उसमें भ्रांति पूरी हो जाती है।
तो जो व्यक्ति संसार में धार्मिक होने का सपना देख लेता है, इससे बड़ा
और कोई सपना नहीं है। बजाय इसके कि हम जाएं खोज में, हम झूठे परमात्मा अपने

आसपास निर्मित कर लेते हैं। अगर हम असली परमात्मा की खोज में जाएंगे तो हम मिटेंगे। खुद को बचाने के लिए हम नकली परमात्मा ईजाद कर लेते हैं। धर्मशास्त्र कहते हैं कि परमात्मा ने जगत बनाया। ठीक कहते होंगे। लेकिन अगर हम परमात्माओं को देखें, जो आदमी के आसपास हैं, तो वे आदमी के बनाए हुए हैं। मंदिर में जो मूर्ति रखी है वह आपने बनाई है। और कुशल है अदभुत आदमी! खुद की बनाई मूर्ति के सामने झुकता है, प्रार्थना-पूजा करता है। खुद गढ़ता है मूर्ति को, उसके ही हाथ की निर्मिति है, खुद ही प्रतिष्ठित करता है, पत्थर को उठाकर परमात्मा बना लेता है, फिर उसके सामने घुटने टेकता है। अदभुत खेल है। पूजा-प्रार्थना करता है। खिलौनों के सामने पूजा चलती है। और प्रसन्न घर लौटता है कि परमात्मा के मंदिर होकर आया हूं। शब्दों से यह जाल निर्मित हुआ। इसलिए ठीक पूछा है कि शब्द से समझ में आता है।
शब्द से वस्तुतः कुछ भी समझ में नहीं आता, समझने की परिपूरकता पैदा होती है। लगता है, समझ में आया। और यह लगना बुरा है।
तो पहली बात तो यह समझ लें कि शब्द की समझ का कोई भी मूल्य नहीं, वह नासमझी को छिपाने का उपाय है। वह जैसे हम नग्नता को वस्त्रों से छिपा लेते हैं, फिर भी भीतर तो नग्न ही बने रहते हैं, कोई नग्नता मिटती नहीं। और अगर आप होशियार हों तो इस तरह के वस्त्र पहन सकते हैं कि नग्नता और उभरकर दिखाई पड़े। नंगा आदमी इतना नग्न कभी नहीं होता, नग्न स्त्री इतनी नग्न कभी नहीं होती, जैसा कि वस्त्रों से नग्नता को उभारकर दिखाया जा सकता है। आपके शब्द, आपकी झूठी समझ, आपकी भीतर की दरिद्रता को भरेगी नहीं, मिटाएगी भी नहीं, सिर्फ ढंक लेगी। और कभी आप इस तरह इस समझ का उपयोग कर सकते हैं कि आपके पांडित्य से आपकी मूढ़ता और भी प्रगाढ़ होकर प्रगट हो। मूढ़ में तो एक तरह की सरलता होती है। मूढ़ में एक तरह का निर्दोष भाव होता है। पंडित? पंडित की मूढ़ता बड़ी जटिल है, बड़ी सूक्ष्म है। और अगर आपके पास जरा- सी भी देखने की आंखें हों तो आप पाएंगे कि पंडित से बड़ा मूढ़ खोजना मुश्किल है। उसकी मूढ़ता सब तरफ से प्रगट होकर दिखाई पड़ती है। ढांका उसने बहुत है। पर जो-जो हम ढांकते हैं, उस-उस से खबर भी मिलती है कि हमें उसका पता है। जो- जो हम ढांकते हैं, वह-वह हम उघाड़कर दिखा भी रहे हैं। क्योंकि हर ढांकी चीज खबर देती है कि कुछ ढांका गया है, कुछ ढांकने योग्य था।
अपढ़, अज्ञानी, जिसने अपने को ढांका नहीं, उसकी नग्नता आदिवासी जैसी नग्नता है। वह नंगा खड़ा है। उसे नग्नता का भी कोई पता नहीं है।
लेकिन पंडित की मूढ़ता वेश्या जैसी नग्नता है। उसने बहुत वस्त्रों में उसे ढांका है, सब तरफ से छिपाया है; और फिर भी छिपाने से वह प्रगट हो रही है। छिपाया ही इसलिए है कि कहीं प्रगट न हो जाए।
शब्द की समझ समझ नहीं है, यह समझ में आ जाए तो पहला कदम उठा। शास्त्र
से मिला हुआ ज्ञान ज्ञान नहीं है, यह बोध में आ जाए तो ज्ञान की पहली किरण उतरी।
और तब कठिन नहीं होगा शास्त्र को हटाकर रख देना। तब कठिन नहीं होगा शब्दों के जाल को तोड़कर बाहर आ जाना। कठिन इसलिए है कि हमें लगता है कि वह समझ है। हाथ में पत्थर रखे हों और हमें ख्याल हो कि हीरे हैं तो छोड़ना मुश्किल होता है। पत्थर की वजह से नहीं, ख्याल है कि हीरे हैं। ख्याल आ जाए कि पत्थर हैं, हीरों की भ्रांति थी, तो छोड़ने में क्या अड़चन है। छोड़ना पड़ेगा ही नहीं। स्मृति आते ही, बोध आते ही कि पत्थर हैं, पत्थर गिर जाएंगे। शब्दों के पत्थरों को गिर जाने दें, तो अर्थ का उदय होगा।
धर्म के आयाम में शब्द से अर्थ का उदय नहीं होता। निःशब्द से अर्थ का उदय होता है। शब्दों को हटाएं, तो निःशब्द की धारा प्रगट होगी।
पूना में जो नदी है, वह ढंक जाती है, पत्तों ही पत्तों से ढंक जाती है।
पानी उसमें दिखाई ही नहीं पड़ता। एक हरियाली फैल जाती है। वैसा ही आपका मन है। पत्तों को हटाएं तो नीचे सरिता बह रही है। शब्द को हटाएं तो नीचे अर्थ की सरिता छिपी है।
और सब दिशाओं में बात भिन्न है। जब मैं कहता हूं वृक्ष, शब्द सुनते ही अर्थ भी समझ में आ जाता है। जब मैं कहता हूं सरिता, सागर, मकान, तो शब्द

सुनते ही अर्थ भी समझ में आ जाता है। लेकिन जब मैं कहता हूं ईश्वर, आत्मा, मोक्ष, शब्द सुनाई पड़ता है, अर्थ समझ में नहीं आता।
वृक्ष कहते ही समझ में आ जाता है, क्योंकि वृक्ष आपका भी अनुभव है।
इसलिए शब्द संकेत करता है, और आपका अनुभव है, इसलिए समझ में आ जाता है।
सागर कहते ही समझ में आ जाता है, क्योंकि आपका भी अनुभव है। लेकिन दूर रेगिस्तान में बसा एक आदमी, जिसने सागर कभी नहीं देखा, जिसने सागर का कोई चित्र भी नहीं देखा, उससे हम सागर शब्द कहें, उसे कुछ भी समझ में नहीं आता। वह सुनता है, बौद्धिक रूप से समझने की कोशिश भी करता है। हम उसे समझा भी दे सकते हैं कि जैसे यहां रेत का विस्तार है, ऐसा ही जल का विस्तार है, तो एक प्रतीति भी बनती है, एक प्रत्यय, एक कंसेप्ट भी आ जाता है। लेकिन फिर भी सागर के किनारे खड़े होकर जिसने सागर को देखा, या जिसने सागर में उतरकर और सागर में तैरकर देखा, जिसने सर्फिंग की है सागर में, उसका अनुभव मरुस्थल में बैठे आदमी के किसी भी प्रत्यय से पूरा नहीं होता।
जब मैं कहता हूं परमात्मा, तो न तो आप परमात्मा के किनारे गए, न परमात्मा में उतरकर तैरे, न परमात्मा की लहरों से आपकी कोई संगति बनी, कोई संबंध हुआ, न उन लहरों के संगीत में आप विलय हुए। आपकी बूंद दूर ही दूर रही।
बूंद डरती है, सागर में जाएगी तो खो जाएगी।
यह डर सच भी है और फिर भी असत्य है। बूंद खोएगी निश्चित ही, लेकिन खोने में कुछ भी हानि नहीं है, क्योंकि खोकर बूंद सागर हो जाएगी। छोटा मिटेगा, बड़ा उपलब्ध होगा। ना-कुछ खोएगा, सब कुछ मिलेगा। लेकिन जो मिलेगा उसका बूंद को अभी कोई पता नहीं। अभी तो जो खोएगा उसका ही पता है। इसलिए डर है, इसलिए भय है।
शब्द को हटाएं। हटाने का पहला कदम यह होगा कि समझ लें कि शब्द से यहां कोई गति नहीं है। संतों के वचन पाठशालाओं में नहीं समझाए जा सकते। संतों ने जो कहा है, विश्वविद्यालयों से उसका कोई संबंध नहीं जोड़ा जा सकता। संतों ने जो कहा है, उसे शास्त्रों में लिपिबद्ध किया गया, पर किया नहीं जा सका। ऊपर-ऊपर की खोल तो लिपिबद्ध हो गई, भीतर-भीतर का सार छूट गया। बाहर-बाहर की रेखाएं तो पकड़ में आ गईं, भीतर की आत्मा से कोई संस्पर्श नहीं हो पाया।
यह वचन, नहिं राम बिन ठांव, अनूठा है। इस एक वचन में सारे वेद, सारे उपनिषद, सारी गीताएं समा जाती हैं। इस एक वचन को समझ लें तो फिर कुरान और बाइबिल को समझने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। यह छोटा-सा वचन आणविक शक्ति जैसा है। एक छोटे से अणु में इतनी विराट ऊर्जा! और जिन संतों ने कहा है, जिन संतों ने ऐसे छोटे-छोटे आणविक वचन कहे, वे कोई बहुत पढ़े-लिखे लोग नहीं थे। यह बड़ी हैरानी की बात है कि पढ़े-लिखे लोग अक्सर संतत्व को उपलब्ध नहीं
हो पाते। अपवाद मिल जाएं, बाकी नियम यही है कि बहुत पढ़े-लिखे लोग संतत्व को उपलब्ध नहीं हो पाते। क्योंकि बहुत पढ़े-लिखे लोग परिपूरक चीजें खोजने में इतने कुशल हो जाते हैं, इतने निष्णात, खुद को धोखा देने में उनकी क्षमता इतनी प्रगाढ़ हो जाती है, कि रंगे हाथों खुद को वे कभी पकड़ ही नहीं पाते कि वे क्या कर रहे हैं।
गैर पढ़े-लिखे लोग--कबीर, दादू, नानक--सरलता से प्रवेश कर जाते हैं। बहुत बोझ नहीं है उतारकर रखने को। बहुत दीवाल भी नहीं है तोड़ने को। जरा-सा धक्का और सब गिर जाता है।
यह जो वचन है, ऐसे ही गैर पढ़े-लिखे लोगों के जीवन-अनुभव का सार है।
वचन तो साफ है, शब्द में तो कोई कठिनाई नहीं हैः राम के बिना और कोई ठिकाना नहीं; राम के बिना और कोई छाया नहीं, कोई शरण नहीं; राम के बिना और कोई उपाय नहीं।
कैसी मनोदशा में इसका स्मरण आता होगा?
हमें धन में शरण दिखाई पड़ती है, धन में ठांव दिखाई पड़ती है। चारों तरफ
जो लोग हैं, उनकी भाषा धन की है, वे आदमी को तौलते भी धन से हैं। कितना है तुम्हारे पास, वही तुम्हारी आत्मा का वजन है। कुछ भी नहीं है तुम्हारे पास तो तुम्हारे पास कोई आत्मा भी नहीं है।

संपदा, कोई भी मुद्राओं में हो, बाहर है--और तुम भीतर हो। क्या तुम्हारे पास है, वह कभी भीतर नहीं जा सकता। तिजोरियों को भीतर ले जाने का कोई भी उपाय नहीं, वे बाहर ही रहेंगी। बड़े साम्राज्य हों, उनको भी भीतर ले जाने का कोई मार्ग नहीं, वे बाहर ही रहेंगे। और तुम सदा भीतर हो और तुम्हें बाहर ले जाने का कोई उपाय नहीं।
इसलिए संपदा और आत्मा का कभी भी मिलन नहीं होता। आत्मा का अर्थ है आंतरिकता, संपदा का अर्थ है बाहर, सदा बाहर। कहीं भी ये दो रेखाएं एक-दूसरे को नहीं काटतीं। इनका कहीं कभी मिलन ही नहीं होता, होने का कोई उपाय ही नहीं है। ये आयाम अलग, जगत अलग।
पर हम तौलते हैं आदमी को, क्या है उसके पास, कितनी शिक्षा, कितना पद, कितनी बड़ी कुर्सी, सिंहासन। क्या है तुम्हारे पास, वही तुम हो--यह हमारा मापदंड है।
यह मापदंड सरासर असत्य है। इस मापदंड के कारण अगर हमसे कोई पूछे, हमारा भीतरी अनुभव पूछे, तो धन के बिना कोई ठांव नहीं, यह हमारे अनुभव का निचोड़ होगा। हम संतों को भी तौलते हैं तो धन से।
महावीर अगर गरीब घर में पैदा होते, तो जैन उन्हें तीर्थंकर मानने वाले नहीं थे। यह मैं निश्चय से कहता हूं, क्योंकि जैनों के चौबीस तीर्थंकर ही राजाओं के पुत्र हैं। सोचने जैसा है कि हजारों-हजारों सालों में एक भी व्यक्ति ऐसा पैदा न हुआ जो गरीब घर से आया हो और तीर्थंकर हो सके? राजाओं के बेटे ही तीर्थंकर हो सकते हैं? तो भविष्य निराशाजनक है, क्योंकि अब राजा नहीं रहे और अब कोई तीर्थंकर नहीं हो सकेगा। अब बड़ी कठिनाई है। बुद्ध, तीर्थंकर, जिन, बुद्धत्व को उपलब्ध हुए, पर लोकमानस उन्हें भी स्वीकार न करता अगर वे राजपुत्र न होते। राम और कृष्ण को गरीब घर में पैदा करके देखो, वे अवतार की तरह स्वीकार न हो सकेंगे। हमारा मन संतों को भी धन से ही तौलता है।
तो अगर जैनों का शास्त्र पढ़ें या बौद्धों का शास्त्र पढ़ें, तो जैन गिनाते हैं कि कितना बड़ा साम्राज्य महावीर के पास था। था नहीं उतना बड़ा, क्योंकि उन दिनों के साम्राज्य छोटी-छोटी जमींदारियां थे। हिंदुस्तान में कोई दो हजार राजा थे उस समय, तो कितना बड़ा साम्राज्य हो सकता है? एक छोटे जिले से ज्यादा बड़ा नहीं हो सकता। एक छोटे-मोटे जमींदार महावीर के बाप थे, कोई बहुत बड़े राजा नहीं थे। और अगर महावीर पैदा न होते तो कोई इतिहास में उनके बाप का नाम नहीं हो सकता था। मगर जैन गिनाते हैं कि इतना बड़ा साम्राज्य, इतने घोड़े, इतने हाथी। जितने घोड़े और हाथी वे गिनाते हैं, उतने घोड़े और हाथी उस छोटे से राज्य में खड़े भी नहीं किए जा सकते। इतने हीरे-जवाहरात! यह सब झूठ है।
लेकिन इसमें एक सत्य छिपा है। और वह सत्य यह है कि जैन का मन यह मानने
को नहीं होता कि मेरा तीर्थंकर और छोटे घर से आता हो। इस सत्य को पकड़ना, जानना जरूरी है। मेरा तीर्थंकर चक्रवर्ती सम्राट होगा! कि हमारा तीर्थंकर और कैसे साधारण घर से आ सकता है? तो धन का झूठा विस्तार महावीर के चारों तरफ खड़ा किया जाता है।
महावीर जब बोलते हैं, तो हजारों मील लंबा स्थान घेरना पड़ता है जहां सुनने वाले इकट्ठे होंगे। सुनने वालों की संख्या बहुत बड़ी करके बतानी पड़ती है, क्योंकि अगर दस-पांच ही सुनने वाले महावीर को हों, तो हमें लगेगा कि महावीर की हैसियत ही कुछ नहीं। अरबों-खरबों लोग सुनते हैं। हालांकि यह असंभव है। आज तो संभव है, क्योंकि माइक है, लाखों लोग भी सुन सकते हैं। महावीर के समय में यह संभव नहीं कि लाखों लोग सुन सकें। अनिवार्यरूपेण महावीर छोटे-छोटे समूह में बोले। पर जैन का मन नहीं मानता, क्योंकि संख्या हमारा मूल्य है। कितने लोग!
फिर हम झूठ और सच की फिक्र नहीं करते। भक्त और दुश्मन कभी झूठ और सच की फिक्र नहीं करते। प्रेमी झूठ बोलता है, अतिशय करता है। शत्रु भी झूठ बोलता है, अतिशय करता है। घृणा और प्रेम में हम सब भूल जाते हैं। सचाई, झूठ, फिर सब सीमाएं तोड़कर नदी बहने लगती है।

वैसा ही हम बुद्ध के लिए गिनाते हैं। वैसा ही हम राम और कृष्ण के लिए गिनाते हैं। उस गिनती से उनके पास कितना था, इसका कोई संबंध नहीं है। उस गिनती से हमारे मापदंड का पता चलता है कि अगर उनके पास कुछ भी न हो, तो हम स्वीकार न कर सकेंगे। हमारी स्वीकृति मुश्किल में पड़ जाएगी। धन को बड़ा करते हैं, उससे ही हमें आत्मा के बड़े होने का पता चलता है। महावीर ने कितना छोड़ा, इससे हम त्याग को नापते हैं। अगर महावीर के पास कुछ भी न हो, तो फिर हम महावीर को त्यागी भी न कह सकेंगे, क्योंकि जब कुछ छोड़ा ही नहीं तो त्यागी कैसे?
हमारी धारणा में भी नहीं आ सकता कि एक भिखमंगा भी त्यागी हो सकता है। क्योंकि त्याग का कोई संबंध, कितना छोड़ा है, इससे नहीं, छोड़ने के भाव से है।
क्या आप सोचते हैं कि एक आदमी के पास एक पैसा है, वही उसकी कुल संपदा है; और एक आदमी के पास करोड़ रुपया है; जिसके पास करोड़ है वह आधा करोड़ छोड़ देता है और जिस आदमी के पास एक पैसा है वह पूरा पैसा छोड़ देता है; आपके हिसाब से आधा करोड़ जिसने छोड़ा वह बड़ा त्यागी, क्योंकि आप एक पैसा और आधा करोड़ का हिसाब लगाएंगे। लेकिन जो जानते हैं, उनके हिसाब से एक पैसा जिसने छोड़ा, वह बड़ा त्यागी है; क्योंकि उसने पूरा छोड़ दिया जो भी उसके पास था और जिसने आधा करोड़ छोड़ा उसने आधा ही छोड़ा है।
लेकिन फिर भी एक पैसा हमें चाहिए हिसाब लगाने को। अगर बिल्कुल कुछ भी
न हो किसी के पास और वह कह दे कि छोड़ा, तो हम उस पर भरोसा ही नहीं करेंगे। हम कहेंगे, तुम्हारे पास कुछ है नहीं, तुमने छोड़ा क्या?
छोड़ने का कोई संबंध होने से नहीं है। छोड़ना एक भाव है। लेकिन उस भाव
को हम कैसे नापें? नाप का मापदंड तो मुद्रा है। कितना है, उससे त्याग नापा जाता है। अब यह बड़े मजे की बात है। त्याग को भी हम धन से नापते हैं, भोग को भी धन से नापते हैं। नाप ही हमारे पास धन है। धन हमारी शरण है।
और जब तक धन हमारी शरण है, तब तक राम हमारी शरण नहीं हो सकते।
नहिं राम बिन ठांव--कब, किस मनोदशा में उठेगा?
जब धन की भ्रांति टूटती है। और जब लगता है कि धन व्यर्थता है। और जब लगता है कि धन को कितना ही पा लूं तो भी कुछ नहीं पाया जाता।
धन संघर्ष है राम से, वह एक लड़ाई है। धन समर्पण से बचने का उपाय है। धन
का मतलब है, मेरे पास खुद शक्ति है, मैं क्यों समर्पण करूं? मैं क्यों किसी की शरण जाऊं, लोग मेरी शरण आएंगे। धन दूसरों को शरण में बुलाने की व्यवस्था है।
इसलिए जीसस बहुत जोर देते हैं कि जो निर्धन नहीं, वह मेरे पास न आ सकेगा। जीसस कहते हैं कि सुई के छेद से ऊंट भी निकल जाए, लेकिन परमात्मा के द्वार से धनी न निकल सकेगा।
इसका यह मतलब नहीं है कि जिनके पास धन है वे सदा वंचित रहेंगे। धन का बड़ा सवाल नहीं है, लेकिन धन जिनका मूल्य है। चाहे आपके पास कुछ भी न हो, आप भीख मांगते हों, लेकिन आपका मूल्यांकन धन है, आपके जीवन का ढांचा धन है, सोचते धन से हैं, हिसाब धन से लगाते हैं, तो आप निर्धन हों भला, लेकिन आप परमात्मा के द्वार पर प्रवेश न कर सकेंगे।
क्यों? क्योंकि जिसका धन में भरोसा है, उसका खुद में भरोसा है। धन में भरोसे का अर्थ है, खुद में भरोसा है।
राम में भरोसे का अर्थ है, खुद में भरोसा समाप्त। वह स्वयं के संकल्प
का अंत है। जिसको हम विल-पावर कहते हैं, संकल्प की शक्ति कहते हैं, उस शक्ति से भरे हुए आदमी को यह वचन बिल्कुल ही व्यर्थ मालूम पड़ेगा। उस आदमी को तो लगता है कि मेरी शक्ति मैं हूं। मेरी शक्ति मुझसे आती है। मेरी सफलता मुझसे आती है। धन, पद, यश, मुझसे आता है। शक्ति का स्रोत मैं हूं। मैं धन पैदा करूंगा। मैं साम्राज्य को बड़ा करूंगा। मैं अपनी शक्ति को बढ़ाऊंगा, मैं मृत्यु से जूझूंगा, लडूंगा; और एक दिन परम विजय को उपलब्ध हो जाऊंगा।
सांसारिक आदमी का अर्थ है कि जिसका स्वयं पर भरोसा है।

यह बड़ा मुश्किल लगेगा। क्योंकि हम तो स्वयं पर भरोसे का बड़ा मूल्य मानते हैं, सेल्फ कॉन्फीडेंस, स्वयं पर भरोसे को हम सिखाते हैं। हर बच्चे को कहते हैंः खुद के पैर पर खड़े हो जाओ। अपने पर भरोसा रखो। लड़ो, जूझो, डरो मत। तुम जरूर जीतोगे, ऐसी धारणा रखो, तो जीतोगे, तो जीत जाओगे। प्रतिस्पर्धा, प्रतियोगिता, संघर्ष का सूत्र यही है कि अपने पर भरोसा रखो। अपने पर भरोसा खोया तो पैर डगमगा जाएंगे और गिर पड़ोगे। हम प्रत्येक व्यक्ति को यही सिखाते हैं कि तुम महाशक्तिशाली हो, डरो मत, लड़ो। और आज नहीं कल, सब तुम्हारी शरण आ जाएंगे।
जिस दिन यह भ्रमजाल टूटता है, जिस दिन हमें लगता है कि मेरी कोई शक्ति
हो कैसे सकती है, क्योंकि मैं ही नहीं हूं। मेरा होना सिर्फ एक धारणा है। मैं तभी हो सकता हूं जब इस सारे अस्तित्व से अलग हो सकूं। एक क्षण श्वास न आए तो मैं समाप्त हो जाता हूं। एक क्षण सूरज न उगे, मेरी मृत्यु हो जाए। यह जो विराट का इतना बड़ा जाल है, इस जाल में कहीं से भी कुछ सरक जाए, तो मेरी ईंटें गिर जाती हैं, मेरा भवन भूमिसात हो जाता है। इस पूरे कॉसमास में, इस जागतिक व्यवस्था में, मैं एक छोटा-सा अंग हूं। और अंग भी ऐसा नहीं कि अलग हो सकूं। अलग होते ही मैं नहीं हूं।
थोड़ा सोचें, अपने को अलग करके सोचें इस विराट से, आप क्या हैं फिर? शून्य हो जाएंगे तत्क्षण।
आपके जीवन की धारा विराट से बहती है। श्वास आती है विराट से, वापस विराट में लौट जाती है। जन्म होता विराट से, वापस मृत्यु में लीन हो जाते हैं। सब उसी से आता है, उसी में वापस लौट जाता है। एक विराट का वर्तुल है जिसमें आप घूमते हैं। आपका होना पृथक नहीं है।
इसलिए संघर्ष किससे? अगर आप पृथक हैं, तो संघर्ष है। अगर आप पृथक हैं,
तो दूसरे आपके प्रतियोगी हैं, शत्रु हैं।
ध्यान रहे, जब तक राम को कोई शरण की तरह अनुभव न कर ले, तब तक इस जगत में सभी शत्रु हैं, मित्र कोई भी नहीं। जिसको हम मित्र कहते हैं, वह भी छिपा हुआ शत्रु है, क्योंकि वह भी हम से संघर्ष कर रहा है।
हम यहां बैठे हैं, कोई संघर्ष नहीं मालूम पड़ता। लेकिन अगर हवा में आक्सीजन कम हो जाए तो हम प्रतियोगी हो जाएंगे, कौन श्वास ले! वैज्ञानिक कहते हैं, चूंकि टेक्नोलॉजी के विस्तार से पूरी वायु दूषित होती जा रही है, इस सदी के पूरे होते-होते वायु इतनी दूषित हो जाएगी कि केवल वे ही लोग आक्सीजन पा सकेंगे जिनके पास धन है। आक्सीजन भी मुफ्त नहीं रह जाने वाली ज्यादा दिन, क्योंकि उसकी एक मात्रा है।
तो बड़े नगरों में, न्यूयार्क और बंबई जैसे नगरों में केवल धनी आक्सीजन पा सकेगा। गरीब को दूषित हवा पर ही रहना पड़ेगा। जैसे गरीब दूषित पानी पर रहता है, गंदे मकान में रहता है, गंदे कपड़ों में रहता है, ऐसे ही गंदी हवा में रहेगा, क्योंकि शुद्ध हवा नहीं खरीद सकेगा। यह संघर्ष बढ़ता जाए तो थोड़े से लोग ही जी सकेंगे जो शुद्ध हवा पा सकते हैं, बाकी लोग मिट जाएंगे।
हम यहां बैठे हैं, लेकिन हम श्वास में अभी भी संघर्ष कर रहे हैं। हम बैठे हैं, लगते हैं शांत हैं, कोई झगड़ा नहीं है, कोई प्रतियोगिता नहीं है, लेकिन भीतर प्रतियोगी बैठा है। मित्र भी छिपे हुए शत्रु हैं। अगर आप पृथक हैं, तो यह पूरा जगत शत्रु है और इससे लड़कर आपको अपने जीवन की सुरक्षा करनी है।
डार्विन जैसे विचारक सरवाइवल आफ द फिटेस्ट, जो योग्यतम है वही बचेगा
या जो शक्तिशाली है वही बचेगा, ऐसे सिद्धांतों को जन्म दे सके, क्योंकि उनकी मौलिक धारणा प्रत्येक को पृथक मानने की है। तब जीवन एक उपद्रव है और एक अराजकता है और हिंसा उसका सूत्र है। दूसरे को मिटाकर ही खुद के जीने का उपाय है। आपकी मृत्यु मेरा जीवन है, मेरा जीवन आपकी मृत्यु है।
ऐसे जीवन की धारा में आनंद तो असंभव है। जहां हिंसा सूत्र हो, वहां आनंद असंभव है। जहां हिंसा सूत्र हो, वहां उत्सव असंभव है। जहां हिंसा सूत्र हो, वहां शांति असंभव है। और जहां प्रतिपल लड़ना हो जीवन के लिए, वहां जीवन की समाधिस्थ दशा को पाने का कोई उपाय नहीं। जहां एक-एक श्वास के लिए

संघर्ष करना हो और दूसरे की मृत्यु बनना हो, वहां उल्लास और अहोभाव के लिए कहां मौका है, कहां संधि? अगर मैं पृथक हूं--जैसा कि हम सब मानते हैं--तो शत्रुता चारों तरफ है और इस शत्रुता के बीच कैसे अभय को आप पहुंच सकेंगे? जिस दिन यह भ्रांति गिरती है कि मैं पृथक हूं, यह भाव गिरता है, अस्मिता विलीन होती है, अहंकार विसर्जित होता है, उस दिन तत्क्षण मुझे लगता है कि मैं एक अंग हूं और और अंग भी एक जीवंत जगत का। वह वृक्ष भी, आकाश में भटकता हुआ बादल भी और मैं एक ही मूल-स्रोत की अभिव्यक्तियां हैं, एक ही जीवन-धारा से उठते हैं। यह रूपों का भेद है, मूल-स्रोत एक है। यह आकृतियों की भिन्नता है, लेकिन आत्मा की भिन्नता नहीं। आकृतियां भिन्न हैं, आत्मा एक है। रूप भिन्न हैं, वह जो अरूप सागर सबके भीतर दौड़ रहा है चेतना का, वह एक है।
राम की शरण का अर्थ है कि मैं पृथक नहीं हूं। राम ही एकमात्र ठांव है, इसका अर्थ है कि मैं अपनी पृथकता को विसर्जित करता हूं। मेरा संकल्प अब मेरा सूत्र न होगा। समर्पण अब मेरे जीवन की व्यवस्था होगी। अब मैं छोड़ता हूं संघर्ष और बहना शुरू करता है।
तत्क्षण सारा जगत मित्र हो जाता है। मित्र कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि जहां शत्रु न बचे हों वहां कैसी मित्रता? तत्क्षण सारा जगत एक परिवार हो जाता है। तब जगत के सारे रूपों के बीच एक आंतरिक पारिवारिकता का जन्म होता है। तब सबके भीतर मैं हूं और मेरे भीतर सब है।
इसे ही हिंदू अद्वैतभाव कहते रहे हैं।
नहिं नाम बिन ठांव का अर्थ राम शब्द से मत पकड़ना। इससे कोई हिंदुओं के भगवान का लेना-देना नहीं है। राम से दशरथ के बेटे राम का कोई भी संबंध नहीं है इस सूत्र में। यहां राम का अर्थ अल्लाह है, यहां राम का अर्थ परमात्मा, गॉड। यहां राम का अर्थ उस तत्व से है, जिसमें हम सब जी रहे हैं, जिसमें हम सब श्वास ले रहे हैं, जिसके होने में हमारा होना समन्वित है।
इसे थोड़ा समझें। यदि यह सत्य है, संतों की यह प्रतीति सत्य है कि हम अंग हैं, तो फिर हमारी कोई मृत्यु नहीं हो सकती। क्योंकि व्यक्ति मिटते हैं, लेकिन यह विराट तो सदा बना रहता है। मैं नहीं था, तब भी था। मैं नहीं रहूंगा, तब भी होगा। अगर मैं पृथक हूं तो मेरा जन्म होता है और मेरी मृत्यु होती है। पृथकता का जन्म भी होगा, मृत्यु भी होगी। और अगर मैं पृथक नहीं हूं, तो मैं जन्म के पहले भी था। मेरे रूप भिन्न रहे होंगे। मैं मृत्यु के बाद भी रहूंगा, मेरे रूप कोई भी हों, मिटने का कोई उपाय नहीं। अगर मैं इस सर्व के साथ एक हूं तो जीवन शाश्वत है, तो अनादि है, अनंत है, सदा से है, सदा होगा। भय विसर्जित हो जाता है।
और तब जीवन में उत्सव का उदय होता है। भयभीत हृदय कैसे नाच सकते हैं? मौत प्रतिपल खड़ी है। सब तरफ से मौत झांकती है। जहां देखो वहां मौत की छाया दिखाई पड़ती है। कहीं भी जाओ, मौत पीछा करती है। पृथकता का बोध मृत्यु को जन्म देता है। मैं पृथक हूं तो मौत अनिवार्य है।
अगर मैं एक हूं इस विराट एकता से, मौत समाप्त हो गई। इसका अर्थ हुआ, अहंकार के मिटते ही मृत्यु मिट जाती है। संकल्प के मिटते ही फिर कोई मृत्यु नहीं है, अमृत का जन्म होता है।
इसलिए संत कहते हैं, समर्पण अमृत है।
लोग अमृत को खोजते हैं। पश्चिम में अल्केमिस्टों की पुरानी परंपरा है। पूरब में, चीन में, भारत में, सब मुल्कों में लोग खोजते रहे हैं कि शायद पारद के माध्यम से अमृत मिल जाए, शायद धातुओं में रासायनिक सूत्रों में कहीं अमृत मिल जाए। कोई एक ऐसी चीज, जिसको पीकर आदमी फिर मरता नहीं। रासायनिक खोजों से अमृत कभी भी न मिलेगा, क्योंकि अमृत कोई रसायन नहीं है, वह कोई केमिकल नहीं है। न पारद से मिलेगा, न स्वर्ण-भस्मियों से मिलेगा, न मोती से।
नहीं, उन सबसे नहीं मिलेगा, क्योंकि अमृत का अर्थ ही कुछ और है। वह रासायनिक प्रक्रिया का फल नहीं है। अमृत का अर्थ है समर्पण। अमृत का अर्थ है जब मृत्यु मर जाए, मृत्यु न बचे। अमृत एक भीतरी भाव है।

अभी आपका भीतरी भाव मृत्यु है। चाहे आप भुलाते हों, छिपाते हों, लेकिन भीतरी भाव मृत्यु है। प्रतिपल आप मृत्यु से डांवाडोल हैं, वह आपके भीतर कंपित हो रही है। प्रतिक्षण शरीर जा रहा है, मौत करीब आ रही है, सब तरफ से झांकती है। बूढ़े आदमी को देखते हैं, मौत झांकती है। एक खंडहर हुए मकान को देखते हैं, मौत झांकती है। एक कुम्हलाया फूल, मौत झांकती है। एक सूख गया झरना, मौत झांकती है। जहां देखें वहां मौत है। और आप कंप रहे हैं। इस कंपित दशा में.।
पश्चिम में एक बहुत बड़ा विचारक हुआ--डेनिश विचारक--कीर्कगार्ड। वह कहता है, आदमी की जो वास्तविक दशा है, वह ट्रेम्बलिंग है। कंपन उसकी वास्तविक दशा है, वह प्रतिपल कंपा हुआ है।
आंख बंद करके कभी देखें तो आप पाएंगे, सिवाय भय के और भीतर कुछ भी नहीं। इस भय के कारण आप भगवान की प्रार्थना भी कर सकते हैं, मगर वह भी भय का ही विस्तार होगा। इस भय के कारण हाथ जोड़ सकते हैं, घुटने टेक सकते हैं, लेकिन वह भी भय का ही विस्तार होगा। मस्जिदों में, मंदिरों में घुटने टेके हुए लोग किसी परमात्मा के सामने नहीं झुके हैं, भीतरी भय के कारण झुके हैं। परमात्मा तो बहाना है; डर है भीतर, कंप रहे हैं। घुटने टेकना, युद्धस्थल पर हारे हुए सैनिक का लक्षण है। भयभीत, मौत सामने खड़ी है, मौत से बचने को वह घुटने टेकता है कि मुझे बचाओ, हाथ जोड़ता है। उसी को हमने प्रार्थना का ढंग बना लिया। भगवान के सामने डरे हुए खड़े हैं, बचाओ! तुम्हारी शरण आए हैं, मौत पीछा कर रही है।
सुना है मैंने, एक सूफी फकीर हुआ। उसके नौकर ने एक दिन सुबह-सुबह ही आकर कहा कि आपका घोड़ा मुझे दे दें। समय मेरे पास ज्यादा नहीं। गया था बाजार आपकी सब्जी खरीदने, किसी ने मेरे कंधे पर हाथ रखा। देखा, एक काली छाया! मैंने पूछा, तू कौन?
उसने कहा, तेरी मौत। और शाम तैयार रहना, मैं आती हूं।
सूफी हंसने लगा। उसने कहा, घा.ेड़ा तुम ले जा सकते हो।
नौकर घोड़ा लेकर भागा। यह घटना जहां घटी उस गांव का नाम दमिश्क, नौकर भागा बुखारा की तरफ। जैसे ही नौकर गया, फकीर निकला गांव में। बाजार में एक कोने में उसने मौत को खड़ा देखा और कहा कि यह क्या ढंग है? मेरे नौकर को नाहक डराया और अगर कुछ कहना था तो मुझसे कहना था।
मौत ने कहा कि मैंने तुम्हारे नौकर को डराया नहीं, मैं खुद चकित हो गई, इसलिए अचानक उसके कंधे पर हाथ रख दिया। क्योंकि आज शाम हम दोनों का मिलना बुखारा में तय है और वह यहां घूम रहा है सुबह और फासला लंबा है। मैं खुद चौंक गई, इसलिए मैंने उसके कंधे पर हाथ रख दिया।
फकीर फिर हंसा। मौत ने पूछा, लेकिन आप क्यों हंसते हैं? उसने कहा, सुबह
भी मैं हंसा था जब उसने घोड़ा मांगा। यही मेरा भी ख्याल था कि इसका बुखारा पहुंचना शाम तक जरूरी है। इसीलिए घोड़ा भी दे दिया कि बेचारा पैदल बड़ा थक जाएगा। और अगर यह बुखारा की तरफ जा रहा है तो सांझ मौत वहीं होनी निश्चित है।
भागो कहीं भी, कितने ही तेज घोड़े तुम्हारे पास हों, बचने का कोई उपाय नहीं है।
अल्केमिस्ट सभी मर गए। बड़े दावेदार हुए हैं, जिन्होंने कहा कि हमने अमृत खोज लिया। मगर उनमें से एक भी जिंदा नहीं है, सिर्फ कहानियां जिंदा हैं।
अब वैज्ञानिक फिर उसी मूढ़ता में पड़े हैं। जिसको हम केमिस्ट्री कहते हैं, उसका जन्म भी अल्केमी से ही हुआ है। वही अमृत को खोजते-खोजते आक्सीजन और हाइड्रोजन और केमिस्ट्री की सारी चीजें खोज में आने लगीं। अब फिर विज्ञान कहता है कि कुछ करना है कि आदमी को मौत से बचाया जा सके। और वैज्ञानिक कहते हैं, कुछ किया जा सकता है। यह भरोसा सदा से रहा है कि कुछ किया जा सकता है और आदमी मौत से बचाया जा सकता है।
निश्चित कुछ किया जा सकता है, लेकिन उस करने का संबंध प्रयोगशाला से नहीं है। उस करने का संबंध अंतस्तल से है। जब तक संकल्प, विल और मैं हूं, तब तक मौत सुनिश्चित है। जिस दिन मैं नहीं हूं, उस दिन मौत का कोई उपाय नहीं।

क्योंकि पूर्ण कभी भी नहीं मरता, यह जो विराट है यह कभी भी नहीं मरता। लहरें आती हैं, जाती हैं, सागर बना रहता है। जब तक मैं लहर हूं, तब तक मरूंगा, जब मैं सागर हूं तो मरने का कोई उपाय नहीं।
इस सूत्र में राम का संकेत इस विराट सागर के प्रति है। हिंदू, मुसलमान, ईसाई से इसका कुछ लेना-देना नहीं है। राम हिंदुओं के लिए परमात्मा का सूचक शब्द है और बड़ा प्यारा शब्द है। इसका किसी व्यक्ति से, ऐतिहासिक व्यक्ति से, कोई प्रयोजन नहीं है।
राम की शरण जाने का अर्थ है, अपने को मिटाकर सर्व की शरण जाना। मैं नहीं हूं, यह जो फैलाव है, यह जो विस्तार है, यह जो ब्रह्म है, यही है। इसके अतिरिक्त कोई ठांव नहीं। इसके अतिरिक्त जो ठांव खोज रहा है, वह भटकेगा। हम भटक रहे हैं जन्मों-जन्मों से सिर्फ ठांव खोजने के लिए। एक शरण-स्थल चाहिए, एक छाया की जगह चाहिए, जहां हम विश्राम कर सकें। लेकिन जन्मों- जन्मों से खोज रहे हैं। एक राह दूसरी राह में बदल जाती है, लेकिन ठांव नहीं आती। कई बार पड़ाव आते हैं, लेकिन मंजिल नहीं आती।
पड़ाव का मतलब है, घड़ीभर ठहर जाते हैं, फिर पता चलता है कि यह कोई मंजिल नहीं है, विश्राम थोड़ा हुआ, आगे की यात्रा फिर खुल जाती है। हर यात्रा नई यात्रा से जुड़ जाती है, लेकिन यात्रा का अंत नहीं आता।
यात्रा का अंत तो राम पर ही होता है।
उसका यह अर्थ नहीं है कि फिर आप नहीं चलते हैं, फिर आप नहीं बहते हैं। फिर भी चलते हैं, फिर भी बहते हैं। क्योंकि जीवन की धारा तो चलती ही रहती है। लेकिन आप नहीं होते, यात्री नहीं होता, यात्रा जारी रहती है। और जिस दिन यात्री नहीं, उस दिन चिंता कैसी? जिस दिन यात्री नहीं, उस दिन चिंता किसको? तब जीवन एक उत्सव है, एक सेलिब्रेशन है। तब जीवन एक समाधिस्थ नृत्य है, तब जीवन एक संगीत है।
अभी जीवन एक चिंता है। अभी जीवन एक बेचैनी है, अभी जीवन एक अंतर-कलह है, अभी जीवन दुख है।
नहिं राम बिन ठांव! निश्चित ही, राम के बिना कोई ठांव नहीं।
कुछ और मैत्रेय जी?

प्रश्नः ओशो, किसी ने पहुंचने के बाद, नहिं राम बिन ठांव, ऐसा जाना। लेकिन हमें तो आपकी तरफ देखकर ही ऐसा लगने लगता है। ऐसा क्यों?

लग सकता है, अगर देखो तो। लेकिन देखता कौन है? देखने के लिए अलग ढंग की आंखें चाहिए। कभी-कभी किसी-किसी क्षण में तुम्हारे अनजाने वैसी आंखें आ जाती हैं। तुम्हारे अनजाने कभी-कभी तुम अपने को भूल जाते हो। कभी-कभी तुम खो जाते हो। और जब तुम नहीं होते तब आंखों का पर्दा हट जाता है। उस क्षण एक झलक मिल सकती है।
देखने का अर्थ ही है कि देखने वाला भीतर न खड़ा हो। तो दर्शन होता है, क्योंकि देखने वाला पूरे समय आंखों में बाधा डालता रहता है। उसके पक्षपात हैं, उसकी धारणाएं हैं, उसके सिद्धांत हैं। वह पूरे वक्त बाधा डाल रहा है। वह कह रहा है, इस तरह देखो। वह कह रहा है, यह देखो। वह कह रहा है, यह हो ही नहीं सकता जो तुम देख रहे हो। वह भीतर जो देखने वाला खड़ा है, वह देखने नहीं देता।
कभी-कभी वह सरक जाता है। तुम्हारे अनजाने, तुम्हें पता भी नहीं होता,
कब वह सरक गया। तुम्हें पता हो, तो वह सरक ही न पाएगा। तुम उसे पकड़े ही रहोगे। कभी मुझे सुनते समय तुम भूल ही जाते हो कि हो। तब एक क्षण को आंख से पर्दा हटता है और तब तुम्हें दिखाई पड़ सकता है। कभी मेरे पास चुपचाप बैठे हुए भी मेरी शांति तुम्हारे लिए भी सघन हो जाती है। क्योंकि शांति एक तत्व है, जैसे हवा की शीतलता है, वह कोई कल्पना नहीं तुम्हारी। बगीचे में तुम जाते हो, शीतल हवाएं तुम्हें छूती हैं और तुम्हारे भीतर तक के स्नायु ठंडे हो जाते हैं। शांति भी एक ऐसा ही तत्व है, एलिमेंटल फोर्स है। अगर मैं शांत हूं और तुम अगर चुपचाप बैठ भी सको मेरे पास, स्वीकार के एक भाव में, तो वह

जो शांति मेरे पास है वह तुम्हारे ऊपर भी सघन हो जाएगी। भीतर तक तुम्हारे स्नायुओं को छुएगी और ठंडा कर जाएगी।
और जब आंखें ठंडी होती हैं तब दिखाई पड़ता है, उत्तप्त आंखें कुछ भी नहीं देख पातीं। उत्तप्त आंखें अपने में बेचैनी से ही भरी हुई हैं, उत्तप्त आंखें विक्षिप्त हैं।
तो जब भी तुम शांत होते हो, तब दर्शन हो पाता है।
और इसके लिए जरूरी नहीं कि तुम मेरे पास ही आओ तब यह हो। मैं सिर्फ बहाना हूं। तुम अपने अकेले में बैठकर भी अगर मौन हो सको, शांत हो सको, तो यही होगा। तुम अगर पक्षियों को सुनते समय भी अपने को भूल जाओ, तो यही होगा।
क्योंकि पक्षी भी यही कह रहे हैं, नहिं राम बिन ठांव। यह सवाल तुम्हारा नहीं, यह पूरा अस्तित्व यही कह रहा है।
आदमी को छोड़कर पूरा अस्तित्व राम के साथ जी रहा है। आदमी भटका है। आदमी थोड़ा हटा है रास्ते से। इसलिए आदमी के सिवाय और कहीं संताप नहीं है।
आदमी के सिवाय और कहीं विक्षिप्तता नहीं है। वृक्ष भी जन्मते हैं और मरते हैं, लेकिन वहां कोई अहंकार नहीं। इसलिए वृक्ष सदा आनंद में हैं। पक्षी भी जन्मते हैं और मरते हैं, लेकिन सदा नाच रहे हैं, गा रहे हैं, उनका उत्सव अखंड है।
आदमी भटका है, भटकने की संभावना है, क्योंकि आदमी चेतन है। पक्षी आनंदित हैं, लेकिन उन्हें अपने आनंद का भी कोई पता नहीं है। आदमी दुखी है, क्योंकि उसे पता है। अगर आदमी अपने को भूल जाए तो वह भी पक्षियों जैसे ही, वृक्षों जैसे ही आनंद में प्रवेश पा जाएगा।
एक बात भिन्न होगी और वही चरम सीमा है; उसे पता भी होगा कि मैं आनंदित हूं। यह पता होने की संभावना दुख में ले गई है, यही संभावना परम आनंद में भी ले जाएगी।
तो कहीं भी घट सकता है। नदी के किनारे तुम बैठे हो, देखो धारा को, अपने
को भूल जाओ और बहने दो धारा को। धारा के संबंध में सोचो भी मत, क्योंकि सोचते ही तुम वापस आ जाओगे। सिर्फ बहने दो धारा को और तुम जैसे अनुपस्थित हो जाओ। तुम भूल ही जाओ कि तुम हो। तत्क्षण शून्य से जैसे आनंद तुम्हारे भीतर और बाहर पुलकित हो उठेगा, हजार-हजार फूल भीतर खिल जाएंगे, और तुम देख पाओगे।
दर्शन संभव है, अनुभव संभव है, तुम्हारी गैर-मौजूदगी चाहिए, शेष सब बहाने हैं। तुम्हें यहां बुलाकर बैठा हूं, तुमसे बात कर रहा हूं, बात करना बहाना है। बात करना सिर्फ तरकीब है। तरकीब इस बात की कि शायद तुम बातचीत में उलझ जाओ और बात से बात निकलती जाए और तुम भूल जाओ। तुम बात में इतने लीन हो जाओ.।
शायद तुम नदी में लीन न हो सको अभी। शायद वृक्षों को तुमने देखा ही नहीं, पक्षियों को तुमने कभी सुना ही नहीं, उस भाषा से तुम परिचित नहीं। मेरी भाषा से तुम परिचित हो, आदमी की भाषा से तुम परिचित हो। शायद इस आदमी की भाषा में तुम डूब जाओ, लीन हो जाओ, शायद इस भाषा का काव्य तुम्हें पकड़ ले। उस क्षण में अचानक तुम देख पाओगे। तुम्हारी आंखें खुलेंगी। जैसे एक बिजली कौंध जाए और सब जहां अंधेरा था, वहां प्रकाश हो जाए।
एक क्षण को भी तुम देख लो, तो फिर तुम दुबारा वही नहीं हो सकोगे। क्योंकि जो देख लिया गया, वह तुम्हारी आत्मा का हिस्सा हो जाएगा। और जो देख लिया गया, वह तुम्हें बार-बार पुकारेगा। और जो देख लिया, वह तुम्हारे लिए चुनौती बन जाएगा। और जो तुमने देख लिया, उसकी खोज शुरू हो जाएगी।
और तुम्हारी समझ में आ जाए कि यह केवल बहाना था तुमसे बात करना, तुम्हारी आंख को खोलने का, तो फिर तुम पक्षियों का सहारा भी ले सकते हो। तो वे तुम्हारे गुरु हो जाएंगे। तब तुम एक गाय की आंख में भी झांक सकते हो, तब वही तुम्हारी गुरु हो जाएगी। तब तुम कहीं भी गुरु खोज ले सकते हो।
शिष्य होना भर आता हो, तो सब तरफ गुरु पैदा हो जाता है। असली सवाल शिष्यत्व है। नानक इसीलिए अपने अनुयायियों को सिक्ख कहे हैं। सिक्ख शिष्य शब्द का अपभ्रंश है। शिष्य होना आ जाए तो गुरु सब जगह उपलब्ध हो

जाता है। एक पत्थर की दीवाल भी गुरु हो जाएगी, एक चट्टान भी गुरु हो जाएगी। और शिष्य होना न आता हो तो एक गुरु भी पत्थर की दीवाल है।
कभी-कभी ऐसी झलक तुम्हें यहां आएगी। उस झलक को सम्हालना, उसे संजोना भीतर, उससे ज्यादा बहुमूल्य और कुछ भी नहीं है। और वह झलक मेरी अनुपस्थिति में भी आने लगे, इस दिशा में खोज करते रहना। जल्दी ही, निरंतर उस दिशा में खोज करने से, सूत्र तुम्हारी पकड़ में आ जाएगा। और सूत्र ऐसा है कि समझाया नहीं जा सकता, तुम निरंतर अनुभव और खोज करते रहोगे तो पकड़ में आ जाएगा। ऐसे ही जैसे किसी तैरने वाले से कोई पूछे कि तरकीब क्या है तैरने की!
तो कोई भी नहीं बता सकता। बड़े से बड़ा तैराक भी नहीं बता सकता कि तरकीब क्या है। वह कहेगा, आओ, पानी में चलो, हाथ-पैर तड़फाओ, फेंको। धीरे-धीरे भीतरी अनुभव से लगेगा कि किस भांति हाथ फेंकने से तैरना बनने लगता है। धीरे-धीरे हाथ व्यवस्थित हो जाएंगे। तैरना व्यवस्थित तड़फना है, और तो कुछ भी नहीं। अनजान आदमी को पानी में फेंक दो जो तैरना नहीं जानता, वह भी तड़फेगा, हाथ-पैर फेंकेगा, पर उसे अभी लयबद्धता नहीं मालूम। और अगर डूबकर मरेगा तो इसलिए नहीं कि तैरना नहीं जानता था, डूबकर मरेगा इसलिए कि गलत ढंग का तैरना जानता था। उलटे-सीधे हाथ-पैर फेंककर खुद ही फंस जाएगा। तैरने वाले में और उसमें हाथ-पैर फेंकने का फर्क नहीं है, सिर्फ व्यवस्था और अव्यवस्था का फर्क है। और व्यवस्था अनुभव से आती है।
धीरे-धीरे तुम और भी कुशल हाथ फेंकोगे। कम श्रम से हाथ फेंकोगे। जब तुम और भी कुशल हो जाओगे तो शायद हाथ भी नहीं फेंकोगे, सिर्फ पानी पर फ्लोट कर सकोगे, रोक लोगे अपने को, पानी ही तुम्हें सम्हालेगा। कोई जरूरत नहीं है कि तुम हाथ-पैर ही फेंको, बिना श्रम किए तुम पानी पर सम्हल जाओगे, एक फूल की तरह, एक कमल की तरह। तब तुम्हें कुछ भी न करना पड़ेगा। लेकिन यह आएगा निरंतर अनुभव से।
ठीक ऐसे ही एक तैरने का प्रयोग मैं तुम्हें करवा रहा हूं। निरंतर, कई बार झलक मिलेगी, उसे सम्हालना। उस झलक को अपने भीतर सम्हालकर ले जाना। जैसे गर्भवती स्त्री चलती है, ऐसे अपने को सम्हालना। जैसे भीतर एक बच्चा हो और गर्भवती स्त्री एक-एक पैर सम्हालकर रखती है। यह तुम्हारा गर्भ बन जाए, यह दर्शन, यह क्षण। धीरे-धीरे यह बड़ा होगा, तुम खो जाओगे और यह क्षण फैल जाएगा।
निश्चित ही, मेरे करीब तुम्हें बहुत बार लगेगा, नहिं राम बिन ठांव।
लेकिन यह मेरे बिना भी लगने लगे, यही तुम्हारे ध्यान में गंतव्य होना चाहिए।
आज इतना ही।

नहिं राम बिन ठांव
दूसरा प्रवचन

मैं सिखाने नहीं, जगाने आया हूं

प्रश्नः ओशो, नहिं राम बिन ठांव पर प्रवचन सुनकर हमें आपका वह उदघोष याद आया, जो आनंदशिला शिविर में मुखरित हुआ था--मैं सिखाने नहीं, जगाने आया हूं। समर्पण करो और मैं तुम्हें रूपांतरित कर दूंगा, यह मेरा वचन है। इस परम आश्वासन के सूत्र को कृपया विस्तार से हमें समझाएं। साथ ही यह भी बताएं कि सीखने और जागने में फर्क क्या है? और समर्पण और रूपांतरण में संबंध क्या है?

भेद बहुत है सीखने और जागने में। सीखना बहुत सरल है, जागना बहुत कठिन है। सीखने के लिए जागना कोई शर्त नहीं है। सोए हुए भी सीखा जा सकता है। और जो भी हम सीखते हैं, सोए हुए ही सीखते हैं। नींद को ता.ेडना अनिवार्य नहीं। शायद आपको पता हो, रूस के मनोवैज्ञानिक एक नया प्रयोग दस वर्षों से कर रहे हैं। और वह प्रयोग है नींद में ही बच्चों को शिक्षित करने का। प्रयोग मूल्यवान है। प्रयोग मूल्यवान है कि बच्चा सोया रहे रातभर और सीखता रहे। दिन में विद्यालय जाने की जरूरत न हो। तो बच्चा खेल भी सके, मुक्त भी अनुभव कर सके। दिनभर की कैद है विद्यालय, उससे छुटकारा हो जाए। और प्रयोग सफल हो रहा है। बच्चा सोया रहेगा, उसके कान के पास यंत्र लगा रहेगा। वह नींद में यंत्र उसे गणित, भाषा और भूगोल की सूचनाएं देता रहेगा। बच्चे का अचेतन मन उन सारी सूचनाओं को पकड़ेगा और संगृहीत कर लेगा।
और पाया यह गया कि जागने में जो बाधाएं हैं सीखने में, वे सोने में नहीं हैं। मन विचलित भी होता है, दूसरी चीजें आकर्षित भी करती हैं। बच्चा स्कूल में बैठा है, बाहर पक्षी गीत गा रहे हैं, उसका मन डांवाडोल होता है। कोई रास्ते से गुजरता है, कोई आवाज होती है, उसका मन बंटता है। सोते बच्चे का मन अनबंटा है। और सीखते हम अचेतन से हैं, चेतन से नहीं। फ्रायड ने जिसे अनकांशस कहा है, सारा सीखना उसी से होता है।
इसीलिए सीखने के लिए हमें चीजों को पुनरुक्त करना पड़ता है। अगर आप भाषा सीख रहे हैं, तो उसी शब्द के अर्थ को बहुत बार दोहराना पड़ता है। दोहराने से, पुनरुक्ति से, चेतन से बात अचेतन में उतर जाती है। बार-बार दोहराने से भीतर उतर जाती है। जितना दोहराते हैं, उतनी भीतर चली जाती है।
अगर आप एक गीत बार-बार दोहराएं तो कंठस्थ हो जाता है, एक बार दोहराएं तो भूल जाता है। क्योंकि एक बार दोहराने से चेतन मन पढ़ता है, बार-बार दोहराने से चेतन की परतों के नीचे उतरती जाती है बात, धीरे-धीरे अचेतन हो जाती है। सीखते हम अचेतन से हैं।
नींद में चेतन सो जाता है, अचेतन जागता है। नींद में हमारे भीतर का मन
तो जागता रहता है, ऊपर का मन सो जाता है। नींद की शिक्षा सीधे अचेतन की शिक्षा है।
इस प्रयोग की बात इसलिए कर रहा हूं ताकि आपको ख्याल में आ सके कि सीखना बिना जागे हो सकता है। शायद ज्यादा अच्छी तरह हो सकता है।
सीखना और जागना बड़ी अलग बातें हैं। सीखना स्मृति की ही बात है, सीखने
के लिए जानना जरूरी नहीं है। दूसरा जानता हो, तो भी आप सीख सकते हैं। सारी शिक्षा ऐसे ही चलती है। सारी शिक्षा उधार चलती है, स्वयं के अनुभव की कोई बात नहीं है।
प्रेम के संबंध में सीखना हो, तो बहुत शास्त्र ग्रंथालयों में भरे पड़े हैं। आप सब पढ़ सकते हैं। बड़ा शोध कार्य कर सकते हैं। खुद भी एक बड़ा शास्त्र लिख सकते हैं। प्रेम के संबंध में जानने के लिए प्रेम करना जरूरी नहीं है। सीखना हो सकता है बिना अनुभव के।
अनुभव के लिए जागना जरूरी है। और परमात्मा का जो अनुभव है, उसके लिए परिपूर्ण जागना जरूरी है। वह पूर्ण जागृति का अनुभव है। पूरे होश में आप हों तो ही हो सकता है। संसार का ज्ञान नींद में भी मिल जाता है, सत्य का ज्ञान नींद में नहीं मिल सकेगा। चाहे रूस के वैज्ञानिक सफल हो जाएं

बच्चों को शिक्षा देने में निद्रा में, लेकिन दुनिया की कोई भी व्यवस्था कभी किसी व्यक्ति को निद्रा में संत बनाने में सफल नहीं हो सकती; पंडित बनाने में सफल हो सकती है।
पांडित्य और निद्रा का कोई विरोध नहीं है। दोनों में बड़ा गहरा संबंध है। ज्ञान और निद्रा का बड़ा विरोध है, क्योंकि ज्ञान का आत्यंतिक अर्थ ही अनिद्रा है, होश है, अमूर्च्छा है।
हम जैसे जीते हैं, चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, काम करते हैं, वह सब सोया-सोया है। उसमें हम होश में नहीं हैं। भूख लगती है, खाना खा लेते हैं। काम होता है, दफ्तर चले जाते हैं। सांझ होती है, वापस लौट आते हैं। इस सबके लिए होश की कोई भी जरूरत नहीं है। यह सब आदत से हो जाता है। यह यांत्रिक है।
शायद आपको पता हो उन लोगों का, जो नींद में चलते हैं और अनेक काम कर लेते हैं--सोम्नाबुलिस्ट। अनेक लोग हैं, यहां भी कुछ लोग होंगे, क्योंकि मनोवैज्ञानिक कहते हैं, सौ में कम से कम पांच लोग नींद में चल सकते हैं और काम कर सकते हैं। वे उठ आते हैं रात, आंखें खोल लेते हैं। आंखें खुली रहती हैं और भीतर सब सोया रहता है। उठते हैं, अंधेरे में चल लेते हैं। शायद दिन में अंधेरे में चलना मुश्किल हो जाए। जागे हों, तो अंधेरे में चलना मुश्किल हो जाए। लेकिन रात नींद में उठकर चलते हैं, टकराते नहीं, फर्नीचर हो रास्ते में तो आहिस्ता से पार कर जाते हैं। अंधेरे में जाकर घर में अनेक काम कर लेते हैं।
बहुत बार पाया गया कि सुबह घर के लोग कहते हैं कि घर में कुछ भूत-प्रेत
की बाधा है। और बाधा कुल इतनी थी कि घर का कोई एक सदस्य रात में उठकर चीजों को अस्तव्यस्त कर देता था। उसे भी होश नहीं है। सुबह पूछे जाने पर वह भी नहीं कह सकता कि मैं उठा। उसे कोई पता नहीं है। जैसे कोई आदमी शराब की बेहोशी में रास्ते पर चल लेता हो। और शराबी अगर अभ्यस्त हो तो आप पता भी नहीं लगा सकते कि वह नशे में है। ऐसे ही रात की निद्रा में भी लोग चल लेते हैं, काम कर लेते हैं। कई बार तो लोगों ने ऐसे काम किए हैं जो चमत्कारी कहे जा सकते हैं। लोगों ने हत्याएं भी कर दी हैं और फिर वापस जाकर अपने बिस्तर पर सो गए हैं। और सुबह उन्हें कुछ भी पता नहीं।
न्यूयार्क में 1940 में एक घटना घटी। एक आदमी अपने मकान से दूसरे मकान की छत पर नींद में कूद जाता था। कोई पचास मंजिल मकान, दोनों मकानों के बीच में पचास मंजिल गहरी खाई, और वह एक छत से दूसरी छत पर कूद जाता था। इसकी खबर लोगों को लग गई। रोज नियमित एक बजे रात वह उठेगा, दूसरी छत पर कूदेगा, फिर वापस कूदकर अपने बिस्तर पर सो जाएगा। धीरे-धीरे लोगों की भीड़ इकट्ठी होने लगी देखने, क्योंकि फासला इतना था कि जागते में भी कूदना बहुत खतरनाक और दुस्साहस का काम था।
लोगों की भीड़ एक दिन इतनी इकट्ठी हो गई कि जब वह आदमी कूदा और छलांग पार कर गया तो लोग खुशी से चिल्ला उठे। उसकी नींद टूट गई। नींद टूटते ही वह इतना घबड़ा गया। वह कूदकर दूसरी छत पर खड़ा था। छलांग पार हो गया था। अब कोई खतरा न था। लेकिन उस छत पर खड़े होकर जब उसने नीचे देखा और नींद टूट गई आवाज से, तो वह घबड़ाकर कंप गया और गिर गया और मर गया।
छलांग न मार सकी। यह ख्याल ही कि मैं इतनी बड़ी खाई को पार कर गया हूं-- पचास मंजिल ऊंचाई को--इतना घबड़ा गया, कंप गया, कि गिर गया और मर गया। नींद में अनेक बार कर चुका था, जागने में बिना किए मौत घट गई।
सीखना नींद में भी हो सकता है। नींद से अर्थ है, एक ऐसी जीवन-चर्या, जहां हम ध्यानपूर्वक नहीं जीते। आप जो भी काम करते हैं, ध्यान कहीं और होता है। रास्ते पर चलते होते हैं, शरीर रास्ते पर होता है, मन हो सकता है घर हो, पत्नी से बात कर रहा हो, कि दफ्तर पहुंच गया हो आपके पहले, और दफ्तर में व्यवस्था कर रहा हो और आप अभी रास्ते पर हैं।
मन कहीं और, शरीर कहीं और--यह मूर्च्छा की अवस्था है। जहां शरीर, वहीं मन--यह होश की अवस्था है।
यहां मुझे आप सुन रहे हैं। अगर सुनते इन क्षणों में, सिर्फ सुनने की
ही प्रक्रिया रह जाए; मन कहीं भी न जाए, बस यहीं हो, अभी हो और सुनना ही

एकमात्र घटना रह जाए; जैसे सारा जगत खो गया, जैसे कुछ भी न बचा, यहां मैं हूं जो बोल रहा हूं, वहां आप हैं जो सुन रहे हैं, बस इन दो के बीच एक सेतु बन जाए और आपका मन कोई और दूसरा काम न करता हो, सब भांति निष्क्रिय हो जाए, सिर्फ सुने, सिर्फ सुने, सिर्फ सुने, तो इस सुनने के क्षण में आपको होश का अनुभव होगा। आप पहली दफा पाएंगे, ध्यान क्या है।
ध्यान का अर्थ है, इस क्षण में होना, इस क्षण के पार न जाना।
बुद्ध से किसी ने पूछा है, कैसे ध्यान करें? तो बुद्ध ने कहा है, जो भी तुम करो उसे ध्यानपूर्वक करो, बस यही ध्यान है। चलो तो ध्यानपूर्वक चलो, जैसे चलना ही सब कुछ है। भोजन करो तो ध्यानपूर्वक करो, जैसे भोजन करना ही सब कुछ है। उठो तो ध्यानपूर्वक उठो, बैठो तो ध्यानपूर्वक बैठो। सारी क्रियाएं ध्यानपूर्वक हों। क्षण के बाहर हमारा मन न जाए, क्षण की सीमा में हमारा मन ठहरे, रुके, स्थिर हो, बस यही ध्यान है।
ध्यान कोई अलग से प्रक्रिया नहीं है। ध्यान जीवन को होशपूर्वक जीने
की विधि का नाम है। ध्यान कोई ऐसी बात नहीं कि चौबीस घंटे में एक घंटा निकालकर आप बैठें और कर लें। क्योंकि तेईस घंटे गैर-ध्यान हो और एक घंटा ध्यान हो तो गैर-ध्यान जीतेगा, ध्यान नहीं जीत सकता। तेईस घंटे मूर्च्छा हो और एक घंटा अगर अमूर्च्छा का प्रयोग हो, तो आप कभी बुद्धत्व को उपलब्ध न हो सकेंगे। यह एक घंटा कैसे जीतेगा तेईस घंटे पर?
और भी समझ लेने की बात है कि तेईस घंटे जो मूर्च्छित हो, वह एक घंटा होश में हो कैसे सकेगा? तेईस घंटा जो बीमार हो वह एक घंटा स्वस्थ कैसे हो सकेगा? क्योंकि स्वास्थ्य या बीमारी एक अंतर्धारा है। आप तेईस घंटे बीमार हैं, तो चौबीस घंटे बीमार होंगे। आप तेईस घंटे स्वस्थ हैं, तो चौबीस घंटे स्वस्थ होंगे। क्योंकि एक घंटे अचानक जीवन की अंतर्धारा नहीं तोड़ी जा सकती। बहती धारा बहती रहेगी।
आप मंदिर चले जाएं, मस्जिद चले जाएं, गुरुद्वारा पहुंच जाएं, इससे कुछ ध्यान नहीं हो जाएगा। क्योंकि दुकान पर आप बेहोश थे, घर में आप बेहोश थे, बाजार में आप बेहोश थे, तो अचानक मंदिर में होश कैसे सध जाएगा? उसकी अंतर्धारा न होगी, तो अचानक कुछ भी फलित होने वाला नहीं है। इसलिए बुद्ध ने कहा है, चौबीस घंटे ध्यान हो, तो ही ध्यान घट सकता है।
इसलिए ध्यान जीवन के बहुत कार्य-कलाप में एक कर्म नहीं है। ध्यान जीवन के बहुत कर्मों की माला में एक गुरिया नहीं है। बहुत गुरिया हैं, उसमें ध्यान एक गुरिया नहीं है। ध्यान तो सभी गुरियों के बीच पिरोए हुए धागे की भांति है।
तो ध्यान एक कृत्य नहीं है, बल्कि जीवन का एक ढंग है। जो भी हम कर रहे हों, वही ध्यानपूर्वक हो जाए। हर गुरिए में छिपा हुआ धागा हो, तो ही माला निर्मित होगी। वह धागा दिखाई भी नहीं पड़ता। वह गुरियों में छिपा है, आच्छादित है। ध्यानी दिखाई भी नहीं पड़ता, उसके सभी कर्मों के बीच उसके ध्यान का धागा पिरोया हुआ है। और जिस दिन कोई व्यक्ति ध्यानपूर्वक जीता है, उस दिन जागता है; गैर-ध्यानपूर्वक जीता है तो सोता है।
महावीर से कोई पूछता है कि साधु की परिभाषा क्या? तो जैसी परिभाषा महावीर ने की, वैसी किसी ने कभी नहीं की। महावीर ने कहा, असुत्ता मुनि, सुत्ता अमुनि। वह जो सोया है, वह असाधु, अमुनि। जो जागा है, वह मुनि, वह साधु।
कौन जागा हुआ है? जिसका प्रत्येक कृत्य ध्यानपूर्वक है। धर्म का अनुभव, मुक्ति का अनुभव, जागी हुई चेतना में घटी घटना है, बाकी सब सीखना सोए हुए चित्त के साथ जुड़ा है।
इसलिए मैंने कहा कि जागने और सीखने में बड़ा फर्क है।
और मैं, मेरी चेष्टा, तुम्हें कुछ सिखाने की नहीं है। सीखने के लिए तो बहुत बड़ा जगत है। यहां बड़े विश्वविद्यालय हैं, यहां बड़े पंडित हैं, यहां बड़े शास्त्र हैं, पुस्तकालय हैं, सीखने के लिए तो बड़ा विस्तार है। वह तुम कहीं भी कर सकते हो। सिखाने के लिए तो बहुत उपाय हैं, बहुत मार्ग हैं, वह कहीं भी हो सकता है। और सीखने के लिए भीतर बड़ी महत्वाकांक्षा भी है, क्योंकि सीखने से तुम शक्तिशाली होते हो। जितना ज्यादा तुम जानते हो,

जितने बड़े तुम विशेषज्ञ हो किसी बात के, उतनी तुम्हारे हाथ में शक्ति है। जितना तुम्हारे पास ज्ञान है, उतनी तुम्हारे पास संपदा है। ज्ञान भी संपत्ति है। कुछ लोग तिजोरी में संपत्ति इकट्ठी करते हैं, कुछ लोग स्मृति में संपत्ति इकट्ठी करते हैं।
और ध्यान रहे, स्मृति में संपत्ति इकट्ठी करने वाला ज्यादा होशियार है। तिजोरी चोरी जा सकती है, राज्य की आर्थिक व्यवस्था बदल सकती है, कम्युनिस्ट क्रांति हो सकती है। तिजोरी का बहुत भरोसा नहीं है। चोर ले जा सकते हैं, साम्यवादी ले जा सकते हैं, राज्य छीन सकता है। तिजोरी का भरोसा बहुत गहरा नहीं है, लेकिन स्मृति को चुराना इतना आसान नहीं। यद्यपि अब स्मृति को चुराने के उपाय भी हो रहे हैं। स्मृति राज्य के बदलने से नहीं बदलती, लेकिन अब कोशिश चल रही है कि वह बदली जा सके।
चीन और कोरिया में कम्युनिस्टों ने बड़े प्रयोग किए हैं लोगों की स्मृति चुरा लेने के, स्मृति को बदलने के। क्योंकि अंततः तो वह भी संपत्ति है, भीतर है, छिपी है। मस्तिष्क सूक्ष्म और दुरूह है, अभी हमारी वहां पहुंच उतनी नहीं है। लेकिन पहुंच शुरू हो गई है।
पुराने ग्रंथों में कहा है, पुराने विश्वविद्यालयों में लिखा हुआ है
कि धन इकट्ठा करना वास्तविक नहीं। धन चोरी जा सकता है। ज्ञान इकट्ठा करना वास्तविक है, क्योंकि ज्ञान की कोई भी चोरी नहीं। धन तो मृत्यु छीन लेगी। ज्ञान मृत्यु के भी पार जा सकेगा। पुराने वचन आपने सुने होंगे कि पंडित की प्रतिष्ठा सार्वलौकिक है, जहां भी पंडित जाए वहां आदृत होगा।
लेकिन वे बातें पुरानी पड़ गईं। अब हमने भीतर की तिजोरी को भी तोड़ने और बदलने के उपाय खोज लिए हैं। ब्रेनवाशिंग के बड़े उपाय चल रहे हैं, मस्तिष्क को कैसे पोंछकर बदला जा सके।
चीन में कम्युनिस्टों ने बड़ा प्रयोग किया है। खतरनाक है। कोरिया में अमरीकी जो कैदी रह गए थे, उनके ऊपर उन्होंने बड़े प्रयोग किए हैं। अमरीकन युवकों के मस्तिष्क को पोंछने की कोशिश की है।
और मस्तिष्क पोंछे जा सकते हैं, क्योंकि स्मृति एक चिह्न की भांति है। जैसा टेप रिकार्ड है, वैसी ही स्मृति भी है। उसे पोंछा जा सकता है, कोरा किया जा सकता है, नई स्मृति डाली जा सकती है। मुसलमान को हिंदू बनाया जा सकता है, बिना उसके होश के। गीता पोंछनी है और कुरान लिखना है--हिंदू को मुसलमान बनाया जा सकता है।
तो जो अमरीकी सैनिक चीनी शिविरों में रहकर लौटे वापस, अमरीका चकित हुआ, क्योंकि वे सभी कम्युनिस्ट हो गए थे। जो कि असंभव है, जो कि उन्होंने बोधपूर्वक नहीं किया था। और जब उनके मस्तिष्क की जांच-पड़ताल की गई, तो पाया गया कि उनके साथ कुछ किया गया है। कुछ उनकी स्मृति को तोड़ने के उपाय किए गए हैं।
और अब अमरीका में भी उस पर बड़े प्रयोग चलते हैं। बहुत बड़ा विचारक है, स्किनर। वह कहता है, अब दुनिया में लोगों को समझाने की जरूरत नहीं, अब हमारे पास व्यवस्था है। अच्छा बनाना हो, तो उनके मस्तिष्क को बदला जा सकता है। उनसे कहने की, सिखाने की, नीति की शिक्षा देने की कोई भी जरूरत नहीं है। केमिकल्स के द्वारा भी मस्तिष्क बदला जा सकता है। सर्जरी के द्वारा भी मस्तिष्क बदला जा सकता है। इलेक्ट्रोड्स डाले जा सकते हैं मस्तिष्क में और व्यक्तियों को संचालित किया जा सकता है।
हर बच्चे के पैदा होते ही उसके मस्तिष्क में एक इलेक्ट्रोड डाला जा सकता है, जिसका उसे भी पता नहीं होगा, उसके मां-बाप को भी पता नहीं होगा। और जीवनभर उस इलेक्ट्रोड के द्वारा जो भी उससे करवाना हो, वह करवाया जा सकता है। और उसे लगेगा कि यह मैं ही कर रहा हूं। कोई आदेश दे रहा है, ऐसा भी प्रतीत नहीं होगा। उसे लगेगा, यह मेरी ही अंतःप्रेरणा है, तो वह सोचेगा कि मैं स्वतंत्रता से कर रहा हूं।
स्किनर और उसके साथियों ने जो कुछ खोजा है, वह मनुष्य की परतंत्रता का
एक महान अंधकारपूर्ण युग शुरू हो सकता है उसके द्वारा। क्योंकि आपको लगे कि आप कर रहे हैं और आपको संचालित किया जा रहा हो राजधानी से, रेडियो पर खबरें दी जा रही हों और वह आपका मस्तिष्क पकड़ रहा हो। स्किनर कहता है, अगर

गांव उपद्रवी है, तो क्षणभर में शांत किया जा सकता है। अगर लोग बगावत कर रहे हैं, तो उनको आज्ञाकारी बनाया जा सकता है। अगर सैनिकों को युद्ध पर भेजा है, तो उन्हें निर्भय बनाया जा सकता है। सिर्फ सूचना देने की बात है कि कोई मृत्यु नहीं है, घबड़ाने का कोई कारण नहीं है। और वे इस तरह कूद जाएंगे जैसे कोई भी मृत्यु नहीं है।
स्मृति को भी अब चुराने के, बदलने के, नष्ट करने के, नए करने के उपाय हैं। लेकिन वह भी इसीलिए क्योंकि वह भी संपदा है। सिर्फ एक चीज को कोई भी नष्ट नहीं कर सकता, वह है अंतर-चेतना, अंतर-होश, अवेयरनेस। उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता।
बुद्ध या महावीर या क्राइस्ट हमसे ज्यादा स्मृति वाले लोग नहीं हैं, हमसे ज्यादा होश वाले लोग हैं। उनसे कुछ भी छीना नहीं जा सकता। हम उनके शरीर की हत्या कर सकते हैं, हम उन्हें टुकड़े-टुकड़े में काट डाल सकते हैं, लेकिन उनके होश को हम खंडित नहीं कर सकते।
क्योंकि होश हमारे भीतर किसी यंत्र का परिणाम नहीं है। होश हमारे अंतर-हृदय का, अंतर-केंद्र का, आत्मा का--या जो भी नाम हम देना पसंद करें, उसका स्वभाव है--इसलिए होश को कोई नष्ट नहीं कर सकता। स्मृति डाली जा सकती है और वापस ली जा सकती है। स्मृति बाहर से आती है, इसलिए वापस बाहर जा सकती है। होश हमारे भीतर से उठता है, बाहर से नहीं आता। इसलिए वापस हमसे छीना नहीं जा सकता।
सिवाय ध्यान के मृत्यु को और कोई चीज पार नहीं करती है। ज्ञान नहीं, ध्यान ही केवल मृत्यु में भी साथी हो सकता है। सिर्फ ध्यान स्वतंत्र बनाता है।
इसलिए हिंदुओं ने निरंतर कहा है, ध्यान के अतिरिक्त और कोई मोक्ष नहीं है, सब बंधन है। सब तरह से बांधा जाता है। हमारी नीति बंधन है, हमारा ज्ञान बंधन है। सब बांधता है। सिर्फ ध्यान मुक्त करता है।
तो मैंने जो कहा कि मैं सिखाने नहीं, जगाने का प्रयास कर रहा हूं, वह
इस प्रयोजन से कि आपकी स्मृति को बढ़ाने की मुझे कोई इच्छा नहीं है। वह बढ़ जाए, तो उससे कुछ हित भी नहीं है। आप थोड़ा ज्यादा जान लें, थोड़ी ज्यादा इन्फरमेशन आपके पास हो जाए, इससे कुछ हित होने वाला नहीं है। लेकिन आपका ध्यान ज्यादा हो जाए, आपकी चेतना प्रगाढ़ हो जाए, आप ज्यादा होशपूर्वक हो जाएं, तो आपके जीवन में क्रांति घटित हो सकती है।
जगाने के प्रयास मूलतः भिन्न होंगे। सिखाने के प्रयास भिन्न होंगे। सिखाने का अर्थ है, जो आप नहीं जानते हैं, वह आपको शब्दों में बताया जाए। जगाने का अर्थ है कि जो आप नहीं हैं, वह आपको प्रक्रियाओं के द्वारा करवाया जाए।
नदी के किनारे बैठकर तैरने के संबंध में मैं आपको कुछ बताऊं, उससे आपकी जानकारी बढ़ेगी। आपको धक्का देकर नदी में उतार दूं, उससे तैरने का जन्म होगा। जो लोग भी तैरना सिखाते हैं, उनके सिखाने की प्रक्रिया और कुछ भी नहीं है। वे आपको नदी में धक्का दे देते हैं। आप हाथ-पैर तड़फड़ाने लगते हैं। तैरने की शुरुआत हो गई।
ध्यान के जिन प्रयोगों को मैं निरंतर आपसे करने को कह रहा हूं, वे चेष्टाएं हैं तैरना सीखने की। मेरा जोर सूचना पर कम, विधि पर ज्यादा है। और सूचना पर उतना ही है, जितने से आपको विधि के लिए राजी किया जा सके। बुद्ध से कोई पूछता है, ईश्वर है? तो बुद्ध चुप रह जाते हैं। लेकिन बुद्ध से अगर कोई पूछता है कि ईश्वर को पाने का कोई उपाय है? तो वे तत्क्षण बोलते हैं। बुद्ध से कोई पूछता है कि मोक्ष के संबंध में कुछ कहें, तो वे मौन रह जाते हैं। लेकिन बुद्ध से अगर कोई पूछता है, मोक्ष कैसे पाया जाए? तो वे तत्क्षण जीवित हो जाते हैं, जैसे तैयार बैठे थे, प्रतीक्षा कर रहे थे। अंतिम क्षणों में बुद्ध से किसी ने पूछा है कि आप हमें कौन-सा तत्व सिखाना चाहते थे? तो बुद्ध ने कहा, तत्व मैं तुम्हें कोई भी नहीं सिखाना चाहता था। मैं तुम्हें सिर्फ विधि देना चाहता था, जिससे तुम परम-तत्व को जान सको।

विधि और सूचना का, मैथड और इन्फरमेशन का फर्क है। भोजन के संबंध में
हम घंटों तक चर्चा कर सकते हैं। उससे किसी की भूख मिटेगी नहीं। बढ़ सकती है, मिटने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन भोजन तैयार करने में हम लग जाएं, चाहे पहले दिन कोई बहुत स्वादिष्ट भोजन तैयार न भी हो--क्योंकि पहले ही दिन हम कोई भोजन बनाने में कुशल न हो जाएंगे--लेकिन जो भी रूखा-सूखा तैयार होगा, वह भूख को मिटाएगा।
परमात्मा एक क्षुधा है हमारे भीतर, एक भूख है, एक प्यास है। वह किन्हीं भी सिद्धांतों से तृप्त नहीं की जा सकती। कोई शास्त्र उस भूख को मिटाएगा नहीं। शास्त्र उस भूख को बढ़ा दे तो परम उपकार है।
कोई गुरु सिर्फ शिक्षाओं के द्वारा उस क्षुधा को तृप्त नहीं कर सकता, प्रज्वलित कर दे तो परम कृपा है। इसलिए सदगुरु आपकी प्यास बुझाता नहीं, जगाता है। वह आपको संतोष नहीं देता, असंतुष्ट करता है। वह आपको चैन नहीं देता, क्योंकि चैन तो मृत्यु बन जाएगी। वह आपको और बेचैन करता है, एक नए अलौकिक जगत की दिशा में, एक अनजान यात्रा पर वह आपको धक्के देता है। वह आपके प्राणों में एक अग्नि को जलाता है कि आपका रोआं-रोआं प्यासा हो उठे, आपकी श्वास-श्वास अतृप्त हो जाए, आपका पूरा जीवन एक भूख हो जाए। और जब तक वह भूख तृप्त न हो, तब तक आप विक्षिप्त की तरह बेचैन और व्याकुल हो उठें। सदगुरु के पास मिलती है व्याकुलता, असदगुरु के पास मिलती हैं सूचनाएं। असदगुरु आपको पंडित बना देगा, आप बहुत सी बातें बिना जाने जानने लगेंगे। शास्त्र आपके हृदय में बैठ जाएंगे। सत्य से कोई संपर्क न होगा। सत्य से संपर्क तो तभी हो सकता है, जब प्यास सघन हो। इतनी सघन हो कि आप प्यास ही हो जाएं। प्यास इतनी सघन हो जाए कि आपको ऐसा भी न लगे कि मैं प्यासा हूं; मैं प्यास हूं, ऐसी प्रतीति होने लगे; कि आपका रोआं-रोआं एक प्रज्वलित अग्नि हो।
जिस क्षण आपका रोआं-रोआं प्रज्वलित अग्नि होता है, उसी क्षण वर्षा हो जाती है। वही क्षण क्रांति का, रूपांतरण का क्षण है। उसी क्षण सत्य से संपर्क हो जाता है।
गुरु के पास जाकर मिलेगा दुख--दुख कि हम भूखे हैं, कि प्यासे हैं, कि अतृप्त हैं, दुख कि जो चाहिए वह हमारे पास नहीं--गुरु के पास सांत्वना नहीं मिलेगी। गुरु सारी सांत्वनाएं छीन लेगा। गुरु कोई कन्सोलेशन नहीं है कि आपको समझाए कि सब ठीक है, सब ठीक हो जाएगा। गुरु एक क्रांति है। वह आपकी सारी सांत्वना तोड़ देगा, वह आपकी सारी सांत्वना छीन लेगा। वह आपने जो अपने आसपास निद्रा का आयोजन किया है कि सब ठीक है, उस सबको बिखरित कर देगा और बताएगा कि कुछ भी ठीक नहीं है, सब गैर-ठीक है और तुम एक अराजकता हो और तुमने जो भी अब तक पाया है, वह कचरा है और जो भी पाने योग्य है, उस तरफ तुमने हाथ भी नहीं बढ़ाया; तुम्हारी मुट्ठियां कंकड़-पत्थरों से भरी हैं और तुमने उन कंकड़-पत्थरों को हीरे समझ रखा है। वह तुमसे छीन लेगा, जो भी तुम्हारे पास है। वह तुम्हें नग्न कर देगा। वह तुम्हें कोरा शून्य कर देगा। और उसी शून्य और उसी नग्नता से तुम्हारी आध्यात्मिक प्यास जगेगी। वह तुमसे सभी कुछ छीन लेगा कि तुम्हारे पास कोई भरोसा न रह जाए। तुम्हारी सारी सुरक्षा, तुम्हारा सारा आयोजन भ्रांति का, स्वप्न का, सब खंडित कर देगा।
गुरु मूर्तिभंजक है। और वह मूर्तियां, मंदिरों में जो स्थापित हैं, उनको नहीं तोड़ने जाता, क्योंकि उन्हें तोड़ना मूढ़ता है। वह तुम्हारे भीतर स्थापित तुम्हारी ही मूर्ति को तोड़ता है। तुमने जो अपने को समझ रखा है, वह तुम हो नहीं। तुम्हारे चेहरे पर जो शांति दिखाई पड़ती है, वह झूठी है। तुम जो मुस्कुराते हो, वह सामाजिक व्यवहार है, लोकाचार है। वह जो तुम बताते हो कि सब ठीक है, वह झूठ है, ठीक कुछ भी नहीं है। और जब भी तुमसे सुबह कोई पूछता है कि कहो तुम कैसे हो? तो तुम कहते हो, सब ठीक है। वह सिर्फ शब्द है, शब्द से ज्यादा नहीं है। तुमने कभी उस पर दुबारा सोचा भी नहीं है कि यह जो मैं कह रहा हूं, वह कितने दूर तक सच है। तुम सोचने की हिम्मत भी नहीं जुटा पाते, क्योंकि डर लगता है। ठीक तो कुछ भी नहीं है, शिष्टाचार है और उचित है कि दूसरे को हम कहें कि सब ठीक है। लेकिन दूसरे को कहते-कहते तुम्हें खुद भी भरोसा आ गया है कि सब ठीक है। तुम यह भूल ही गए हो कि कुछ भी ठीक नहीं है।

इसलिए सदगुरु के पास जाना खतरनाक है, जोखिमपूर्ण है। क्योंकि वह तुम्हारी सारी भ्रांतियां तोड़ देगा और सिवाय भ्रांतियों के तुम कुछ भी नहीं हो। वह तुम्हारा सारा संतोष छीन लेगा और एक ऐसे असंतोष का जन्म होगा जो परमात्मा के पाने के पहले कभी नहीं मिटता है फिर। और एक ऐसी व्याकुलता जन्मती है, एक ऐसा विरह पैदा होता है, जो शूलों की भांति चुभने लगता है सब तरफ से। एक ऐसी व्याधि पैदा होती है, जो परम स्वास्थ्य न मिल जाए, तब तक पीछा करती है।
इसलिए गुरु के पास केवल अति साहसी लोग ही जा सकते हैं। उचित होगा, हम कहें दुस्साहसी लोग ही जा सकते हैं। वह आग से खेलना है, क्योंकि एक दूसरे संसार की खबर, एक दूसरे जगत का संदेश, वह जो ज्ञात है उसके पार अज्ञात की यात्रा, जिसका न कोई नक्शा है और जिसके संबंध में कोई सूचना नहीं दी जा सकती। वह कोई धंधा नहीं है। वह बिल्कुल जुआरी का खेल है, वहां हम अपने को दांव पर लगाते हैं और हमें बिल्कुल पक्का पता नहीं कि क्या परिणाम होगा। ऐसे दांव पर लगाने वाले लोगों को ही मैं साधक कहता हूं, संन्यासी कहता हूं। जो वे जानते हैं, उसे दांव पर लगा देते हैं उसके लिए, जिसे वे जानते नहीं। दुनिया की जो समझदारी है, वह इसके विपरीत है। इसलिए संन्यासी को दुनिया हमेशा पागल समझती है। क्योंकि दुनिया जीती है व्यवसाय के नियम से। एक रुपया दांव पर लगाओ, अगर सवा रुपया मिलने का पक्का भरोसा हो। क्योंकि दुनिया कहती है, हाथ की आधी रोटी बेहतर है, सपने की पूरी रोटी से। जो हाथ में है वह उचित है, उसे छोड़ना पागलपन है उसके लिए, जो कभी मिलेगा। मिलेगा या नहीं मिलेगा, उसका कुछ पक्का भरोसा नहीं।
उमर खय्याम की प्रसिद्ध रुबाई है कि जो हाथ में है, उसे मत छोड़ो, उसे भोगो। क्योंकि जो हाथ में नहीं है, वह है भी, इसका भी पक्का नहीं है। इसलिए इस संसार को भोग लो और उस संसार की बात मत उठाओ। अगर वह होगा तो देखेंगे, निपटेंगे। लेकिन वह है या नहीं, कोई भी नहीं जानता। इसलिए जो पास है, उसे भोग लो--शरीर को, इंद्रियों को, संसार को--उसे निचोड़ लो पूरा।
सांसारिक आदमी का तर्क है कि जो हाथ में है, उसे निचोड़ लो; और जो हाथ में नहीं है, उसका विचार ही मत करो। संन्यासी का तर्क बिल्कुल विपरीत है, वह कहता है, हाथ में जो है वह कंकड़-पत्थर है। उनमें से निचोड़ो भी कुछ, तो निकलेगा नहीं। उसमें निचोड़ने योग्य भी कुछ नहीं है। वहां कुछ रस ही नहीं है जो निकल सके। और उसे छोड़ते ही उसके द्वार खुल जाते हैं जो अज्ञात है। और जीवन का सारा आनंद वहां है।
जुआरी ही इस खेल में उतर सकते हैं। इसलिए मैं अक्सर कहता हूं कि व्यवसायी धार्मिक नहीं हो पाता, क्योंकि व्यवसायी गणित से जीता है। मैंने सुना है, एक व्यवसायी ने एक बार एक लाटरी के दो टिकट खरीदे दो रुपये में। एक-एक रुपये के दो टिकट खरीदे। और संयोग की बात कि प्रथम पुरस्कार उसे मिल गया। कोई दस लाख रुपये का पुरस्कार था। मित्र, परिचित भागे उसके घर। ऐसी शुभ घटना घटी थी और सभी उसको बधाइयां देना चाहते थे। लेकिन वह उदास अपने बिस्तर पर पड़ा था। दोनों टिकट उसके हाथ में थे। मित्रों ने कहा, तुम और उदास? उसने कहा कि मैं यह सोच रहा हूं कि मैंने यह दूसरा टिकट किस दुर्भाग्य की घड़ी में खरीदा। एक टिकट तो ठीक है, जिससे दस लाख मिले, मगर यह दूसरा टिकट, जिसमें एक रुपया व्यर्थ गया।
व्यवसायी का तर्क यही है। इसलिए व्यवसायी धार्मिक नहीं हो पाता।
यह जानकर आप चकित होंगे कि इस मुल्क में जो बड़े से बड़े धार्मिक लोग पैदा हुए, वे सब क्षत्रिय घरों से आए हैं। न तो वे ब्राह्मण-पुत्र थे, न वे व्यावसायिक, वणिक घरों से आए थे। महावीर, बुद्ध, पार्श्व, नेमी, कृष्ण, राम सभी क्षत्रिय घरों से आए हैं। क्षत्रिय जुआरी हो सकता है। उसका गणित अलग ढंग का है। वह ब्याज के ढंग से नहीं सोचता, वह दांव के ढंग से सोचता है। मरना-जीना उसे छलांग की भांति है।
सारी दुनिया में धार्मिक व्यक्ति हमेशा जुआरी के ढंग का होता है।
जुआरी का मतलब है दुस्साहसी। जुआरी का अर्थ हैः जो है, उसे उसके लिए दांव पर लगा दे जो अभी है नहीं; वास्तविक को संभावना के दांव पर लगा दे।

कवि तो हो सकता है धार्मिक हो जाए, दुकानदार धार्मिक नहीं हो पाता। और दुकानदार जब धार्मिक होते हैं, तो धर्म को भी दुकान बना लेते हैं। धर्म उन्हें नहीं बदल पाता, वे धर्म को बदल देते हैं। उनके मंदिर, उनकी मस्जिदें दुकानें हो जाती हैं। वहां हिसाब-किताब के खाते-बहियां पहुंच जाते हैं।
जब मैं कहता हूं, मैं सिखाने नहीं जगाने आया हूं, तो मैं यह कह रहा हूं
कि तुम्हारा व्यवसाय, तुम्हारा वाणिज्य तुमसे छीन लेना चाहता हूं। चाहता हूं कि तुम दुस्साहसी जुआरी हो जाओ। तुम्हारे पास जो है, तुम आंखें खोलकर उसे देखो और पाओ कि वहां कुछ भी नहीं है, ताकि जो तुम्हारे पास नहीं है, उसकी खोज शुरू हो सके।
यात्रा कठिन है और यात्रा तभी हो पाएगी, जब तुम जागे हुए होओगे। अगर तुम सोए हुए हो, तो तुम भटक जाओगे। और भटकने की बहुत संभावना है। क्योंकि भटकने के लिए बड़ा विस्तार है। पहुंचने के लिए तो एक संकीर्ण मार्ग है। संतों ने कहा हैः तलवार की धार की तरह संकीर्ण। भटकने के लिए बड़ा विस्तार है, इस पृथ्वी से बड़ा। बड़ा संसार है भटकने के लिए।
वह जो तलवार की धार का संकीर्ण मार्ग है, उसको ही हम ध्यान कह रहे हैं। अगर ध्यान की कोशिश करोगे, तो तत्क्षण समझ में आ जाएगा कि क्यों संतों ने कहा है तलवार की धार की तरह संकीर्ण। क्योंकि जरा-जरा में चूक जाता है। एक क्षणभर भी ध्यान नहीं हो पाता कि गैर-ध्यान की अवस्था पकड़ लेती है।
कभी अपनी घड़ी को हाथ में रखकर बैठ जाओ और एक छोटी-सी कोशिश करो कि वह
जो सेकेंड को बताने वाला भागता हुआ कांटा है, उस पर ध्यान रखो और यह कोशिश करो कि मैं कितने सेकेंड तक उसका स्मरण साधे रख सकता हूं। दूसरी बात मन में न आए, बस सेकेंड का कांटा ही मेरे ख्याल में रहे। तुम पाओगे कि तीन सेकेंड भी बहुत मुश्किल हो जाता है। तीन सेकेंड भी नहीं बीत पाते कि तुम्हारा मन कहीं और जा चुका, किसी और लोक में, किसी और वासना में। वह घड़ी भी भूल गई, वह कांटा भी भूल गया। अचानक फिर तुम चौंकोगे और पाओगे कि अरे कितने सेकेंड गुजर गए और मुझे इस कांटे का स्मरण भी न रहा। तब तुम्हें समझ में आएगा कि संत क्यों कहते हैं तलवार की धार की तरह संकीर्ण। क्षणभर में चूक जाता है, जरा हिले कि गए।
जागृति, होश, कठिन है; लेकिन साधने जैसा है। कितना ही कठिन हो, जो हम उससे पाते हैं, उसके मुकाबले प्रयास कुछ भी नहीं है। और जिनको भी मंजिल उपलब्ध होती है, वे कहते हुए पाए गए हैं कि जो हमने किया था, वह ना-कुछ था; और जो हमने पाया, वह सब कुछ है। इसीलिए संत कहते हैं कि उसकी उपलब्धि प्रसाद है, प्रयास नहीं। जैसे हमारे किए का कोई संबंध ही नहीं। जैसे हमने दमड़ीभर का काम किया था और अरबों की संपत्ति पा ली है। जैसे हमने कुछ भी न किया था और सब कुछ मिल गया। हमारे करने और उसके मिलने में कार्य-कारण जैसा संबंध नहीं दिखाई पड़ता। इसलिए संत कहते हैं, प्रसाद। जैसे उसकी अनुकंपा से मिला, हमारे प्रयास से नहीं।
पर प्रयास करते समय बड़ा कठिन है। और कठिन इसीलिए है कि मूर्च्छा में हमारा बहुत इनवेस्टमेंट है। निद्रा में हमने बहुत कुछ लगाया हुआ है और बड़ी आशाएं और बड़े सपने संजोए हुए हैं। और जैसे ही हम निद्रा को तोड़ते हैं, सारी आशाएं, सब सपने टूटने शुरू हो जाते हैं।
अपनी पत्नी को आप कहते हैं कि तुझे मैं प्रेम करता हूं। अगर होश से भरेंगे तो दिखाई पड़ेगा कि प्रेम तो मैंने कभी किया नहीं। यह सरासर झूठ है। अपने बच्चों को आप कहते हैं कि तुम्हारे लिए मैं जी रहा हूं। लेकिन अगर होश से भरेंगे तो दिखाई पड़ेगा कि बात बिल्कुल उलटी है। आप बच्चों के लिए नहीं जी रहे, बल्कि बच्चों को आप इसलिए जिला रहे हैं ताकि जब आप मर जाएं तो वे आपके लिए जीएं। बच्चे आपकी आकांक्षाएं हैं। जो आप पूरा नहीं कर पाए, वे पूरा करें। आप उनके कंधों पर भविष्य की यात्रा करने की कोशिश कर रहे हैं। आप बच्चों के माध्यम से अपना अमरत्व साध रहे हैं। आप तो मरेंगे, लेकिन आपका बेटा रहेगा। कुछ तो रहेगा आपका। कुछ आपका शेष रहेगा, इस जगत में चलता रहेगा।

लोग पत्थर पर भी नाम लिखकर खुश होते हैं कि मैं नहीं रहूंगा, कोई फिक्र नहीं, यह पत्थर तो रहेगा। तो पत्थर पर इतनी खुशी होती है, तो एक जीवित व्यक्ति पर अपना नाम खोद देना... !
बिना बाप हुए मर जाना बड़ा दुखद है, बिना मां हुए मर जाना बड़ा पीड़ापूर्ण है, क्योंकि आप किसी जीवंत घटना को अपने पीछे नहीं छोड़ जा रहे हैं। आप बिल्कुल मर रहे हैं, आपकी धारा जारी न रहेगी। हिंदू कहते रहे हैं कि पितृ-ऋण तब तक नहीं चुकता, जब तक आप बच्चे पैदा न करें। यह बड़ी सोचने जैसी बात है कि पिता के प्रति आपका जो ऋण है, वह तब चुकता है जब आप पिता हो जाते हैं।
क्यों? क्योंकि पिता आपके माध्यम से जी रहा है और अगर आपकी धारा बंद
हो जाती है तो पिता फिर आगे नहीं जी सकेगा। इसलिए बच्चे को अपने पीछे छोड़ जाओ। तो बेटा चाहिए, चाहे गोद ही क्यों न लेना पड़े, चाहे झूठा ही क्यों न हो, पराया ही क्यों न हो, अपना मानकर चला लेंगे। हिंदू तो इतने मोहित हो गए थे इस बात से कि अगर बेटा पैदा न होता हो, तो किसी व्यक्ति को निमंत्रण दे देते थे कि पत्नी से आकर संभोग कर लो और बेटा पैदा हो जाए। तब उसे व्यभिचार नहीं मानते थे। क्योंकि बेटे का होना इतना जरूरी है कि इस व्यभिचार को क्षमा किया जा सकता है। तब इसमें कोई अनैतिकता न थी, क्योंकि पिता का ऋण तो चुकाना ही है।
आदमी मृत्यु से बचना चाहता है। बहुत उपाय खोजता है। बड़े महल खड़े करता है। बड़े किले बनाता है। मजबूत से मजबूत पत्थर खोजता है। जीवन की तरल धारा पर भी हस्ताक्षर करता है। अपने बच्चे छोड़ जाना चाहता है। और हर बाप कोशिश करता है कि बच्चे मेरी प्रतिछवि हों। कभी नहीं सोचता कि ऐसा मुझमें क्या है, जिसकी प्रतिछवि छोड़ जाना जरूरी हो या जिसके कारण पृथ्वी ज्यादा सुंदर हो! मेरे कारण काफी कुरूप थी, मेरी मौजूदगी एक बोझ थी और मैं अपनी प्रतिछवि छोड़ जाना चाहता हूं! और बेटा जरा यहां-वहां हिले बाप की लकीर से, तो बाप को कष्ट होता है। क्योंकि उसका मतलब यह हुआ कि यह मेरी प्रतिछवि न होगा, यह मेरा प्रतिनिधि नहीं हो सकेगा। कहते मां-बाप यही हैं कि हम बच्चो, तुम्हारे लिए जी रहे हैं। लेकिन अगर होश से भरेंगे तो दिखाई पड़ेगा कि हम बच्चों को अपने लिए जिला रहे हैं।
इसलिए बच्चे अगर विद्रोही हो जाते हैं और बुढ़ापे में बदला लेते हैं
तो कुछ आश्चर्यजनक नहीं है। क्योंकि कोई भी दूसरे के लिए नहीं जीना चाहता, सब अपने लिए जीना चाहते हैं। प्रत्येक जीवन की आकांक्षा स्वयं को फैलाने की है, किसी दूसरे को फैलाने की नहीं। इसलिए हर बेटा अपने बाप के प्रति गहरी घृणा से भरा रहता है।
फ्रायड की अनेक खोजों में एक मूलभूत खोज यह है कि ऐसा बेटा खोजना मुश्किल है, जो बाप का दुश्मन न हो गहरे में। ऊपर से ठीक है, ऊपर से आदर करता है, पैर छूता है। ऐसी लड़की खोजना कठिन है जो मां की शत्रु न हो, भीतर गहरा विरोध है।
गुरजिएफ कहता था, अगर कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए, तो सच में ही अपने माता-पिता का आदर करता है, तो समझना कि वह संत है। क्योंकि बड़ा कठिन है मां- बाप को प्रेम करना। और अगर यह घट जाए... यह तभी घट सकता है, जब परिपूर्ण होश हो। तो मां-बाप पर दया आएगी, करुणा आएगी। तब ऐसा लगेगा कि वे मूर्च्छा में जी रहे थे। उनका कोई कसूर नहीं।
मूर्च्छा के ये स्वाभाविक लक्षण हैं कि वह दूसरे पर हावी होगी, दूसरे
को सताएगी; और सताएगी इस ढंग से कि सताना भी नैतिक मालूम पड़े।
जब आप अपने बेटे को मार रहे हैं, तो आप सोचते हैं कि उसके सुधार के लिए मार रहे हैं। जरा सा होश होगा तो आपको ख्याल में आएगा, सुधार का इससे कोई भी संबंध नहीं। आप क्रोधित थे, बेटे ने किसी कारण से आपके अहंकार को चोट पहुंचाई है, घाव हो गया है। आप बेटे को मार तो उस घाव के कारण रहे हैं। लेकिन कह रहे हैं आप कि तेरे सुधार के लिए। दिखा आप ऐसा रहे हैं कि जैसे उस पर आप कृपा कर रहे हैं उसको मारकर। होश होगा, तो ये सारी चीजें छिटक जाएंगी हाथ से।

कहते तो आप यहीं हैं कि मैं राजनीति के चुनाव में इसलिए खड़ा हो रहा हूं कि जनता की सेवा कर सकूं। लेकिन कोई राजनीतिज्ञ कभी जनता की सेवा के लिए खड़ा नहीं होता। हालांकि हर राजनीतिज्ञ ऐसा ही सोचता है, कहता भी है। और मैं यह नहीं कहता कि वह झूठ कहता है, वह ऐसा सोचता भी है। वह आपको धोखा दे रहा है, ऐसा नहीं, अपने को भी धोखा दे रहा है। वह सोचता यही है कि जनता की सेवा कैसे हो सकती है जब तक पद हाथ में न हो? जब तक शक्ति न होगी, सेवा कैसे होगी?
लेकिन सभी सेवक, जैसे ही शक्ति उनके हाथ में पहुंच जाती है, मालिक हो जाते हैं। राजनीतिज्ञ आपके पैर दबाने से शुरू करता है और आपकी गर्दन दबाने पर अंत करता है। सोचता वह भी यही था कि मैं पैर दबा रहा हूं, सेवा कर रहा हूं। लेकिन पैर से बढ़ते-बढ़ते कब वह गर्दन दबाने लगता है, न आपको पता चलता है, न उसको पता चलता है।
अगर होश भरेगा, तो पता चलेगा कि मेरी राजनीति एक धोखा है, यह मैं किसी
की सेवा करने को नहीं कर रहा हूं। यह मेरे ही अहंकार का विस्तार है। मैं दूसरों से सेवा लेना चाहता हूं।
आप जब सेवा करते हैं, तो दूसरे से सेवा लेने के लिए करते हैं। आप जब देते हैं, तो छीनने के लिए देते हैं। आपका सब उपाय शोषण का है। नाम अच्छे आप चुन सकते हैं।
इसलिए मैं कहता हूं, मूर्च्छा में हमारा इनवेस्टमेंट है। बड़ा हमने उसमें दांव लगाया हुआ है। तो मूर्च्छा को तोड़ना कठिन है। मूर्च्छा को तोड़ने का अर्थ है कि मैंने जो संसार अपने चारों तरफ बसाया है, वह सब झूठा है, वह सब प्रवंचना है। वह मेरी वासनाओं, महत्वाकांक्षाओं, हिंसाओं, ईर्ष्याओं का जाल है।
कोई आदमी आसानी से इतना समर्थ नहीं कि अपने पूरे आज तक के जीवन को व्यर्थ देख पाए और घबड़ा न जाए। हम घबड़ा जाते हैं। हम आंख बंद कर लेते हैं और सोचते हैं, जैसा है ठीक है, उसे चलने दो, मत तोड़ो।
इसलिए ध्यान में कठिनाई है। सीखने को तो आप सब तैयार होते हैं, जागने
को कोई तैयार नहीं होता। इसलिए मुझे थोड़ी बात आपसे करनी पड़ती है। वह बात करनी पड़ती है, ताकि आप सीखने के मोह में मेरे पास आ जाएं। वह प्रलोभन है। वह वैसे ही है जैसे कि कोई मछली को पकड़ने के लिए आटा लटकाता है।
बुद्ध भी बोलते हैं, जीसस भी बोलते हैं, और भलीभांति जानते हुए कि बोलने से कुछ अर्थ नहीं, बोलने से कुछ सार नहीं। लेकिन आप ऐसी मछली हो कि आटे के बिना आप पास नहीं आओगे।
सिखाना आटे की तरह है और जगाना कांटे की तरह है। वह चुभेगा। उससे जीवन मुश्किल में पड़ेगा। उससे यह जीवन तो मरेगा और नया जीवन पैदा होगा। वह एक पुनर्जन्म है।
लेकिन हर पुनर्जन्म के पहले मृत्यु है। जागने में आपको मरना पड़ेगा, आपका सातत्य नहीं रह सकता, आप तो मिटोगे। और मिटने के लिए कौन आसानी से राजी होता है! सीखने में आपका सातत्य है, कंटीन्युटी है। आप वही रहते हो, और भी अच्छे हो जाते हो, निखर जाते हो, साफ-सुथरे हो जाते हो। वह आपका संस्करण है। जितना ज्यादा आप सीख लेते हो, उतने आप साफ-सुथरे, सुसंस्कृत, शिक्षित, सभ्य मालूम होते हो।
सभ्य शब्द बड़ा अच्छा है। इसका अर्थ हैः सभा में बैठने योग्य। जितना आपके पास ज्ञान होता है, उतने आप सभा में बैठने योग्य हो जाते हो। जितना आप ज्यादा जानते हो, उतना आपका अहंकार परिष्कृत हो जाता है। जैसे एक हीरे को कोई काटे, छांटे, निखारे; और उसमें चमक आ जाती है। ऐसा अशिक्षित आदमी अनगढ़ हीरे की तरह होता है। शिक्षित आदमी गढ़े हुए हीरे की तरह होता है। अनगढ़ हीरे को तो केवल जौहरी ही पहचान सकता है। गढ़े हुए हीरे को कोई भी पहचान सकता है। उसकी चमक, उसका निखार, सबको दिखाई पड़ने लगता है, अंधों को भी दिखाई पड़ने लगता है।
सीखने के लिए तो आप तैयार हो, क्योंकि आपके अहंकार का सातत्य रहेगा,
और भी सुखद हो जाएगा अहंकार। लेकिन जागने के लिए आप तैयार नहीं हो।
क्योंकि जागने में आप मिटोगे और नए का जन्म होगा।

तो मैं सिखाने से शुरू करता हूं, ताकि जगा सकूं। लेकिन सिखाना कोई प्र्रयोजन नहीं है। और जब भी कोई व्यक्ति सीधा जागने को मेरे पास आ जाता है, तो फिर सिखाने का मैं कोई भी प्रयास नहीं करता हूं।
इसी संबंध में समर्पण की बात समझ लेनी जरूरी है। अगर सीखना हो, तो समर्पण की कोई भी जरूरत नहीं, संकल्प की जरूरत है। वही आदमी सीख सकता है जिसके पास विल-पावर हो, संकल्प हो। क्योंकि सीखने में कानसन्ट्रेशन चाहिए, एकाग्रता चाहिए। सीखने के लिए आपके चित्त की धारा जितनी संकीर्ण हो, उतना अच्छा है। क्योंकि संकीर्ण चित्त की धारा से चीजें सीधी आपके भीतर चली जाती हैं, स्मृति के हिस्से बन जाती हैं।
इसलिए सभी विद्यालय एकाग्रता पर जोर देते हैं। सीखना है तो एकाग्र होना जरूरी है। एकाग्रता के लिए पच्चीस तरह के उपाय किए जाते हैं, दंड दिया जाता है, पुरस्कार दिया जाता है, ताकि चित्त एकाग्र हो। दंड के भय से चित्त एकाग्र हो जाता है।
अगर कोई आदमी आपकी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाए, तो आप यह न पूछोगे, एकाग्रता कैसे करें? आप एकाग्र हो जाओगे। सब भूल जाएगा। वह जो गीत आप गुनगुना रहे थे, टूट जाएगा। वह जो मन में कोई धारणा चल रही थी, वह बिखर जाएगी। बस इस छुरे पर सब एकाग्र हो जाएगा। भय एकाग्र करता है।
इसलिए सभी विश्वविद्यालय, विद्यालय बच्चों को भयभीत करते हैं। भय के बहुत सूक्ष्म रूपों का उपयोग करते हैं। अगर असफल हुए तो बदनामी होगी। अगर परीक्षा में उत्तीर्ण न हुए तो लोग क्या कहेंगे, लोग हंसेंगे। और फिर जीवन का भय है कि अगर इस तरह परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण होते रहे, तो जगत में क्या होगा? वहां तुम कहां खड़े रहोगे? रोटी कहां मिलेगी? छाया कहां मिलेगी? तुम ना-कुछ हो जाओगे। इस भय को बिठाना पड़ता है गहरे में। जैसे- जैसे यह भय बैठने लगता है, वैसे-वैसे एकाग्रता होने लगती है। इसलिए विद्यार्थी को जैसी एकाग्रता परीक्षा के दिनों में होती है, वैसी कभी नहीं होती। क्योंकि परीक्षा जैसे-जैसे करीब आती है, भय सघन होता है। भयभीत चित्त एकाग्र होने लगता है।
और भय का दूसरा सिक्का है पुरस्कार। वह उसका ही दूसरा हिस्सा है। भय
और पुरस्कार में कोई बहुत बड़ा फर्क नहीं है। वह विपरीत भय है। प्रथम आओगे, गोल्ड मेडल मिलेगा, सम्मान होगा, अखबारों में नाम होगा, प्रतिष्ठा होगी, जीवन में खड़े होने का मौका होगा। महत्वाकांक्षा पूरा करना आसान हो जाएगी। अहंकार निखरेगा, प्रतिष्ठित होगा। फिर वह पुरस्कार न मिले, उसका भय पैदा हो जाता है; मिले, उसका लोभ पैदा हो जाता है।
तो सारी शिक्षा भय और लोभ पर खड़ी है। सिखाना हो तो भयभीत करना जरूरी है। इसलिए जो गुरु--जिनको मैं गुरु नहीं कहता--आपको सिखाना चाहते हैं, वे पहले आपको भयभीत करेंगे। इसलिए नर्क की ईजाद की गई है। इसलिए स्वर्ग का आविष्कार किया गया है।
न तो कहीं कोई नर्क है और न कहीं कोई स्वर्ग है। और अगर नर्क और स्वर्ग कहीं हैं, तो वे तुम्हारे भीतर हैं, कोई भौगोलिक घटनाएं नहीं। कहीं पृथ्वी के नीचे खोदने से नर्क नहीं मिलेगा। और राकेट को हम कितने ही अंतरिक्ष में ले जाएं, स्वर्ग नहीं मिलेगा। स्वर्ग और नर्क कहीं बाहर नहीं हैं, भीतर हैं। स्वर्ग और नर्क भय और लोभ के विस्तार हैं। भय है नर्क, लोभ है स्वर्ग। धर्मों को भी समझ में आ गया कि अगर लोगों को सिखाना है, तो भयभीत करो, लोभित करो। और यह बड़ी विपरीत बात है कि धर्म निरंतर कहते हैं कि लोभ से मुक्त हो जाओ, भय से मुक्त हो जाओ, फिर भी स्वर्ग और नर्क की बात किए चले जाते हैं।
सूफी फकीर औरत हुई राबिया। एक दिन लोगों ने उसे गांव में भागते हुए देखा। एक हाथ में उसके मशाल थी और दूसरे हाथ में एक बर्तन था पानी से भरा हुआ। राबिया को लोग पागल ही समझते थे।
संतों को सदा लोगों ने पागल ही समझा है। सिर्फ वही संत आपको पागल नहीं मालूम पड़ेगा जो आपके जैसा ही दुकानदार हो। जिसमें और आपमें मौलिक भेद न हो, वही भर पागल नहीं मालूम पड़ेगा। जिसमें और आपमें मौलिक भेद होगा, वह पागल मालूम पड़ेगा। और संत और आपमें मौलिक भेद होना ही चाहिए।

राबिया को लोग पागल तो समझते ही थे, पर आज पागलपन अतिशय मालूम पड़ा। वस्त्रों का होश नहीं, एक हाथ में मशाल है, एक हाथ में जल का पात्र है। तो लोगों ने बाजार में पूछा, राबिया, इतनी गति से कहां भागी जा रही हो? और यह तुम हाथ में क्या लिए हो? राबिया ने कहा कि यह है मशाल, ताकि तुम्हारे स्वर्ग को जला दूं! और यह है जल, ताकि तुम्हारे नर्क को डुबा दूं! और जब तब तुम्हारा स्वर्ग और नर्क नष्ट न हो जाए, तब तक तुम्हारे धार्मिक होने का कोई उपाय नहीं। भय और लोभ के नष्ट हुए बिना कोई धार्मिक कैसे हो सकता है? लेकिन सिखाना हो तो भय और लोभ चाहिए। भय और लोभ के कारण चित्त एकाग्र होता है। और जब चित्त एकाग्र होता है, तभी तुम कुछ सीख सकते हो। जगाना हो तो चित्त की एकाग्रता बिल्कुल जरूरी नहीं। जगाना हो तो लोभ और भय की कोई जरूरत नहीं। मिटना चाहिए लोभ और भय, और चित्त की एकाग्रता समाप्त होनी चाहिए।
यहां जरा कठिन होगा। क्योंकि हमने आमतौर से एकाग्रता को ध्यान समझ लिया है। एकाग्रता ध्यान नहीं है। कानसन्ट्रेशन मेडीटेशन नहीं है। एकाग्रता तो चित्त की तनाव से भरी हुई अवस्था है। ध्यान चित्त का विश्राम है। एकाग्रता तो संकीर्ण है, ध्यान विस्तीर्ण है। ध्यान का अर्थ है, चित्त शांत है; किसी तरफ लगा हुआ नहीं; कहीं भी लगा हुआ नहीं, सिर्फ शांत है।
आप एक वृक्ष के नीचे बैठे हो। अगर एकाग्रता करनी है, तो हाथ में माला लेकर जपो, राम-राम या कुछ मंत्र, चित्त एकाग्र करो। वह सीखने का ही हिस्सा है। उससे शक्ति पैदा हो सकती है, क्योंकि संकल्प से शक्ति पैदा होती है। लेकिन उससे शांति पैदा नहीं हो सकती है, क्योंकि संकल्प से शांति का कोई भी संबंध नहीं। उससे दुर्वासा आपके भीतर पैदा हो सकता है, एकाग्रता से। दुर्वासा एकाग्रता की चरम परिष्कृति है, वह आखिरी स्थान है। इसलिए दुर्वासा अगर कह दें कि मर जाओ, तो आप मर जाओगे वहीं। क्योंकि दुर्वासा ने इतना चित्त को एकाग्र किया है कि वह जो भी कहेगा, वह आपके अचेतन तक तीर की तरह प्रवेश कर जाएगा। वह आपके भीतर जाकर सजेशन बन जाएगा। वह एक बीज आपके भीतर बैठ जाएगा। दुर्वासा ने कह दिया कि मर जाओ तो आप जिंदा नहीं रह सकते। आपको उसकी आज्ञा का पालन करना पड़ेगा। इतनी मजबूत एकाग्रता है कि उस एकाग्रता में आप झुक जाओगे, टूट जाओगे। दुर्वासा से आपको डरना होगा। इसलिए मैं दुर्वासा को ऋषि कहने में असमर्थ हूं। क्योंकि जिससे हमें डरना पड़े, वह ऋषि कैसा? जिसके पास पहुंचकर सारा भय मिट जाए, वही ऋषि है। पर एकाग्र व्यक्ति से डरना होगा। अगर एकाग्र व्यक्ति आपकी तरफ आंखें
भी उठा दे, तो आपके भीतर कंपन पैदा होगा।
रूस में हुआ रासपुटिन। वैसा ही एकाग्र व्यक्ति, इस युग का दुर्वासा!
वह जिसकी तरफ आंख उठाकर देख लेगा, घबड़ाहट पैदा हो जाएगी। जिस आदमी ने रासपुटिन की हत्या की, प्रिंस युसिपोव ने, उसने मारते वक्त रासपुटिन को, आंखें बंद कर लीं। क्योंकि रासपुटिन अगर उस वक्त उसको देख ले, तो उसके हाथ में जो पिस्तौल है, वह चले न। ऐसी आंखें थीं रासपुटिन के पास कि तीर की तरह भीतर प्रवेश कर जाएंगी।
पलक झपकना रासपुटिन को नहीं आता था। वह अगर आपकी तरफ देखना शुरू करे,
तो आपको बहुत बेचैन कर देगा। सिर्फ देखने से, कुछ और करने की जरूरत नहीं। उसकी अपलक आंखें और उसके लंबे वर्षों की एकाग्रता के प्रयोग आपको घबड़ा देंगे। वह जिसको भी देख लेगा, उसको मुसीबत में डाल देगा।
रूस में जार पर उसने कब्जा कर लिया था--सिर्फ उसकी आंखों के कारण। जार
का एक छोटा लड़का था जो तकलीफ में था। उसी तकलीफ के लिए रासपुटिन को राजमहल लाया गया था। उसको कुछ बीमारी थी कि उसको चोट लग जाए तो खून बड़ी तेजी से बहता था और रुकना मुश्किल होता था। पर रासपुटिन उस बच्चे की आंख में देखकर कह दे कि बस रुको, तो खून रुक जाता था।
पहले समझा जाता था कि यह बड़ा चमत्कार है, लेकिन अब हिप्नोसिस की खोजें कहती हैं, यह हो सकता है। क्योंकि खून भी बहुत गहरे से हमारे मन की आज्ञा को मान सकता है। मेरा हाथ हिलता है। जब मैं उठाना चाहता हूं, हाथ उठता है। जब हाथ उठ सकता है पूरा, तो खून भी रुक सकता है। जब हाथ आज्ञा मानता है-- आखिर हाथ है क्या! हड्डी है, खून है, चमड़ी है। जब मैं उठकर चलना चाहता हूं,

तो चल सकता हूं। जब मेरा पूरा शरीर मेरी आज्ञा मानता है, तो खून भी आज्ञा मान सकता है। थोड़ी एकाग्रता की जरूरत है।
रासपुटिन पूरे रूस के राज-परिवार पर छा गया, क्योंकि वह बच्चा उसके हाथ में हो गया। एक दिन के लिए रासपुटिन गांव के बाहर चला जाए तो मुसीबत, क्योंकि वह बच्चे को अगर चोट लग जाए, तो कोई डाक्टर किसी सहयोग का न हो सके। और रासपुटिन ने एक बहुत अनूठी बात कही, और वह उसने यह कही कि जिस दिन मैं मर जाऊंगा, थोड़े ही दिन के भीतर जार की सारी सत्ता अंत हो जाएगी। यह उसने इसलिए कहा ताकि जार उसकी रक्षा करे। और जार ने उसकी रक्षा की, जितना बन सका। रासपुटिन के मरने के डेढ़ साल के भीतर जार का तीन सौ साल पुराना साम्राज्य नष्ट हो गया।
मेरी समझ में जार को भी रासपुटिन की बात बहुत गहरे में लग गई। रूस में
जो क्रांति हुई 1917 में, उसके डेढ़ साल पहले रासपुटिन की हत्या की गई। उसकी हत्या के साथ ही जार का साम्राज्य अस्त होने लगा। और जार और जारिना को प्रतीत भी होने लगा प्रतिदिन कि कैसे हम जी सकते हैं रासपुटिन के बिना? कैसे यह राज्य चलेगा? यह सब टूट गया। वह आदमी गया, तो सब गया। यह भाव इतना प्रगाढ़ हो गया।
एक तो इतिहास है जो ऊपर से देखा जाता है। उस ऊपर के इतिहास को हम देखेंगे तो लेनिन महत्वपूर्ण व्यक्ति है क्रांति में। और एक और इतिहास है जो भीतर से देखा जाता है। उसको अगर देखेंगे तो रासपुटिन महत्वपूर्ण व्यक्ति है क्रांति में। रासपुटिन के कारण रूस में क्रांति हो सकी। मगर वह एक मनो-इतिहास है। उसकी घटनाएं ऊपर नहीं दिखाई पड़तीं, भीतर दिखाई पड़ती हैं।
अगर आप एक वृक्ष के नीचे बैठकर एकाग्रता कर रहे हैं, तो आपमें शक्ति
का उदय होगा। सब तरह की शक्ति अहंकार को परिपूरित करती है, भरती है। इसलिए एकाग्रता साधने वाले संन्यासियों को आप सदा पाएंगे अति अहंकारी। उनकी चाल में, उनके बैठने-उठने में, उनके बोलने में सब भांति अहंकार होगा, अहंकार की छाया होगी। और जो अहंकार से भरा है, उसका परमात्मा से कैसा संबंध? असंभव है।
ध्यान एकाग्रता से बिल्कुल विपरीत अवस्था है। ध्यान का अर्थ है, आप वृक्ष के नीचे बैठे हैं और आपकी चेतना सब तरफ से खुली है। किसी एक दिशा में नहीं दौड़ रही, सभी दिशाओं में खुली है। दौड़ नहीं रही, सिर्फ ठहरी है और सभी दिशाएं उन्मुक्त हैं। एक पक्षी गीत गाता है तो सुनाई पड़ेगा। सोचेंगे नहीं आप इस पर कि कौन पक्षी गीत गा रहा है, कि कोयल है, कि पपीहा है। सोचना शुरू हुआ कि ध्यान गया, सोचना शुरू हुआ कि एकाग्रता शुरू हुई।
पक्षी गीत गाएगा उसकी आवाज आपके भीतर के शून्य में गूंजेगी, क्योंकि
आप खुले हैं, लेकिन कोई सोच-विचार की तरंगें पैदा न होंगी। आवाज गूंजेगी और चली जाएगी। एक हवाई जहाज आकाश से निकलेगा, गड़गड़ाहट की आवाज गूंजेगी और चली जाएगी। कोई ट्रेन सीटी बजाएगी, आवाज गूंजेगी और चली जाएगी। हवाएं वृक्ष को हिलाएंगी, आवाजें गूंजेंगी और चली जाएंगी। वृक्ष से पत्ते गिरते रहेंगे, उनकी आवाज होती रहेगी। लेकिन आप सोचेंगे नहीं, सिर्फ होंगे।
इस होने का नाम ध्यान है। बिना सोचे होने का नाम ध्यान है। और ध्यान कोई संकीर्ण अवस्था नहीं है चित्त की, ध्यान कोई संकीर्ण बहती हुई नदी नहीं है, ध्यान सागर है।
एकाग्रता नदी की भांति है, सक्रिय नदी दौड़ रही है तेजी से एक दिशा में। ध्यान सागर की भांति है। विस्तीर्ण सागर सभी दिशाओं में मौजूद है, कहीं दौड़ नहीं रहा। नदियों में पूर आ जाते हैं, सागर में कोई पूर नहीं आता। नदियां दौड़ रही हैं, संकीर्ण हैं, क्षुद्र हैं, जरा-सा पानी उन्हें भर देता है, जरा-सा पानी कम हुआ कि सूख जाती हैं। एकाग्रता में बड़ी शक्ति का तूफान आ सकता है और एकाग्रता निर्जीव भी हो सकती है। ध्यान न तो कभी सूखता है और न कभी पूर से भरता है। ध्यान सदा अपने में थिर है।
जागरूकता ध्यान से उपलब्ध होती है और ध्यान समर्पण है। एकाग्रता संकल्प से उपलब्ध होती है, ध्यान समर्पण से।

समर्पण का अर्थ है, अपने को छोड़ दें इस विराट में, इसके साथ एक हो जाएं। नहिं राम बिन ठांव। यह जो राम चारों तरफ फैला है, यह जो ब्रह्म चारों तरफ मौजूद है, इसके साथ एक हो जाएं। आपकी बूंद इसमें खो जाए। अपने को अलग न बचाएं। क्योंकि अगर आप बचाएंगे अलग, तो आप खुले हुए नहीं हो सकते। द्वार-दरवाजे बंद करने पड़ेंगे। दीवालें उठानी पड़ेंगी। छोड़ दें खुला। हवाएं आपके भीतर से गुजरें और उन्हें कोई प्रतिरोध न मिले। आवाजें आपके आर-पार चली जाएं और पीछे बीच में कोई दीवाल उनसे न टकराए। आप एक खुलापन हो जाएं, एक मुक्त आकाश। यह समर्पण से घटित होगा।
समर्पण एक आंतरिक दशा है, संकल्प एक दूसरी आंतरिक दशा है। संकल्प का अर्थ है, संघर्ष; समर्पण का अर्थ है, कोई संघर्ष नहीं।
एक आदमी तैरता है नदी में, वह संकल्प का प्रतीक है। और एक आदमी बहता है नदी में, वह समर्पण का प्रतीक है। तैरने वाला आदमी डूब सकता है। बहने वाला आदमी कभी नहीं डूबता। आपने कभी किसी मुर्दे को डूबते देखा? जिंदा आदमी थोड़ा न बहुत लड़ेगा ही। वह चाहे बह भी रहा हो, तो भी होश रखेगा कि कहीं नदी डुबा न दे। थोड़ा-सा प्रतिरोध बना ही रहेगा। मुर्दा बड़ा कुशल है। वह परम ध्यानी है। वह बिल्कुल फिक्र ही नहीं करता कि क्या होने वाला है। इसलिए कोई नदी मुर्दे को नहीं डुबा सकती।
इसलिए डाक्टर इसको परीक्षा का विषय बना लेते हैं। अगर किसी आदमी की लाश नदी में मिले और उसके फेफड़ों में पानी मिले, तो इसका अर्थ है कि जब उसे फेंका गया, वह जिंदा था। अगर उसके फेफड़ों में पानी न मिले, तो उसका मतलब है, जब उसे नदी में फेंका गया, वह मर चुका था। क्योंकि मुर्दा आदमी नदी से कोई संघर्ष ही नहीं करता, तो नदी भी उससे संघर्ष नहीं करती। मुर्दा आदमी को नदी फूल की तरह ऊपर उठा लेती है।
ध्यानी का अर्थ है, जो अहंकार की दृष्टि से मर गया। समर्पण का अर्थ है, जिसने अपने अहंकार को मिटा दिया और कहा कि तू है, मैं नहीं। इस सूत्र का यही अर्थ है। नहिं राम बिन ठांव, इसका अर्थ है, मैं नहीं हूं तू है। और मेरा मैं तुझमें समर्पित करता हूं। इसे खोता हूं। इसे बहुत सम्हाला, इससे बहुत दुख पाया, इसे बहुत ढोया, इसके वजन से सारी कमर टूट गई, जन्मों-जन्मों तक इसको खींचा और कुछ सार न पाया। इसे मैं वापस लौटाता हूं।
अहंकार को वापस लौटा देने का नाम समर्पण है। मैं नहीं हूं, इस भाव में जीने का नाम समर्पण है। उठते-बैठते, मैं न उठे-बैठे। मैं एक सिर्फ उपकरण हो जाऊं, परमात्मा उठे मुझसे, परमात्मा बैठे। परमात्मा ही भूखा हो, परमात्मा ही भूख से तृप्त हो, परमात्मा ही प्यासा हो, पानी पीए, मैं हट जाऊं। समर्पण का इतना ही अर्थ नहीं कि किसी के चरणों में आपने सिर झुका दिया, तो आप समर्पित हो गए। समर्पण का अर्थ है, एक ऐसी जीवन-चर्या जिसमें मैं को बनाना आपने बंद कर दिया; जिसमें मैं निर्मित नहीं होता; जिसमें परमात्मा निर्बाध आपके भीतर से काम करता है।
कृष्ण की पूरी शिक्षा अर्जुन को गीता में इसके अतिरिक्त और नहीं है,
कि तू मिट जा और परमात्मा को होने दे। युद्ध परमात्मा चाहे, तो चलने दे; परमात्मा रोकना चाहे, तो रुक जाने दे। तू सिर्फ उपकरण हो जा, एक निमित्त-मात्र। तेरे हाथ में तलवार होगी, लेकिन तू परमात्मा के हाथ में तलवार को होने दे, तेरा-पन भीतर न हो। तब कृत्य तो होगा, फल का कोई सवाल न उठेगा, क्योंकि फल हमेशा अहंकार मांगता है।
कृत्य तो जीवन की ऊर्जा का हिस्सा है। कृत्य तो ऊर्जा का खेल है। फल
की आकांक्षा अहंकार की आकांक्षा है। अहंकार कहता है, फल क्या मिलेगा? इसलिए छोटे बच्चे खेल पाते हैं। जैसे ही हमारी उम्र थोड़ी बड़ी होती है, खेल बंद हो जाता है। क्योंकि अहंकार पूछने लगता है, फायदा क्या है? फल क्या है? छोटा बच्चा घूम रहा है गोल, चक्कर मार रहा है, अपनी ही फिरकनी कर रहा है। और हम कहते हैं, क्यों बेकार परेशान हो रहा है? बेकार, क्योंकि हम कहते हैं, इतने में तो पैसा कमाया जा सकता है। इतने श्रम से तो कुछ फल मिल सकता है, क्यों बेकार चक्कर मार रहा है? क्यों ऊधम दौड़ कर रहा है? इससे फायदा क्या है?
अहंकार सदा पूछता है, फायदा क्या है? लाभ क्या है? क्या मिलेगा?

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान से क्या मिलेगा? मैं उनसे कहता हूं, ध्यान से कुछ भी न मिलेगा। जो तुम्हारे पास है, वह भी चला जाएगा।
ध्यान से कहीं किसी को कुछ मिला है? सब चला जाता है! और जब तुम्हारा सब चला जाता है, तो जो शेष रह जाता है, उसका नाम ही परमात्मा है। उसका नाम ही मोक्ष है।
राम सब कुछ है और मैं कुछ भी नहीं।
लेकिन राम से आप धनुर्धारी राम को मत समझ लेना। वे धनुर्धारी राम जो मंदिरों में खड़े हैं, उनका कोई बहुत उपयोग नहीं है। आप उनके चरणों में सब छोड़ सकते हैं, ऐसा ख्याल कर सकते हैं, लेकिन वह छूटेगा नहीं। मंदिर में जो भी जाता है, वह छोड़ने जाता ही नहीं, वह मांगने जाता है। वह अगर सिर रखता है राम के चरणों में, तो बदले के लिए रखता है। वह कुछ मांगने आया है। वह सिर्फ परसुएड कर रहा है, वह राम को फुसला रहा है। वह कह रहा है, तुम बड़े महान हो। हे धनुर्धारी राम! तुम पतितपावन हो! वह खुशामद कर रहा है। वह स्तुति कर रहा है। वह यह कह रहा है कि कुछ मतलब है मेरा, वह तुम पूरा करो। वह लोभ दे रहा है कि अगर तुमने पूरा न किया, तो यह स्तुति बंद हो जाएगी, कि स्तुति की जगह मैं निंदा करूंगा।
पर जिस राम को तुम स्तुति से प्रभावित कर लेते हो, वह राम नहीं। जिस राम को तुम निंदा से प्रभावित कर लेते हो, वह राम नहीं। जो राम तुम्हारी मांगों को सुनता है और पूरी करता है, वह राम नहीं। वह तुम्हारी ही आकांक्षाओं का जाल है, वह तुम्हारा ही बनाया हुआ पुतला है, वह तुम्हारा ही खिलौना है। उसे तुमने ही प्रतिष्ठित किया है। वह मंदिर तुम्हारे स्वप्न का अंग है।
न, मैं उस राम की बात नहीं कर रहा। मैं तो उस राम की बात कर रहा हूं, जो वृक्षों में लहरा रहा है, जो पक्षियों में गीत गा रहा है, जो झरनों में कलकल कर रहा है, जो खुले आकाश में है, जो सब जगह है। व्यक्ति की बात नहीं, इस परम ऊर्जा की। अगर तुम्हारे पास आंखें हों, तो सब तरफ तुम्हें विस्तार ऊर्जा का दिखाई पड़ेगा। एक परम शक्ति का विस्तार दिखाई पड़ेगा, जो अनेक-अनेक रूपों में प्रकट होती है, लीन होती है। यह विराट का खेल है राम।
हिंदुओं ने अच्छा शब्द चुना है। राम के नाटक के लिए, हमने रामलीला शब्द चुना है, वह बड़ा प्यारा है। शब्द बड़ा प्यारा है। लीला का अर्थः खेल। लीला का अर्थः बच्चों का खेल। लीला का अर्थ हैः ऊर्जा इतनी है कि बैठे- बैठे क्या करें, उसे खेल में लगा दें। खेल की धारणा सिर्फ हिंदुओं के पास है।
ईसाई कहते हैं, परमात्मा ने जगत बनाया। बनाने में बड़ी गंभीरता मालूम पड़ती है। बनाने में ऐसा लगता है, जैसे कोई प्रयोजन है। बनाने में ऐसा लगता है, जैसे कोई फल है, जैसे कहीं पहुंचना है।
हिंदू कहते हैं, जगत परमात्मा की लीला है। लीला का अर्थ हुआ कि इतनी ऊर्जा है कि बैठे-बैठे क्या करें? परमात्मा ने सोचा, खेलें!
छोटे बच्चे को बिठाए-बिठाए रखना मुश्किल है। बूढ़े को बिठाएं, प्रसन्नता से बैठ जाता है, चलने में कष्ट है। ऊर्जा क्षीण हो गई है। बच्चे के पास इतनी ऊर्जा है, इतनी शक्ति है, इतनी उबल रही है शक्ति कि वह बैठे- बैठे क्या करेगा! उसको बिठा भी दें, तो भी वह डांवाडोल होता रहेगा। ऊर्जा ओवरफ्लोइंग है, ऊपर से बही जा रही है।
परमात्मा अनंत ऊर्जा है, उसकी ओवरफ्लोइंग हम हैं। सारा अस्तित्व उसकी ओवरफ्लोइंग है, उसकी बाढ़ है, जो बहती जा रही है। और वह कभी रिक्त नहीं होता, रिक्त हो नहीं सकता। यह जो कभी रिक्त न होने वाली शक्ति है, उसका नाम राम है।
और जिस दिन यह राम आपकी अंतिम शरण हो जाए, जिस दिन यह राम आपकी अंतिम ठांव हो जाए, जिस दिन इसके आगे कोई मंजिल न रहे, उस दिन आपके जीवन में परम धन्यता उदय होगी। उसके पहले धन्यता का कोई उदय नहीं हो सकता है।
आज इतना ही।

नहिं राम बिन ठांव
तीसरा प्रवचन

रासलीलाः पुरुष और प्रकृति का खेल

प्रश्नः ओशो, हम पाते हैं कि हमारी समझ से वृत्तियां ज्यादा मजबूत हैं। होश से देखने पर घृणा, ईर्ष्या, क्रोध, इन सारी वृत्तियों की लहरें नाभि-केंद्र से उठती हुई दिखाई देती हैं। साक्षीभाव और लहर का उठना एक साथ घटता है। कृपया यह बताएं कि ये लहरें नाभि-केंद्र से क्यों उठती हैं? क्या अचेतन नाभि-केंद्र से संबंधित है? तथा क्या इन वृत्तियों का अचेतन में बहुत बड़ा संचय है या क्षण-क्षण ये वृत्तियां पैदा होती रहती हैं?

चेतना की धारा विभाजित नहीं है। चेतन और अचेतन, दमन के कारण विभाजित हैं। पहले यह बात ठीक से समझ लें।
बच्चा पैदा होता है, तो उसकी चेतना एक और अखंड है। न तो वहां कोई चेतन
मन है और न अचेतन मन। ऐसे दो भाग नहीं हैं। लेकिन जल्दी ही भाग होने शुरू हो जाएंगे। क्योंकि हम बच्चे को सिखाएंगे, क्या ठीक है, क्या गलत है। हम उसे बताएंगे, क्या शुभ है, क्या अशुभ है; क्या तुम करो, क्या तुम न करो। और जो-जो हम कहेंगे न करो, जो-जो हम कहेंगे बुरा है, वह बच्चा क्या करेगा? बुरा कहने से कोई चीज नष्ट तो होती नहीं। कहा हमने कि क्रोध बुरा है। बच्चे ने सुना और समझा। लेकिन इतना कहने से कि क्रोध बुरा है, क्रोध नष्ट तो नहीं होता, क्योंकि क्रोध स्वाभाविक है। बच्चे ने क्रोध सीखा नहीं है, जन्म से पाया है। जैसे शरीर पाया है, आंखें और हाथ पाए हैं, ऐसे ही क्रोध भी पाया है।
और प्रकृति क्रोध का उपयोग करती है। क्रोध ऊर्जा है। बिना क्रोध के बच्चा मर जाएगा। क्रोध ही उसे बल देगा संघर्ष का, क्रोध ही उसे बल देगा समय पर खड़े होने का, क्रोध ही उसे चलाएगा। तो क्रोध उसकी यात्रा का अनिवार्य अंग है।
हम कहते हैं, काम बुरा है, सेक्स बुरा है। सेक्स कोई किताबों से, फिल्मों से सीखी गई बात तो नहीं है। नहीं तो पशु-पक्षी उसे कहां से सीखे? न तो फिल्में देखते हैं--जैसा कि साधु-संत कहते हैं कि फिल्में लोगों को बिगाड़ रही हैं--तो पशु-पक्षी कोई फिल्म नहीं देखते, कोई अश्लील साहित्य नहीं पढ़ते, फिर भी सेक्स तो है।
तो बच्चा लेकर पैदा हो रहा है कामवासना को। हम कहते हैं, बुरी है। और
वे लोग कहते हैं बुरी है, जिन्होंने इस बच्चे को कामवासना के द्वारा जन्म दिया है। यह बच्चा ही न होता, अगर कामवासना न होती। यह बच्चा कामवासना की जीवंत प्रतिमा है। इस बच्चे के शरीर का रोआं-रोआं काम-अणुओं से बना है। यह सारा शरीर इसका कामवासना का ही सघन रूप है। हम कहते हैं, बुरा है। बच्चा क्या करे?
बच्चे को न कुछ बुरा है अभी, न कुछ भला है। अभी उसने सोचा भी नहीं। हम उसे सोच देते हैं। फिर हम शक्तिशाली हैं। जिस बात को हम ठीक कहते हैं, उसको हम पुरस्कृत करते हैं। जिसको हम गलत कहते हैं, उसको हम दंडित करते हैं। और जिसको हम गलत कहते हैं, हम ही गलत नहीं कहते, हमारा आसपास का पूरा समाज उसे गलत कहता है। बच्चा अकेला पड़ जाता है। वह प्राकृतिक है, लेकिन अकेला है, असहाय है, कमजोर है, और उनके ऊपर निर्भर है जो वृत्तियों को गलत कह रहे हैं। भोजन उनसे मिलेगा, कपड़े उनसे मिलेंगे। वे मार सकते हैं, पीट सकते हैं, दंड दे सकते हैं। तो बच्चा क्या करे?
जो गलत है, अगर गलत कहने भर से समझ लेने से समाप्त हो जाता, तो बच्चा समाप्त कर देता। समाप्त तो नहीं होता, तो उसे बच्चा दबाना शुरू करता है, दमन शुरू करता है। जिस-जिस को मां-बाप और समाज कहता है गलत, बच्चा उसे अपने मन में पीछे हटाता है। यह जो पीछे हटाया गया है, यही अचेतन बनता है। ऐसे अचेतन का जन्म होता है।

पीछे हटाकर बच्चा उससे आंखें चुराता है कि वह दिखाई भी न पड़े कि है। क्योंकि दिखाई पड़ेगा, तो बच्चे को पीड़ा और बेचैनी होगी। तो बच्चा एक तरह का अंधापन पैदा करता है अपने में कि जो-जो बुरा है, वह दिखाई न पड़े।
छोटे बच्चे, जिस-जिस चीज से भय लगता है, उसको देखकर आंख बंद कर लेते हैं। आंख बंद करके शायद वे सोचते हैं कि जो दिखाई नहीं पड़ता, वह समाप्त हो गया। छोटे बच्चों को तर्क वही है जो शुतुरमुर्ग का है। दुश्मन को देखकर शुतुरमुर्ग अपनी गर्दन रेत में छिपा लेता है। तो दुश्मन दिखाई नहीं पड़ता है, शुतुरमुर्ग सोचता है, दुश्मन नहीं है। जो दिखाई नहीं पड़ता, वह नहीं है। जो दिखाई पड़ता है, वह है। छोटा बच्चा क्या करे?
छोटे बच्चे की तकलीफ का अंदाज हमें नहीं है। तो उस सबको जो बुरा है-- कहते हैं बुरा है--उसको वह अपने भीतर छिपा लेता है और उसे देखना बंद कर देता है, उसकी तरफ पीठ कर लेता है। यह पीठ कर लेने से अचेतन, अनकांशस का जन्म होता है।
इसलिए आप हैरान होंगे कि आप चार वर्ष की उम्र के पहले की स्मृति को वापस नहीं ला सकते। अगर आप पीछे लौटें, तो एक जगह जाकर दीवाल आ जाती है, जहां से फिर याददाश्त आगे नहीं बढ़ती। चार वर्ष, पांच वर्ष, कोई बहुत ही गहरे में जाएगा तो तीन वर्ष, बस वहां जाकर सब ठहर जाता है। वे जो तीन-चार वर्ष हैं प्रथम जीवन के चरण में, वे बिल्कुल आप पोंछ दिए हैं।
लेकिन अगर आपको सम्मोहित किया जाए, मूर्च्छित किया जाए, और पूछा जाए,
तो सब याद आ जाती है। याददाश्त नहीं मिटी, लेकिन पीठ कर ली। आपको क्यों याद नहीं आते पिछले अपने जीवन के पहले चार वर्ष?
मनस्विद बड़े चिंता में रहे हैं कि क्या कारण होगा! क्योंकि आप होश में थे। चार साल का बच्चा होश में है, अनुभव करता है, घटनाएं घटती हैं, सुख-दुख होते हैं। उन सबकी स्मृति क्यों खो गई? मनस्विदों ने एक वैज्ञानिक सिद्धांत खोजा है कि जिसको हम बहुत दुखद पाते हैं, उससे हम पीठ कर लेते हैं। उससे बचने का यही उपाय है। और सभी लोग कहते हैं कि बचपन बड़ा सुखद था। लेकिन अगर सुखद था, तो चार वर्ष की स्मृति होनी चाहिए, क्योंकि सुख को तो हम सम्हालते हैं, दुख को भुलाते हैं। अगर बचपन सुखद था, तो वह तो हमारी स्मृति में बहुत सघन होता। उसकी झलक तो सदा बनी रहती। दुख को हम भुलाते हैं, सुख को तो हम सम्हालते हैं। लेकिन बचपन बिल्कुल याद नहीं है। शायद इसीलिए हमें ख्याल है कि बड़ा सुखद था, क्योंकि दुख की कोई याददाश्त नहीं है।
वे चार वर्ष, जो हम भूल गए हैं, वह हमारा अचेतन बन गया है। इसलिए फ्रायड और फ्रायड के अनुयायी--जिन्होंने मनुष्य के मन पर गहरे से गहरा काम किया है--किसी भी मानसिक बीमारी की चिकित्सा के लिए पहला काम यही मानते हैं कि बचपन की स्मृतियों में वापस लौटा जाए। सारा मनोविश्लेषण, साइकोएनालिसिस बचपन में वापस लौटने की प्रक्रिया है। क्योंकि वे कहते हैं, तुम्हारी आज की कोई भी बीमारी हो, उसका मूल कारण तुम्हारे बचपन में छिपा होगा। और जब तक मूल कारण न पकड़ लिया जाए, तब तक उसे उखाड़कर नहीं फेंका जा सकता। वह जो बचपन में हमने दबाया है, जीवनभर छाया की तरह हमारा पीछा करेगा, हमारे व्यक्तित्व को प्रभावित करेगा, हमारे क्रिया-कलाप को रंगेगा।
आप साठ साल में पागल हो सकते हैं, लेकिन उसका बीज आपके पहले चार सालों में छिपा होगा। बढ़ते-बढ़ते वृक्ष साठ साल में बना। उसकी जड़ें बचपन में हैं। अगर उन जड़ों को हम निकाल लें और उन जड़ों को खोज लें, तो यह वृक्ष कुम्हला जाएगा, समाप्त हो जाएगा। समस्त मनोचिकित्सा बचपन में लौटती है। अचेतन पैदा होता है दमन से, दमन पैदा होता है अस्वीकार से। वृत्तियां तुम्हारे अचेतन में दबी पड़ी हैं।
और जो-जो हम दबाते हैं, वह बड़ा शक्तिशाली है। शक्तिशाली है, इसीलिए समाज उसको बुरा कहता है। क्योंकि अगर उसे न दबाया जाए, तो शायद समाज को डर है कि वह इतना शक्तिशाली है कि समाज खंडित हो जाएगा, नष्ट हो जाएगा। जो-जो शक्तिशाली है... ।

सर्वाधिक शक्तिशाली काम की वासना है, इसलिए समाज सबसे ज्यादा कामवासना के विरोध में है। सेक्स को तो बिल्कुल मिटा ही डालना चाहता है।
क्योंकि जैसे ही कामवासना किसी व्यक्ति की मिटी हालत में हो जाए, दबी हालत में हो जाए, वह व्यक्ति समाज का दास हो जाता है।
देखें, एक सांड को देखें। उसकी कामवासना दबाई नहीं गई, काटी नहीं गई।
और एक बैल को देखें। सांड और बैल एक ही जाति के मालूम नहीं पड़ते। सांड की गरिमा और शान, उसका व्यक्तित्व, उसका बल, बात ही और है। और बैल निर्जीव, निरीह! लेकिन गाड़ी में जोतना हो, तो बैल चाहिए, सांड काम नहीं करेगा। सांड इतना शक्तिशाली है कि गाड़ी को ले भागेगा। रास्ते पर चलाना गाड़ी को मुश्किल है। सांड की जहां मर्जी होगी, वहां जाएगा। खड्डे, खाई, कहां पटकेगा, कुछ कहना मुश्किल है। यह बैल चलेगा, कमजोर है।
हर बच्चा सांड की तरह पैदा होता है और समाज हर बच्चे को बैल की तरह कर देता है। क्योंकि तब उसकी छाती पर सवार हुआ जा सकता है, तब उसके कंधे पर बैठा जा सकता है, तब उसे जोता जा सकता है।
यह जो जीवन में इतनी उदासी दिखाई पड़ती है, गरिमा नहीं मालूम पड़ती, गौरव नहीं मालूम पड़ता, यह हर व्यक्ति को हमने सांड से बैल कर दिया है। यह इतने दिन से हम कर रहे हैं कि हमें ख्याल भी नहीं कि हम क्या कर रहे हैं। अगर बच्चों की कामवासना में उनको पूरी तरह उन्मुक्त छोड़ा जाए, तो वे कहां ले जाएंगे, उससे समाज डरता है। फिर वे समाज का बोझ ढोएंगे? इससे डरता है। फिर वे दफ्तर में बैठकर क्लर्क का काम करेंगे? इससे डरता है। किसी प्राइमरी स्कूल में मास्टर होने को राजी होंगे? इससे डरता है। और उनकी वासना इतनी प्रगाढ़ होगी कि परिवार निर्मित हो सकेगा? पत्नी से पति डरेगा? कि पत्नी पति की फिक्र करेगी?
इतने बल के साथ भय मालूम पड़ता है। सब उखड़ जाएगा, अराजक हो जाएगा। शक्ति का भय समाज को गहन है। इसलिए हर बच्चे को कमजोर कर देना जरूरी है। लेकिन कमजोरी ऊपर ही ऊपर मालूम होती है। भीतर तो वासना प्रज्वलित रहती है, जैसे राख के भीतर अंगारा छिपा रहता है, और भीतर से काम करता रहता है। उसका उत्ताप राख में फैलता रहता है। तुम्हारे ऊपर के व्यक्तित्व की परत राख जैसी हो गई है। इसीलिए तुम उदास हो, दुखी हो, पीड़ित हो। क्योंकि बिना ऊर्जा के कोई प्रसन्न नहीं हो सकता, बिना शक्ति के कोई आनंदित नहीं हो सकता। शुद्ध शक्ति का अनुभव आनंद है।
पश्चिम के एक बहुत अनूठे कवि विलियम ब्लैक का एक वचन है, एनर्जी इज डिलाइट, शक्ति ही आनंद है।
और जहां शक्ति क्षीण हो जाती है, वही आनंद खो जाता है, वहीं निर्बलता प्रवेश कर जाती है। निर्बलता उदासी का नाम है। और सारा समाज तुम्हें निर्बल करने में लगा है। वह सब दबा पड़ा है भीतर। जो-जो सबल था और दबाया गया, वह प्रतिपल धक्के मार रहा है।
इसलिए जब तुम साक्षी का प्रयोग शुरू करोगे, ध्यान का प्रयोग शुरू करोगे, तो एक तरफ साक्षी भी बना रहेगा और भीतर से उस अचेतन की परतों से लपटें भी आती रहेंगी, वासना जगेगी, क्रोध आएगा। क्या किया जाए?
वह जो दबा है, उसे देखना ही पड़ेगा। वह जो छिपाया है और जहां-जहां हम अंधे हो गए हैं, वहां-वहां आंख फिर से पैदा करनी पड़ेगी। जो हमने किया है, उससे उलटे वापस लौटना होगा। बचपन में जहां हमसे ऊर्जा छीन ली गई है, उस बिंदु पर हमें वापस जाना होगा।
इसलिए सब संतत्व पुनः बचपन को पाने का नाम है। जीसस कहते हैं, बच्चे
की भांति जो है, वह मेरे स्वर्ग के राज्य में प्रवेश कर जाएगा। बच्चे की भांति! फिर उस शुद्ध ऊर्जा में, अखंडित ऊर्जा में, अविभाजित ऊर्जा में, जहां चेतन और अचेतन नहीं, जहां एक ही चेतना की अखंड धारा है; जहां बुरे और भले का अभी पागलपन पैदा नहीं हुआ, जहां सभी कुछ स्वीकार है, जहां बच्चे ने अभी कोई विचार ही नहीं किया, जहां निर्विचार मौजूद है, इस अवस्था को पुनः पाना होगा।

धर्म, समाज ने जो-जो तुम्हारे साथ अन्याय किया है, उससे मुक्ति का उपाय है। समाज ने तुमसे जो-जो छीन लिया है, धर्म तुम्हें वह पुनः वापस दे देना चाहता है।
इसलिए धर्म कभी सामाजिक नहीं हो सकता। धर्म तो मौलिक रूप से क्रांतिकारी है और गैर-सामाजिक है। इसलिए जब भी कोई धार्मिक व्यक्ति होता है--जीसस या बुद्ध या महावीर या कृष्ण--तो समाज उसके विरोध में होता है। समाज कभी धार्मिक व्यक्ति को स्वीकार नहीं करता, क्योंकि धार्मिक व्यक्ति का मौलिक ढंग ही विद्रोह है। उसकी सारी प्रक्रिया यही है कि समाज ने जो-जो तुम्हारे साथ अन्याय किया है और समाज ने जहां-जहां तुम्हें पक्षाघात से भर दिया है, पैरालाइज किया है, समाज ने जहां-जहां तुमसे ऊर्जा छीन ली है, समाज ने जहां-जहां तुम्हारे जीवन के झरने पर पत्थर रख दिए हैं, दीवालें और बांध बना दिए हैं, उन सबको तोड़कर तुम्हें निर्बंध, तुम्हें मुक्त, तुम्हें परिपूर्ण स्वतंत्र कर देना है।
इसलिए समाज मौलिक रूप से धर्म-विरोधी है, धर्म मौलिक रूप से समाज-विरोधी है। पर यह सुनकर तुम्हें हैरानी होगी। फिर ये हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध, ये सब तो सामाजिक हैं।
बुद्ध सामाजिक नहीं हैं, बौद्ध सामाजिक हैं। महावीर सामाजिक नहीं हैं, जैन सामाजिक हैं। यह समाज की पुनः तरकीब है धर्म को अपने में समा लेने की।
जब कोई समाज, विद्रोही धर्म को भी सांड से बैल बना देता है--जैसे उसने प्रत्येक विद्रोही बच्चे को बना दिया--जब वह धर्म में से क्रांति का तत्व काट देता है, तो संप्रदाय का जन्म होता है। ये संप्रदाय हैं, धर्म नहीं। ईसाइयत संप्रदाय है; जीसस धार्मिक हैं। तो जीसस को तो समाज सूली देता है। उनको तो सूली देने के सिवाय कोई उपाय नहीं। और फिर सूली चढ़े हुए जीसस के आसपास चर्च बनाता है। फिर उनकी पूजा करता है। वह क्रांति का तत्व तो समाप्त हो गया। फिर पोप! जीसस की जगह पोप खड़ा हो जाता है।
शंकराचार्य को तो गाली मिलती है, अपमान मिलता है। लेकिन शंकराचार्यों को, वे जो मठों पर बैठे हैं, उनको सम्मान मिलता है। मौलिक शंकराचार्य तो ऊर्जा है, विराट ऊर्जा है, जिसमें क्रांति अबाध है, जिसके रास्ते को नहरों की तरह नहीं चलाया जा सकता, जो सागर की तरफ दौड़ती गंगा है। और फिर शंकराचार्य हैं, मठों में बैठे हुए हैं, वे नहरों की तरह हैं। उन्हें तुम जहां ले जाना चाहो, वहां जाते हैं। उनकी अपनी कोई स्वतंत्रता नहीं है।
इस बात को ठीक से समझ लें कि धर्म जगत में बड़ी से बड़ी क्रांति है। क्योंकि समाज ने जो-जो किया है, धर्म उसको वापस तुम्हें उस मौलिक, मूल, निर्दोष स्थिति में ले आना चाहता है, जैसे तुम पैदा हुए थे। झेन फकीर कहते हैं कि तुम्हारे मौलिक चेहरे को खोज लेना ही धर्म है। जिस दिन तुम जन्मे थे उस दिन तुम जो थे--न तुम्हें बुरे-भले का कोई ज्ञान था, न तुम्हें जीवन-मरण का कोई बोध था, न तुम्हें कोई भय था, न कोई घृणा थी, न कोई आसक्ति थी, न कोई अनासक्ति थी, न तुम संसारी थे, न तुम संन्यासी थे-- जस क्षण तुम पैदा हुए थे, उस क्षण तुम शुद्ध जल की भांति थे, जिस पर अभी एक छाया भी नहीं पड़ी थी जो उसे अशुद्ध कर दे।
उस निर्मलता को पुनः पा लेने का नाम संतत्व है। और धर्म उसकी प्रक्रिया है।
तो जब तुम साक्षीभाव साधोगे, तो समाज ने जो-जो दबाया है, वह उठेगा। क्योंकि साक्षीभाव का अर्थ है, तुमने वजन हटा लिया। अभी तुम उसके ऊपर बैठे हो, इसलिए वह दबा है। इसलिए, मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान करने से अजीब हालत हो रही है। हम तो सोचते थे, शांति बढ़ेगी। यहां तो भीतर और उठते हुए तूफानों का पता चल रहा है। और हम तो सोचते थे कि संतोष आ जाएगा, गहरे असंतोष की ज्वाला जल रही है। और हम तो सोचते थे, क्रोध मिटेगा, हम और क्रोधी हुए जा रहे हैं।
प्रथम ऐसा होगा। क्योंकि जो-जो तुमने दबाया है, अब तक तुम उसके ऊपर बैठे थे, तुम उसे दबाने का प्रतिपल प्रयास कर रहे थे, तुम उसकी छाती पर सवार थे। जैसे ही तुम साक्षी होते हो, तुम छाती से उतरकर किनारे खड़े हो गए।

अब तुम सिर्फ देखोगे, कुछ करोगे नहीं। इसलिए सब उठेगा, दबा हुआ भभकेगा। जहां राख थी, वहां अंगारे दिखाई पड़ेंगे। सारी अशांति, सारा क्रोध, सारी कामवासना उठेगी, तुम्हें घेरेगी।
पर तुम साक्षीभाव को सम्हालना। ज्यादा दिन यह न चलेगा। क्योंकि यह जो
हो रहा है, यह सिर्फ दमन का परिणाम है। जैसे-जैसे ये लपटें ऊपर उठ जाएंगी, नीचे के अंगारे तिरोहित होने लगेंगे। जैसे-जैसे यह धुआं आकाश में खो जाएगा, तुम पाओगे, भीतर निर्धूम अवस्था आने लगी। एक दिन आएगा कि तुम अचानक पाओगे, तुम अकेले खड़े हो, देखने को कुछ भी नहीं। साक्षी बचा है और साक्षी होने को कुछ भी नहीं बचा। न वहां क्रोध है, न वहां कामवासना है, न वहां द्वेष है, न ईर्ष्या है। लेकिन समय लगेगा।
और यह कोई एक ही जन्म का दबाया हुआ होता, तो भी ठीक था। यह अनेक जन्मों
का दबाया हुआ है। न मालूम कितनी बार तुम पैदा हुए हो और न मालूम कितने समाजों ने तुम्हें नष्ट किया है। और हर बार तुम अलग-अलग समाजों में पैदा हुए हो। तो हर समाज ने तुम्हें अलग-अलग ढंग से नष्ट किया है। इसलिए तुम्हारे भीतर इतने अंतर्विरोध, इंटरकंट्राडिक्शंस हैं।
कभी तुम हिंदू थे, तुम्हें कुछ सिखाया गया कि यह अच्छा है और यह बुरा है। कभी तुम मुसलमान थे, तो उलटा सिखाया गया कि यह अच्छा है और यह बुरा है। कभी तुम जैन थे, कभी तुम बौद्ध थे। तुमने न मालूम कितने-कितने समाजों में यात्रा की है। और तुम इतनी गलत और सही बातों को सीख गए हो और वे सब इतनी विरोधी हैं, इससे तुम्हारी गहरी अंतर्द्वंद्व की, कन्फ्यूजन की अवस्था पैदा हुई है।
तुम्हारे भीतर इतने-इतने लोगों ने तुम्हें काटा और बनाया है कि तुम्हारी मूर्ति तो नहीं निखरी, न मालूम कितनी मूर्तियां तुममें खोदी गई हैं; कि तुम्हारा पत्थर अगर अनगढ़ होता तो भी सुंदर होता। गढ़ने वालों ने तुम्हारे पत्थर को बुरी तरह कुरूप कर दिया है।
साक्षीभाव समय लेगा। समय इस बात पर निर्भर करेगा कि कितना तुम्हारे भीतर दमन है। और इस बात पर निर्भर करेगा कि साक्षीभाव के लिए कितनी तुम्हारी चेष्टा है।
अगर तुम्हारी चेष्टा बड़ी प्रगाढ़ हो, तो जल्दी भी परिणाम आ जाएगा। तुम्हारी चेष्टा कुनकुनी हो, तो परिणाम शायद जन्मों में आएगा या शायद कभी भी न आ पाए। कितनी त्वरा से, कितनी तीव्रता से, कितनी उत्कंठा से, कितनी समग्रता से तुम साक्षीभाव में ठहरते हो, उतना ही समय लगेगा।
अगर तुम पूर्णरूपेण साक्षी हो जाओ, तो क्षण-मात्र में भी सारा उपद्रव विलीन हो सकता है। अगर तुम होश बन जाओ और उस होश के क्षण में तुम्हारी सारी ऊर्जा होश हो जाए, तुम्हारे भीतर कर्ता बिल्कुल भी न बचे, केवल द्रष्टा रह जाए, तो एक क्षण में भी वैसी दृष्टि सब राख कर देगी, तुम्हारे भीतर जो दबा पड़ा है।
तुमने कहानी सुनी है कि काम का देव शिव को लुभाने गया है। शिव अपने ध्यान में बैठे हैं और वह उनके चारों तरफ जाल बुन रहा है वासना के। तो उन्होंने एक आंख खोलकर उसे देखा और वह जलकर राख हो गया। तब से वह अनंग है, उसका फिर कोई शरीर नहीं है।
ऐसा ही तुम्हारे भीतर घट सकता है। दो आंख भी खोलने की जरूरत न पड़ेगी,
एक आंख! लेकिन तुम्हारा संपूर्ण प्राण उस आंख में समा जाए। तुम उस एक आंख से अपनी पूर्णता से देख सको, तो एक आंख भी काफी है। दो आंख भी न खोलनी पड़ेंगी। और तुम्हारे भीतर जो भी कचरा है, वह सब जल जाएगा और समाप्त हो जाएगा।
इस संबंध में यह ख्याल ले लेना जरूरी है कि क्रोध हो या कामवासना हो
या ईर्ष्या हो, वे सभी तुम्हारे शरीर के अंग हैं, तुम्हारे नहीं।
समाज और धर्म का यही भेद है। समाज सोचता है, वे तुम्हारे अंग हैं। इसलिए उन्हें दबाने में लग जाता है। और धर्म मानता है कि वे तुम्हारे अंग नहीं हैं, तुम्हारी संपदा के अंग हैं, तुम्हारे शरीर के अंग हैं। इसलिए धर्म तुम्हें जगाने में लगता है। समाज तुम्हें दबाने में लगता है, धर्म तुम्हें जगाने में लगता है। क्योंकि धर्म मानता है, तुम जितने जग जाओगे,

उतने ही वासना से मुक्त हो जाओगे। और समाज मानता है कि तुमको जितना सुला दिया जाए और दबा दिया जाए, उतना ही वासना से छुटकारा होगा।
समाज की दृष्टि साधारण लोगों के अनुभव पर है। कोई बुद्ध जैसे लोग समाज नहीं बनाते। बुद्ध जैसे लोग तो अकेले पैदा होते हैं। बुद्धों का कोई समाज तो होता नहीं। इसलिए अब तक किसी समाज के नियम बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं हैं।
समाज बनता है मूढ़ों की विशाल भीड़ से। नासमझों का समूह, वे ही नियम बनाते हैं। जैसे अंधे कोई नियम बनाते हों, और कोई बच्चा आंख वाला पैदा हो जाए, तो वे तत्क्षण उसकी आंख का आपरेशन कर देंगे। वे कहेंगे, यह बच्चा कुछ गलत पैदा हो गया, विकृत है। आंख तो होती नहीं और इसको आंख है, आंख का आपरेशन करो।
या वे उस बच्चे को सिखाएंगे कि तू सदा आंख बंद रख! क्योंकि कोई भी नहीं देखता है; और जब कोई भी नहीं देखता है, तो देखना अपराध है। वे उस बच्चे में गिल्ट और अपराध पैदा करेंगे कि देखने में पाप है। तूने देखा कि तू पापी हुआ। तो या तो तेरी आंखें अलग कर दी जाएं या तू आंख बंद करने को राजी हो जा। समाज अंधों से निर्मित है। आंख वालों का कोई समाज नहीं, आंख वाले अकेले पैदा होते हैं। कबीर ने कहा है, संतों के नहिं लेहड़े। संतों की कोई भीड़ नहीं, कोई जमात नहीं। साधु चले न जमात। उसकी कोई जमात नहीं है। अकेला ही है। क्योंकि यह ऊंचाई इतनी है कि अकेला ही आदमी उपलब्ध हो पाता है, भीड़ तो यहां तक नहीं पहुंच पाती। यह ऊंचाई इतनी दुर्लभ और दूभर है कि कभी कोई अकेला इस ऊंचाई तक पहुंच पाता है, शेष लोग तो नीचे जमीन पर छूट जाते हैं। समाज बनता है नासमझों से। लेकिन नासमझ भी नियम बनाते हैं और नासमझ भी
यह ख्याल करते हैं कि वे समझदार हैं। नासमझों का पहला सूत्र है कि तुम शरीर हो। अज्ञानी का पहला सूत्र है कि तुम शरीर हो और कुछ भी नहीं। इसलिए तुम्हारे शरीर में जो है, वह तुममें है।
ज्ञानी का पहला सूत्र है कि तुम शरीर नहीं हो, तुम शरीर से भिन्न और पृथक हो। तुम्हारा होना बिल्कुल शरीर से अनूठा और अलग है। तुम शरीर में हो, लेकिन शरीर नहीं हो। शरीर घर की भांति है। तुम उसके निवासी हो। कि शरीर वस्त्रों की भांति है, जिसे तुमने ओढ़ा है और अपने को छिपाया है। शरीर एक उपकरण है। या कि शरीर एक रथ की भांति है और तुम सारथि हो।
ज्ञानी का पहला सूत्र है कि तुम शरीर से भिन्न हो; अज्ञानी का कि तुम शरीर से अभिन्न हो। बस इस पर सारा उपद्रव खड़ा होता है।
अगर तुम शरीर के साथ अभिन्न हो, तो शरीर में जो-जो भूल-चूकें हैं, वे काटनी पड़ेंगी। काटकर भी वे कटती नहीं, छिप जाती हैं। छिपकर रोगों का जन्म बनता है। अनेक-अनेक रोग पैदा होते हैं।
फ्रायड का कहना है कि मनोविज्ञान जिन रोगों को जानता है, उनमें नब्बे प्रतिशत कामवासना के दबाने से पैदा होते हैं। और आज का चिकित्सा-शास्त्र कहता है कि सौ में से पचास रोग कम से कम मानसिक हैं। यह तो चिकित्सा- शास्त्र कहता है। मनस्विद तो कहता है कि सौ में से नब्बे प्रतिशत मानसिक हैं। और जानकर आपको हैरानी होगी कि चार आदमियों में कम से कम तीन आदमी किसी न किसी तरह के मानसिक रोग से पीड़ित हैं। और फ्रायड कहता है कि नब्बे प्रतिशत मानसिक रोग कामवासना के दमन से पैदा होते हैं।
जब हम दबाते हैं, तो रुग्ण व्यवस्था हो जाती है। ऐसी हालत हो जाती है, जैसे केटली उबल रही हो और आपने केटली के ढक्कन पर पत्थर रख दिए हों और केटली का मुंह भी बंद कर दिया हो, भाप के आप दुश्मन हों और नीचे से आग भी जल रही हो, तो विस्फोट होगा!
भोजन आप रोज ले रहे हों, शरीर का श्रम आप रोज कर रहे हों, श्वास से जीवन-वायु भीतर जा रही है, खून तैयार हो रहा है, कामवासना निर्मित हो रही है। भोजन आग दे रहा है, श्वास प्रज्वलित कर रही है आग को, आग कामवासना में प्रगट हो रही है, और उसको हम दबा रहे हैं। चूल्हा पूरी तरह जल रहा है। ईंधन की जरा भी कमी नहीं होने देते। और केटली के ढक्कन पर पत्थर रखे हुए हैं-- धर्म के, नीति के, आचरण के। वहां से भाप भी नहीं निकलने देते। और नीचे से आग भी प्रज्वलित किए चले जाते हैं। तो क्या होगा?

विस्फोट होगा। यह आदमी रुग्ण हो जाएगा, पागल हो जाएगा। पागल का अर्थ है, विस्फोट। पागल का अर्थ है, सब सीमाएं टूट गईं। केटली टुकड़े-टुकड़े में हो गई, ईंधन बिखर गया, सारा पानी चारों तरफ हो गया।
इस कारण कुछ धार्मिक लोग--जो वस्तुतः धार्मिक नहीं हैं--बजाय केटली के पत्थर हटाने के, ईंधन की लकड़ियां हटाने लगते हैं। इसलिए साधु कम भोजन करेगा। भय कामवासना का है। क्योंकि भोजन शरीर में जाता है, तो कामवासना निर्मित होती है। भोजन ऊर्जा देता है। तो साधु उपवास में लगेगा। उपवास से नई ऊर्जा पैदा न होगी, इसलिए केटली का विस्फोट न होगा।
लेकिन साधु कमजोर और उदास हो जाएगा। इसलिए प्रसन्न साधु खोजना मुश्किल है। हंसता हुआ, आनंदित साधु खोजना मुश्किल है। उदास, जराजीर्ण, खंडहर की भांति। क्योंकि वह उतना ही भोजन ले रहा है, जितने से काम चल जाए। काम से ज्यादा भी भोजन हुआ थोड़ा सा कि वासना निर्मित होगी।
वासना अतिरेक है। वह फैलाव है। तुम्हारे भीतर जो अतिरिक्त है, उसका काम-क्रीड़ा में नियोजन है।
तो उतना ही, जितने से काम चल जाए। एक बार भोजन लेगा, वह भी कम भोजन लेगा। उस भोजन में से भी जो वास्तविक प्राणदायी तत्व हैं, वह अलग कर देगा।
रूखा-सूखा, किसी तरह बस शरीर चल जाए।
तो ईंधन हटा लिया। अब आग नहीं जलती। सिर्फ धुआं-धुआं और थोड़ी-सी गर्मी पैदा होती। उससे पानी थोड़ा-सा कुनकुना बना रहता है। तो जीवन चलता जाता है, ठंडा नहीं हो जाता बिल्कुल।
पर स्वभावतः, इस आदमी की दशा उस चूल्हे के जैसी हो जाएगी, जिसमें धुआं
ही धुआं है। पानी धुएं से ही थोड़ा गरम हो लेता है, लेकिन कोई उबाल नहीं आता, न भाप बनती है, न भाप के पैदा होने से जो संगीत पैदा होता है, वह संगीत पैदा होता है।
झेन फकीरों ने केटली में होती हुई गुनगुनाहट की बड़ी तारीफ की है। रूस
के कवियों ने सेमोवार में होती गुनगुनाहट के बड़े गीत गाए हैं। किसी शांत क्षण में, सुबह जब अभी लोग उठे भी नहीं, और पक्षियों ने भी अभी अपने पंख नहीं फैलाए, अगर केटली गुनगुनाती हो तो सुनने जैसा है। लेकिन वह गुनगुनाहट बंद हो जाएगी, अगर ईंधन पूरा न हो।
इसलिए गुनगुनाता साधु खोजना मुश्किल है। उसके जीवन की धारा क्षीण हो गई। मुर्दा-मुर्दा, मरा-मरा जीता है। चलता है, उठता है, बैठता है, लेकिन थका है। कुछ करने के पहले ही थका है, क्योंकि जीवन की ऊर्जा का प्रवाह रुक गया है।
ऐसे उदास साधुओं से पृथ्वी भर जाए, तो भी खतरा है, क्योंकि उदास आदमी दूसरे की प्रसन्नता को देख नहीं सकता। और उदास आदमी चाहता है कि सब उदास हों। और उदास आदमी हंसते हुए आदमी में यह भाव पैदा करता है कि तुम कुछ अपराध कर रहे हो। रुग्ण आदमी हमेशा स्वस्थ आदमी की तरफ ईर्ष्या से देखता है। और ऐसी धारणा पैदा करेगा कि स्वास्थ्य में कुछ पाप है।
आप चकित होंगे जानकर कि लिओ टालस्टाय ने, जो कि इस तरह की रुग्ण साधुता का पक्षपाती था, यह लिखा है कि स्वास्थ्य एक तरह की बीमारी है, टु बी हेल्दी इज टु बी इल। और लिओ टालस्टाय ने यह भी लिखा है कि जिसको आध्यात्मिक होना हो, उसको स्वास्थ्य की वासना छोड़ देनी चाहिए। उसको बीमार होने के लिए राजी हो जाना चाहिए। क्योंकि दीन, कम ऊर्जा, सब न्यून--इसकी उसको तैयारी होनी चाहिए।
तो अध्यात्म के नाम पर दो घटनाएं घट सकती हैं। या तो ईंधन को निकाल लो, ताकि डर न रहे भाप के पैदा होने का। और या फिर भाप के ढक्कन पर वजन को बढ़ाते जाओ, ताकि डर न रहे। दोनों हालत में, एक हालत में विक्षिप्त आदमी पैदा होगा, जिसका विस्फोट हो गया; दूसरी हालत में रुग्ण, उदास आदमी पैदा होगा, जो कि मर गया मरने के पहले। जिसको हम साधुता कहते हैं, वह इन दो तरह की रुग्ण दिशाओं में विभाजित है।
लेकिन बुद्ध को देखें, महावीर को देखें, तो न तो रुग्ण दिखते हैं, न विक्षिप्त दिखते हैं। महावीर जैसा सुंदर शरीर खोजना मुश्किल है। उनके

रोएं-रोएं से प्रसन्नता और नृत्य अभिव्यक्त हो रहा है। महावीर की प्रतिमा को देखकर लगेगा कि और इससे ज्यादा सुंदर काया नहीं खोजी जा सकती।
लेकिन महावीर के पीछे चलने वाले साधुओं को खड़ा करके देखें! तब आपको जरा बेचैनी होगी कि महावीर के पीछे चलने वाला साधु ईंधन निकाल लिया है। वह रुग्ण दिखता है। महावीर जैसी प्रफुल्लता वहां नहीं है। और जहां प्रफुल्लता नहीं, वहां अहिंसा कैसी? क्योंकि दुखी आदमी सदा हिंसक होगा। वह दूसरे को दुखी देखना चाहेगा। और जब तक वह तुम सबको भी उदास न कर दे, तब तक उसे चैन नहीं।
इसलिए तथाकथित दुखी साधु दूसरों को भी दुखी करने का उपाय करते हैं।
वे सिखाते हैं, खाओ कसम, यह छोड़ो, लो व्रत, इसका त्याग करो। और अगर तुम त्याग नहीं करते, तो वे इस भांति देखते हैं, जैसे तुमसे ज्यादा बड़ा पापी खोना मुश्किल है। उनकी आंखों में घृणा मालूम होगी, निंदा मालूम होगी। उस निंदा से खबर मिलती है कि उनका जीवन स्वस्थ नहीं हुआ। उनका जीवन विकृत हो गया।
वास्तविक जो संत है, उसका व्यक्तित्व एक अनंत नृत्य जैसा होगा, उसकी गुनगुनाहट चलती ही रहेगी। तुम उसके पास बैठोगे--अगर वह चुप भी बैठा हो, शांत भी बैठा हो--तो भी तुम अनुभव करोगे कि कोई नाच रहा है। वह मौन भी बैठा है, तो तुम्हें उसकी कविता सुनाई पड़ेगी। वह चलेगा, तो तुम्हारे पास अगर सुनने को कान हों, तो तुम्हें उसके पैरों में बंधे घूंघर सुनाई पड़ेंगे। उसका उठना-बैठना, जैसे कोई जीवन की वीणा पर संगीत को जन्मा रहा हो, ऐसा होगा। उसका सारा व्यक्तित्व संगीतपूर्ण और कलात्मक हो जाएगा।
और तभी तो जीवन का उत्सव है। और तभी तो कोई कह सकता है कि परमात्मा को धन्यवाद। यह उदास साधु कैसे धन्यवाद देगा? इसको अगर परमात्मा मिल जाए तो शिकायत कर सकता है। यह यही कह सकता है कि क्या यह जीवन दिया है? एक बोझ! तुमने ही दिया यह जीवन? बंद करो यह खेल! इसकी शिकायत हो सकती है, धन्यवाद नहीं हो सकता। धन्यवाद तो वही दे सकता है, जिसने धन्यता जानी हो। साक्षीभाव है मार्ग उस धन्यता को पाने का। न तो ईंधन को हटाना है, क्योंकि जीवन ईंधन है। ऊर्जा कम नहीं करनी, बढ़ानी है, क्योंकि ऊर्जा आनंद है। और परमात्मा परम ऊर्जा है।
इसलिए तुम निर्वीर्य होकर उसे न पा सकोगे। तुम्हारी ऊर्जा जब बहेगी
सब बांध छोड़कर, तभी तुम उसे पा सकोगे। तुम जब बाढ़ में आ जाओगे, सब किनारे डुबा दोगे, तभी तुम उसे पा सकोगे।
सूखी नदियां सागर तक कैसे पहुंचेंगी? डबरे बन जाएंगे, जगह-जगह व्याघात हो जाएगा, जगह-जगह रेत के ढेर हो जाएंगे। सब सूख जाएगा। कहीं-कहीं नदी बहेगी, तो थोड़े डबरे बना देगी। तुम उन्हीं डबरों की भांति हो जाओगे, अगर तुमने ईंधन अलग कर दिया।
जीवन की ऊर्जा को बढ़ाओ, जीवन की ऊर्जा को पहुंचने दो उसके पारावार तक।
और वहां कोई अंत नहीं है, क्योंकि अनंत है जीवन-ऊर्जा। इसलिए तुम जीवन-ऊर्जा के संबंध में अति नहीं कर सकते हो। अतिशय होता ही नहीं वहां। जितना भी तुम बढ़ाओगे, पाओगे कम है।
जो नदी सागर से मिलने चली है, उसे काफी जल चाहिए और काफी उमंग चाहिए। शक्ति का प्रवाह चाहिए। कहीं डबरे न बन जाएं, कहीं वह खो न जाए। वह सब बांध तोड़ देगी, वह सब किनारों को डुबा देगी, लेकिन सागर तो पहुंचेगी।
सागर तक पहुंचना हो तो थोड़ा-बहुत सागर तुम्हें भी बनना होगा। क्योंकि सिर्फ समान का मिलन होता है। अगर परमात्मा परम ऊर्जा है, तो निर्वीर्य होकर तुम उस तक नहीं पहुंच सकते हो। अगर वह विराट है, तो क्षीण होकर तुम नहीं पहुंच सकते हो। वह जैसा है, कुछ तो उस जैसे बनो। और अगर परमात्मा जीवन है, तो तुम मुर्दा-मुर्दा होकर कैसे उसके मंदिर की यात्रा करोगे?
देखो, चारों तरफ परमात्मा नाचता हुआ है। उसमें फूल खिल रहे हैं, उसमें गीत झर रहे हैं, चारों तरफ जीवन एक उल्लास से भरा है।
हमारे उत्सव के दिन कभी-कभी आते हैं। कभी साल में हम होली मनाते हैं,
तब हम रंगीले हो जाते हैं, तब हम रंग एक-दूसरे पर फेंक लेते हैं। कभी साल में हम दीवाली मनाते हैं और अंधेरे में दीए जला लेते हैं। पर हमारा जीवन

रूखा-सूखा है। इसीलिए रूखे-सूखे जीवन के कारण आदमी को उत्सव निर्मित करने पड़े हैं। लेकिन पशु-पक्षियों के, पौधों के, नदी-झरनों के न कोई दीवाली है, न कोई होली है, क्योंकि पूरा जीवन दीवाली और होली है।
आदमी रुग्ण है, इसलिए एक दीवाली से राजी हो जाता है। एक दीवाली सिर्फ सांत्वना है। तो उस दिन हम नए कपड़े पहन लेते हैं, घर में दीए जला लेते हैं, पटाखे फोड़ लेते हैं। और फिर हम वैसे ही अपनी उदासी में लौट जाते हैं--फिर उसी कारागृह में, उसी दुख और पीड़ा में। एक होली आती है तो हम गीत गा लेते हैं, नाचते हैं। सब सीमाएं तोड़ देते हैं। सब नीति-नियम, बंधन हटा देते हैं। उस दिन फिर हम कोई नीति-नियम नहीं मानते। उस दिन हम कोई शिष्टाचार नहीं मानते। उस दिन हम कोई नियम स्वीकार नहीं करते। उस दिन सब अनुशासन को तोड़कर नदी एक दिन बह लेती है।
लेकिन एक दिन नदी बहे, इससे कहीं सागर मिलेगा? और यह एक दिन तो सिर्फ बहाना है। यह सिर्फ अपने को समझा लेना है।
लेकिन प्रकृति को देखो, वहां परमात्मा प्रतिदिन दीवाली और प्रतिदिन होली मना रहा है। वहां रोज ही रंग छिटकते हैं। वहां रोज फूल खिलते हैं। वहां पुराना पत्ता गिर भी नहीं पाता कि नए का जन्म हो जाता है; नई कोंपल उसकी जगह ले लेती है। वहां उत्सव क्षणभर को बंद नहीं होता। वहां अखंड चल रहा है उत्सव। वहां तारे और चांद और सूरज रोज ही जल रहे हैं। वहां दीवाली प्रतिपल है।
धार्मिक व्यक्ति का जीवन ऐसा होगा। वह प्रतिपल उत्सव से भरा है। अहोभाव है कि वह है। और उसकी श्वास-श्वास एक धन्यवाद है।
यह साक्षीभाव से जन्मेगा। साक्षीभाव में ईंधन नहीं हटाना है, क्योंकि निर्वीर्य नहीं करना है तुम्हें। और साक्षीभाव में पत्थर भी नहीं रखने हैं, क्योंकि विक्षिप्त भी नहीं करना है तुम्हें। कोई विस्फोट हो जाए और तुम टूट जाओ, बिखर जाओ, खंड-खंड हो जाओ, वह भी नहीं करना है।
साक्षीभाव का अर्थ है, दूर खड़े होकर देखना है, जो भी हो रहा है। यह जलता हुआ ईंधन सुंदर है। ये उठती हुई लपटें अनूठी हैं। यह जीवन, जो अग्नि की तरह प्रगट हो रहा है, प्यारा है। यह उबलते हुए जल का गीत, यह गुनगुनाहट, ये बुलबुले यह भाप का उठना, सब सुंदर है, सब स्वीकार है। ढक्कन को हटाओ, भाप को मुक्त होने दो, अग्नि को जलने दो और भाप को मुक्त होने दो, और तुम दूर खड़े होकर देखो।
एक अनूठी घटना घटती है कि तुम पाते हो कि यह सब शरीर में हो रहा है। यह ईंधन, यह जल, यह भाप, सब शरीर में हो रहा है। तुम इससे घिरे हो, लेकिन इसके पार हो। और जिस दिन तुम्हें यह दिखाई पड़ने लगे कि तुम प्रतिपल जिससे घिरे हो, उसके पार हो, उस दिन अतिक्रमण हो गया। उस दिन क्रोध तुम्हें क्रोधित न करेगा, उस दिन कामवासना तुम्हें कामवासना से पीड़ित न करेगी। उस दिन अगर तुम काम में उतरोगे, तो भी दूर खड़े रहोगे। और तब तुम जानोगे कि परमात्मा की मर्जी है। अगर काम में उतरना है, तो ठीक, उसकी मर्जी पूरी हो। उस दिन अगर तुम क्रोध करोगे, तो क्रोध भी क्रीड़ा होगी, वह खेल होगा, वह अभिनय होगा। लगेगा जरूरी है, तुम उसे होने दोगे। लेकिन क्षणभर को भी तुम्हारा तादात्म्य उससे न होगा। वृत्ति और तुम अलग रहोगे।
संसार में रहकर और संसार के न होना, शरीर में रहकर और शरीर के न होना, नदी से गुजरना और पैर गीले न हों, वही साक्षीभाव का सूत्र है।
एक झेन फकीर अपने शिष्य को विदा दे रहा था। शिष्य को कह रहा था, जा तू संसार में और जो मैंने तुझे कहा है औरों को कह, और जो मैंने तुझे दिया है औरों को बांट। और जब शिष्य सीढ़ियां उतरने लगा मंदिर की, तो उस फकीर ने कहा, देख, नदी से गुजरना, लेकिन पैर गीले न हों!
वह शिष्य ठिठककर खड़ा हो गया कि यह तो उपद्रव की बात है। नदी से गुजरेंगे तो पैर तो गीले हो ही जाएंगे। पैर गीले न करने हों, तो नदी से गुजरना ही न आए। अच्छा है, मत गुजरो। पैर गीले करने हों, तो ही नदी से गुजरो। वह वापस लौटने का सोचने लगा।
गुरु ने कहा, तू वापस लौट ही आ। अगर तू इतनी-सी बात नहीं समझा, तो तेरा अभी जाना उचित नहीं है। वह कहने लगा, आप समझाएं। गुरु ने कहा, यह समझाने की

बात नहीं, तू अपने ध्यान की प्रक्रिया को फिर शुरू कर। तू फिर साक्षीभाव साध, क्योंकि यह साक्षीभाव का अर्थ है।
इतना ही अर्थ है, नदी से गुजरना और पैर गीले न हों। नदी से बचे, तो कमजोर। पैर गीले हो गए, तो भटक गए।
कठिन है। पर साक्षीभाव जैसे-जैसे सधता है, सरल होता जाता है। तुम सिर्फ देखने वाले बनना, कर्ता मत बनना। क्रोध हो तो देखना; कामवासना हो तो देखना; ईर्ष्या हो तो देखना। और जानना कि तुम वही हो, जो देख रहा है। तुम वह नहीं हो, जो दिखाई पड़ रहा है। दृश्य के साथ अपना संबंध छोड़ देना और द्रष्टा के साथ अपना संबंध जोड़ लेना।
जैसे ही इसकी झलक मिलनी शुरू होती है, धीरे-धीरे तुम पाओगे, संसार चलता है अपनी ही ऊर्जा से। तुम्हें उसमें साथ देने की जरूरत ही नहीं है, तुम्हारी कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारे बिना शरीर चलता है। शरीर को भूख लगती है, शरीर भूख की मांग करता है और शरीर ही भोजन को उठाकर शरीर में डाल लेता है। तुम अकारण बीच में आ जाते हो। गर्मी लगती है, शरीर पीड़ा अनुभव करता है। और शरीर ही वृक्ष की छाया में हट जाता है। तुम अकारण बीच में आ जाते हो। तुम्हारी कोई जरूरत न थी। तुम सिर्फ देख सकते थे कि शरीर को गर्मी लगी, पसीना आया। और तुम देख सकते थे कि शरीर ने पीड़ा अनुभव की। और तुम देख सकते थे कि शरीर उठा और छाया में जाकर बैठ गया।
काश, तुम देख सको शरीर का गर्मी से पीड़ित होना, छाया में हट जाना और तुम साक्षी रहो, कर्ता न बनो, तो तुम मुक्त हो। कोई और मुक्ति नहीं है। और जल्दी ही तुम पाओगे कि समाज ने जो-जो दबाया, उससे छुटकारा हो जाएगा। लेकिन जो-जो प्रकृति ने दिया है, उससे कोई छुटकारा नहीं है। समाज ने जो-जो तुम्हें दबा दिया है जबर्दस्ती, वह तो कृत्रिम है, उससे छुटकारा हो जाएगा साक्षीभाव से। लेकिन जो-जो प्रकृति ने दिया है, उससे छुटकारा नहीं होगा। इसे ठीक से समझ लो। अन्यथा बड़ी कठिनाई खड़ी होती है। क्योंकि साधक सोचता है, अभी छुटकारा इससे नहीं हुआ, उससे नहीं हुआ, तो मेरा कुछ भी नहीं हो रहा है।
ध्यान रहे, छुटकारा उससे हो सकता है, जो तुम्हें दूसरों ने दिया है; उससे नहीं हो सकता, जो तुम लेकर आए हो। उससे छुटकारा तो उसी दिन होगा, जिस दिन शरीर छूटेगा।
जीवन-मुक्त हम उसे कहते हैं, जिसका समाज से छुटकारा हो गया और समाज के संस्कारों से छुटकारा हो गया, जिसके भीतर दमित कुछ भी न रहा। लेकिन प्रकृति तो अभी उसके साथ चल रही है। जीवन-मुक्त को भी भूख लगेगी। और लगनी चाहिए। सच तो यह है कि उसे जैसी अच्छी भूख लगेगी, तुम्हें कभी लग नहीं सकती। क्योंकि उसका सब शुद्ध है। साक्षीभाव शुद्ध है; अलग खड़ा है।
अक्सर तो तुम झूठी भूख से परेशान होते हो, क्योंकि तुम्हारा साक्षीभाव नहीं है। अगर तुम एक बजे रोज भोजन करते हो, तो घड़ी में एक देखकर भूख लग आती है। और यह भी हो सकता है कि घड़ी रात बंद हो गई हो और एक उसमें बजा हो, लेकिन अभी वस्तुतः ग्यारह बजा हो। झूठा एक देखकर भी भूख लग सकती है। यह भूख झूठी है। और बड़े मजे की बात है कि अगर तुम थोड़ी देर रुक जाओ तो यह भूख खो जाएगी। सिर्फ झूठी भूख खो सकती है। अगर यह वास्तविक होती तो और बढ़ती। तुम रोज रात दस बजे सो जाते हो तो ठीक दस बजे नींद आने लगेगी। यह नींद मानसिक है, झूठी है। अगर तुम दस मिनट मत सोओ, और काम में लग जाओ, नींद नदारद हो जाएगी, रातभर न आएगी। अगर यह वास्तविक होती तो दस बजे जितनी थी, साढ़े दस बजे और ज्यादा होती, ग्यारह बजे और ज्यादा होती, बढ़नी चाहिए। लेकिन यह वास्तविक नहीं है, यह सिर्फ तुम्हारा ख्याल है, यह तुम्हारा तादात्म्य है।
इसलिए संत को जैसी भूख लगेगी, वैसी तुम्हें नहीं लग सकती। संत को जैसी नींद आएगी, वैसी तुम्हें नहीं आ सकती। संत जैसा सुख पाता है, शरीर से भी, वैसा भी तुम नहीं पा सकते।
लेकिन सुख हो या दुख, भूख हो या प्यास, नींद हो या न नींद हो, संत दूर खड़ा है। वही उसका संतत्व है। वह शरीर को चलने देता है। संत को एक बात अनुभव

हो गई कि शरीर अपने आप चल रहा है। तुम्हारे कर्ता बनने का कोई भी प्रयोजन नहीं है।
अपने को जरा दूर करो और देखो कि शरीर अपने से चलता है या नहीं। तुम्हारे कारण विघ्न ही पड़ता है, बाधा उपस्थित होती है। तुम बीच-बीच में आकर झंझट खड़ी करते हो, शरीर को उसकी सरलता से नहीं चलने देते।
समाज ने जो थोपा है, वह खो जाएगा साक्षीभाव से। लेकिन प्रकृति ने जो दिया है, वह शुद्ध हो जाएगा, निखर आएगा। प्रकृति का दिया हुआ तो तभी खोएगा, जब शरीर खो जाएगा। इसलिए जीवन-मुक्त समाज से मुक्त होता है। और जब शरीर से मुक्त होता है, तब हम उसे परममुक्ति कहते हैं। तब वह प्रकृति से भी मुक्त हो जाता है। तब शुद्ध साक्षी ही रह जाता है।
बौद्धों ने दो निर्वाण कहे हैं। एक को वे निर्वाण कहते हैं और एक को महानिर्वाण कहते हैं। निर्वाण तो बुद्ध का उस दिन हुआ, जब वे चालीस साल की करीब उम्र के थे, तब उन्होंने जान लिया कि मैं साक्षी हूं। वह निर्वाण हुआ। भूख तब भी लगी, प्यास तब भी लगी, पानी की तब भी जरूरत रही, रात सोना भी पड़ा, दिन चले, तो शरीर थका भी, बीमारियां भी आईं, स्वास्थ्य भी आया, चालीस साल बुद्ध निर्वाण के बाद भी जीए। फिर हुआ महानिर्वाण।
महानिर्वाण का अर्थ है कि अब शरीर भी गया। पहले समाज जाता है, फिर प्रकृति जाती है। और जब समाज और प्रकृति दोनों चले जाते हैं तब शुद्ध ब्रह्म, शुद्ध आत्मा बच रहती है।
पहले समाज को जाने दो। संन्यास इस बात की घोषणा है कि मैं समाज से अब मुक्त होने की चेष्टा शुरू करता हूं। संन्यास का यही अर्थ है। संन्यास का यह अर्थ नहीं कि आप जंगल चले गए तो संन्यासी हो गए। क्योंकि जंगल में भी आप समाज को अपने साथ ले जा सकते हैं। क्योंकि जंगल आप चले जाएं, यहां आप हिंदू थे और जंगल में भी आप समझते रहें कि हिंदू, तो फिर यहां समाज ने जो सिखाया था, उसको आप जंगल में भी ले जा सकते हैं, तो आप समाज के भीतर हैं।
समाज का त्याग, इसका अर्थ, समाज से दूर हट जाना नहीं। क्योंकि दूर हटने की कोई जगह भी नहीं, कहां भागोगे? समाज के त्याग का अर्थ है, समाज ने जो-जो आरोपित किया है, उससे छुटकारा। शुद्ध बचपन में लौट जाना, समाज से छुटकारा है। फिर से बचपन की तरह ताजे हो जाना, बच्चे की तरह हलके हो जाना, समाज से छुटकारा है।
समाज से जिस दिन पूरे छूट जाओगे, तुम्हारा निर्वाण होगा। पहली घटना घटेगीः तुम और प्रकृति अलग-अलग मालूम होने लगोगे। समाज बीच में सेतु की तरह काम कर रहा है, सेतु हट जाएगा। एक तरफ तुम, एक तरफ प्रकृति। एक तरफ पुरुष, एक तरफ प्रकृति। फिर बड़ा खेल में रस है।
शुद्ध पुरुष, शुद्ध प्रकृति का खेल बड़ा रसपूर्ण है। उसको हिंदुओं ने अपनी मिथ, अपनी कथा में रासलीला कहा। वह प्रकृति और पुरुष का खेल है। वह कृष्ण का नाचना गोपियों के बीच। वह कथा बड़ी प्यारी है। कृष्ण पुरुष है, साक्षी को उपलब्ध हो गया। गोपियां चारों तरफ नाचती हैं, उसे रिझाती हैं। उसे रिझाया नहीं जा सकता। जिस दिन तुम्हारे बीच का सेतु टूट जाता है, समाज हट जाता है।
और कृष्ण से ज्यादा समाज-विरोधी आदमी खोजना मुश्किल है। इसलिए तुम कितनी ही कृष्ण की पूजा करो, भीतर-भीतर तुम कृष्ण से डरे रहते हो। अगर कृष्ण अचानक तुम्हें मिल जाएं, तो तुम अपनी पत्नी से उनका परिचय कराना पसंद न करोगे। यह आदमी खतरनाक है। तुम अपने बच्चों को भी नहीं चाहोगे कि उनके पास जाएं, क्योंकि यह आदमी उपद्रवी है। इसे दूर-दूर से पूजना तो ठीक, इसके पास होना उचित नहीं है। कृष्ण ने समाज को बिल्कुल ही हटा दिया है। कृष्ण बिल्कुल गैर-सामाजिक हैं।
और यह जो नृत्य की कथा है, यह घटती है, जिस दिन तुम भी समाज के तत्व को अपने से पोंछकर अलग कर दोगे, समाज ने जो-जो संस्कार डाले हैं, उन्हें हटाकर शुद्ध बच्चे की भांति हो जाओगे। इसलिए कृष्ण को हम ज्यादातर बच्चे की तरह चित्रित किए हैं। कृष्ण अस्सी साल तक जीए, लेकिन उनके बुढ़ापे का कोई चित्र नहीं है। और हमने उन्हें बूढ़े की तरह कभी चित्रित नहीं किया। इसका यह अर्थ नहीं कि वे बूढ़े न हुए होंगे। बूढ़े तो जरूर हुए होंगे। शरीर तो, प्रकृति

तो, अपना गुणधर्म पूरा करता है। उनके भी दांत गिरे होंगे, शरीर निर्बल हुआ होगा, कमर झुक गई होगी। लकड़ी की जरूरत पड़ी होगी। लेकिन सोचना ही कठिन है कृष्ण को लकड़ी लेकर बूढ़े की तरह चलते हुए। वह हम नहीं सोच सकते। वह है भी उचित नहीं। क्योंकि कृष्ण का शरीर बूढ़ा हो गया हो, प्रकृति थक गई हो, लेकिन पुरुष सदा बचपन में रहा, वह पुरुष सदा बच्चे की तरह ताजा, नए पत्ते, नए कोंपल की तरह ताजा रहा।
इसलिए कृष्ण की जो अधिकतम चित्रावली है और जो गीत सूरदास और दूसरों
ने लिखे हैं, वे सब बालपन के हैं। वह शुद्ध पुरुष का स्वभाव है। बच्चे की भांति, सरल, निर्दोष।
कृष्णमूर्ति इस बालपन की दशा को स्टेट आफ अनकंडीशनिंग कहते हैं, संस्कार-शून्य--समाज संस्कार देता है--समाज-मुक्त, जहां कोई रेखा दूसरे की खींची हुई नहीं बचती, चेतना अरेखांकित, अनकंडीशंड!
फिर भी प्रकृति का खेल चारों तरफ चलता रहेगा, रासलीला चलेगी। क्योंकि तुम साक्षी हो गए, इससे प्रकृति का कृत्य तत्क्षण बंद नहीं हो जाएगा। क्योंकि प्रकृति का अपना मोमेंटम है।
तुम साइकिल चलाते हो, तुम पैडल लगाते हो। फिर तुमने पैडल लगाना रोक दिया और तुमने कहा, बहुत हो गया, अब नहीं चलाना। लेकिन अभी साइकिल थोड़ी दूर चलेगी। क्योंकि पीछे तुमने जो पैडल चलाए थे, साइकिल ने शक्ति इकट्ठी कर ली है। अभी मील, आधा मील साइकिल चलेगी। और अगर उतार हो तो कई मील भी चल सकती है।
इसलिए जो लोग पैंतीस साल की उम्र के पहले निर्वाण को उपलब्ध हो जाते हैं, उनकी साइकिल का चलना बहुत मुश्किल हो जाता है, क्योंकि पैंतीस साल के पहले जीवन चढ़ाव पर होता है। पैंतीस साल बिंदु है चढ़ाव का आखिरी। इसलिए अक्सर जो व्यक्ति पैंतीस साल के पहले ज्ञान को उपलब्ध होते हैं, निर्वाण को उपलब्ध होते हैं--जो पैडल लगाना बंद कर देते हैं--उनकी प्रकृति का नृत्य बहुत जल्दी बंद हो जाता है। और अगर प्रकृति के नृत्य को, शरीर को चलाना हो, तो बड़ी कठिनाई हो जाती है। किन्हीं कारणों से चलाना जरूरी हो, वासना के कारण तो समाप्त हो गए, करुणा के कारण चलाना जरूरी हो, तो अति कठिन हो जाता है। इसलिए अक्सर पैंतीस साल के पहले जो लोग ज्ञान को उपलब्ध होते हैं, शंकराचार्य या कोई और, वे जल्दी ही समाप्त हो जाते हैं।
जो लोग पैंतीस साल के बाद ज्ञान को उपलब्ध होते हैं, उनकी साइकिल चलती है। तब जीवन उतार पर होता है। महावीर या बुद्ध अस्सी साल तक जी लेते हैं। पैंतीस साल के बाद जीवन उतार पर है, तब बिना पैडल के भी काफी दूर तक जा पाता है।
शरीर तो चलेगा, आप साक्षी हो गए तब भी। उसका नृत्य चलेगा, उसकी भूख-प्यास चलेगी, लेकिन आप अब दूर खड़े देखते रहेंगे। इसके पहले आप कर्ता थे, अब आप द्रष्टा होंगे। इसके पहले आप पार्टिसिपेंट थे, आप भागीदार थे, अब आप भागीदार नहीं हैं, अब आप एक दर्शक हैं। इसलिए परिणाम की अब आपको कोई चिंता नहीं है। जब तक आप भागीदार थे, तब तक क्या परिणाम होता है, उसकी चिंता थी। अब कुछ भी परिणाम हो, उसकी चिंता नहीं है। कृष्ण वही अर्जुन को कहते हैं कि तू परिणाम की चिंता छोड़, फल की आकांक्षा छोड़। वह यही कह रहे हैं कि तू साक्षी हो जा, तू सिर्फ देख जो हो रहा है। और प्रकृति जो करती है, उसे करने दे, तू दूर खड़ा हो।
पहले समाज, संस्कार से छुटकारा होगा, फिर एक दिन प्रकृति भी शांत हो जाएगी। ये गोपियां कब तक नाचेंगी? थक जाएंगी।
सांख्य-सूत्र कहते हैं कि पुरुष जब देखने वाला हो जाता है, तब प्रकृति बड़ी नाचती है, रिझाती है, कोशिश करती है। क्योंकि प्रकृति को भी पीड़ा अनुभव होती है तुम्हारे दूर होने से। तुम्हारे हट जाने से प्रकृति का खेल रुकने के करीब आ जाता है। तो प्रकृति सब उपाय करती है तुम्हें उलझाने के, वापस बुलाने के। लेकिन साक्षी अगर तुम खड़े ही रहे, तो सांख्य-सूत्र कहते हैं, प्रकृति की नटी थक जाती है। फिर थककर, वह शांत होकर बैठ जाती है। फिर तुम्हारा स्मरण छोड़ देती है, तुम बाहर हुए उसकी सीमा के।

तब महापरिनिर्वाण। तब शरीर दोबारा उपलब्ध नहीं होता। तब आत्मा विराट
के सागर में खोकर एक हो जाती है, रहती है और नहीं भी रहती। नहीं भी रहती इसलिए कि कोई मैं का बिंदु, कोई मैं का केंद्र नहीं रह जाता। रहती है इसलिए कि इस जगत में जो कुछ भी है, उसके मिटने का उपाय नहीं। केंद्र-रहित महाशून्य में एक हो जाती है।
तुम्हारी तरह तुम न बचोगे, परमात्मा की तरह तुम बचोगे--वही लक्ष्य है, वही खोज है।
आज इतना ही।

नहिं राम बिन ठांव
चौथा प्रवचन

मुट्ठी में हवा

प्रश्नः ओशो, बुद्ध को ज्ञान हुआ वृक्ष के नीचे। सुकरात के बारे में
आप बताते हैं कि जिस दिन उसे ज्ञान की घटना घटी, वह वृक्ष के नीचे खड़ा था। कृष्णमूर्ति के जीवन में भी इसी तरह का उल्लेख है और आप स्वयं भी ज्ञान के दिन घर से निकलकर वृक्ष पर गए थे। तो क्या वृक्ष का ज्ञान की घटना से कोई इसोटेरिक संबंध है? और यह भी समझाएं कि ज्ञान जब आकस्मिक रूप से घटता है, तो आपको इसकी पूर्व-सूचना कैसे मिली थी, जो आप घर से निकलकर वृक्ष पर चढ़े थे?

ज्ञान का कोई भी संबंध किसी बाह्य वस्तु से नहीं है। हो भी नहीं सकता। ज्ञान है आंतरिक घटना। आपमें घटती है और आपके कारण ही घटती है। रुकती है तो भी आपके ही कारण। नहीं घट पाई आज तक, तो भी आपके ही कारण। आपके अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं है अज्ञान के लिए। इसलिए ज्ञान के लिए भी आपके अतिरिक्त और कोई भी कारण नहीं बन सकता।
ध्यान रखें, जिस कारण घटना रुकती है, उसी कारण सहायता मिल सकती है। कोई वृक्ष आपके अज्ञान का कारण नहीं है। बोधि-वृक्ष बुद्ध के ज्ञान में बाधा नहीं था, तो सहयोगी भी नहीं हो सकता। वृक्ष का कोई जिम्मा नहीं है। बुद्ध का वृक्ष से संबंध भी क्या? बुद्धत्व नहीं घटा, तो खुद बुद्ध ही कारण थे। बुद्धत्व घटा, तो भी बुद्ध ही कारण थे।
इसे तो पहले आधारभूत सिद्धांत की भांति समझ लें। क्योंकि हमारे मन की आम-वृत्ति है, उत्तरदायित्व को किसी पर छोड़ना। बुरा हो तो हम सोचते हैं, कोई और; शायद तारे या ग्रह-नक्षत्र, परिस्थिति, लोग; भला हो, तो भी हम सोचते हैं, कहीं और हमसे उसका स्रोत है, अलग।
मन की इस आदत का कारण है। इससे मन खुद जिम्मेवारी से मुक्त हो जाता है। स्वयं का दायित्व शून्य हो जाता है। तो कोई भाग्य का नाम लेता है, कोई परमात्मा का। कोई कहता है, भाग्य में जब होगा तब घटेगा। इससे आपको कुछ करने का, कुछ दिशा में यात्रा करने का, कोई श्रम उठाने का प्रश्न नहीं उठता। और परमात्मा की जब मर्जी होगी तब होगा।
आपके अतिरिक्त और किसी की मर्जी न तो साथी है, न विरोधी है। आपकी मर्जी के अतिरिक्त और कोई भाग्य नहीं है।
पर फिर भी, बुद्ध वृक्ष के नीचे थे जब ज्ञान घटा, सुकरात भी एक वृक्ष
से टिका हुआ खड़ा था, महावीर भी एक वृक्ष के पास थे। तो क्या कारण होगा? ये सारी घटनाएं सांयोगिक नहीं हो सकतीं।
कारण केवल इतना है, जैसा मैं कल आपको कह रहा थाः व्यक्ति के ऊपर पहली पर्त है संस्कृति की, समाज की, संस्कार की; दूसरी पर्त है प्रकृति की। और तीसरा, जो आधारभूत स्वभाव है, वह है परमात्मा का।
तो इसे हम ऐसा समझें, संस्कृति ऊपरी पर्त है, प्रकृति उसके बाद की गहरी पर्त है। और स्वभाव, स्वरूप, आधार है। या ऐसा समझें कि स्वरूप है केंद्र, स्वभाव है केंद्र, प्रकृति है उसकी परिधि और उस प्रकृति के ऊपर भी संस्कारों का जाल है।
वृक्ष केवल प्रकृति का प्रतीक है। ये सारे लोग संस्कृति और समाज को छोड़कर वन में चले गए। इसे प्रतीक के अर्थ में समझें। ये सारे लोग संस्कार को छोड़ दिए और प्रकृति में चले गए। घटना प्रकृति में घटी। संस्कृति में नहीं घट पाई। घटना वहां घटी जहां मनुष्य का किया हुआ कुछ भी न था। जहां मनुष्य का कोई चिह्न न था, हस्ताक्षर न थे। जहां मनुष्य के नियम, विधियां, मनुष्य का बनाया हुआ कृत्रिम जाल बिल्कुल न था। वहां घटना घटी। पर वह घटना का कारण नहीं है। ये लोग संस्कृति से हटे और प्र्रकृति में चले गए।
और फिर प्रकृति में इन्होंने प्रकृति से हटने को साधा और प्रकृति को
भी छोड़ा। संस्कृति को छोड़कर तो जंगल जा सकते हैं, फिर जंगल को छोड़कर कहां जाइएगा? संस्कृति और प्रकृति दोनों बाहर हैं, तो संस्कृति से प्रकृति में

जा सकते हैं, प्रकृति से संस्कृति में वापस आ सकते हैं। लेकिन अगर दोनों को छोड़ना हो, तो कहां जाइएगा?
फिर बाहर जाने का उपाय नहीं बचता, भीतर जाने का ही उपाय बचता है। समाज
को छोड़कर हिमालय चले जाएं, हिमालय को छोड़कर वापस नगर लौट आएं, तो दोनों ही बाहर हैं। जो व्यक्ति संस्कार को छोड़कर प्रकृति के जगत में गया, अब कहां जाए? अब वह प्रकृति को भी छोड़ेगा, आंख बंद करेगा, अपने भीतर जाएगा।
तो पहली यात्रा है, संस्कृति से प्रकृति। और दूसरी यात्रा है, बाहर से भीतर। ये घटनाएं प्रकृति में घटीं, प्रकृति में घट सकती थीं, क्योंकि वहां ही दूसरी यात्रा शुरू होती है।
प्रकृति एक पड़ाव है स्वभाव और संस्कार के बीच, वहां थोड़ी देर विश्राम जरूरी है। यह वृक्ष के नीचे विश्राम करते हुए बुद्धपुरुषों की जो कथा है, यह संस्कार छोड़कर, समाज छोड़कर, प्रकृति के नीचे विश्राम करते हुए लोगों की कथा है। फिर वहां से आगे की यात्रा शुरू होती है, वह भीतर की तरफ है। बुद्धत्व वृक्ष के नीचे नहीं घटता, बुद्धत्व तो स्वयं के भीतर घटता है। वृक्ष पड़ाव था।
ऐसा समझ में आ जाए तो आपकी साधना का पथ भी सुगम हो जाएगा। पहले संस्कृति को साफ करना है। जो-जो मनुष्य ने लिखा है आपके ऊपर, उसको हटा देना है। उसके हटते ही आप वृक्ष के नीचे आ जाएंगे, प्रकृति में आ जाएंगे। प्रकृति में आने का अर्थ है, जैसे शुद्ध बच्चा, बालपन, भोलापन; वह सब गणित, होशियारी, चालाकी, जो समाज ने दी थी, छूट गई; निर्दोषता, एक पवित्रता का उदय हुआ। अब आप न बुरे हैं न भले हैं।
कोई वृक्ष बुरा और भला नहीं है। किसी वृक्ष को आप साधु-असाधु में नहीं बांट सकते। अगर एक वृक्ष के नीचे आप बैठे हों और वह आपके सिर पर फल गिराकर चोट भी पहुंचा दे, तो भी आप यह नहीं कह सकते कि यह दुष्ट है। वृक्ष आपके ऊपर गिर जाए और आपकी हत्या हो जाए, तो भी कोई यह नहीं कहेगा कि यह हत्यारा है। क्योंकि वृक्ष की चेतना अभी विभाजित नहीं बुरे और भले में। अगर आप वृक्ष के नीचे मर भी गए, तो यह संयोग है, वृक्ष जिम्मेवार नहीं। क्योंकि वृक्ष की खुद की मंशा आपको मारने की नहीं थी।
प्र्रकृति में आने का अर्थ है, बुरे और भले की धारणा से पीछे हट जाना, वहां पहुंच जाना जहां शुद्ध निर्विकार प्रकृति है, जहां कोई द्वंद्व नहीं, जहां कोई चुनाव नहीं, जहां अपनी कोई मंशा नहीं। जहां जो हो रहा है, उसका स्वीकार है; जहां हम नियंत्रण नहीं करते हैं, सिर्फ बहते हैं।
यही है वृक्ष, इसी वृक्ष के नीचे बुद्धत्व घटता हुआ मालूम पड़ा है। और
जब भी आप मनुष्य से हटते हैं, तभी आप हलके हो जाते हैं। शायद आपको ख्याल में न आया हो कि पहाड़ पर जाकर जो शांति मिलती है, वह पहाड़ के कारण नहीं मिलती, मनुष्य से हटने के कारण मिलती है।
आप अकेले एक रास्ते पर घूमने निकले हैं, कोई भी रास्ते पर नहीं है। फिर अचानक एक आदमी रास्ते पर आ जाता है, आप तत्क्षण बदल जाते हैं, आपकी चाल बदल जाती है, आपकी आंख बदल जाती है, आपके मन पर एक नया बोझ आ जाता है। समाज प्रविष्ट हो गया। अभी तक आप अकेले थे। वृक्ष थे, पक्षी थे, आकाश था, तारे थे, पर आप अकेले थे। कोई आपके ऊपर निर्णय लेने वाला नहीं था कि आप गलत कि ठीक, कि चाल उचित या अनुचित। आप चल रहे थे अपनी मौज में, गीत गुनगुना रहे थे, हंस रहे थे, अकेले थे। यह जो एकाकीपन था, इसमें आप छोटे बच्चे की भांति हो गए थे। तो हो सकता है अपने से बात कर रहे हों, मुंह बिचका रहे हों, नाच रहे हों। लेकिन एक आदमी अचानक रास्ते पर आ गया, सब बदल गया, बचपन खो गया, आप वापस लौट आए अपने गणित, अपने हिसाब में। यह आदमी क्या कहेगा! समाज मौजूद हो गया। अब आप ऐसा व्यवहार करेंगे जैसा समाज चाहता है। अन्यथा आप विक्षिप्त मालूम होंगे। अब आप सम्हलकर चलेंगे। शिष्टाचार, सभ्यता सब वापस लौट आई। एकांत में, अकेले में जो सुख मिलता है, वह समाज से छुटकारे का सुख है। क्योंकि समाज एक सदा बना रहने वाला कारागृह है, जो सब तरफ मौजूद है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, ध्यान में रस आता है, आनंद आता है,
पर कोई देख रहा है, इससे हम पूरे नहीं उतर पाते। कोई देखेगा, तो क्या कहेगा, इससे बाधा खड़ी हो जाती है।

दूसरे की आंख निर्णायक है। क्योंकि दूसरा सिर्फ देखेगा नहीं, दूसरा निर्णय लेगा कि तुम ठीक हो कि गलत हो। दूसरा सोचेगा तुम्हारे संबंध में कुछ। तुम्हारे संबंध में उसका कोई मंतव्य रहा है, तो बदलेगा। अब तक सोचा था तुम भले आदमी हो, सोचा था तुम संस्कारी हो, सोचा था कि तुम सभ्य हो, और यहां तुम्हें रोते, चीखते, चिल्लाते देखा तो उसकी धारणा तुम्हारे संबंध में बदल जाएगी।
और हम लोगों के मत से जीते हैं, उनका ओपिनियन बड़ा मूल्यवान है। क्योंकि उनके साथ जीना है। कल इस आदमी से कुछ काम करवाना होगा, तो वह दफ्तर में भीतर ही नहीं आने देगा। इसे आप नमस्कार करोगे, तो वह बचकर निकल जाएगा। क्योंकि कहीं कोई देख न ले कि इस पागल से इनका संबंध है, दोस्ती है, मित्रता है, पहचान है। तो जरूर इसमें भी कुछ पागलपन होगा।
मत का बड़ा डर है और समाज मत का एक जाल है हमारे चारों तरफ। एक महिला ने मुझे आकर कहा कि जाती हूं ध्यान देखने, लेकिन वहां कर न सकूंगी। क्योंकि वहां सौ दो सौ देखने वाले लोग इकट्ठे हो जाते हैं। उनमें से कई लोग परिचित हैं। पश्चिम से आने वाले साधक जितनी सरलता से ध्यान कर पाते हैं, उतना आप नहीं कर पाते। उसका कारण है कि यहां उनका कोई परिचित नहीं है। और आपके मत का उन्हें कोई मूल्य नहीं है, आपसे कुछ लेना-देना नहीं है।
आप भी इंग्लैंड या अमरीका में जाएं तो इतने ही आनंद से ध्यान कर सकते हैं। क्योंकि क्या प्रयोजन है? वह जो समाज है, आपका समाज नहीं है। वे जो लोग हैं, न होने के बराबर हैं। उनकी आंखें कुछ भी निर्णय लें, आपका क्या बिगाड़ पाएंगी? पर जो आंखें आपको पहचानती हैं, जिनसे आपके संबंध हैं, जिनसे आपका लेना-देना है, जिनसे आपका व्यवसाय है, उनसे डर है। उनसे स्वार्थ को नुकसान पहुंच सकता है।
और उनकी आंखों में आपकी जो प्रतिमा है, वह बदले, तो आपको बेचैनी होगी। क्योंकि आपकी अपने पास अपनी तो कोई समझ नहीं है; दूसरे जो आपको समझते हैं, वही आप अपने को समझते हैं। अगर दूसरे कहते हैं, आप बड़े सुंदर हैं, तो आप समझते हैं आप सुंदर हैं। और दूसरे कहते हैं कि आप बहुत भले हैं, सज्जन हैं, तो आप समझते हैं कि आप भले और सज्जन हैं। और दूसरे अगर समझने लगें कि आप पागल हैं, तो ज्यादा दिन न लगेंगे कि आपको भी शक शुरू हो जाएगा। और बहुत ज्यादा देर न लगेगी कि आप भी मानने लगेंगे कि आप पागल हैं।
मनस्विद कहते हैं कि हम बहुत से बच्चों की बुद्धि का विकास रोक देते हैं, क्योंकि बचपन से ही हम उनको इस तरह देखते हैं, जैसे वे मूढ़ हैं। अगर आप एक बच्चे को निरंतर कहते हैं कि तू मूढ़ है, तेरे में बुद्धि नहीं, कब तुझ में बुद्धि आएगी, तो उसमें कभी भी न आएगी। और ध्यान रहे, यह पाप आप कर रहे हैं उसमें बुद्धि न आने का। उसको भी धारणा पक्की हो जाएगी कि जब पिता कहते हैं, तो ठीक ही कहते होंगे; और जब मां भी कहती है, तो ठीक ही कहती होगी; और जब स्कूल का गुरु भी कहता है, तो ठीक ही कहता होगा; जब सभी मानते हैं कि मैं मूढ़ हूं, तो यह बच्चा अपने को मूढ़ सिद्ध करने में लग जाएगा, क्योंकि लोगों की धारणा तोड़ना ठीक नहीं। इतने लोग जो कहते हैं, ठीक ही कहते होंगे। और जब भी यह मूढ़ सिद्ध होगा, तो यह कहेगा कि यह होने ही वाला था, क्योंकि मैं मूढ़ हूं, क्योंकि सभी मुझे मूढ़ मानते हैं।
मनस्विद कहते हैं कि कोई भी धारणा बार-बार दोहराई जाए, तो चित्त में बैठ जाती है और परिणामकारी हो जाती है।
तो जो समाज आपके संबंध में कहता है, उसी से आपने अपनी प्रतिमा का निर्माण किया है। आप उस प्रतिमा के लिए लोगों की आंखों पर निर्भर हैं। वह प्रतिमा उधार है। उस प्रतिमा से केवल वे ही मुक्त हो सकते हैं जिन्होंने अपनी वास्तविक छवि का आविष्कार कर लिया हो, जिन्होंने ठीक से पहचान लिया हो कि मैं कौन हूं? आत्मज्ञानी ही उधार प्रतिमा से मुक्त हो सकता है। और उधार प्रतिमा को जब तक आप न तोड़ें, तब तक आत्मज्ञानी नहीं हो सकते।
इसलिए महावीर या बुद्ध वन की तरफ चले जाते हैं। वह जंगल का आकर्षण नहीं है, आपका विकर्षण है। पहाड़ नहीं बुला रहे हैं, आप हटा रहे हैं। पहाड़ प्यारे हैं, क्योंकि वे निर्णय नहीं करते हैं। अगर आप वहां अलमस्त होकर नाचेंगे, तो कोई पहाड़ यह न कहेगा कि यह पागल है।

वृक्ष संतों जैसे हैं। वे आपके संबंध में कोई विचार नहीं करते और कोई मंतव्य जाहिर नहीं करते। आप बैठे हों, ठीक। खड़े हों, ठीक। रोते हों, हंसते हों, सब ठीक। वृक्ष को आप स्वीकार हैं जैसे आप हैं। वृक्ष आपके होने में किसी तरह की बाधा न देगा।
लेकिन आदमी बहुत विचित्र है। आदमी स्वीकार ही नहीं करता कि आपके भी होने का कोई स्वातंष्य है, कि आप अपने जैसे होने के अधिकारी हैं। आदमी कहता है, मैं बाधा डालूंगा, मैं तुम्हें बनाऊंगा। हर आदमी एक-दूसरे को बनाने में लगा है। पत्नी पति को सम्हालने में लगी है, पति पत्नी को सम्हाल रहा है, बाप बेटे को सम्हाल रहा है, बेटे भी बाप को सम्हाल रहे हैं। एक-दूसरे की नजरें सैनिकों की तरह पहरा दे रही हैं। आंखें नहीं हैं, संगीनें हैं। और उनसे हम मंतव्य जाहिर कर रहे हैं, ठीक या गलत। निंदा, प्रशंसा चारों तरफ जारी है।
इस जाल के बीच स्वयं को पाना बड़ा कठिन है। इसलिए लोग जंगल की तरफ हट गए। इसलिए बुद्ध को राजमहल छोड़ देना पड़ा।
ध्यान रहे, मेरा जोर इस पर है कि राजमहल छोड़ने का सवाल नहीं है। जंगल बुला नहीं रहा है। यह जो भीतर हमारा संस्कारों का जाल है, यह राजमहल से इस बुरी तरह जुड़ा है कि राजमहल छोड़े बिना टूटेगा नहीं, राजमहल छोड़कर भी टूट जाए तो काफी। डर तो यह है कि शायद राजमहल के बिना भी पीछा करेगा।
बुद्ध अपना महल छोड़ दिए, तो जिस राज्य में प्रवेश करते थे, उसी राज्य
का सम्राट उनके पास आकर प्रार्थना करता था कि यह आप क्या कर रहे हैं! अगर पिता से न बनती थी--क्योंकि पिता के मित्र थे बाकी राजे बिहार के--अगर पिता से न बनती हो, तो मेरा राजमहल है, मेरी युवा लड़की है, विवाह कर लें। आधा राज्य सम्हाल लें। पर यह शोभा नहीं देता। राजा के पुत्र और भिखारी की तरह घूमते हैं, यह शोभा नहीं देता। पिता से न बनती हो, कोई हर्ज नहीं, हम हैं, पिता के मित्र हैं, तुम्हारे पिता जैसे हैं।
बुद्ध हंसते थे। कहते थे, पिता से बनने न बनने का कारण नहीं है। राजमहल छोड़ने न छोड़ने की बात नहीं है। यह अपने को बदलने की बात है। और जब पिता के महल में अपने को न बदल सका, तो तुम्हारे महल में बदलना तो और भी मुश्किल हो जाएगा। जब अपनों के बीच बदलना इतना मुश्किल हुआ, तो परायों के बीच बदलना और भी मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि अपने थोड़ा-बहुत क्षमा भी कर दें, पराए तो क्षमा भी नहीं करते। परायों की दृष्टि तो बहुत कठोर होती है, उनका निर्णय तो कठोर होता है। अपना थोड़ा दया-ममता करता है, भूल भी करें, तो निंदा नहीं करता, आंख हटा लेता है। लेकिन पराया! पराया क्यों आंख हटाएगा? बुद्ध को छह वर्षों तक निरंतर निमंत्रण मिलते रहे। और जब बुद्ध के पिता को खबर मिलती थी कि बुद्ध भीख मांगते हैं सड़कों पर, तो वे कहते थे, कैसा पागल है! हमारे पास सब है और हमारे वंश में कभी कोई भिखमंगा नहीं हुआ, हम सदा सम्राट रहे हैं। इसको क्या पागलपन सवार हुआ है?
पिता को निश्चित ही लगता रहा होगा कि बुद्ध पागल हैं। इसी आंख से बचने
को जंगल जाना पड़ा। काश, पिता स्वीकार कर लेते कि बुद्ध का होने का यह ढंग है, और यह ढंग भी स्वीकृत है!
इस जगत में अनंत-अनंत ढंग हैं होने के, और प्रत्येक आत्मा को अधिकार
है कि वह जो हो सके, जो होना चाहे, जो उसके होने की आंतरिक क्षमता हो, जो उसकी नियति है, उसको पा ले।
और प्रेम का अर्थ ही यही है कि हम दूसरे को वह हो जाने दें, जो वह हो सकता है। उसके बीज को हम उसके वृक्ष के फल तक पहुंच जाने दें, हम बाधा न दें। हम गुलाब से न कहें कि तू चमेली हो जा, और हम चमेली को कमल होने का उपदेश न दें, हम चमेली को चमेली होने दें। पानी दें, सीचें, फिक्र करें, बाकी चमेली के होने में बाधा न डालें। प्रेम का अर्थ ही यही है। इसलिए प्रेम बिल्कुल नहीं है जगत में।
काश, राजमहल में प्रेम होता, तो बुद्ध को छोड़ना न पड़ता। क्योंकि प्रेम स्वीकार करता है कि तुम ऐसे हो, प्रेम बदलने की कोशिश नहीं करता। बदलने की कोशिश हिंसा और घृणा का हिस्सा है। बदलने की कोशिश एक तरह की सर्जरी है सूक्ष्म। हम तुम्हें काटते हैं, निखारते हैं। हम तुम्हारा उपयोग एक पत्थर

की तरह करते हैं। और प्रतिमा हम अपनी तुम्हारे भीतर बनाएंगे, तो छैनी उठाकर हम हथौड़े से तुम्हें काटेंगे। और जब तक तुम वैसे न हो जाओ जैसा हम चाहते हैं, तब तक हम पाएंगे कि तुम गलत हो।
और हर आदमी एक-दूसरे को निखार रहा है। और यह निखारने में कोई निखरता नहीं, सिर्फ विकृति आती है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति वही हो सकता है, जो वह होने की क्षमता लेकर पैदा हुआ है। दुनिया में कोई उपाय नहीं उसे अन्यथा बनाने का। और जब भी हम अन्यथा बनाने की कोशिश करेंगे, तो यह दुष्परिणाम होगा कि वह जो हो सकता था, हो न पाएगा; और वह जो हो ही नहीं सकता, वह तो हो कैसे सकता है? वह पंगु हो जाएगा, त्रिशंकु की भांति अटका रह जाएगा। उसकी विधि, उसके जीवन की नियति बदल गई और वह जो नहीं हो सकता था, वह तो हो नहीं सकता है।
इसलिए हम सब अधबने, कुरूप जीते हैं, अधबने और कुरूप ही मर जाते हैं। हमारे बीज कभी ठीक फूलों तक नहीं पहुंच पाते। इसलिए दुनिया में इतने थोड़े बुद्ध, इतने थोड़े महावीर दिखाई पड़ते हैं।
हर आदमी क्षमता लेकर पैदा होता है बुद्धत्व की। लेकिन इतने लोग उसे बनाने में लगे हैं। कहते हैं कि अगर बहुत रसोइए हों, रसोई बिगड़ जाती है। यहां एक-एक आदमी के पीछे इतने कलाकार लगे हैं, इतने मूर्तिकार, इसके मूर्ति के बनने का कोई उपाय ही नहीं है, यह बन ही नहीं सकती। मां कुछ और बना रही है बेटे को, बाप कुछ और बना रहा है, दादा कुछ और बना रहा है, चाचा कुछ और, भाई कुछ और सोच रहे हैं, शिक्षक कुछ और उपाय कर रहा है, राजनेता कुछ और आकांक्षा रखता है। ये सब मिलकर उसे बना रहे हैं। ये सभी उसके मिटाने वाले हैं। ये सब विध्वंसक हैं। दूसरे को बनाने की कोशिश विध्वंस है।
हम साथ दे सकते हैं, सहारा दे सकते हैं, पर दूसरा वही बने जो उसकी अंतर-नियति तय करती है। पर बड़ा कठिन है, क्योंकि हम सहारा ही क्यों देंगे! सहारा तो हमारा शोषण है। हम सहारा तब देते हैं सौदे की तरह, जब तुम हमारी मानने को राजी हो। बाप भी बेटे से कहता है, अगर तू मेरी सुनने को राजी नहीं तो ये दरवाजे तेरे लिए बंद हैं।
ये दरवाजे कोई प्रेम के कारण नहीं खुले हैं, बाप जो हिंसा कर रहा है, उसका सौदा है। मेरे जैसा, मैं जो चाहता हूं, मेरा अहंकार जो तय करता है, वैसा तू हो सकता हो, तो रोटी-रोजी, यह मकान तेरे लिए है। अगर तू मेरे जैसा नहीं हो सकता, तो फिर मेरा तुझसे क्या संबंध? अगर तुझे अपने ही जैसा होना है, तो तू अपने पैरों पर खड़ा हो जा।
पति और पत्नी के बीच जो निरंतर चलती कलह है सारी पृथ्वी पर, उसका कारण पति-पत्नी के भीतर नहीं है, उसका कारण इस वृत्ति में है। क्योंकि पत्नी नहीं मान सकती कि पति स्वतंत्र है। वह उसके रोएं-रोएं, रेशे-रेशे को नियंत्रित करना चाहती है।
मैंने सुना है कि एक स्कूल की शिक्षिका ने एक पत्र, उसकी कक्षा में पढ़ने वाले एक छोटे लड़के के लिए, उसकी मां को लिखा। और लिखा कि इस लड़के को मैं सम्हाल-सम्हालकर परेशान हुई जा रही हूं, लेकिन कुछ समझ नहीं आ रहा है। यह स्कूल की सभी लड़कियों का पीछा कर रहा है और उनको सता रहा है।
तो उसकी मां ने पत्र लिखा कि अगर तुम कोई उपाय खोज लो, तो मुझे लिखना, क्योंकि वही मैं उसके पिता के साथ उसी उलझन में पड़ी हूं। अगर तुम सफल हो जाओ कोई विधि खोजने में, जिससे मेरा लड़का लड़कियों का पीछा न करे, तो विधि मुझे बता देना, क्योंकि वही विधि मुझे उसके पिता पर उपयोग करनी है। बारह साल से मैं कोशिश कर रही हूं, अभी तक सफल नहीं हो पाई।
हर पत्नी कोशिश करती है जीवन भर और असफल होती है। इसलिए नहीं कि आदमी बुरे हैं, इसलिए कि दूसरे को बनाने में कभी कोई सफल हो ही नहीं सकता। पति भी पूरे वक्त आंखें लगाए हुए है। वे आंखें प्रेम की नहीं हो सकतीं, क्योंकि प्रेम स्वीकार करता है, भरोसा करता है। ट्रस्ट प्रेम का लक्षण है। दफ्तर में बैठा है, लेकिन चिंता है उसे, उसकी पत्नी किसी से हंस-बोल न रही हो। क्योंकि पति यह बरदाश्त नहीं कर सकता कि उसकी पत्नी उसके बिना भी हंस सकती है! उसके बिना तो उसे बैठे हुए रोते रहना चाहिए।

सब पति सोचते हैं कि पत्नियां कालिदास के पात्र हैं। मेघों से संदेश भिजवा रही हैं और सूख रही हैं। उन्हें कोई और पुरुष दिखाई नहीं पड़ता। जीवन में उनके कोई प्रसन्नता और नहीं है। जैसे प्रसन्नता का एक ही झरोखा है, वह मैं हूं। जैसे अगर कोई शुद्ध हवा आएगी, तो मुझसे ही आएगी। जैसे और सब दिशाएं रिक्त हैं।
यह भरोसा नहीं है, और न प्रेम है; यह दूसरे को अपने ढंग पर लाने की चेष्टा है। दूसरा जैसे एक साधन है, एक वस्तु है, जिसे सजाना है, संवारना है। लेकिन दूसरा कोई व्यक्ति नहीं है, उसकी कोई आत्मा नहीं है।
यह जो दूसरे को बदलने की चेष्टा चलती है--चाहे कैसे ही संबंध हों--इस चेष्टा का नाम समाज है। यह चेष्टा इतनी भारी हो जाती है, इसीलिए बुद्ध को जंगल में जाना पड़ता है।
और जंगल में बैठेंगे कहां? कहीं भी बैठें, वृक्ष के नीचे बैठेंगे। इसलिए कहता हूं, सांयोगिक है। वृक्ष की छाया है, उसके नीचे बुद्ध बैठे हैं, समाज से हटकर। क्योंकि समाज की आग जलाती है, समाज का जहर मिटाता है। और समाज अब तक ऐसा हम नहीं बना पाए पृथ्वी पर कि उसके भीतर बुद्धत्व पैदा हो सके। उस समाज को ही मैं समाज कहूंगा, जहां बुद्धत्व होने के लिए जंगल न जाना पड़े। तब तक समाज नहीं है। तब तक हमें मानना चाहिए कि यह समाज का धोखा है, हत्यारों और हिंसकों का एक समूह है, जो हरेक की गर्दन को दबा रहा है। लेकिन गर्दन को दबाने के ढंग ऐसे बारीक और सूक्ष्म हैं कि जिसकी गर्दन दबाई जा रही है, वह भी प्रसन्न हो रहा है। वह शायद सोच रहा है कि मेरे हित में यह सब किया जा रहा है। ऐसा समझाया गया है, हजारों साल का प्रचार है कि हम जो भी कर रहे हैं, वह तुम्हारे हित में कर रहे हैं। अगर हम तुम्हें मार भी डालें, तो भी तुम्हारे हित के लिए ही मार रहे हैं।
और जो आपके साथ किया जा रहा है, वही आप दूसरों के साथ कर रहे हैं।
इस उपद्रव के बीच से हट जाना जरूरी है। इसलिए घटना वहां घटती है। लेकिन ध्यान रहे, बुद्धत्व के बाद बुद्ध वापस समाज में लौट आते हैं। जिनत्व के बाद महावीर वापस समाज में लौट आते हैं। इस दूसरी घटना पर बहुत कम विचार किया गया है कि क्यों वापस लौट आते हैं?
अब कोई भय नहीं है। अब तुम कितनी ही गर्दन दबाओ, अब तुम बुद्ध को मिटा
न सकोगे। अब बुद्धत्व में वह पा लिया है, जो कि मिटता ही नहीं है। अब अमृत्व बुद्ध के जीवन का हिस्सा हो गया, अब यह धारा शाश्वत है। अब तुम बुद्ध के पास जाओगे, तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। अब तुम बुद्ध को मुश्किल में नहीं डाल सकते। अब तुम उनके पास जाओगे, तो तुम अपनी जोखम खुद उठा रहे हो। और बुद्ध तुम्हें बदलने के लिए चेष्टारत नहीं हैं, पर बुद्ध के होने का ढंग ऐसा है कि तुम बदलोगे।
गुरु वह नहीं है, जो तुम्हें बदलने के लिए पीछे पड़ा हो। गुरु वह है, जिसके पास जाकर बदलाहट शुरू हो जाए। गुरु केटेलिटिक एजेंट से ज्यादा नहीं हो सकता। और अगर ज्यादा है, तो वह दुष्ट है। अगर वह तुम्हें बदलने की कोई सीधी चेष्टा कर रहा है, तो वह भी तुम्हारी गर्दन पर सवार हो जाएगा। अगर वह तुम्हारी प्रशंसा करता है और तुम्हारी निंदा करता है; वह तुम्हें फुसलाता है, राजी करता है; अगर तुम उसकी नहीं मानते, तो नाराज होता है; अगर मान लेते हो, तो मुस्कुराता है--तब वह भी स्वर्ग-नर्क, लोभ-भय की तरकीब का उपयोग कर रहा है। तब वह भी तुम्हें सताएगा। तब वह भी तुम्हें नष्ट करेगा। इसलिए अधिक गुरु अनुयायियों के दुश्मन हैं। और अधिक गुरुओं के पास शिष्य नए जीवन को उपलब्ध नहीं होते, केवल सड़ जाते हैं और नष्ट हो जाते हैं।
सिर्फ वही गुरु तुम्हें मुक्त कर सकता है, जो तुम्हें मुक्त करने के लिए भी सीधी चेष्टा नहीं कर रहा है, जो प्रत्यक्ष रूप में तुम्हें बदलने को उत्सुक नहीं है। लेकिन जिसकी मौजूदगी, अप्रत्यक्ष तुम्हें बदलती है। जिसके पास जाकर बदलाहट घटनी शुरू होती है, जैसे सूरज निकलता है और एक कली नीचे खिलना शुरू हो जाती है। कोई सूरज की किरणें कली को पकड़कर खोल नहीं रही हैं। और कली न खिले तो सूरज कोई उदास नहीं होगा। और कली न खिले तो सूरज को कुछ चिंता भी नहीं है। लेकिन सूरज की किरणों की मौजूदगी में कली खिलनी शुरू हो जाती है, क्योंकि खिलना इतना आनंदपूर्ण है सूरज में, और सूरज की

किरणों को पीना इतना अहोभाग्य है, और सूरज में नाचना जन्मों-जन्मों का सपना है उस कली का।
कली अपने से खुल रही है। सूरज उसे खोल नहीं रहा। पक्षी अपने से आंख खोल लिए हैं, सूरज उनके दरवाजों पर खटके नहीं मार रहा कि उठो, सुबह हो गई, भोर हो गई, अब सोए मत रहो, ब्रह्म-मुहूर्त में उठना उचित है; ऐसा कुछ सूरज कह नहीं रहा। सूरज की किरणें आनी शुरू होती हैं और पक्षियों के कंठ सजग हो गए, उनकी आंखें खुल गईं, उन्होंने गीत गाने शुरू कर दिए। एक उत्सव का क्षण उपस्थित हुआ है, पक्षी उसमें सम्मिलित हो रहे हैं। पक्षियों का यह सम्मिलित होना उनकी अपनी चेष्टा है। सूरज की मौजूदगी का जो भी कार्य है, वह अप्रत्यक्ष है, वह परोक्ष है। उसकी मौजूदगी से कुछ हो रहा है, लेकिन मौजूदगी से हो रहा है, सूरज खुद कुछ नहीं कर रहा है।
अगर पूरी पृथ्वी भी सोई रहे और एक कली न खिले और एक पक्षी गीत न गाए, तो
भी सूरज की खुशी में इससे कुछ अंतर नहीं पड़ेगा। ऐसा नहीं कि दोपहर को वह अचानक उदास हो जाएगा और सब किरणें सिकोड़ लेगा और उसकी आंखों से आंसू टपकने लगेंगे। या दूसरे दिन वह विचार करेगा कि अब निकलूं या न निकलूं। अब अपने रथ को चलाऊं इस यात्रा पर या बंद करूं। और जब लोगों ने मुझे अस्वीकार कर दिया तो मैं क्यों फिकर करूं?
सदगुरु सूरज की भांति है, शिष्य उसके पास खिलते हैं, लेकिन उसकी कोई चेष्टा नहीं है। संत हो शिष्य कि पापी हो, सदगुरु की आंखों में समान है। संत के लिए कोई प्रशंसा नहीं है और पापी के लिए कोई निंदा नहीं है। ऐसे ही व्यक्ति के पास केटेलिटिक संभावना है, ऐसे व्यक्ति के पास कुछ हो सकता है। बुद्ध लौट आते हैं एक सूरज की भांति। उनकी मौजूदगी में घटनाएं घटनी शुरू हो जाती हैं, उनके पास पहुंचकर... ।
इस गुरु के पास होने को हमने सत्संग कहा है। सत्संग का अर्थ है, गुरु
के पास होना। हमारे अनूठे साहित्य का नाम उपनिषद है। उपनिषद का अर्थ है, गुरु के पास बैठना। कुछ और करना नहीं, सिर्फ गुरु के पास होना; ताकि उसके अज्ञात से निकलती किरणें तुम्हारी कली को खोलना शुरू कर दें।
कहना पड़ता है खोलना, लेकिन यह शब्द उचित नहीं है, क्योंकि खोलने से लगता है कि कोई क्रिया की जा रही है। न, उसकी मौजूदगी में तुम्हारी कलियां अचानक खुलना शुरू हो जाएं। गुरु कुछ भी नहीं करता और बहुत कुछ उसके पास घटता है। जो गुरु करता है, उसके पास कुछ भी नहीं घटता।
समाज में लौट आते हैं बुद्धपुरुष। अब समाज है ही नहीं। कल तक, जब वे गए
थे बुद्धत्व के पहले, समाज था। समाज था, क्योंकि समाज उन्हें मिटा रहा था। अब उन्हें कोई भी मिटा नहीं सकता, अब वे वापस लौट आ सकते हैं। अब समाज का जहर उनके लिए जहर नहीं है। अब विध्वंस असंभव है। अब जो उन्हें मिटाने आएगा, वह भी उनसे कुछ लेकर जाएगा। वह भी उनके प्रेम का भागीदार होगा। वह भी कोई भेंट स्वीकार करेगा, जो जन्मों-जन्मों तक उसके जीवन को प्रभावित करेगी।
ज्ञान पाया गया वन में, और ज्ञान लुटाया गया वापस समाज में। कोई भी बुद्धपुरुष जंगल में रह नहीं गया। रह जाए, तो बुद्धत्व अभी घटा नहीं। क्योंकि जब आनंद मिलता है, तो बांटने का भाव भी उसके साथ ही मिलता है।
इसे थोड़ा समझ लें!
जो हमारे पास है, उसे हम देना चाहते हैं। दुख है तो दुख देना चाहते हैं, आनंद है तो आनंद देना चाहते हैं। जो भी हमारे पास है, वह बांटने से बढ़ता है। जब आप दुख देते हैं, तो दुख बढ़ता है; जब आप आनंद देते हैं, तो आनंद बढ़ता है। जो भी आप बांटते हैं, वही बढ़ने लगता है। बांटना बढ़ाने का मार्ग है।
इसलिए अगर आप समझदार हों, तो दूसरे को दुख न देंगे, क्योंकि वह आपके दुख को बढ़ाएगा। और दूसरे के रास्ते पर कांटे न रखेंगे, क्योंकि यह अपने ही रास्ते पर रखे गए कांटे हैं, देर-अबेर इन कांटों से मिलना होगा। अगर आप होशियार हैं, तो दुख कभी भी न बांटेंगे, क्योंकि दुख बांटने से बढ़ेगा और न बांटने से मरेगा। अगर आप समझदार हैं, तो आप आनंद सदा बांटेंगे, क्योंकि

आनंद बांटने से बढ़ेगा और न बांटेंगे तो मरेगा। बांटना विस्तार का सूत्र है।
कंजूस सिर्फ मरता है। कृपण का कोई जीवन ही नहीं है। कृपण मरा हुआ आदमी है। वह लाश है। कृपण के जीवन में कभी कोई उत्सव नहीं आता, आ ही नहीं सकता, क्योंकि उत्सव बांटने से ही आता है, देने से ही आता है।
इसलिए उत्सव के दिन पर हम एक-दूसरे को भेंटें देते हैं, कुछ बांटते हैं। कुछ न हो, तो दूसरे को कम से कम बधाई देते हैं, अपने हृदय का उल्लास बांटते हैं। सभी उत्सव के दिन बांटने के दिन हैं।
कृपण कभी भी नहीं बांट सकता, उसके जीवन में कभी उल्लास नहीं आता। इस जगत में कृपण से मरा हुआ आदमी खोजना कठिन है। मरे से मरा हुआ आदमी भी कृपण के बराबर मुर्दा नहीं होता।
मैंने सुना है कि एक गांव में एक आदमी मरा। वह स्कॉट था। डाक्टर को बुलाया गया, क्योंकि मौत संदिग्ध थी। डाक्टर जांच करने आया। उसने बजाय जांच करने के, सिर्फ स्कॉट के खीसे में हाथ डाला। हाथ वापस निकाल लिया और कहा कि यह आदमी बिल्कुल मर गया। तो लोगों ने कहा, यह जांच बड़ी नई है। हमने और भी जांचें देखी हैं, यह कौन सा ढंग है? उसने कहा, स्कॉट के खीसे में हाथ डालो और अगर वह जिंदा हो तो पड़ा नहीं रह सकता, चाहे खीसा खाली ही क्यों न हो। योरोप में स्कॉट सबसे ज्यादा कृपण लोग हैं। इसलिए अगर एक भी सांस बची है, तो यह आदमी उठकर खड़ा हो गया होता कि किसने मेरे खीसे में हाथ डाला! यह बिल्कुल मर गया है, इसकी अब और किसी जांच की जरूरत नहीं है।
कृपण का अर्थ है, संकोच, सिकुड़ता हुआ व्यक्तित्व। और जो सिकुड़ रहा है,
वह ब्रह्म को कैसे पाएगा? क्योंकि ब्रह्म का अर्थ है विस्तार। जो फैल रहा है, वही ब्रह्म को पाएगा। तो जब आनंद उपलब्ध होता है, तो आनंद बंटता है; जब ज्ञान उपलब्ध होता है, तो ज्ञान बंटता है।
आप भी बांटते हो। अगर ज्ञान उपलब्ध नहीं हुआ तो अज्ञान बांटते हो। इस जगत में जितनी सलाहें दी जाती हैं, उतनी और कोई चीज नहीं दी जाती। इतने अज्ञानी हैं, और हरेक सलाह दे रहा है। अज्ञान यहां अनंत गुना हो जाता है सलाहों के कारण। क्योंकि अज्ञानी कभी यह फिक्र ही नहीं करता कि जो सलाह मैं दे रहा हूं, मैं उस संबंध में कुछ जानता हूं! यह सवाल ही नहीं है कि आप जानते हैं। सलाह देने से जानने का मजा आ जाता है। ज्ञानी एक दफे झिझक जाए सलाह देने में, अज्ञानी नहीं झिझकता। उससे आप कुछ भी पूछें, वह तैयार है सलाह देने को।
अज्ञान बांटते हैं, दुख बांटते हैं, ईर्ष्या, महत्वाकांक्षा बांटते हैं, सब तरह के रोगों के कीटाणु हम बाहर भेज रहे हैं। खुले हाथों बांट रहे हैं। और उससे हम जगत को एक महा-रोग, एक महा-विक्षिप्त स्थान में बदल देते हैं।
ज्ञानी भी बांटता है। आनंदित पुरुष भी बांटता है। परमात्मा को उपलब्ध चेतना भी बांटती है। और बांटना तो समाज में ही घट सकता है। ज्ञान भला बोधि- वृक्ष के नीचे घट जाए, लेकिन ज्ञान के बांटने की घटना तो आपके पास ही घट सकती है।
सभी जाग्रत पुरुष समाज में वापस लौट आते हैं। लेकिन वे लौटते हैं तब,
जब इस समाज का जाल उन्हें जरा भी प्रभावित नहीं कर सकता। जब यह समाज की कोई रेखा उनके ऊपर नहीं आ सकती। जब यह समाज कितनी ही रेखाएं खींचे, वे पानी पर खींची गई रेखाएं सिद्ध होने लगती हैं; खींच भी नहीं पाते कि बिखर जाती हैं, मिट जाती हैं। न तुम्हारी प्रशंसा फिर प्रभावित करती है, न तुम्हारी निंदा। तुम क्या कहते हो, यह अर्थहीन हो जाता है।
नहीं, कोई इसोटेरिक, कोई गुप्त संबंध नहीं है। और ऐसा मत सोचना कि ज्ञान घटेगा तभी, जब तुम किसी वृक्ष के नीचे रहोगे। कहीं भी घट सकता है। आकाश उतना ही निर्दोष है जितना कोई वृक्ष। इस मकान के छप्पर के नीचे भी घट सकता है, क्योंकि छप्पर पर छाए हुए कवेलू भी मनुष्यों से ज्यादा निर्दोष हैं। कहीं भी घट सकता है। एक चट्टान की आड़ में घट सकता है, खुले आकाश के नीचे घट सकता है।

ज्ञान के घटने का कोई कार्य-कारण संबंध किसी वृक्ष से नहीं है। लेकिन वृक्ष के नीचे बहुत बार घटा है, क्योंकि समाज अब तक इस योग्य नहीं कि समाज को बोधि-वृक्ष बनाया जा सके। समाज अभी भी असमर्थ है, कमजोर है, रुग्ण है, इसलिए!
लेकिन कोई गुप्त या कोई छिपी हुई बात खोजने की जरूरत नहीं है।

प्रश्नः ओशो, आपके एक संन्यासी हैं और मेरे मित्र। वर्षों से आपका पावन-सत्संग उन्हें उपलब्ध रहा है। एक दिन बातचीत के सिलसिले में उन्होंने मुझसे कहा कि मैंने तो अभी तक भगवान का दिया हुआ पहला पाठ भी ग्रहण नहीं किया। अपने मन में मैंने कहाः अरे, यह आदमी तो मेरी ही बात कह रहे हैं। क्या यह हमारी मूढ़ता की निशानी है? या यह विद्या ही अति कठिन है? या हम कभी यह पाठ सीखना ही नहीं चाहते?

सभी बातें एक साथ हैं। विद्या अति कठिन है। क्योंकि इस विद्या का सारा संबंध अज्ञात, अननोन से है। और जिसे तुमने कभी जाना नहीं, किसी तरह का जिससे कोई संपर्क नहीं हुआ, जिससे कोई पहचान नहीं बनी, उसके संबंध में तुम सीखने आओ, तो जो भी कहा जाए, वह सब शून्य में खो जाता है।
भीतर उसका कोई छोटा सा भी अनुभव हो, तो उस अनुभव के आसपास अज्ञात के लिए कही गई बातें इकट्ठी हो जाएंगी। लेकिन वैसा कोई अनुभव भीतर नहीं है। इसलिए तुम्हारे सिर पर से सारी बातें बह जाती हैं। यह विद्या ही अज्ञात की है। और तुम जो भी जानते हो, उससे इसका कोई संबंध नहीं जुड़ता। संबंध जुड़ जाए, तो तुम्हारे भीतर यह अटक जाए, कहीं जगह बना ले। यह बिना तुम्हें छुए बह जाती है, तुम इसे पकड़ ही नहीं पाते।
पकड़ोगे भी कैसे? क्योंकि जिससे तुम पकड़ने की कोशिश करते हो, उससे इसका कोई संबंध नहीं है। ऐसे ही है जैसे कोई हवाओं को मुट्ठी में पकड़ने की कोशिश करे। मुट्ठी बंध जाती है, हवा बाहर हो जाती है। और मजा तो यह है, खुली मुट्ठी में हवा होती है, बंधी मुट्ठी में खो जाती है। और जिसने मुट्ठी बांधकर पाया कि हवा खो जाती है, उसका तर्क क्या कहेगा? उसका तर्क कहेगा, ठीक से नहीं बांध पाए। उसका तर्क कहेगा, बांधने में जरा देर हो गई। जरा और झपट्टे से बांधो, ताकि हवा बाहर न निकल पाए और तुम मुट्ठी बांध लो। उसका तर्क कहेगा, तुम्हारी मुट्ठी में कहीं कोई छिद्र हैं, जिनसे हवा बाहर निकल जाती है। यह सीधी सी बात है। और हम जानते हैं कि यह गलत है। और तर्क यह कहेगा।
तर्क यह तो कभी कहेगा ही नहीं कि तुम मुट्ठी बांधते हो, इसी से हवा निकल जाती है। तुम बांधो ही मत, हवा सदा वहां है। लेकिन हमारी बुद्धि कहेगी कि बिना बांधे कोई चीज कैसे हो सकती है? धन हम तिजोड़ी में बांधते हैं, तो रुकता है। धन हम मुट्ठी बांधते हैं, तो रुकता है। धन को अगर ऐसा खुली मुट्ठी में छोड़ दें, तो क्षण भर नहीं रुकेगा। मुट्ठी बांध-बांधकर भी नहीं रुकता, तो खुली मुट्ठी में तो कैसे रुकेगा? तिजोड़ी की चाबी एक दिन भूल जाए तो तिजोड़ी गई।
जीवन का अनुभव कहता है, बांधो, पकड़ो जोर से, तो ही कोई चीज पकड़ी जाती है। पर हमें हवा को बांधने का कुछ पता ही नहीं कि हवा के बांधने का ढंग विपरीत है। वहां खोलो, मुक्त करो, तो हवा तुम्हारी है। वहां बांधा कि तुम चूके। वहां बांधा कि तुमने खोया।
हवा पर कोई तिजोड़ियां नहीं हो सकतीं और न चाबियां हो सकती हैं। हवा का अर्थ ही उन्मुक्तता का नाम है। हवा सदा बह रही है। उसे अगर तुम बांध भी लोगे, कोई उपाय कर लोगे, तो वह गंदी हो जाएगी। और बंधी हवा से, जो प्राणदायी तत्व है, वह विलीन हो जाएगा। बंधी हवा से आक्सीजन तो खो जाएगी, सिर्फ नाइट्रोजन और दूसरे मृत्यु के तत्व रह जाएंगे। एक तो हवा को बांधना मुश्किल। अगर तुमने बांध लिया, तो हवा में जो बांधने योग्य था, वह खो जाएगा; और जो न बांधने योग्य था, वह बच रहेगा।
ऐसी ही अवस्था है। ज्ञात जो हमारा है, वह पदार्थ से संबंधित है, संसार
से संबंधित है, शरीर से संबंधित है। और अज्ञात का हमें कुछ पता नहीं है।

उन्हीं उपायों को हम अज्ञात पर भी लगाते हैं, जिन्हें हमने ज्ञात पर लगाकर सफलता पाई है। इसलिए इस जगत की सफलता उस जगत में विफलता सिद्ध होती है। अब तक जो भी तुमने सीखा है, वह स्मृति से सीखा है। उस जगत की कोई भी घटना स्मृति से नहीं सीखी जा सकती, केवल अनुभव से जानी जा सकती है। अब तक तुमने जो भी जाना है, वह क्षुद्र है, उसकी सीमा है, उसकी परिभाषा हो जाती है। और अब जो मैं तुमसे कह रहा हूं, उसकी कोई सीमा नहीं, वह विराट है, उसकी कोई परिभाषा नहीं हो सकती।
लोग पूछते हैं, परमात्मा की क्या परिभाषा? वे प्रश्न ही मूढ़तापूर्ण पूछ रहे हैं। परिभाषा तभी हो सकती है, जब किसी चीज की सीमा हो। और परिभाषा सदा हमें दूसरे से करनी पड़ती है। अगर कोई तुमसे पूछे कि जीवन क्या है, तो तुम्हें तत्क्षण मृत्यु को परिभाषा में लाना पड़ेगा। तुम्हें कहना पड़ेगा, जो मृत्यु नहीं। कोई तुमसे पूछे, प्रकाश क्या है? तुम्हें तत्क्षण अंधेरे को परिभाषा में लाना पड़ेगा और कहना पड़ेगा, जो अंधेरा नहीं। बड़े से बड़े शब्दकोश में भी अगर तुम खोजोगे, तो बड़े हैरान होओगे, कैसा बच्चों का खेल है! अगर शब्दकोश में पूछो कि पदार्थ क्या है? तो वे कहते हैं, मन नहीं। और तब तुम उलटो पन्ने, और पहुंचो मन पर, और पूछो कि मन क्या है? तो वे कहते हैं, पदार्थ नहीं। ये कोई परिभाषाएं हैं, जिसमें विपरीत को भीतर लाना पड़े? यह सिर्फ खेल है।
कठिनाई हो जाती है, इस खेल को परमात्मा पर जारी नहीं रखा जा सकता। क्योंकि परमात्मा का कोई विपरीत नहीं है जो तुम कह सको, जिससे तुम परिभाषा बना सको। तुम्हारे घर के चारों तरफ बाउंड्री है, सीमा है। लेकिन क्या कभी तुमने ख्याल किया कि वह सीमा दूसरे के घर से बनती है? अगर तुम ही अकेले पृथ्वी पर हो, तो कैसे सीमा बनाओगे? सीमा के लिए दूसरा चाहिए, विपरीत चाहिए, दुश्मन चाहिए। परमात्मा से अन्य कोई भी नहीं। कोई दूसरा नहीं। दि अदर कहा जा सके, ऐसा कोई नहीं। कोई शत्रु नहीं। इसलिए परमात्मा को द्वंद्व की परिभाषा में नहीं लाया जा सकता।
मेरे पास लोग जो आते हैं, वे कहते हैं, परमात्मा की क्या परिभाषा? उनसे मैं कहता हूं, कोई परिभाषा नहीं। तो वे कहते हैं, फिर आगे बात ही नहीं हो सकती।
वे ठीक कहते हैं। क्योंकि जब किसी शब्द की परिभाषा ही न होती हो, तो आगे बात क्या करनी? इसलिए पश्चिम के बहुत से आधुनिक विचारक कहते हैं कि परमात्मा इत्यादि अर्थहीन शब्द हैं। क्योंकि इनकी परिभाषा नहीं हो सकती, तो अर्थ कैसा? मीनिंगलेस।
पश्चिम में एक बहुत बड़ा आंदोलन पिछले पचास वर्षों में चला है, भाषाशास्त्रियों का और दर्शनशास्त्रियों का। उन्होंने एक नया मत, एक नया संप्रदाय खड़ा किया है। उनके संप्रदाय का आधार एनालिसिस आफ लैंग्वेज, भाषा का विश्लेषण है। और वे कहते हैं कि जब तक किसी शब्द की परिभाषा न हो, तब तक हम उस पर चर्चा ही नहीं करना चाहते। क्योंकि चर्चा होगी कैसे? जब तक शब्द का अर्थ ही निर्णीत नहीं, तो चर्चा व्यर्थ है। हम कुछ कहेंगे, तुम कुछ समझोगे, तीसरा कुछ अर्थ लेगा, चौथा कुछ अर्थ करेगा।
इस संप्रदाय के, भाषा-संप्रदाय के लोग कहते हैं कि दर्शनशास्त्र इसी तरह की व्यर्थ चर्चाओं में हजारों साल से लगा हुआ है। पहले शब्द की स्पष्ट परिभाषा होनी चाहिए, फिर आगे बढ़ा जा सकता है।
तो फिर परमात्मा में आगे बढ़ने का उपाय बंद, आत्मा में आगे बढ़ने का उपाय बंद, प्रेम में आगे बढ़ने का उपाय बंद, ध्यान में आगे बढ़ने का उपाय बंद, सब द्वार बंद। यह कठिनाई है। इस जगत के संबंध में जो भी तुमने जाना, वह काम नहीं देगा। और जिन विधियों का तुमने उपयोग किया, वे विधियां भी काम नहीं देंगी। इसलिए यह विद्या कठिन है।
इस विद्या की कठिनता के कारण ही इस विद्या को हजारों साल तक गुप्त रखना पड़ा। गुप्त रखने का और कोई कारण नहीं है। क्योंकि जब तुम समझ ही न सकोगे, तो इसकी चर्चा करने से फायदा क्या? पहले तुम्हें तैयार करना पड़ेगा, ताकि तुम समझ सको। जब तुम योग्य हो जाओगे, पात्र हो जाओगे, जब तुम उस जगह

खड़े हो जाओगे, जहां से इन अनिर्वचनीय शब्दों का इशारा तुम तक पहुंचने लगे, तब तुम समझ पाओगे। विद्या कठिन है।
और दूसरी बात भी सच है कि मनुष्य मूढ़ है। इसलिए जटिलता और भी बढ़ जाती है। विद्या कठिन है और मनुष्य मूढ़ है।
मूढ़ता का क्या अर्थ है? मूढ़ता का अर्थ गैर-जानकारी नहीं है। क्योंकि पंडित भी मूढ़ होते हैं। और कभी-कभी अपठित, अपंडित भी मूढ़ नहीं होता। मूढ़ता चित्त की आच्छादित दशा का नाम है। अहंकार से आच्छादित चित्त का नाम मूढ़ता है। मूढ़ का अर्थ कम या ज्यादा जानने से नहीं है। अगर कम जानने का नाम मूढ़ता हो, तो कबीर मूढ़ हैं। अगर कम जानने का नाम मूढ़ता हो, तो बुद्ध को भी मैट्रिक पास करवाना मुश्किल है। एकदम अभी अगर सीधा उनको ले आया जाए उनके महानिर्वाण से उतारकर, और बिठा दिया जाए मैट्रिक की परीक्षा में, फेल होना निश्चित है। तो इसका अर्थ हुआ कि तुम्हारे बच्चे भी, जो मैट्रिक पास हो रहे हैं, वे बुद्ध से कम मूढ़ हैं!
जीसस कहां टिकेंगे? मोहम्मद को कहां खड़ा करोगे? मोहम्मद लिखना भी नहीं जानते। और जब पहली दफे कुरान की आयत उतरी, तो मोहम्मद ने जो पहला शब्द कहा, वह यह कि यह क्या कर रहे हो? मैं तो लिखना ही नहीं जानता! तो जो कहा जा रहा है, उसे लिखूंगा कैसे? दैवी वचन सुनाई पड़ा मोहम्मद को कि तू फिक्र मत कर। जब अनुभव हो जाएगा, तो लिखना भी आ जाएगा। जो बोलना नहीं जानते, वे भी बोलने लगेंगे, जब अनुभव आ जाएगा। क्योंकि अनुभव बहेगा। तू घबड़ा मत। लेकिन मोहम्मद इतने घबड़ा गए कि यह क्या काम मुझसे लिया जा रहा है! मैं लिखना ही नहीं जानता, मैं अपने दस्तखत ही नहीं कर पाता हूं। वचन सुना गया कि तेरे दस्तखत की तो जरूरत ही नहीं है। जो आदमी अभी दस्तखत करने में उत्सुक है, उस पर तो यह कुरान उतरेगी भी नहीं। तेरे हस्ताक्षर चाहिए भी नहीं। तू तो बिल्कुल मिट जा। और तू घबड़ा मत।
मोहम्मद घर लौटे और अपनी पत्नी से बोले कि कंबल ले आ, मुझे बुखार चढ़ा है। कंबल पर कंबल डालकर वे अंदर हो गए और शरीर उनका कंप रहा है। पत्नी ने कहा, यह सब अचानक कैसे हुआ? घड़ी भर पहले तुम गए, तब सब ठीक था, यह अचानक बुखार?
मोहम्मद ने कहा, यह बुखार कुछ और ही तरह का है। मेरा पूरा प्राण कंप रहा है। क्योंकि मुझसे कुछ ऐसा काम लिया जा रहा है, जो मैं पाता हूं कि मैं बिल्कुल असमर्थ हूं, मैं नहीं कर पाऊंगा। लेकिन मेरे हाथ के बाहर है, इसे मैं रोक भी नहीं सकता। कोई मुझ में प्रवाहित हो रहा है। यह ऊष्णता मेरी नहीं है, यह बुखार बुखार नहीं है, यह कुछ और है, जिसे मैं पहचान भी नहीं सकता। क्योंकि यह पहली दफा आया है, इसकी प्रत्यभिज्ञा कैसे करूं? यह पहले कभी आया नहीं, इसका रिकग्नीशन कैसे हो? यह कुछ दैवी बुखार है, डिवाइन फीवर। तू मुझे सिर्फ विश्राम करने दे।
तीन दिन तक मोहम्मद बुखार में पड़े रहे। तीन दिन के बाद जब वे उठे, तो उनका चेहरा बदल गया था। जैसे कि सोना आग से गुजर गया हो। एक साधारण, बेपढ़ा- लिखा आदमी अचानक ज्ञानी हो गया था।
क्या, घटना क्या घटी? अन्यथा मोहम्मद मूढ़ हैं। इसलिए कुरान में वह साहित्यिक खूबी नहीं है, जो उपनिषदों में है। इसलिए हिंदू कुरान को पढ़ता है, तो उसे लगता है, इसमें क्या है? उसे पता नहीं कि एक गैर पढ़े-लिखे आदमी के द्वारा लिखा गया है। उपकरण लिखने-पढ़ने वाला नहीं था। इसके पास बहुत अच्छे शब्द नहीं थे। लेकिन इस कारण कुरान में एक और खूबी है जो उपनिषद में नहीं है। वह खूबी है, जैसे कि गांव का गंवार बोलता है, उसकी भाषा में साहित्य नहीं होता, लेकिन चोट होती है। क्योंकि उसकी भाषा जीवन से आती है, किताब से नहीं आती, मुर्दा नहीं होती। नाजुक नहीं होती, लेकिन जीवंत होती है।
इसलिए कुरान जितना जीवंत है, दुनिया का कोई शास्त्र उतना जीवंत नहीं।
है गंवार के ढंग की बात, कि पत्थर की तरह सिर पर पड़ता है, कि लट्ठ की तरह सिर पर पड़ता है, चोट उसकी गहरी है और जिंदगी के सीधे अनुभव से आई है। नाजुकता नहीं है, काव्य नहीं है। बड़ी उपमाएं नहीं हैं, बड़ी कल्पनाएं नहीं हैं, सीधे

देहाती के वचन हैं, पर बड़े साफ हैं। इसलिए कुरान पर किसी टीका की जरूरत नहीं पड़ी। टीका का कोई सवाल नहीं है, गंवार से गंवार भी समझ सकता है।
गीता पर हजारों टीका की जरूरत पड़ी है, फिर भी समझ में नहीं आती। वह भाषा एक परिष्कृत आदमी की है। कुरान सीधा समझ में आता है। इसलिए गीता पर टीकाएं बहुत और बहुत लोगों ने गीता पढ़ी, लेकिन इस्लाम जिस आग की तरह फैला, हिंदू-धर्म कभी नहीं फैल सका। वह पंडित का धर्म है, इसलिए लोकमानस को कभी उस तरह नहीं छू सका, जैसा इस्लाम ने छुआ। और जिस तरह मुसलमान इस्लाम के लिए मरने के लिए तैयार हैं, कोई हिंदू हिंदू-धर्म के लिए मरने के लिए कभी तैयार नहीं होता। क्योंकि वह जो चीज आपका जीवन ही नहीं बनी, सिर्फ बुद्धि रही, उसके लिए कौन मरने को तैयार होता है? इसलिए इस्लाम की बड़ी पकड़ है, बड़ी गहरी पकड़ है, जैसे भीतर सीधे हृदय को पकड़ लेता है। और मोहम्मद पर उतरा, जिसको हम कहेंगे बेपढ़ा-लिखा, अपठित, असंस्कृत।
जीसस का कोई ज्ञान नहीं है। एक बढ़ई का लड़का है। एक शूद्र परिवार से आता है। इसलिए बाइबिल में भी कोई काव्य-गौरव नहीं है। पर जैसे सीधे वचन, तीर की तरह चुभने वाले, बाइबिल में हैं, वैसे कहां पाइएगा!
जब मैं कहता हूं मूढ़, तो मेरा मतलब यह नहीं कि आप कम जानते हों, तो मूढ़। मेरा मतलब इतना है कि आप सब कुछ जानते हों, स्वयं को नहीं जानते, तो मूढ़। और कुछ भी न जानो और स्वयं को जानो, तो ज्ञानी।
तो यहां ज्ञान का एक ही अर्थ है, स्वयं को जानना। और स्वयं को आप तब तक
न जान पाओगे जब तक आप अहंकार को जानते हो, जब तक आप कहते हो, मैं हूं। यह मैं ही बाधा है। इसलिए अहंकार मूढ़ता है, परम मूढ़ता है। निरअहंकारिता ज्ञान है।
निश्चित ही मनुष्य मूढ़ है और विद्या कठिन है। और तीसरी बात भी सच है
कि तुम कहते जरूर हो कि तुम जानना चाहते हो, लेकिन तुम जानना नहीं चाहते। कहते जरूर हो कि तुम जानना चाहते हो, फिर भी तुम जानना नहीं चाहते। गहरे में तुम जानने को तैयार नहीं, तुम जानने से बचना चाहते हो।
क्या कारण होगा इस जटिलता का? क्योंकि अगर नहीं जानना चाहते हो, तो बात खतम हो गई। जानना चाहते हो, तो जानने में लगो। यह दोहरापन क्यों?
यह दोहरापन बहुत नाजुक है और समझने जैसा है। और जब तक इस दोहरेपन को तुम न समझोगे, तुम्हारे भीतर ही जो द्वंद्व है, उसको न समझोगे, तब तक निर्द्वंद्व नहीं हो सकते हो। हजारों लोगों को निकट से जानने का मेरा जो अनुभव है, वह यह कि वे सभी कहते हैं कि वे जानना चाहते हैं, उनमें से शायद ही कभी कोई जानना चाहता है। क्यों कहते हैं फिर? किसको धोखा देते हैं? धोखा देने का सार भी क्या है? खुद का समय, जीवन, व्यय करते हैं। अगर जानना है, तो जानने में लगना चाहिए; नहीं जानना है, तो बात छोड़ देनी चाहिए। यह द्वंद्व क्यों? इस द्वंद्व का कारण है।
पहला कारण, तुम जानना नहीं चाहते हो, क्योंकि तुम जिस जीवन में रह रहे हो, उस जीवन में अकेला दुख ही नहीं है, उस जीवन में सुख की झलकें भी हैं। उन सुख की झलकों को तुम छोड़ना नहीं चाहते। और वह जो दुख है, उसको तुम छोड़ना चाहते हो। इससे द्वंद्व पैदा होता है।
इसको ठीक से समझ लें। तुम्हारे जीवन में दोनों हैं, दुख भी है, सुख भी है। सुख कम होगा, झलक होगी, आभास होगा, आशा होगी, लेकिन है। दुख भी है। दुख से तुम मुक्त होना चाहते हो। इसलिए तुम ज्ञानियों के पास पहुंचते हो, क्योंकि वहां आश्वासन है कि दुख से छुटकारा हो जाएगा। और जब तुम ज्ञानी के पास पहुंचते हो, तो वह कहता है, सुख-दुख दोनों छोड़ो तो ही ज्ञान होगा।
बस, वहां अड़चन खड़ी हो जाती है। क्योंकि सुख तुम्हारा है, वह तुम छोड़ना नहीं चाहते। अभी-अभी विवाह करके तुम आए हो, एक सुंदर पत्नी को घर ले आए हो। अभी-अभी तो लोगों ने फूलमालाएं पहनाई थीं इस अहोभाग्य के लिए कि तुम विवाहित हो, पत्नी है, जिसे तुमने चाहा था, वह मिल गई है। सुख तो तुम बचाना चाहते हो। तुम किसी ऐसी तरकीब की तलाश में हो, जिसमें संसार का सुख बच जाए और संसार का दुख मिट जाए।
और यह असंभव है। इसे कोई कभी नहीं कर सका और कभी भी नहीं कर सकेगा, क्योंकि संसार के सुख-दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, या तो सिक्का पूरा

हाथ में रहेगा या पूरा सिक्का तुम्हें फेंक देना पड़ेगा। तुम असंभव की कोशिश में लगे हो, इसलिए भीतर विभाजित हो गए हो। तुम इसमें से आधा बचाना चाहते हो, इसमें से आधा तुम छोड़ना चाहते हो। और यह जीवन बांटा नहीं जा सकता, यह पूरा है। इसको बांटने का उपाय ही नहीं है।
तो जब तुम ज्ञानियों की बात सुनते हो कि दुख से छुटकारा है, कि दुख से मुक्ति है, कि उपाय है, मार्ग है, कि परम आनंद हो सकता है। जब ज्ञानी कहते हैं परम आनंद, तो तुम सोचते हो अपने सुख की बात। तुम सोचते हो, ठीक, यही तो हम चाहते हैं कि सुख हमारा परम हो जाए।
ज्ञानी का आनंद और तुम्हारा सुख अलग-अलग चीजें हैं। ज्ञानी का शब्द आनंद तुम्हें धोखे में डालता है। तुम सोचते हो, बस यही तो हम चाहते हैं, महा-सुख, चलो, ज्ञानी की बात सुनो। ज्ञानी की बात सुनकर तुम अड़चन में पड़ते हो। क्योंकि वह कहता है, तुम्हारा दुख भी छूटे, तुम्हारा सुख भी छूटे, तुम दोनों छोड़ दो, तो आनंद होगा। और जब वह कहता है, तो बात तर्क से तुम्हारी समझ में भी आ जाती है।
समझो, एक पत्नी से तुम्हें सुख मिलता है। इसी पत्नी से तुम्हें दुख मिलेगा। जो तुम्हें सुख दे सकता है, वही दुख दे सकता है। जो सुख नहीं दे सकता, उससे दुख मिलने का कोई कारण नहीं। पड़ोसी की पत्नी से तुम्हें दुख नहीं मिल सकता। और अगर मिलता हो, तो जानना कि उससे कुछ न कुछ सुख मिल रहा है। चाहे उसे देखने से ही मिल रहा हो। जिससे तुम्हें सुख मिलता है, उससे तुम्हें दुख भी मिलेगा। जब तुम गुलाब का फूल तोड़ने जाओगे, तो कांटे भी चुभेंगे। वे अंग हैं।
तुम्हारी पत्नी प्रसन्न है आज, तो उसकी मुस्कुराहट फूल बन जाती है। लेकिन कल तुम्हारी पत्नी दुखी होगी, अप्रसन्न होगी, तब? तब उसकी उदासी कांटा बन जाएगी। तुम चाहते हो, तुम्हारी पत्नी प्रसन्न हो, इससे तुम प्रसन्न होते हो। लेकिन तुम्हारी पत्नी चौबीस घंटे प्रसन्न नहीं रह सकती। क्योंकि साधारण जीवन-धारा विपरीत में परिवर्तित होती रहती है। सिवाय परमज्ञानी के, चौबीस घंटे कोई प्रसन्न नहीं रह सकता। जैसे दिन है, फिर रात है, ऐसे सुख है, फिर दुख है। ऐसे प्रसन्नता है, फिर उदासी है।
अगर पत्नी तुम्हारी बहुत प्रसन्न है, तो तुम तैयार रहो, जल्दी ही उदासी आएगी। और इस प्रसन्नता से तुम्हें सुख मिल रहा है तो फिर उदासी से दुख मिलेगा। तुम भी चौबीस घंटे प्रसन्न नहीं रह सकते, तुम भी चौबीस घंटे शांत नहीं रह सकते, विपरीत आएगा। जैसे दो किनारों के बीच नदी बहती है, ऐसा तुम द्वंद्वों के बीच बहते हो। एक किनारे के साथ नदी नहीं बह सकती और न एक किनारे के साथ तुम बह सकते हो।
बुद्ध बिना किनारे के बहना शुरू करते हैं। वे सागर की तरह हैं। एक किनारा नहीं छूटता, दोनों ही छूट जाते हैं। एक जो छोड़ना चाहता है, वह कभी भी नहीं छोड़ पाएगा।
इसलिए तुम्हारा लोभ तुम्हें ज्ञानियों के पास ले आता है। उनकी बातें
भी तुम्हारी समझ में आ जाती हैं बुद्धि से, कि वे ठीक कह रहे हैं। जब तक सुख है, तब तक दुख भी रहेगा। जब तक तुम जीवन में सुख पा रहे हो, मृत्यु में दुख पाओगे। जब तक तुम्हें पद मिल रहा है, प्रतिष्ठा मिल रही है और तुम उसमें सुख पा रहे हो, तो जब पद छिनेगा? और पद छिनेगा! नहीं तो दूसरों को कैसे मिलेगा? अगर छिनता नहीं, तो तुमको कैसे मिलता? किसी का छिना, तब तुम्हें मिला। तो मिलना और छिनना जारी रहेगा। जब पद पर रहकर तुम्हें प्रसन्नता हो रही है, पद छिनकर तुम सिकुड़ोगे, तुम्हें दुख होगा। आज यश है, कल अपयश होगा। आज लोग गीत गाते हैं तुम्हारे, कल गालियां देंगे।
लोग भी तुम्हारे गीत सदा नहीं गा सकते, गीत गा-गाकर भी थक जाते हैं। गालियां भी जरूरी हो जाती हैं। और ध्यान रहे, जिसने तुम्हारा गीत बहुत गाया, वही तुम्हें गाली देगा। क्योंकि वही तुम्हारे गीत से बुरी तरह ऊब जाएगा। और उसने गीत जब गाया, तो तुम्हारा जो-जो भला था, उसको चुना था, और जो- जो बुरा था, उसको उसने छिपा लिया था। कब तक छिपाए रखेगा? आज नहीं कल, उसे दिखाई पड़ने लगेगा। जितना गीत गाएगा, उतना ही दिखाई पड़ेगा कि झूठ बोल रहा हूं।

सबसे बड़ी अदभुत बात यह है कि किसी भी चीज को उसकी अतिशयोक्ति पर ले जाओ, और उसका विपरीत तत्क्षण दिखाई पड़ने लगेगा। जैसे किसी आदमी को तुमने कहा, बहुत सुंदर है, अति सुंदर है, ऐसा सुंदर आदमी नहीं हुआ, तत्क्षण तुम्हें उस आदमी की कुरूपता दिखाई पड़ने लगेगी। क्योंकि तुमने अति कर दी। सब आदमी बीच में हैं सुंदर और कुरूप के, कोई आदमी न तो बिल्कुल कुरूप है और न कोई आदमी बिल्कुल सुंदर है। इस जगत में अति तो होती ही नहीं, सभी मध्य है। अगर तुमने अति की, और कहा कि अहा, इससे ज्यादा सुंदर कोई व्यक्ति कभी नहीं हुआ। बस, उसी वक्त तुम्हें दिखाई पड़ेगा कि इसमें ये-ये कुरूपताएं हैं।
जिसने गाया गीत, गाली देने को तैयार हुआ। जिसने दी गाली, आज नहीं कल गीत गाएगा। जो बना मित्र, उसने शत्रुता की तैयारी की। और जो तुम्हारा शत्रु है, या तो पुराना मित्र है, या भविष्य में मित्र होगा।
तो जिस-जिस चीज से तुम्हें सुख मिल रहा है, आज नहीं कल, तुम दुख पाओगे।
यह बात तर्क से समझ में आ जाती है। बस तर्क से समझ में आती है, हृदय को समझ में नहीं आती, बुद्धि को समझ में आती है। तो जब तुम संतों के पास होते हो, उनकी बात बिल्कुल ठीक समझ में आती है। वहां से तुम उठे, तुम जरा दूर भी नहीं पहुंच पाए कि सब बुद्धि का हिसाब बिखर जाता है। तुम्हारे भीतर की वृत्तियां, तुम्हारे जीवन की मूढ़ता, तुम्हारे जीवन का अज्ञान, सब बगावत करता है और कहता है, यह क्या सोच रहे हो, इसमें तो सब जीवन खो जाएगा। अगर सुख भी छोड़ दिया, तो फिर सार क्या है! कुछ ऐसा करो, सुख को बचाओ, दुख को काटो।
सांसारिक आदमी यही कर रहा हैः सुख को बचा रहा है, दुख को काट रहा है। संन्यासी दोनों छोड़ रहा है। बस इतना ही फर्क है संन्यासी और संसारी में। संसारी सोच रहा है, कोई न कोई तरकीब जरूर होगी, कहीं न कहीं कोई न कोई उपाय जरूर होगा, जिससे मैं सुख को बचाऊंगा और दुख को काट दूंगा। और संन्यासी हम उसे कहते हैं, जो इस समझ को उपलब्ध हो गया कि यह प्रयास असंभव है। यह हो ही नहीं सकता, क्योंकि यह जीवन और प्रकृति का नियम नहीं है। यह विपरीत है। यह ऐसा ही विपरीत है, मैंने सुना है, एक आदमी एक डाक्टर के दफ्तर में भागा हुआ पहुंचा। उसने अपने कान पर से रूमाल हटाया, कान खून से भरा था, खून टपक रहा था। किसी ने उसका कान काट लिया था, चमड़ी लटकी हुई थी। डाक्टर चकित हुआ, उसने कहा, यह कैसे हुआ? वह आदमी थोड़ा झिझका, और फिर उसने कहा कि मैंने ही अपना कान भूल से काट लिया है। उस डाक्टर ने कहा, यह असंभव है। अपना ही कान तुम कैसे काट सकते हो? उस आदमी को भी ख्याल आया, उसने कहा कि मैं कुर्सी पर खड़ा था।
उस आदमी ने सोचा कि शायद अब यही उपाय है बचने का कि डाक्टर कह रहा है, अपना कान कैसे काटोगे? तो उस आदमी ने कहा, मैं कुर्सी पर खड़ा था। जैसे कि ऊंची चीज को पाने के लिए कुर्सी पर खड़े होने से कोई आसरा मिल जाता हो। काटा तो कान उसकी पत्नी ने था, लेकिन चलते वक्त कहा था, यह बात कहना मत! तुम यही कह देना कि तुमने ही काट लिया है। और पति जैसे आमतौर से डरे हुए होते हैं, उसने कह दिया कि मैंने ही काट लिया है। कहकर फंसा! तब उसको भी समझ में आया कि अपने कान तक पहुंचोगे कैसे? तो कुर्सी पर खड़ा था! मगर असंभव होता नहीं, चाहे कुर्सी पर खड़े हो जाओ, और चाहे पहाड़ पर खड़े हो जाओ। चाहे गरीब की झोपड़ी में रहो, और चाहे महल में, अपना कान काट न पाओगे।
सुख और दुख को काटकर, एक को बचाकर, और दूसरे को हटा देने का कोई उपाय नहीं। यह प्रतीति जब तुम्हें सघन हो जाएगी, जब यह तुम्हारी बुद्धि में नहीं, हृदय में उतर जाएगी, जब तुम्हारा रोआं-रोआं इसे अनुभव करेगा, उसी क्षण में, पहली बार तुम अपने को बदलना चाहोगे, उसके पहले नहीं।
और जिस दिन तुम अपने को बदलना चाहोगे, कोई मूढ़ता बाधा नहीं दे सकती। जिस दिन तुम अपने को बदलना चाहोगे, अहंकार को छोड़ना आसान है, बहुत आसान है। ऐसा ही आसान है, जैसे कोई आदमी अपने सिर पर बोझ ढो रहा हो और परेशान हो रहा हो और कह रहा हो, बहुत वजन है, बहुत वजन है। लेकिन सोचता है कि भीतर सोने की अशर्फियां भरी हैं इसलिए वजन को ढोना है। और कोई उसे बता दे कि सिर्फ पत्थर है इसमें, सोना नहीं है, और वह उसी क्षण ढेर को गिरा दे।

जिस दिन तुम अपने को बदलना चाहोगे, तुम्हारा अहंकार पत्थर का बोझ मालूम पड़ेगा, स्वर्ण का, बहुमूल्य हीरों का बोझ नहीं, उस क्षण तुम उसे गिरा दोगे। और जिस दिन तुम्हारी मूढ़ता गिरती है, उस दिन यह विद्या कठिन नहीं है। उस दिन यह विद्या बड़ी सरल है।
क्योंकि स्वभाव में जाना कठिन कैसे हो सकता है? जो तुम सदा से हो, उसी
को पाना कठिन कैसे हो सकता है?
आज इतना ही।

नहिं राम बिन ठांव
पांचवां प्रवचन

राम नाम की चदरिया

प्रश्नः ओशो, जब से आपसे दीक्षित हुआ हूं, तब से आपसे डरने भी लगा हूं। उसके पहले यह डर नहीं था मुझमें; यद्यपि मैं आजीवन भयभीत रहा हूं। मुझे यह भी पता है कि जो प्रेम और स्वतंत्रता मुझे आपके सान्निध्य में मिली है, वह मां-बाप के गिर्द भी कभी नहीं मिली। और यदि आप जैसे आत्यंतिक प्रेम-पूर्ण गुरु की छाया में भी मैं भयमुक्त न हुआ, तो और कहां हो पाऊंगा? यह भयमुक्ति कैसे संभव है?

बहुत सी बातें समझनी पड़ेंगी।
भयमुक्ति का कोई भी संबंध दूसरे से नहीं। गुरु शिष्य को भयमुक्त न कर सकेगा। क्योंकि भय भीतर है और गुरु बाहर है। गुरु ज्यादा से ज्यादा इतना कर सकता है कि अभय की एक भ्रांति पैदा कर दे--लेकिन तब वह गुरु सदगुरु नहीं--ऐसा भरोसा दिला दे, विश्वास दिला दे, और ऐसा लगने लगे कि भय मिट गया। बहादुरी पैदा की जा सकती है बाहर से, निर्भयता पैदा की जा सकती है बाहर से, अभय नहीं।
अभय का अर्थ है, भीतर भय का कोई कारण न रहा। और निर्भय का अर्थ है, भीतर
तो कारण मौजूद है, लेकिन बाहर से हमने अपने को सम्हाल लिया, मजबूत कर लिया।
कायर और निर्भय व्यक्ति में बहुत भेद नहीं होता। कायर अपने भय को छिपा नहीं पाता, निर्भय अपने भय को छिपा लेता है, बस इतना ही फर्क होता है।
निर्भय जिसे हम कहते हैं, वह भी भीतर कायर होता है। और जिसे हम कायर कहते हैं, वह भी थोड़ा उपाय करे, तो निर्भय बन सकता है।
तो गुरु निर्भय बना सकता है। लेकिन अभय की उपलब्धि तो भीतर से होगी।
अभय ऊपर से नहीं थोपा जा सकता। वह कोई रंग-रोगन नहीं है। वह कोई ऊपरी सजावट नहीं है,शृंगार नहीं है। वह भीतरी अनुभव है।
भीतरी अनुभव से मेरा प्रयोजन है, जब तक आत्मा की प्रतीति न हो, तब तक अभय का जन्म न होगा। क्योंकि भय इसलिए है कि हम मानते हैं कि हम शरीर हैं। न सिर्फ मानते हैं, बल्कि जानते यही हैं कि हम शरीर हैं। और शरीर तो मरेगा, शरीर की तो मृत्यु होगी। शरीर का विनाश तो सुनिश्चित है। जब हमारा विनाश सुनिश्चित है और मृत्यु होने ही वाली है, अभय कैसे हो सकता है?
मिटना हमें कंपाता है। दूर लगती हो मृत्यु, फिर भी पास है। सत्तर साल बाद हो या सात दिन बाद, क्या फर्क पड़ता है? मृत्यु सदा आपके निकट खड़ी है। मृत्यु से ज्यादा पड़ोस में और कोई भी नहीं। उस मृत्यु की प्रतीति कंपाती है।
तो गुरु भुला दे सकता है। गुरु समझा दे कि आत्मा अमर है, तुम कभी भी न मरोगे, कभी कोई मरता नहीं। और इस सिद्धांत को तुम समझ लो और मान लो, स्वीकार कर लो, तो भी निर्भयता पैदा होगी, अभय पैदा नहीं होगा। क्योंकि यह सिद्धांत किसी और ने दिया है, यह तुम्हारा स्वानुभव नहीं है, किसी और ने कहा है। इस पर तुम भरोसा कितना ही करो, भरोसा पूरा नहीं हो सकता। पूरा भरोसा स्वयं के अनुभव के बाद ही हो सकता है।
तो जब तक तुम जान न लो कि आत्मा अमृत है, जब तक तुम न जान लो, तब तक अभय नहीं होगा। झूठे गुरु के पास निर्भयता पैदा होगी और सच्चे गुरु के पास पहली दफे भय वास्तविक रूप में पैदा होगा।
इसलिए हो सकता है कि मेरे पास आकर भयभीत अवस्था बन गई हो, भय ज्यादा प्रगाढ़ मालूम पड़ने लगा हो। पड़ेगा, पड़ना चाहिए। क्योंकि तुम्हारे भीतर जो हो, उसे उघाड़ना होगा। जो भी तुमने छिपाया है और दबाया है, उसका रेचन करना होगा। जहां-जहां तुमने अपने को धोखा दिया है, वहां-वहां धोखे की सब दीवालें गिरा देनी होंगी। तुम्हारी नग्नता में तुम्हें प्रगट करना जरूरी है। उसके बाद ही आगे की यात्रा हो सकती है। सत्य की खोज में जो निकला है, उसे पहले असत्य को पहचानना शुरू करना होगा। और जो वास्तविक की दिशा में जा रहा है, उसे पहले झूठे को तोड़ना होगा।

तो तुमने जो-जो सांत्वनाएं, कन्सोलेशंस इकट्ठे कर लिए हैं, झूठी शांतियां जो-जो तुमने निर्मित कर ली हैं, फूल जो तुमने ऊपर से चिपका लिए हैं और भीतर से नहीं आए, वे सब मेरे पास गिरेंगे। और गिरेंगे, तो भय बढ़ेगा। मैं तुम्हें नहीं समझाऊंगा कि आत्मा अमर है। पहले तो तुम्हें यही बताना होगा कि शरीर मरणधर्मा है, तुम मरोगे। तुम जो भी अपने को समझ रहे हो, तुम्हारे बचने का कोई भी उपाय नहीं। जो बचेगा, उसका तुम्हें पता नहीं। तुम तो मरोगे, पूरी तरह मरोगे। तुम्हें कोई भी नहीं बचा सकता, न आत्मा की अमरता का सिद्धांत, न कोई गुरु। कोई तुम्हें नहीं बचा सकता, तुम मरणधर्मा हो। तो पहले तो तुम्हारी मृत्यु की प्रतीति गहरी करनी पड़ेगी। तब तुम्हारा कंपन बढ़ता जाएगा। एक घड़ी आएगी, जब तुम सिवाय भय के और कुछ भी न रह जाओगे, जब तुम्हारा रोआं-रोआं रुदन से भरा होगा। और जब तुम्हारे रोएं-रोएं में आग मृत्यु की जलती हुई दिखाई पड़ेगी, जब तुम बिल्कुल चिता पर खड़े हो जाओगे, उसी क्षण में छलांग लगेगी। उसी क्षण में तुम शरीर को छोड़ोगे, उसी क्षण में तुम्हारा तादात्म्य शरीर से टूटेगा, उसी क्षण में तुम्हारी आंखें उसकी तरफ मुड़ेंगी जो अमृत है। भय की परिपूर्णता का अनुभव ही तुम्हें अभय में ले जाएगा।
जीवन बड़ा जटिल है। यह बात उलटी लगेगी कि पहले मैं तुम्हें भय में ले जाऊं और तभी तुम अभय में जा सकोगे। सीधा तो यही लगेगा कि तुम्हें निर्भय बनाऊं, तुम्हारे भय को ढांकूं, छिपाऊं। सुंदर वस्त्रों में, सुंदर रंगों में तुम्हारी मृत्यु को पोतूं। तुमसे कहूं, मृत्यु मित्र है। तुमसे कहूं, मृत्यु परमात्मा का द्वार है। तुमसे कहूं, घबड़ाते क्यों हो, तुम कभी मरोगे नहीं, तुम कभी मरे नहीं।
ये सब बातें सुनने में अच्छी लगेंगी और तुम्हारा भय कम होता मालूम पड़ेगा, तुम्हारा कंपन क्षीण हो जाएगा। लेकिन तब तुम इस शरीर से ही चिपके रह जाओगे। क्योंकि तुम्हें अभी पता ही नहीं कि तुम कौन हो। तो जब भी मैं कहूंगा तुम अमर हो, तुम उसी भ्रांत इकाई को समझोगे, जो तुम अपने को समझ रहे हो। तुम अपने अहंकार को ही अमर समझोगे। और वह अमर नहीं है, उससे ज्यादा मरणधर्मा कोई वस्तु इस जगत में नहीं है। अहंकार से ज्यादा असत्य कुछ भी नहीं है। अहंकार मरा ही हुआ है।
तो पहले तो मैं तुम्हें पूरा भयभीत करूंगा। भय ही तुम्हारी आत्मा मालूम पड़ेगी, संताप सघन हो जाएगा, तुम सो भी न सकोगे शांति से। तुम उठोगे, बैठोगे, लेकिन कंपते रहोगे। चारों तरफ तुम्हें मृत्यु दिखाई पड़ने लगेगी। यह सारा संसार तुम्हें मारने को तत्पर, मिटाने को तत्पर मालूम होगा। जैसे तुम्हें एक सागर में फेंक दिया, जहां विराट गर्जन करती हुई लहरें उठती हैं और हर लहर तुम्हें पी जाने को तत्पर है। कोई किनारा नहीं दिखाई पड़ता, कोई नौका, कोई सहारा नहीं, कितना ही तुम चिल्लाते हो, लेकिन कोई सुनने वाला नहीं। चारों ओर सागर के अनंत गर्जन करती लहरें और तुम हो और तुम्हारी मौत है।
इस मौत की गहन प्रतीति में वह रूपांतरण घटित होता है, जब तुम शरीर से छलांग लगाते हो और आत्मा का तुम्हें पहली दफे झलक और अनुभव होता है। सदगुरु के पास पहले मिलेगी पीड़ा, पहले मिलेगा विरह, पहले मिलेगा सब तरह का संताप। और तभी उस संतुष्टि का जन्म होगा, उस अमृत-बोध का, जहां से अभय विकसित हो सकता है।
यहां यह बात भी समझ लेनी जरूरी है कि अक्सर हम धर्म की तलाश में भय के कारण ही जाते हैं। इसलिए हमारी स्वाभाविक आकांक्षा यह होती है कि कोई हमारे भय को कम कर दे। भय को कम करने का सवाल नहीं है, भय को जड़-मूल से उखाड़ने का सवाल है। भय को और तुम्हें समायोजित, एडजस्ट करने का सवाल नहीं है। भय को पूरी तरह जला डालने का सवाल है।
और इस जगत में हम उसी को छोड़ पाते हैं, जिसकी पीड़ा इतनी गहन हो जाए कि उसे सम्हालना और संभव न रहे। अभी तुम्हारा जो शरीर से तादात्म्य है, उसकी पीड़ा इतनी गहन नहीं है। तो कितना ही संत समझाते हों, कितना ही तीर्थंकर कहते हों कि छोड़ो इस शरीर को, तुम शरीर नहीं हो। तुम सुन लेते हो, लेकिन तुम भीतर तो शरीर को पकड़े ही रहते हो। चाहे तुम रोज सुबह उठकर यह पाठ भी करने

लगो कि मैं शरीर नहीं हूं, चाहे तुम इसे हजार बार दोहराओ भी कि मैं शरीर नहीं हूं, लेकिन तुम जानते हो कि तुम शरीर हो।
शरीर को लगी चोट तुम्हें लगती है। शरीर बीमार होता है तो तुम बीमार होते हो। शरीर सुंदर दिखता है तो तुम सुंदर दिखते हो। शरीर कुरूप हो जाता है तो तुम कुरूप हो जाते हो। शरीर बूढ़ा होता है तो तुम बूढ़े होते हो। तो फिर जब शरीर मरेगा तो तुम मरोगे। कितना ही कोई कहे, कहने से हम एक झूठा वातावरण बना सकते हैं। अनुभव के बिना, सत्य का कोई उदय नहीं है।
इसलिए तुम आए हो किसी भय को ही मिटाने। लेकिन मैं तुम्हारा भय बढ़ाऊंगा, क्योंकि वही मिटाने का उपाय है।
जीवन की जटिलता का एक सूत्र बहुत आधारभूत है। और वह यह है कि शिष्य जब गुरु के पास जाता है, तो शिष्य की आकांक्षा कुछ और, और गुरु की आकांक्षा कुछ और होती है। होनी ही चाहिए। क्योंकि शिष्य अंधेरे में खड़ा है, उसे अभी अपने हित का भी कोई पता नहीं। वह सोचता है। गुरु रोशनी में खड़ा है, उसे हित का पता है। इसलिए अक्सर तुम किसी और कारण से गुरु के पास जाते हो और गुरु तुम्हारे साथ कुछ और करना शुरू करता है।
इसे तुम कसौटी समझ लेना कि तुम जिस कारण से गुरु के पास गए, अगर गुरु
भी उसी को तुम्हारा कारण आने का मानता हो और उसी पर काम करता हो, तो वह गुरु भी अंधेरे में खड़ा है।
तुम भय के कारण मेरे पास आए हो, उसे मैं जानता हूं। लेकिन तुम्हारे भय
को कम करना मेरा कृत्य नहीं, अभय को जगाना है। अभय के लिए तुम आए भी नहीं थे। निर्भयता के लिए आए हो, बहादुरी आ जाए, लड़ सको, उतना; तुम तृप्त हो उतने से। तुम बहुत थोड़े से तृप्त हो जाते हो, तुम्हारी अतृप्ति बहुत गहरी नहीं है। डूबते को तिनके का सहारा हो जाता है। तुम तिनके का सहारा खोज रहे हो और मैं जानता हूं कि तिनके से कोई बच नहीं सकता। शायद तिनके के कारण ही तुम डूब जाओ। क्योंकि जिसने तिनके को नाव समझ लिया, वह फिर नाव की खोज बंद कर देगा। और जिसने झूठे किनारे को देख लिया, उसका असली किनारा फिर बहुत दूर है। तुम भला किसी भी कारण से आए हो, उससे मुझे प्रयोजन नहीं। मैं वही करूंगा, जो करना उचित है।
पश्चिम में अभी-अभी कुछ विश्वविद्यालयों में उपवास के ऊपर कुछ अध्ययन किए गए हैं, मनोवैज्ञानिक अध्ययन किए गए हैं। और बड़ी हैरानी का तथ्य सामने आया है, जो कि तुम कभी सोच भी नहीं सकते। क्योंकि आदमी इतना जटिल है, तुम जो सोचते हो, वह काम में नहीं आता। यह तथ्य सामने आया कि जो लोग उपवास में सफल होते हैं और जो लोग उपवास में सफल नहीं हो पाते... । हमारी हजारों साल की धारणा यही है कि उपवास में जो सफल होता है, वह आदमी बड़ा अंतर्मुखी है। जो भोजन को भूल जाता है, भूख को भूल जाता है, वह बड़ा ध्यानी है, उसकी लगन राम में गहरी है, उसकी लगन धर्म में गहरी है, उसकी प्रार्थना पूर्ण है। और जो व्यक्ति उपवास नहीं कर पाता और उपवास में उसे भूख सताती है और उपवास टूट जाता है, हम जानते हैं कि वह आदमी बहिर्मुखी है, परमात्मा में उसकी लगन नहीं, भरोसा नहीं, धार्मिक नहीं। इसलिए सभी धर्म दुनिया में उपवास का व्यक्ति को धार्मिक बनाने के लिए उपयोग करते हैं। लेकिन जो अध्ययन हुआ मनोवैज्ञानिकों का, वह बड़ा उलटा है। वे कहते हैं, बहिर्मुखी सफल होता है उपवास में, अंतर्मुखी नहीं। एक्सट्रोवर्ट, जिसकी आंखें बाहर लगी हैं, वह उपवास में सफल हो जाता है। और इन्ट्रोवर्ट, जिसकी आंखें भीतर लगी हैं, वह सफल नहीं होता, असफल हो जाता है।
इसे थोड़ा समझें। वही बात और सब जीवन के पहलुओं पर भी लागू है। बहिर्मुखी व्यक्ति बाहर से जीता है। अगर एक सुंदर स्त्री निकलती है, तो देखकर उसकी कामवासना जगती है। अगर उसे सुंदर स्त्री दिखाई न पड़े, तो उसकी कामवासना नहीं जगती है। ऐसा आदमी जंगल में जाकर बैठ जाए, तो उसे लगेगा कि कामवासना मिट गई। वह बहिर्मुखी है, उसकी वासना का कारण बाहर है। बहिर्मुखी को होटल दिखाई पड़ जाए, जहां से भोजन की गंध आती हो, तो उसकी भूख जगती है। अगर यह आदमी मंदिर में बैठ जाए, जहां न भोजन की गंध आती है, न भोजन की चर्चा होती है, न भोजन दिखाई पड़ता है, तो इसका उपवास यह कर लेगा।

अंतर्मुखी व्यक्ति भीतर से जीता है। उसे भूख लगती है, तो वह भोजन की तलाश करता है। बहिर्मुखी व्यक्ति को भोजन दिखाई पड़ता है, तो भूखा हो जाता है। अंतर्मुखी व्यक्ति की कामवासना जगती है, तो स्त्री में उसे रस आता है, तो वह स्त्री की खोज करता है। बहिर्मुखी को स्त्री दिख जाए, तो कामवासना मालूम होने लगती है। बहिर्मुखी का कारण बाहर और बाहर के कारण से भीतर की वृत्ति जगती है। अंतर्मुखी का कारण भीतर और भीतर के ही कारण उसका व्यवहार संचालित होता है।
इसका मतलब यह हुआ कि जिस दिन आप उपवास करें, अगर बहिर्मुखी हैं, तो मंदिर में बैठ जाएं, उपवास सफल हो जाएगा; अंतर्मुखी हैं, कोई फर्क न पड़ेगा, मंदिर में बैठकर भी भूख लगेगी। भूख तो भूख है, मंदिर में बैठने से क्या फर्क पड़ेगा?
यहूदियों का एक त्यौहार है योम-किप्पूर, उस दिन वे उपवास करते हैं। तो योम-किप्पूर के दिन बहुत उपवास करने वालों की वैज्ञानिक परीक्षा ली गई। योम-किप्पूर के दिन लोग सिनागाग में चले जाते हैं और दिनभर वहीं बिताते हैं। पाया गया कि उसमें जो-जो बहिर्मुखी थे, वे भोजन को भूल जाते हैं; जो-जो अंतर्मुखी हैं, वे भोजन को नहीं भूल पाते, क्योंकि उनकी भूख भीतर से उन्हें अनुभव होती है।
जैन इस मुल्क में ठीक यही करते हैं। उनके पर्यूषण के दिनों में, उपवास
के दिनों में वे जाकर स्थानक में या मंदिर में बैठ जाते हैं। वहां धर्मशास्त्र की चर्चा चलती है, भोजन की कोई बात नहीं होती, भोजन दिखाई नहीं पड़ता, भोजन की गंध नहीं मालूम पड़ती, वे भूल जाते हैं। उनका कारण बाहर है। लेकिन जो अंतर्मुखी है, उसे कोई फर्क न पड़ेगा। जब उसे भूख लगेगी तो लगेगी ही, चाहे शास्त्र कितने ही जोर से पढ़ा जाता हो।
यह बड़ा उलटा मामला हो गया। इसका मतलब यह हुआ कि जो लोग जंगल में जाकर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हो जाते हैं, वे बहिर्मुखी हैं। अंतर्मुखी वहां जाकर ब्रह्मचर्य को उपलब्ध नहीं होगा। और बहिर्मुखी धार्मिक नहीं हो सकता, अंतर्मुखी ही धार्मिक हो सकता है। क्योंकि जिसे अभी इतनी भी अंतर्मुखता नहीं कि अपने भीतर की भूख और प्यास को अनुभव कर सके, वह अपनी आत्मा को कैसे अनुभव करेगा? क्योंकि आत्मा तो और भी भीतर है। जिसकी भूख-प्यास बाहर से प्रभावित होती है, जो अपनी भूख-प्यास से भी संबंधित नहीं है, वह कैसे भीतर जा सकेगा?
तो बहिर्मुखी धार्मिक नहीं हो सकता। लेकिन बहिर्मुखी व्यक्ति तथाकथित धार्मिक जगत में सफल होता है। अंतर्मुखी धार्मिक हो सकता है, लेकिन वह तथाकथित धार्मिक जगत में असफल हो जाता है। यह बड़ी हैरानी की बात है। इसका अर्थ यह हुआ कि धर्म के नाम पर जो जमात इकट्ठी होती है, वह बहिर्मुखियों की होती है।
और जैन-धर्म का विकास नहीं हो सका, उसका एक बुनियादी कारण यह है। वह जमात बहिर्मुखियों की है, उपवास पर बड़ा जोर है। उसमें अंतर्मुखी सफल नहीं हो पाता, बहिर्मुखी सफल हो जाता है। जैन-साधु, मुनि, संन्यासी को गौर से देखें, तो उसे बहिर्मुखी पाएंगे।
इसलिए जैन-धर्म में रहस्यवाद, मिस्टीसिज्म का कोई जन्म नहीं हो पाया। क्योंकि रहस्यवादी तो अंतर्मुखी व्यक्ति होता है। इसलिए जैन-धर्म एक रूखा गणित होकर रह गया। जैन-धर्म की धार्मिक प्रक्रिया भी व्यवसायिक की हो गई। उसका ऊपरी गणित है, कितना ब्रह्मचर्य साधा, कितने उपवास किए, कितना कम भोजन किया, क्या खाया, क्या नहीं खाया, कब सोए, कब उठे, ऊपर का गणित हो गया। इसमें जो लोग सफल हुए, वे बहिर्मुखी हैं। इनके भीतर अंतर-नाद पैदा नहीं होता।
जीवन बड़ा उलटा और जटिल है। यहां जो व्यक्ति अपने भय को दबाकर निर्भय
को साध लेता है, वह अभय मालूम पड़ता है। और वह कभी अभय को उपलब्ध नहीं हो सकता। अभय को तो वही व्यक्ति उपलब्ध हो सकता है, जो पूरी तरह अपने भीतर के भय को पहले अनुभव कर ले, जी ले, उससे गुजर जाए, उसके पार हो जाए। तब अभय का जन्म होगा।

अभय भय के विपरीत नहीं है, अभय भय का अभाव है। निर्भयता भय के विपरीत है, निर्भयता भय का ही दूसरा अतिछोर है। अभय भय का संपूर्ण तिरोहित हो जाना है, अभाव है, एबसेंस है।
निर्भयता तो बड़ी आसानी से साधी जा सकती है, थोड़े अनुशासन की जरूरत है। भयभीत से भयभीत आदमी को सैनिक बनाया जा सकता है, थोड़े से अनुशासन की जरूरत है, थोड़ी व्यवस्था जुटाने की जरूरत है, थोड़ी हिम्मत बढ़ाने की जरूरत है, भय भीतर दब जाता है, अचेतन में सरक जाता है। लेकिन अभय बनाना बड़ा दुरूह है, अभय बनना बड़ा दुरूह है, क्योंकि भय को जड़-मूल से नष्ट करना होगा।
तो ध्यान रखो, अगर तुम्हारा भय मेरे पास आने से बढ़ता हो, शुभ लक्षण है। निर्भय बनने की तुम कोशिश ही मत करो। वही कोशिश करके जन्म-जन्म से तुम भय को ढो रहे हो। तुम भयभीत हो जाओ। तुम ऐसे भयभीत हो जाओ, जैसे एक वृक्ष का पत्ता तूफान में कंपता हो। तुम रोको ही मत अपने को। और भय से लड़ो मत, क्योंकि तुम लड़ोगे तो तुम दबाओगे; दबाओगे तो वह बना रहेगा। तुम भय के साथ एकात्म हो जाओ। तुम समझ लो कि भय ही मेरी नियति है। तुम कंपो, डरो, और जरा भी सम्हालने की मत कोशिश करो। अनुशासन मत बांधो, अपने को दबाओ मत, आने दो भय को, तुम पूरे आंदोलित हो जाओ भय से, तुम भय ही हो जाओ।
जल्दी ही तुम पाओगे, एक दिन अचानक कंपन समाप्त हो गया, तुम्हारे बिना कुछ किए ही। तुम्हारे बिना किसी अनुशासन के, भय शून्य हो गया। और जिस दिन तुम पाओगे कि कंपन नहीं है और जिस दिन तुम पाओगे कि एक रोआं भी भय से प्रभावित नहीं है, तत्क्षण तुम पाओगे, तुम्हारे और शरीर के बीच एक फासला हो गया, एक खाई हो गई, जिस पर कोई सेतु नहीं है।
कौन कंपता है? शरीर तो कंप नहीं सकता, क्योंकि शरीर पदार्थ है। आत्मा कंप नहीं सकती, क्योंकि आत्मा अमृत है। फिर कौन कंपता है? यह शरीर और आत्मा के बीच में वह जो तादात्म्य का सेतु है, वह जो ब्रिज है, वह कंपता है। सारा कंपन उसका है, सारा भय उसका है। वह जो तादात्म्य है, मैं शरीर हूं, यह जो रेखा है, यह कंपती है। यह कंपेगी ही, क्योंकि एक तरफ मरा हुआ शरीर है और एक तरफ अमृत आत्मा है, इन दोनों का तल इतना ऊबड़-खाबड़ है, इतना भिन्न है कि इनके ऊपर सेतु बनाने का अर्थ है, कंपेगा, कंपता ही रहेगा।
न तो तुम कंपते हो, न तुम्हारा शरीर कंपता है। न तो तुम मरते हो, न तुम्हारा शरीर मरता है। क्योंकि शरीर मरा हुआ है, मरा हुआ और क्या मरेगा? तुम अमृत हो, तुम्हारे मरने का कोई उपाय नहीं है। फिर कौन मरता है? वह जो दोनों के बीच का सेतु है, वह टूटता है, वही मरता है।
उस सेतु को हम अहंकार कहते हैं, अस्मिता कहते हैं, मैं-भाव कहते हैं।
जब एक आदमी मरता है, तो क्या घटना घट रही है? शरीर वैसा का वैसा है, जैसा मरने के पहले था। रत्तीभर कोई फर्क नहीं पड़ा है। सब परमाणु हैं, सब तत्व हैं, सब मौजूद है। आत्मा वैसी की वैसी है, उसमें कोई फर्क कभी पड़ता नहीं, वह नित्य है। फिर यह मृत्यु कैसे घटी?
यह मृत्यु दोनों के जोड़ का टूट जाना है। वह जो नित्य, अनित्य से जुड़ा था, वह अलग हो गया। मृत्यु एक विसंयोग है। मृत्यु दोनों का अलग हो जाना है। खाई बीच में आ गई, सेतु खो गया, वह जो बीच का पुल था जो जोड़ता था, वह नष्ट हो गया। सदा सेतु की ही मृत्यु होती है। और जब तक तुम सेतु अपने को समझे हो, तब तक तुम कंपोगे, डरोगे, भयभीत रहोगे। मेरा प्रेम उसे नहीं मिटा पाएगा। कोई प्रेम उसे नहीं मिटा पाएगा।
लेकिन जिस दिन तुम्हारा भय चला जाएगा, उस दिन तुम में प्रेम का जन्म जरूर होगा। उस दिन तुम्हारे भीतर से प्रेम की धारा फूटेगी। भयभीत व्यक्ति के जीवन में प्रेम के फूल नहीं लग सकते। भयभीत व्यक्ति के जीवन में जाने- अनजाने शत्रुता बनी रहती है, घृणा बनी रहती है। क्योंकि जो भयभीत है, वह कैसे प्रेम करेगा? जो खुद भयभीत है, जो खुद कंप रहा है, वह कैसे प्रेम को जन्म देगा? जो भयभीत है, वह चारों तरफ शत्रु को देख रहा है, शत्रु को कैसे वह प्रेम करेगा? जिसका विनाश सब तरफ से आ रहा है, उसके पास प्रेम का क्षण कहां? जब भीतर का भय चला जाता है, तब प्रेम का उदय होता है।
और वह प्रेम बेशर्त है। और उस प्रेम का किसी व्यक्ति से कोई संबंध नहीं है। वह प्रेम फिर तुम्हारी अवस्था है, जैसे भय अभी तुम्हारी अवस्था

है। तुम किसी के कारण भयभीत नहीं हो, कोई तुम्हें डरा नहीं रहा है, तुम डरे हुए हो, डर तुम्हारी अवस्था है। जब यह अवस्था बदलेगी, कंपन जाएगा, तुम थिर हो जाओगे, थिर होने से प्रेम की अवस्था पैदा होती है। कंपित होने से भय, थिर होने से प्रेम है।
प्रेम एक अनंत थिरता है, ठहरना है। प्रेम एक स्थिति-भाव है, जिसको कृष्ण ने स्थितप्रज्ञ कहा है। उसको ही प्रेम पैदा होगा, जिसकी प्रज्ञा ठहर गई, कंपती नहीं। दीए की लौ जैसे कंपती है तूफान में, ऐसे तुम भय में कंपते हो। और दीए की लौ जैसे एक बंद गृह में, जहां कोई हवा का झोंका न आता हो, अकंप हो जाती है, ऐसा तुम्हारा प्रेम का स्वभाव है। जब तुम अकंप हो, तब प्रेम उठता है। और इस प्रेम का फिर व्यक्ति से संबंध नहीं। किसको प्रेम करो, यह सवाल नहीं है, बस तुम प्रेमपूर्ण हो जाते हो। तुम पत्थर भी हाथ में उठाते हो, तो उस पत्थर की तरफ तुम्हारा प्रेम बहता है। तुम वृक्ष की तरफ आंखें उठाते हो, तो उस वृक्ष की तरफ तुम्हारा प्रेम बहता है। तुम आकाश को देखो, कि सागर को, कि सरिता को, कि जो भी तुम्हारे पास आए या कोई भी तुम्हारे पास न आए, तुम अकेले बैठे हो, तो भी तुम्हारे चारों तरफ प्रेम झरता है। जैसे एक दीया अकेले में जलता हो, तो भी किरणें बरसती रहती हैं। प्रेम तब तुम्हारा स्वभाव है।
दो स्थितियां हैं जीवन की, एक भय और एक प्रेम। भय के अनुषांगिक हिस्से हैं--क्रोध, घृणा, ईर्ष्या, प्रतिस्पर्धा, जलन। जिन सबको हमने पाप कहा है, वे भय के अनुषंग हैं। प्रेम के अनुषंग हैं--करुणा, अहिंसा, दया। वे सब जिनको हमने पुण्य कहा है, प्रेम के अनुषंग हैं। और दो ही अवस्थाएं हैं व्यक्ति कीः एक भय; भय का अर्थ हुआ, तुमने अपने को शरीर समझा है; दूसरा प्रेम, प्रेम का अर्थ हुआ कि तुमने अपने को आत्मा पहचाना है।
इसलिए मैं उस प्रेम की बात नहीं कर रहा हूं जो पति पत्नियों को कर रहे हैं, पत्नियां पति को कर रही हैं, बाप बेटे को कर रहा है, बच्चे बाप को कर रहे हैं। मैं उस प्रेम की बात नहीं कर रहा हूं; वह तो भय का ही जाल है। पति भयभीत है, पत्नी भयभीत है, दोनों भयभीत हैं। दोनों भयभीत भय के कारण साथ खड़े हो गए हैं। दूसरा साथ खड़ा हो तो आपको भरोसा आता है, कि लगता है अकेले नहीं हैं। चाहे दूसरा भी भयभीत क्यों न हो, उसकी मौजूदगी से भय कम होता हुआ मालूम पड़ता है।
यह तो दूसरा मौजूद है। रात आप अकेले गली से गुजरते हैं, जहां अंधेरा हो, तो सीटी बजाते हैं। खुद की सीटी सुनकर भी भरोसा आता है, लगता है, कोई डर की बात नहीं। गीत गुनगुनाते हैं, खुद की आवाज सुनकर ऐसा लगता है, कोई साथ है। या कम से कम इतना हो जाता है कि गीत की गुनगुनाहट में भूल जाते हैं कि अंधेरा है, गीत की गुनगुनाहट में भूल जाते हैं कि गली सूनी है, कोई भी नहीं है। गीत में डूब जाते हैं, तो गली भूल जाती है।
पति पत्नी में डूबकर भूल रहा है, पत्नी पति में डूबकर भूल रही है, मां बच्चों में भूल रही है, मित्र मित्रों में भूल रहे हैं। हम कहीं अपने को भुला रहे हैं। भुलाने में कम से कम जितना समय बीत जाता है, उतनी देर कंपन का पता नहीं चलता कि मृत्यु है, भय छिपा रह जाता है।
नहीं, उस प्रेम की मैं बात नहीं कर रहा हूं। मैं उस प्रेम की बात कर रहा हूं, जिसका किसी से कोई भी संबंध नहीं, जो असंग है। इसका यह अर्थ नहीं कि वह प्रेम जन्मेगा, तो तुम पत्नी को छोड़कर भाग जाओगे, कि बच्चों से हट जाओगे। वह प्र्रेम जन्मेगा, तो पत्नी-भाव विसर्जित हो जाएगा। तुम्हारा बच्चा तुम्हारा है, यह भाव चला जाएगा। परमात्मा का है, यह भाव रह जाएगा, तुम निमित्त मात्र हो। और तुम्हारा प्रेम अहर्निश बरसता रहेगा। कौन पात्र, कौन अपात्र, यह सवाल न रहेगा। तुम नदी की तरह बहोगे और जिसको भी प्यास हो, वह अपने पात्र में तुम्हें भर ले और ले जाए। तुम्हारा दान निर्बाध हो जाएगा।
मेरे प्रेम से तुम्हारा भय न मिटेगा, मेरे प्रेम में डूबकर तुम्हारा
भय भूल सकता है। और अगर भूल जाए, तो मेरा प्रेम एक नशा हुआ, एक नशे की भांति हुआ, जिसने तुम्हें नुकसान पहुंचाया। तो मैं सदा सजग हूं कि मेरे प्रेम में तुम्हारा भय छिपे न। मेरा प्रेम तभी प्रेम है, जब तुम्हारा भय उघड़े।

मैं तुम्हारे घाव की मलहम-पट्टी करने को उत्सुक नहीं हूं। तुम्हारा घाव मिट जाए जड़-मूल से, मेरी उत्सुकता वहां है। चाहे कितना ही समय लगे और कितना ही श्रम हो, लेकिन तुम घाव-मुक्त हो जाओ।
और जल्दी कुछ है भी नहीं। ऐसे भी तुमने बहुत-बहुत जन्म गंवाए हैं, जल्दी कुछ है भी नहीं। जल्दी में कहीं तुम घाव को छिपाने की कोशिश न करने लगो। छिपाना सदा आसान है, मलहम-पट्टी कर लेने से सुविधा है। या ऐसी दवाएं तुम्हें दी जा सकती हैं कि तुम्हें दर्द का पता न चले।
सिद्धांत और शास्त्र ऐसी ही दवाएं हैं, जिनसे तुम्हें दर्द का पता नहीं चलता। तो दर्द है, घाव है। और धर्म की उत्सुकता न तो तुम्हारे दर्द को भुलाने में है, न तुम्हारे दर्द को छिपाने में है। धर्म की उत्सुकता तो तुम्हारे जीवन से सारी मवाद, सारा दर्द, सारी पीड़ा, जड़-मूल से अलग हो जाए, तुम पूर्ण मुक्त हो जाओ, इसमें है।

प्रश्नः ओशो, जब आप चुप बैठते हैं, तो वह मौन पकड़ में नहीं आता। लेकिन
जब आप बोलने लगते हैं, तो दो वाक्यों के, दो शब्दों के बीच कुछ मौन की झलक मिलती है। लेकिन आपकी वाणी का अर्थ समझने में इतना मोह होता है कि वह मौन छूटता-छूटता जाता है। तो कृपया समझाएं कि जब हम सुनते हैं, तो आपको कैसे सुनें?

ऐसा होगा, स्वाभाविक है। जब मैं बिल्कुल चुप बैठा हूं, तब तुम चुप नहीं बैठ पाते, तब तुम्हारे भीतर विचारों की धारा चलती है, अंतर-धारा बहती है, तब तुम अपने से बात करते हो। बात करने की आदत इतनी गहन हो गई है, इतनी पत्थर की लकीर की तरह हो गई है कि एक क्षण को भी भीतर तुम विश्राम को उपलब्ध नहीं होते। अगर मैं बिल्कुल चुप बैठा हूं, तो तुम मुझे भूल ही जाओगे। तुम्हारे भीतर की धारा सक्रिय हो जाएगी, तुम्हारी पुरानी आदत तुम्हें पकड़ लेगी, तुम अंतर-वार्ता में लीन हो जाओगे। मोनोलॉग है, अकेले ही बोलते हो, लेकिन बोलते हो। फिर मेरा मौन भी तुम्हें दिखाई पड़ना मुश्किल है, क्योंकि वही हमें दिखाई पड़ता है, जिसकी पृष्ठभूमि में विपरीत मौजूद हो।
एक मनोवैज्ञानिक एक विश्वविद्यालय में एक प्रयोग कर रहा था। उसने एक काले बड़े ब्लैकबोर्ड पर एक छोटा-सा सफेद चिह्न बना दिया और विद्यार्थियों से पूछा कि तुम्हें क्या दिखाई पड़ता है? उनमें से एक को भी बड़ा ब्लैकबोर्ड दिखाई नहीं पड़ा, सभी ने कहा कि एक छोटा सफेद चिह्न दिखाई पड़ता है। वह छोटा जो सफेद चिह्न है, उसकी पृष्ठभूमि में काली पर्त है, ब्लैकबोर्ड है। वह उभरकर दिखाई पड़ता है।
अगर मैं बिल्कुल चुप बैठा हूं, तो एकरस है मौन, उसके विपरीत कुछ भी नहीं है। जैसे किसी ने सफेद दीवाल पर सफेद चिह्न बना दिया, वह दिखाई नहीं पड़ेगा, वह कैसे दिखाई पड़ेगा? उसको दिखाने के लिए विपरीत चाहिए। अगर मैं चुप बैठा हूं, तो सफेद दीवाल पर सफेद चिह्न है, उसे तुम चूक जाओगे।
अगर मैं बोल रहा हूं, तो मेरे हर दो शब्दों के बीच में मौन है। शब्द तो तुम्हारे लिए बोल रहा हूं, अपने लिए तो मैं मौन ही हूं। शब्द तो ऊपर-ऊपर हैं, भीतर तो मैं मौन ही हूं। मेरे भीतर कोई अंतर-वार्ता नहीं है। जब मैं अकेला बैठा हूं तो मैं भीतर कोई बात नहीं कर रहा हूं। बोलना तुम्हारे लिए है, चुप होना मेरा स्वभाव है। तो हर दो शब्द के बीच में मैं मौजूद हूं। और जब एक शब्द समाप्त हुआ और दूसरा शुरू नहीं हुआ, तो बीच में मेरा मौन है। दो तरफ काली रेखा है, बीच में शुभ्र रेखा है। इन दो काली रेखाओं के कारण तुम्हें मेरा मौन बोलते समय ज्यादा प्रगट मालूम होगा, चुप रहते समय ज्यादा प्रगट नहीं मालूम होगा। क्योंकि हमें वे ही चीजें दिखाई पड़ती हैं जो विपरीत की पृष्ठभूमि में हैं।
अगर जगत में कुरूप लोग खो जाएं, तो कौन सुंदर होगा? और जगत में अगर शोरगुल न हो, तो तुम्हें शांति का पता कैसे चलेगा? और अंधेरी रात है, इसलिए दीए का प्रकाश मालूम होता है। मृत्यु है, इसलिए जीवन में रस मालूम होता है। घृणा है, इसलिए प्रेम का एक उन्माद है। और कांटे चुभते हैं, इसलिए

प्यार फूलों पर आता है। विपरीत के कारण तुम्हें दिखाई पड़ता है, अनुभव होता है।
तो जब मैं बोल रहा हूं, दो शब्दों के झंकार के बीच शून्य है, खाली जगह है, वह खाली जगह तुम्हें प्रगाढ़ होकर दिखाई पड़ेगी। लेकिन तब तुम्हारी अड़चन भी मैं समझता हूं, तब तुम क्या करो? तुम शब्द का अर्थ समझो या मौन का? क्योंकि अगर तुम शब्द का अर्थ समझो तो मौन खो जाता है। क्षणभर को मौन झलकता है, अगर तुम पहले शब्द की स्मृति से भरे हो, तो चूक जाओगे। अगर तुम दूसरे शब्द की प्रतीक्षा कर रहे हो, तो चूक जाओगे। यह बारीक जो लकीर मौन की है, दोनों तरफ किनारे शब्द के हैं, अगर उन पर तुम्हारा ध्यान है, तो तुम यह लकीर चूक जाओगे। और अगर तुमने इस मौन पर ध्यान दिया, तो वे शब्द तुम्हारे भीतर प्रवेश न कर पाएंगे। तुम क्या करो?
अगर तुम अपनी मानोगे, तो तुम शब्दों पर ध्यान दोगे। अगर तुम मेरी मानो, तो तुम शब्दों की फिक्र छोड़ो, तुम मौन पर ध्यान दो। क्योंकि जो मैं कह रहा हूं, उसका अर्थ शब्दों में नहीं, मौन में है। जो मैं तुम्हें जतलाना चाहता हूं, वह पंक्तियों में नहीं, पंक्तियों के बीच में है, जहां खाली जगह है। और अगर मैं यह शब्दों का प्रयोग कर रहा हूं, तो बस ब्लैकबोर्ड की तरह, ताकि तुम्हें सफेद बिंदु दिखाई पड़ जाए। सफेद बिंदु दिखाने के लिए ब्लैकबोर्ड है, ब्लैकबोर्ड का अपना कोई भी अर्थ नहीं है।
तो जब तुम मुझे सुन रहे हो, तुम अर्थ की फिक्र छोड़ो। अर्थ शून्य से प्रगट होगा, अर्थ मौन से तुम्हें मिलेगा। तुम शब्द को सुनो, लेकिन पकड़ो मौन को, तुम्हारा ध्यान मौन पर हो। जब एक शब्द खो जाए और दूसरा उठे न, तभी तुम मुझसे जुड़ोगे, उसी जगह संधि है, उसी जगह द्वार खुला है। इसलिए तुम इसकी बहुत चिंता मत करो कि मैं क्या कह रहा हूं, तुम इसकी ही चिंता करो कि कहने के बीच में मैं क्या नहीं कह रहा हूं, कहां-कहां रिक्तता है। तुम रिक्तता से ही मेरे भीतर प्रवेश करोगे और मैं भी रिक्तता से ही तुम्हारे भीतर प्रवेश कर सकता हूं।
अगर मैं न बोलूं, तो तुम भीतर बोलते रहते हो, इसलिए फिर मेरे मौन को नहीं पकड़ पाते। मैं बोलता हूं, तो तुम्हारा बोलना रुक जाता है। तुम व्यस्त हो जाते हो, इसलिए भीतर की धारा छिन्न-छिन्न हो जाती है। तुम उत्सुक हो जाते हो सुनने में, तो तुम्हारे भीतर की वार्ता टूट जाती है। तो बोलने का एक फायदा है, वह यह नहीं कि जो मैं कहना चाहता हूं वह तुमसे कह सकूंगा, बोलने का एक फायदा है कि तुम्हारे भीतर बोलने की जो धारा है, वह छिन्न-भिन्न हो जाएगी।
बोलता हूं ताकि तुम न बोलो। बस इतना अर्थ है।
लेकिन जो मैं तुमसे कहना चाहता हूं, वह शब्दों के बीच-बीच में है, निःशब्द में है। तुम चिंता मत करो कि मैं क्या बोल रहा हूं, तुम्हारा ध्यान बीच के शून्य में उतरे। और परम-आनंद की तुम्हें प्रतीति होगी। उस क्षण में न तो मैं बचूंगा, न तुम बचोगे। उस क्षण में न बोलने वाला होगा, न सुनने वाला होगा। उस क्षण में दोनों के भीतर जो छिपा है वह एक हो जाएगा, मिल जाएगा। उस क्षण में एक गहन आलिंगन है, उस क्षण में दो नदियों का संगम है, उस क्षण में दो चेतनाएं अपनी सीमाएं छोड़ देती हैं, असीम हो जाती हैं। तुम्हारा मन तो कहेगा कि सुनो मैं क्या कह रहा हूं। लेकिन कुछ भी जो महत्वपूर्ण है, कहा नहीं जा सकता। शब्द सभी थोथे हैं, शब्दों का कोई भी मूल्य नहीं है। शब्द तो सतह पर उठी हुई झाग है। सागर की लहरों पर झाग दूर से देखने पर बड़ी प्यारी मालूम पड़ती है। लगता है, जैसे कोई रजतमुकुट पहनकर आती हो सागर की लहर; ऐसा लगता है, जैसे फूल खिले हैं सागर की लहर पर, शुभ्र, अनंत फूल--पर दूर से। पास जाकर अगर तुम झाग को हाथ में लो, तो पानी के बुलबुले हैं, सब बिखर जाएंगे।
शब्द चेतना के सागर पर उठे झाग से ज्यादा नहीं हैं। और अगर चेतना गहरी हो, तो सुंदर झाग उठती है। और अगर चेतना भीतर संगीतपूर्ण हो, तो झाग में भी एक संगीत होता है। भीतर जीवन शांत हुआ हो, तो झाग में एक तरह के काव्य का जन्म होता है।

मैं जो बोल रहा हूं, वह झाग है। उसमें अगर तुम्हें एक काव्य की प्रतीति हो, सौंदर्य का अनुभव हो, तो उसे तुम सिर्फ इशारा समझना। उस झाग को मुट्ठियों में बांधकर तिजोरी में बंद करने से कुछ भी न होगा। वह झाग जहां से आती हो, वह जिस शून्य से उठती हो, जिस गहन से उसका जन्म होता हो, उसकी चिंता करना। शब्द झाग हैं, शून्य में सागर है। तो जब दो शब्दों के बीच मैं मौन हूं, तभी द्वार खुले हैं मंदिर के, तभी तुम प्रवेश कर जाना।
तो पूरा गेस्टाल्ट बदलना होगा। यह गेस्टाल्ट शब्द समझने जैसा है, जर्मन शब्द है। और जर्मनी में एक मनोवैज्ञानिकों का संप्रदाय है, गेस्टाल्ट साइकोलॉजी।
कभी तुमने बच्चों की पत्रिकाओं में देखा होगा, एक चित्र बना होता है,
एक बूढ़ी स्त्री का। लेकिन उस बूढ़ी स्त्री में एक जवान स्त्री भी छिपी होती है, उस चित्र में। अगर तुम गौर से देखो, तो तुम्हें जवान स्त्री दिखाई पड़ने लगती है। अगर तुम गौर से देखते ही रहो, तो फिर जवान स्त्री बदल जाती है और बूढ़ी स्त्री दिखाई पड़ने लगती है। उन्हीं रेखाओं में दोनों बनी हैं।
एक मजे की बात है कि दोनों एक साथ नहीं देखी जा सकतीं। तुम दोनों देख सकते हो, पहले तुमने बूढ़ी स्त्री देख ली, फिर तुमने जवान भी खोज ली, अब तुम दोनों से परिचित हो। लेकिन जब भी तुम देखोगे, तो एक को ही देख पाओगे। और तुम्हें पता है कि दूसरी मौजूद है, इसलिए अब कोई ना-पता का सवाल नहीं है, अज्ञान का कोई सवाल नहीं है। लेकिन जब तुम जवान को देखोगे, तब बूढ़ी स्त्री को तुम न देख पाओगे। जब तुम बूढ़ी को देखोगे, तो जवान खो जाएगी। और तुम्हें पता है इस चित्र में दोनों हैं अब, लेकिन दोनों को साथ नहीं देखा जा सकता। इसको जर्मन भाषा में वे कहते हैं, गेस्टाल्ट, एक ढांचा।
तो जब तुम मेरे शब्द सुनोगे, तो मौन को न सुन पाओगे, गेस्टाल्ट बदल गया। तब तुम्हारी पूरी चेतना शब्द को पकड़ने में लगी है, तब शून्य से तुम वंचित रह जाओगे। और जब तुम मेरे शून्य को पकड़ोगे, तब तुम शब्द को न पकड़ पाओगे। जब जवान स्त्री दिखाई पड़ेगी, तो बूढ़ी दिखाई न पड़ेगी; बूढ़ी दिखाई पड़ेगी, तो जवान न दिखाई पड़ेगी। दोनों मौजूद हैं, एक को ही तुम पकड़ पाओगे। तुम्हारा मन कहेगा, शब्द को पकड़ो। क्योंकि मन सदा शब्द पर ही जीता है। शब्द उसका भोजन है। मन शब्द से बड़ा होता है, मन शब्द से संपदाशाली होता है, मन की सारी संपदा शब्द है। जहां शब्द गए, मन गया। शब्द न बचे, मन न बचा। तो मन तो कहेगा, पकड़ो शब्द को, मूल्यवान है, एक-एक शब्द को कंठस्थ कर लो, इन्हीं में सब सार छिपा है, सब सत्य इन्हीं में है, एक भी शब्द चूक न जाए, पी जाओ। मन तुमसे यही कहेगा। मन तुमसे यही सदा कहता रहा है।
फिर तुमने कितने शास्त्र कंठस्थ किए हैं! कितनी गीता, कुरान, बाइबिल तुम पी चुके हो! फिर भी सत्य की कोई झलक नहीं है। मेरे शब्द भी तुम्हारे भीतर चले जाएं, इकट्ठे हो जाएं, तो भी सत्य की कोई झलक नहीं हो पाएगी। जहां गीता हार जाती है, कुरान हार जाते हैं, वहां मैं भी जीत न पाऊंगा। कोई शब्द कभी नहीं जीत पाएगा। तुम्हारा मन शब्द को तो पी लेगा और मजबूत हो जाएगा। मन की मत सुनना।
अगर मेरी सुनो, तो शून्य को, मौन को पकड़ना और पीना। इसकी चिंता ही मत करो कि मैं क्या कह रहा हूं। मैं चिंता नहीं कर रहा हूं कि मैं क्या कह रहा हूं! कल मैंने कहा, क्या कहा, उसकी मुझे आज चिंता नहीं है। आज क्या कह रहा हूं, कल उसकी चिंता न होगी।
इसलिए बहुत मित्र बड़े कष्ट में पड़ते हैं। वे कहते हैं, कल आपने कुछ कहा, आज आप कुछ कहते हैं! हम किस बात को मानें?
उनकी तकलीफ मेरे समझ में आती है, क्योंकि वे शब्दों को पकड़ रहे हैं। कहना मेरे लिए मूल्यवान ही नहीं है, मैं तो कहने के बीच में जो जगह खाली है, वही मूल्यवान है। कल मैंने दूसरे ब्लैकबोर्ड का उपयोग किया था, आज दूसरे का कर रहा हूं। ब्लैकबोर्ड निष्प्रयोजन है, वह जो सफेद बिंदु वहां है, वही प्रयोजन है। कल दो दूसरे शब्दों के बीच मैंने अपना द्वार शून्य का तुम्हारे लिए खोला था, आज दूसरे दो शब्दों के बीच खोलता हूं। मेरे लिए संगत उस बीच के शून्य की है। वे दरवाजे लकड़ी के बने हैं, कि चांदी के कि सोने के, कि उन पर फूल खुदे हैं कि पत्ते, कि सादे हैं कि बड़े अलंकृत--

व्यर्थ है बात। वह जो दरवाजा खुला है, वह जो खाली जगह है, जहां से तुम मेरे भीतर आ सकते हो और मैं तुम्हारे भीतर जा सकता हूं, उससे प्रयोजन है। शब्दों को जो सुनेगा, वह पाएगा कि मेरे शब्दों में बड़ी असंगतियां हैं। कभी मैं कुछ कहता हूं, कभी कुछ कहता हूं। निश्चित ही वे ठीक कहते हैं, असंगतियां हैं, लेकिन उससे प्रयोजन ही नहीं है। शब्द मेरे लिए केवल निमित्त है शून्य को खोलने के लिए। और जो शून्य को देखेगा, वह पाएगा कि मैं बिल्कुल संगत हूं। क्योंकि कल भी वही शून्य खोला था, आज भी वही शून्य खोला है, आगे भी वही शून्य खोलता रहूंगा। द्वार बदलते जाएंगे। द्वार बदलने ही चाहिए। उसका उपयोग है, द्वार के बदल जाने का। अगर मैंने जो शब्द कल कहे थे, वही मैं आज कहूं, वही परसों भी कहे थे, वही परसों भी कहूंगा--तुम सो जाओगे। तुम्हारे भीतर की वार्ता शुरू हो जाएगी।
इसीलिए मंदिरों में लोग कथा सुनते समय सोते हैं। उसका कारण है। उसका कारण है, वह कथा परिचित है, सुनने योग्य कुछ भी नहीं है, तो सजग कैसे रहें? उन्हें पता है कि राम की सीता खो जाती है और उन्हें पता है कि रावण चुराकर ले जाता है और उन्हें कथा का अंत भी मालूम है कि सीता वापस लौट आएगी, युद्ध होगा और राम जीतेंगे। सब पता है। इतनी बार पता है कि अब इसमें कुछ सुनने को नहीं बचा। और जब सुनने को नया न हो, तो नींद पकड़ लेती है। पुराने की पुनरुक्ति नींद लाती है। माताएं जानती हैं और आप नहीं जानते। वे बच्चे को कहती हैं, सो जा राजा बेटा, सो जा राजा बेटा, इसको वे गीत बना लेती हैं, लोरी। एक ही लकीर दोहराए चली जाती हैं, सो जा राजा बेटा, सो जा... । थोड़ी देर बच्चा सुनता है फिर ऊब जाता है। वही बात, वही बात, वही बात, सो जाता है। तुम्हारे मंत्र लोरियों का काम करते हैं, तुम बैठे हो और कह रहे हो, राम, राम, राम, राम... नींद लग जाती है, तंद्रा पकड़ लेती है। क्योंकि राम-राम को कब तक सुनोगे? वही, वही। ऊब पैदा होती है, ऊब से तंद्रा आती है, तंद्रा नींद में ले जाती है।
अगर मैं रोज तुमसे वही कहूंगा, वे ही शब्द कहूंगा, तुम सोने लगोगे। और यहां मैं तुम्हें जगाने की चेष्टा कर रहा हूं, सुलाने की नहीं। इसलिए शब्द मैं रोज बदलता रहूंगा, शब्द मेरे लिए अर्थहीन हैं। उनमें कोई भी संगति- असंगति का सवाल नहीं है। मैं क्या कहता हूं, उसमें मुझे रस ही नहीं है। कहने के बीच-बीच में मैं जो जगह छोड़ देता हूं, उसमें ही मेरा रस है, वही मेरा निमंत्रण है। उसे तुम चूके, तो सब तुम चूक गए।
तुम मेरे सब शब्द कंठस्थ कर लो, उससे कुछ सार नहीं, और तुम्हारा बोझ बढ़ जाएगा। वैसे ही बोझ काफी है। वैसे ही तुम जरूरत से ज्यादा जानते हो। वैसे ही तुम्हारा ज्ञान तुम्हारी जान ले रहा है। ये शब्द और तुम्हारे ज्ञान को बढ़ा देंगे, तुम और बड़े जानकार हो जाओगे। तुम कुशल तर्क कर सकोगे, तुम समझा सकोगे, तुम दूसरे को बदल सकोगे, उसकी बुद्धि को क्षत-विक्षत कर सकोगे। तुम्हें हराना मुश्किल होगा। पर तुम तुम ही रहोगे, बीमार, रुग्ण, कहीं पहुंचे हुए नहीं। जहां-जहां तुम पाओ कि तुम्हारा मन हट गया है, जहां-जहां तुम पाओ कि शब्दों के बीच का मौन तुम्हें सुनाई पड़ा है, वहां तुम डुबकी लगा देना। वही घाट है, जहां से पार हुआ जाता है। वही तीर्थ है, जहां से नाव उस किनारे की तरफ जाती है।
कुछ और?

प्रश्नः
ओशो, जब हम प्रश्न पूछने लगते हैं तो हमें अनंत दूरी महसूस होती है, और
जब आप बोलने लगते हैं, तो न जाने हम कहां पहुंच जाते हैं आपकी विधि से। सुनते हुए कभी खुशी फूट पड़ती है, कभी आंसू उमड़ आते हैं। कभी कुछ होता है, कभी कुछ। कभी आप तूफान बनकर झकझोर देते हैं हमें, कभी बादल बनकर बरस जाते हैं।
क्या है यह?

हूं! जब भी प्रश्न पूछोगे, तो दूरी मालूम होगी। क्योंकि प्रश्न पूछते समय तुम्हारे मन को तत्पर होना पड़ता है, तुम्हें सोचना पड़ता है, तुम्हें

विचारना पड़ता है। जब तुम विचारते हो, सोचते हो, तब दूरी पैदा हो जाएगी। तब तुम्हारा मन सक्रिय है। मन की सक्रियता में ही तो ध्यान खो गया। और जब तुम सुनते हो, तब तुम्हारा मन निष्क्रिय है, उसको करने को कुछ भी न बचा, तब तुम एक पैसीविटी, एक निष्क्रियता की भांति सुनते हो।
जब तुम पूछते हो, तब एक आक्रमण है। प्रश्न आक्रमक है, उसमें एक हमला है, एक कुतूहल है, चिंता है, कुछ जानने का तनाव है। प्रश्न एक भीतरी उथल-पुथल है, इसलिए दूरी बढ़ जाती है। जैसे ही तुम पूछ चुके, मन विश्राम को उपलब्ध हुआ। अब तुम्हें कुछ करना नहीं, सिर्फ सुनना है। सुनना कोई क्रिया नहीं है, सुनने के लिए तुम्हें कुछ भी नहीं करना है। तुम्हें सिर्फ यहां होना है। सुनने के लिए तुम्हें कुछ भी प्रयत्न और प्रयास अपेक्षित नहीं है। तुम बस खाली बैठे रहो और तुम सुन लोगे। जैसे ही तुम सुनते हो, खाली बैठ जाते हो, कुछ करते नहीं, निष्क्रिय हो जाते हो, ध्यान का सुर बंध जाता है। फिर मैं जो बोल रहा हूं, उस बोलने में अगर तुम्हारा मन पूरी तरह लीन हो गया, अगर तुम भूल ही गए कि तुम यहां हो, तुम मिट ही गए, तो जरूर लगेगा कि तुम किसी और लोक में प्रवेश कर गए। इसी लोक में तुम कभी भी प्रवेश कर सकते हो-- मेरे बिना भी--सिर्फ सूत्र पकड़ लेने की जरूरत है।
सूत्र यह है कि जब तुम्हारा मन कुछ भी नहीं कर रहा है, तब तुम दूसरे लोक में प्रवेश कर जाते हो। तब एक नया आयाम खुल गया, जो अपरिचित था। अज्ञात निकट आ गया, ज्ञात छूट गया। अगर मुझे सुनते वक्त तुम्हें लगता है, किसी और लोक में पहुंच गए, तो इसे तुम मुझसे मत जोड़ लेना, अन्यथा एक निर्भरता, एक डिपेंडेन्स पैदा हो जाएगी। तब तुम मेरे गुलाम हो जाओगे, जो कि अध्यात्म की तरफ जाने में सबसे बड़ी बाधा है। तब तुम परतंत्र हो जाओगे, तब तुम्हें लगेगा कि तुम्हारा दूसरे लोक में प्रवेश मेरे द्वारा होता है, जो कि गलत है। मैं केवल निमित्त हूं, तुम ही जाते हो, तुम ही उतर आते हो। लेकिन तुम्हारी आंख चूंकि मुझ पर लगी है, इसलिए भ्रांति पैदा हो सकती है।
तो इस प्रयोग को तुम घर पर भी करना, एकांत में भी करना। कभी पक्षियों
के साथ करना, कभी बहते हुए झरने के साथ करना, कभी हवाएं गुजरती हों वृक्षों के पत्तों को झकझोरती हुई, उस आवाज को सुनते हुए करना। तुम चुप हो जाना। जैसे तुम चुप मेरे पास हो जाते हो, वैसे ही तुम सरिता के पास चुप हो जाना। सरिता तो तुम्हारी गुरु नहीं है, सरिता को पता भी नहीं कि तुम वहां किनारे बैठे हो। हवाओं का तुमसे कुछ लेना-देना नहीं है, वृक्षों में आवाज गूंजती है, वह तुम्हारे लिए नहीं गूंजती, वृक्ष के पास बैठकर उस आवाज को सुनना, तत्क्षण तुम दूसरे लोक में प्रवेश कर जाओगे। और तब तुम्हें ज्ञात होगा कि गुरु पर निर्भर हो जाना भी एक नए संसार का निर्माण है, वह एक नया बंधन है। तुम गुरु बदल लेते हो, वह सिर्फ बंधन को बदलना है। एक कारागृह से दूसरे कारागृह में प्रवेश कर जाते हो। एक कारागृह छूट भी नहीं पाता कि तुम दूसरे का आयोजन कर लेते हो।
मुझ पर अगर तुम निर्भर हुए तो यह सत्संग घातक हो गया। अगर मैं तुम्हारा एकमात्र द्वार बन गया दूसरे लोक में प्रवेश का, तो यह द्वार भी कारागृह में ही ले जाएगा। तब मेरे बिना तुम पीड़ित होने लगोगे। तब मैं एक व्यसन हूं। अगर गुरु व्यसन बन जाए, तो सारी घटना ही व्यर्थ हो गई।
इसलिए जो तुम्हें दूसरे लोक की थोड़ी-सी झलक शांत चुप बैठकर, श्रवण करते हुए... महावीर ने ऐसे व्यक्ति को ही श्रावक कहा है। सुनते हुए जिसे दूसरे लोक का अनुभव हुआ वह श्रावक। महावीर कहते हैं कि चार तरह के घाट हैं, चार तीर्थ हैं, जहां से यात्रा होती है दूसरी तरफ, दूसरे लोक की तरफ। एक साधु, एक साध्वी, एक श्रावक, एक श्राविका। महावीर ने कहा, कुछ लोग तप करके वहां पहुंचते हैं, कुछ लोग सिर्फ सुनकर पहुंच जाते हैं। साधु और साध्वी तो बड़ी मेहनत करते हैं, तब उस तरफ का किनारा दिखाई पड़ता है, लेकिन सद श्रावक-श्राविका सिर्फ सुनकर उस दूसरे लोक में प्रवेश कर जाते हैं। कृष्णमूर्ति निरंतर राइट लिसनिंग पर जोर देते रहते हैं, ठीक सुनो। सम्यक श्रवण। मगर सम्यक श्रवण भी खतरनाक हो सकता है। उसका उपयोग है, क्योंकि पहली झलकें वहां से मिल जाती हैं। फिर उन झलकों को तुम जीवन का आधार मत बना लेना। फिर उन झलकों को तुम विभिन्न स्थितियों में पाने की

कोशिश करना, ताकि गुरु से मुक्ति हो सके। तो कभी वृक्ष के पास, कभी नदी के पास, कभी बीच बाजार में खड़े होकर सुनना आवाजों को और चुप हो जाना। वहां भी तुम्हें वही दूसरा लोक तत्क्षण खुल जाएगा।
जब तुम पूछते हो, पूछना चाहते हो, तब तुम भीतर बेचैन होते हो। प्रश्न तुम्हें उद्विग्न करते हैं और प्रश्न चित्त को आक्रामक बनाते हैं। प्रश्न भी एक तरह की गहरी हिंसा है। लेकिन जब तुम सुनते हो, तो चित्त शांत हो जाता है, तनाव बैठ जाता है, लहरें खो जाती हैं। उस सुनने में दूसरे लोक की झलक मिलती है।
निश्चित ही कभी मैं एक तूफान की तरह तुम्हें हिलाता हूं और कभी एक वृक्ष की घनी छाया की तरह तुम्हें विश्राम देता हूं। बहुत बार तुम्हें जरूरत है कि तुम हिलाए जाओ, ताकि तुममें बहुत कुछ, जो कचरे की भांति चिपका है, वह गिर जाए। और बहुत बार जरूरत है कि तुम्हें विश्राम दिया जाए, ताकि तुम्हारे भीतर जो नया पैदा हो रहा है, वह ठीक से जम जाए।
माली कभी पौधे को काटता है, कभी पानी देता है। कभी पौधे को झकझोरकर उसके पुराने पत्तों को गिराता है, कभी लकड़ी का सहारा देकर उसको आराम देता है। कभी पौधे को धूप में रखता है और कभी छाया में हटा लेता है।
तुम एक नए पैदा होते पौधे की भांति हो और तुम्हें बहुत चीजों की जरूरत है। अगर तुम्हें छाया ही छाया मिले, तो तुम धीरे-धीरे निर्वीर्य हो जाओगे। अगर तुम पर शांति ही शांति बरसाई जाए तो तुम मुर्दे की भांति हो जाओगे। तुम्हारी जीवंतता खो जाएगी, तुम्हारा उत्साह क्षीण हो जाएगा, तुम्हारा उत्सव धीरे-धीरे शांत हो जाएगा। तुम्हारे जीवन में शांति तो होगी, लेकिन आनंद नहीं होगा। और अगर आनंद न हो तो अकेली शांति निर्जीव है, वह मुर्दे की है, मरघट की है।
तो कभी तुम्हें तूफान की तरह जीवित करना जरूरी है, कभी तुम्हें चुनौती देनी जरूरी है और तुम्हें दूर का निमंत्रण देना जरूरी है। ताकि तुम्हारी उमंग उठे और तुम अनंत की यात्रा पर जाने के लिए दौड़ पड़ो। ताकि तुम जीवित भी रहो और तुम्हारी शांति मौत न बन जाए।
अन्यथा तुम पाओगे बहुत से साधु-संन्यासियों को, शांति की तलाश में वे करीब-करीब मर चुके हैं। वे पत्थर की मूर्तियों की भांति हैं। उनके भीतर हृदय धड़कता नहीं, क्योंकि हृदय की धड़कन से तो उन्हें डर लगता है कि कहीं अशांति न हो जाए। वे डरे-डरे श्वास लेते हैं, क्योंकि हर श्वास उत्पात पैदा कर सकती है। वे जीते हैं भयभीत, सम्हलकर, कि कुछ गड़बड़ न हो जाए। उनकी शांति बड़ी कमजोर है, बड़ी डरी हुई है, कोई भी चीज उसे नष्ट कर सकती है। वे उन पौधों की तरह हैं, जो छाया में ही रखे गए। अब उन्हें धूप में लाना मुश्किल है, धूप में वे कुम्हलाएंगे और मर जाएंगे।
लेकिन अकेली छाया का कहीं कोई जीवन है? धूप और छाया दोनों चाहिए, क्योंकि धूप जीवन देती है। लेकिन जीवन भी अति हो जाए, तो विक्षिप्तता पैदा हो जाती है। ऊर्जा इतनी हो जाए, जो तुम सम्हाल न सको, तो तुम पागल हो जाओगे। तो दोनों करना होगा, और दोनों के बीच एक संगीत पैदा करना होगा। तुम्हें झकझोरना भी होगा, तुम्हें विश्राम भी देना होगा। तुम्हें धूप में भी छोड़ना होगा, तुम्हें छाया में भी ले आना होगा। क्योंकि मैं तुम्हें सिर्फ शांति के जगत में नहीं ले जाना चाहता, मैं तुम्हें आनंद के जगत में ले जाना चाहता हूं।
नाचती हुई शांति का नाम आनंद है। उत्सव से भरी, उमंग से भरी शांति का नाम आनंद है। आनंद एक ऐसी सक्रियता है, जिसमें केंद्र पर निष्क्रियता बनी रहती है। आनंद एक ऐसा नृत्य है, जिसमें नृत्यकार खो जाता है। नृत्यकार बिल्कुल शांत होता है और नृत्य चलता है। आनंद ऐसी छलांग है, जहां हम ऊंची से ऊंची ऊंचाई को छूते हैं और फिर भी जमीन को कभी छोड़ते नहीं।
अधूरे को साधना सरल है, पूर्ण को साधना कठिन है। सांसारिक लोग जीवन को साधते हैं, तथाकथित साधु-संन्यासी मृत्यु को साधते हैं। मैं तुम्हें दोनों को एक साथ सधवाना चाहता हूं। तुम्हारा अहंकार तो बिल्कुल मृत हो जाए और तुम्हारा परमात्मा पूर्ण जीवित हो। मृत्यु तुम्हारा बायां हाथ हो, तो जीवन तुम्हारा दायां हाथ हो। एक श्वास तुम्हारी मृत्यु हो, तो दूसरी

श्वास तुम्हारी जीवन हो। तुम तूफान की तरह नाचते हुए युवा, ऊर्जा से भरे, ऊर्जा की एक बाढ़, और तुम मौन भी, शून्य भी, शांत भी। कृष्ण की तरह तुम्हारे ओंठ पर बांसुरी भी हो और बुद्ध की तरह तुम बोधि-वृक्ष के नीचे मौन भी बैठे रहो। बांसुरी तुम्हें व्यथित न करे और मौन तुम्हारा बांसुरी का दुश्मन न हो जाए।
जिस दिन शून्य ओंठों पर बांसुरी रख दी जाती है, जिस दिन मौन से संगीत पैदा होने लगता है, उस दिन तुमने जानी जीवन की चरम सार्थकता, उस दिन निष्पत्ति है, उसके पार फिर कुछ भी नहीं है।
इसलिए कभी तुम्हें हिलाता हूं, ताकि बांसुरी हाथ से न छूट जाए। कभी तुम्हें विश्राम में रखता हूं, ताकि बांसुरी से बहने वाला शून्य जन्म पा सके। शून्य का स्वर, मौन का संगीत, नृत्य करता हुआ आनंद--यही लक्ष्य है।
आज इतना ही।

नहिं राम बिन ठांव
छठवां प्रवचन

रामः शून्यता की खोज

प्रश्नः अलग-अलग धर्मों ने अलग-अलग महामंत्र पाए हैं, जैसे ओम नमो शिवाय, नमो अरिहंताणं, अल्लाहो अकबर, ओम मणि पद्मे हुम्। तो ऐसे महामंत्र कौन सी अवस्था में उतरे हैं और इनका भीतर के कौन-कौन से केंद्रों से कैसा संबंध है? और साधक इनमें से अपने लिए योग्य महामंत्र कैसे चुने?

साधक दो प्रकार की यात्राएं कर सकता है। एक यात्रा है शक्ति की और दूसरी यात्रा है शांति की। शक्ति की यात्रा सत्य की यात्रा नहीं है, शक्ति की यात्रा तो अहंकार की ही यात्रा है। फिर शक्ति धन से मिलती हो, पद से मिलती हो या मंत्र से। तुम शक्ति चाहते हो, तो सत्य नहीं चाहते हो। तुम्हारे द्वारा अर्जित की गई शक्ति शरीर की हो, मन की हो, या तथाकथित अध्यात्म की हो, तुम्हें मजबूत करेगी।
तुम जितने मजबूत हो, परमात्मा से उतने ही दूर हो। तुम्हारी शक्ति परमात्मा के समक्ष तुम्हारे अहंकार की घोषणा है। तुम्हारी शक्ति ही तुम्हारे लिए बाधा बनेगी। तुम्हारी शक्ति ही, वास्तविक अर्थों में, परमात्मा के समक्ष तुम्हारी निर्बलता है। तो जितने तुम शक्तिशाली बनोगे अपनी आंखों में, उतने ही परमात्मा के द्वार पर निर्बल होते जाओगे। इसलिए शक्ति की खोज वास्तविक साधक की खोज नहीं।
लेकिन साधक उस दिशा में जाता है। क्योंकि हम जो संसार में खोजते हैं, वही हम परमात्मा में भी खोजते हैं। जो हमें यहां नहीं मिला, उसे ही हम वहां पा लेना चाहते हैं। तो हमारे संसार और हमारे मोक्ष में एक सातत्य है, एक कंटिन्युटी है। बाजार में खोजा जिसे, वह नहीं मिला, उसे हम मंदिर में खोजते हैं। लेकिन खोज वही है। धन में जिसे खोजा, नहीं पाया, उसे हम धर्म में खोजते हैं। लेकिन खोज वही है। खोज करने वाला जरा भी बदला नहीं है। एक जगह असफल हुए, तो दूसरी जगह सफलता की आकांक्षा जमा लेते हैं।
लेकिन तुम शक्तिशाली होना क्यों चाहते हो? तुम होना चाहते हो, यही तुम्हारा दुख है। तुम मिटोगे तो आनंद घटेगा, तुम्हारी अनुपस्थिति में वर्षा होगी अमृत की, तुम्हारे रहते यह होने वाला नहीं है।
मंत्र शक्तिदायी है। तो मंत्र से शक्ति मिलती है, निश्चित मिलती है।
इसे समझ लें। मंत्र करता क्या है? मंत्र मन को एकाग्र करता है। तुम्हारी सारी बिखरी हुई मन की किरणें इकट्ठी हो जाती हैं। फिर वह मंत्र कोई भी हो--राम का नाम हो, नमोकार हो, ओम मणि पद्मे हुम हो, अल्लाहो अकबर हो--इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। तुम अपना खुद का मंत्र भी बना ले सकते हो। मंत्र में आए शब्दों का भी कोई अर्थ नहीं है। मंत्र का प्रयोजन न शब्दों से है, न अर्थ से। मंत्र का प्रयोजन मन को एकाग्र करने से है। इसलिए कुछ भी अनर्गल, अर्थहीन शब्द भी मंत्र का काम दे देंगे।
जब तुम मंत्र की रटन करते हो, तब तुम्हारे सारे विचारों की शक्ति विचारों से हटकर मंत्र में प्रवाहित होने लगती है। चित्त में मंत्र ही रह जाता है। और भीतर तुम्हारे जितने ऊर्जा के द्वार हैं, उनके बहाव की और कोई दिशा नहीं बचती। जब तुम विचार करते हो, तो तुम्हारी शक्ति अनंत-अनंत धाराओं में बह रही है। एक विचार पश्चिम जा रहा है, एक पूरब जा रहा है, एक दक्षिण जा रहा है, एक उत्तर जा रहा है। तुम बहुत तरफ बह रहे हो, जब तुम विचार कर रहे हो। इकट्ठे नहीं हो, बंटे हो, विभाजित हो। जब तुम मंत्र का जाप कर रहे हो, तब सारी ऊर्जा एक दिशा में प्रवाहित होने लगती है।
जैसे हम सूरज की किरणों को एक कांच के लेंस से इकट्ठा कर लें, तो आग पैदा हो जाती है। सूरज की किरणों में आग तो छिपी है, लेकिन पृथक-पृथक ज्यादा से ज्यादा गर्मी पैदा होगी। इकट्ठी हो जाएं, तो आग पैदा हो जाती है। ऐसे ही तुम्हारे मन में भी बड़ी आग छिपी है, अलग-अलग सिर्फ उष्णता रहती है। मंत्र उन्हें इकट्ठा करने का उपाय है। इकट्ठे होते से ही बड़ी गर्मी, बड़ी ऊर्जा पैदा होती है।

और अगर तुम सतत मंत्र का प्रयोग करते रहो, तो तुम्हारे जीवन में अनेक शक्ति की घटनाएं घटनी शुरू हो जाएंगी, जो तुम्हारे अहंकार को बड़ा रस देंगी। तुम जो कहोगे, वह सच होने लगेगा; तुम जो बोल दोगे, वैसा हो जाएगा; तुम अभिशाप दे दोगे, तो फलित हो जाएगा; तुम वरदान दे दोगे, तो पूरा हो जाएगा। क्योंकि तुम्हारी ऊर्जा इतनी इकट्ठी हो गई है कि तुम्हारे शब्द अब सार्थक होने लगेंगे।
उनकी सार्थकता का कारण यही है कि जब कोई व्यक्ति इकट्ठी ऊर्जा से कुछ कहता है, तो वह दूसरे के अचेतन तक प्रवेश कर जाता है, उसका तीर सीधा दूसरे के हृदय में चला जाता है। और दूसरे के हृदय में कोई भी बात पहुंच जाए, तो उसके परिणाम शुरू हो जाते हैं।
अगर तुमने किसी व्यक्ति को कह दिया कि कल सुबह तुम बीमार पड़ जाओगे, अगर इस कहते क्षण में, यह तुमने जो कहा है, मंत्र की तरह तुम्हारे भीतर रहा हो, और कुछ भी नहीं, कोई दूसरा विचार विघ्न-बाधा डालने को नहीं, बस यही तुम्हारा नमोकार मंत्र रहा हो कि कल सुबह तुम बीमार पड़ जाओगे और तुम्हारा पूरा चित्त इसमें प्रवाहित हुआ हो, तत्क्षण तुमने दूसरे के हृदय को घाव से भर दिया।
अब यह आदमी रातभर सो न सकेगा। इसने तुम्हारी आंखें देखीं, तुम्हारा वक्तव्य सुना, तुम्हारा ढंग देखा और इसके मन पर यह गहरी छाप पड़ गई कि तुमने जो कहा है, उससे बचना मुश्किल है। इसका मन भी अब इसी मंत्र के आस-पास घूमेगा। यह रात सपने में भी तुम्हें देखेगा, रात सपने में भी इसे यही वचन सुनाई पड़ेगा। यह कई बार मन में कहेगा, इससे कुछ होने वाला नहीं, डरो मत, भय मत करो। लेकिन भीतर से कोई इसे फिर भी भयभीत किए जाएगा। चाहे यह कहे कि डरो मत, चाहे यह डरे, दोनों हालत में यह मंत्र को दोहरा रहा है--तुम्हारे मंत्र को। सुबह होते-होते यह बीमार पड़ जाएगा।
यह बीमारी तुमने पैदा की आधी, आधी इसने पैदा की। और ठीक ऐसा ही तुम जीवन के बहुत अंगों में कर सकते हो। और एक बार तुम्हारा वचन सार्थक होने लगे, तो तुम्हारा आत्मविश्वास बढ़ेगा, तुम और बलशाली होने लगोगे। जितना तुम्हारे वचन सही होंगे, उतना ही तुम्हें लगेगा कि मैं कुछ दिव्य शक्ति, कोई सिद्धि से भरा हुआ हूं। यह भरोसा तुम्हारे मंत्र को मजबूत करेगा। हर मंत्र तुम्हारे भरोसे को मजबूत करेगा। तुम धीरे-धीरे अनेक शक्तियों का अनुभव करने लगोगे।
यह जो शक्तियों का अनुभव है, इन्हें योग ने सिद्धियां कहा है। ये सिद्धियां परमात्मा के मार्ग पर सबसे बड़ी बाधाएं हैं। पतंजलि ने योग-सूत्रों में इनका उल्लेख किया है, ताकि तुम इनसे सावधान रहो। इनकी तरफ जाना नहीं। जा चुके हो, तो वापस लौट आना है। जितना जल्दी लौट आओ, उतना अच्छा है। क्योंकि जितना समय इसमें खोया, वह बिल्कुल व्यर्थ ही जाता है। और हर बार जितने आगे तुम इन दिशाओं में जाते हो, उतना लौटना मुश्किल होने लगता है।
अगर कोई मुझसे पूछे, तो मैं कहूंगा, संसार शक्ति की खोज है, सिद्धि की खोज है। परमात्मा शांति की, शून्यता की खोज है। वहां तुम मिटते हो, वहां तुम धीरे-धीरे लीन होते हो। सिद्धि की खोज में आखिर में तुम बचोगे, परमात्मा बिल्कुल नहीं। शांति की खोज में तुम न बचोगे, अंत में सिर्फ परमात्मा बचेगा। और इन दो में से एक का मिटना जरूरी है। ये दोनों साथ-साथ नहीं हो सकते। परमात्मा और तुम साथ-साथ नहीं हो सकते, तुम्हारा को- एक्झिस्टेंस, तुम्हारा सह-अस्तित्व असंभव है। जब तक तुम हो, तब तक परमात्मा नहीं; जब परमात्मा है, तब तुम नहीं।
तो सिद्धि और शक्ति तो तुम्हें मजबूत करेगी। इसलिए मंत्रों के साधक परम अहंकार से भरे हुए दिखाई पड़ते हैं। धनी का अहंकार उनके सामने कुछ भी नहीं, पद पर बैठे राजनीतिक का अहंकार उनके सामने कुछ भी नहीं। उनका अहंकार बड़ा सूक्ष्म और भीतरी है। और उसका कारण भी है। क्योंकि धन छीना जा सकता है, चोरी जा सकता है, धन का मूल्य ही क्या है? पद आज है, कल न हो, राजनीति का भरोसा कितना? लेकिन मंत्र का भरोसा ज्यादा प्रबल है। चोर छीन नहीं सकते, जनता का लोकमत बदल नहीं सकता। और मंत्र तुम्हारे मन पर ही निर्भर है, किसी

और पर नहीं। इसलिए तुम ज्यादा सबल, आत्मनिर्भर, अपने पैरों पर खड़े मालूम पड़ते हो।
साधक अगर सिद्धि की दिशा में चला जाए, तो भटक गया। रस बहुत आएगा, क्योंकि अहंकार को रस आता ही इस तरह की चीजों से है। अगर एक चींटी इस तरफ आ रही है और तुम सिर्फ अपने मनोबल से उसका रास्ता बदल दो, हालांकि इस कृत्य में कोई सार नहीं है, पर फिर भी तुम्हें रस आएगा।
रूस में एक महिला है, जिस पर बड़े वैज्ञानिक प्रयोग किए जा रहे हैं। वह किसी भी वस्तु को अपने मन से चालित कर देती है। टेबिल रखी है, छह फीट दूर वह खड़ी हो जाए, पंद्रह मिनिट मन को एकाग्र करे, तो वह टेबिल को हिलाना शुरू कर देती है। टेबिल उसकी तरफ सरक सकती है, दूर जा सकती है। और सब तरह की जांच-पड़ताल, वैज्ञानिक व्यवस्था से सब समझा गया है, कोई धोखाधड़ी नहीं है।
उस महिला को मिलता क्या है? दो पौंड वजन खो जाता है पंद्रह मिनिट के प्रयोग में। और एक सप्ताह के लिए वह निर्बल हो जाती है। एक सप्ताह बिस्तर से नहीं उठ सकती। दो पौंड वजन शरीर से तत्क्षण कम हो जाता है। क्योंकि जब तुम मन को एकाग्र करके अपनी शक्ति को बाहर फेंकते हो, तब तुम्हारे शरीर की ऊर्जा भी उसमें क्षीण होती है।
लेकिन फिर भी वह महिला बड़ा आनंद ले रही है। उसका सारा जीवन अस्तव्यस्त हो गया है इस उपद्रव में। परिवार डांवाडोल हो गया, बच्चे की चिंता करनी मुश्किल, पति की फिक्र करनी मुश्किल। घर तो अस्तव्यस्त हो गया है। और यह एक खेल बन गया है। लेकिन अहंकार को बड़ी तृप्ति मिल रही है। अखबारों में फोटो छप गए हैं, वैज्ञानिक अध्ययन करने आ रहे हैं, और कोई चमत्कार घटित हो रहा है।
लेकिन चमत्कार का अर्थ क्या है? इससे हल भी क्या है? टेबिल तुम हाथ से हटा सकते थे, जिसमें कि रत्तीभर ताकत लगती है। उसे तुमने मन से हटाया और दो पौंड शरीर की ऊर्जा क्षीण की और सात दिन तक अस्वस्थ रहे!
रामकृष्ण के पास किसी ने आकर एक दिन कहा कि लोग कहते हैं, आप परमहंस हो, लेकिन कोई ऐसी सिद्धि तो दिखाई नहीं पड़ती। मेरे गुरु हैं, वे पानी पर चलते हैं। रामकृष्ण कहने लगे, मैं दो पैसा देकर नदी पार हो जाता हूं। तो जो काम दो पैसा देने से हो जाता हो, तुम्हारे गुरु ने कितने वर्षों में यह कला सीखी? शिष्य ने कहा, कम से कम बीस वर्ष उनको मंत्र की साधना में लगे। तो रामकृष्ण ने कहा कि बड़ी मूढ़ता है कि जो काम दो पैसे में होता हो, उसे बीस वर्ष का जीवन नष्ट करके किया! आखिर पानी ही पार होते हैं, तो पानी पार होने में ऐसी बात क्या है? नाव हो, दो पैसे लेती है, न हो तो आदमी तैरकर पार हो जाए।
पर नदी पर चलकर जो आदमी पार होता है, वह बीस वर्ष मेहनत कर सकता है। आप
भी कर सकते हैं। नदी पार होना प्रयोजन ही नहीं है। वह पैर से पार होना, पानी पर खड़े होकर पार होना, उससे आपका अहंकार खड़ा हो रहा है। नाव में बैठकर अहंकार खड़ा नहीं हो सकता, तैरने से अहंकार खड़ा नहीं हो सकता। दो पैसे तो खर्च होते हैं। नदी ही पार होती है। यह जो आदमी चलकर नदी पार कर रहा है, पानी की सतह पर चलकर, इसका नदी पार करना तो प्रयोजन ही नहीं है, यह अहंकार को मजबूत कर रहा है।
मंत्र शक्ति के स्रोत हैं। और सभी धर्मों ने मंत्र खोज लिए हैं, क्योंकि सभी धर्म शांति की तलाश से शक्ति की तलाश में पतित हो जाते हैं। महावीर तो शांति खोजते हैं, लेकिन जैन को शांति से क्या लेना-देना? बुद्ध तो शून्यता खोजते हैं, अपने को मिटाते हैं, लेकिन बौद्धों को अपने को मिटाना नहीं, बनाना है, बचाना है, सुरक्षित करना है। जिन व्यक्तियों के आसपास धर्म का जन्म होता है, वे तो शून्य हो गए होते हैं। लेकिन जो लोग आसपास इकट्ठे होते हैं, वे शून्य होने के लिए इकट्ठे नहीं होते। उनका रस कुछ और है, विपरीत है। इसलिए धर्म जिनसे जन्म पाता है और जिनके हाथों में पड़ता है, वे हमेशा शत्रु हैं। उन दोनों की आकांक्षाएं बिल्कुल भिन्न हैं। इसलिए सभी धर्म पतित हो जाते हैं।
शक्ति की खोज धर्म को संसार का हिस्सा बना देती है। जैन हो, हिंदू हो, बौद्ध हो, इस्लाम हो, कोई भी हो, इससे फर्क नहीं पड़ता। तुम्हें बड़ा रस आता

है चमत्कार में। और जब तक तुम्हें चमत्कार में रस आता है, तब तक तुम जानना कि अभी तुम्हारी धर्म की जिज्ञासा पैदा नहीं हुई। कोई साधु, कोई संन्यासी, कोई बाबा अगर हाथ से राख ही पैदा कर दे, तो भी तुम आंदोलित हो जाते हो।
राख का करोगे भी क्या? राख ऐसे ही सड़कों पर ढेर लगी पड़ी है। राख तो तुम
घर में ही आग जलाकर पैदा कर लेते, दो पैसे भी खर्च नहीं होते। लेकिन किसी आदमी ने हाथ से पैदा कर दी, तो तुम बहुत आंदोलित हो, तो तुम बड़े प्रसन्न हो, तो तुम इस आदमी के पीछे चल रहे हो, तो तुम पागल हो।
क्या होगा रस, इसको समझना जरूरी है। यह तो तुम भी समझते हो कि राख पैदा करने से क्या होने वाला है? लेकिन तुम कुछ और देख रहे हो इस राख में। तुम्हें यह आशा बंधी है कि जो आदमी हाथ से राख पैदा कर सकता है, वह हीरे क्यों नहीं पैदा कर सकता? उसने राख पैदा करके तुम्हारी वासना को प्रज्वलित कर दिया है। और जो आदमी राख पैदा कर सकता है, वह तुम्हारी बीमारी दूर क्यों नहीं कर सकता? जो आदमी राख पैदा कर सकता है, वह तुम्हें चुनाव में जिता क्यों नहीं सकता?
इसलिए दिल्ली में हर राजनीतिज्ञ का गुरु है। कोई महात्मा, कोई बाबा,
जो राख पैदा कर रहा है, जो ताबीज दे रहा है। चाहे राष्ट्रपति हों, चाहे प्रधानमंत्री हों, बाबा पर निर्भर रहना पड़ता है। जिनकी भी वासना है, वे चमत्कार पर निर्भर रहेंगे। मुल्क में करोड़पति हैं, लेकिन हर करोड़पति किसी न किसी बाबा के चरणों में सिर रखता है। करोड़ भला हों उसके पास, लेकिन अभी अरबों की आकांक्षा है।
तुम चमत्कार को नमस्कार करते हो, क्योंकि तुम्हारी वासना है, कुछ तुम पाना चाहते हो। चमत्कारी से भरोसा मिलता है, कि कुछ आशा बंधती है, इससे कुछ होगा। बीमारी है, नौकरी नहीं, व्यवसाय ठीक नहीं चलता है, अदालत में मुकदमा है, हजार उपद्रव हैं आदमी के पास, मुश्किलें हैं, कठिनाइयां हैं, आदमी दुखी है। राख हाथ से गिरती देखकर उसे आशा बंधती है कि अगर बाबा प्रसन्न हों, तो मेरे दुख भी विसर्जित हो सकते हैं। और जैसे राख पैदा हो रही है, ऐसे ही सुख की भी वर्षा हो सकती है।
आज तक किसी दूसरे की कृपा से सुख की कोई वर्षा नहीं हुई। आज तक कभी किसी दूसरे के द्वारा आनंद का कोई जन्म नहीं हुआ। सदियों का इतिहास इस बात का सबूत है कि तुम्हारे अतिरिक्त तुम्हें कोई भी आनंद न दे सकेगा। लेकिन मन की भ्रांतियां हैं। मन सस्ते और सरल रास्ते खोजता है।
यह चमत्कार है कि तुम मेरे पास सुनने आए हो। मैं इसे चमत्कार कहता हूं। क्योंकि न यहां राख गिरेगी, न ताबीज बांटे जाएंगे, न तुम्हारी बीमारी को दूर करने का कोई भरोसा है, न तुम पद जीतोगे न धन, तुम्हारी कोई महत्वाकांक्षा पूरी नहीं होगी। फिर भी तुम आए हो, इसे मैं चमत्कार कहता हूं। कोई भी कारण नहीं है तुम्हारे आने का मेरे पास। क्योंकि तुम जो भी चाहते हो, उसमें से कुछ भी मैं तुम्हें देने वाला नहीं। विपरीत, तुम्हारे पास जो हो, शायद वह भी मेरे पास आने से छिन जाए और अंततः तुम भी मिट जाओ। फिर भी तुम आए हो, तो मैं मानता हूं कि तुम्हारी कोई धार्मिक जिज्ञासा है। तुम राख की तलाश में नहीं हो, न नदियों पर पैदल चलने की तुम्हें कोई विक्षिप्तता है। तुम वस्तुतः ही ऊब गए हो संसार से। तुम्हारी ऊब वास्तविक है। तुम्हारे संताप ने उस सीमा को छू लिया है, जहां तुम एक दूसरे ही अध्यात्म लोक में प्रवेश करना चाहते हो। तुम इस सातत्य को तोड़ना चाहते हो, जो अब तक चलता रहा है। तुम इससे छलांग लेना चाहते हो। तुम इसी का सिलसिला आगे जारी रखने को उत्सुक नहीं हो।
इसलिए मैं तुम्हें कोई मंत्र नहीं देता। कोई मंत्र मेरे पास तुम्हें देने को है भी नहीं। क्योंकि मंत्र दिया जाता है वहां, जहां तुम्हारी खोज किसी ऋद्धि की, किसी सिद्धि की है। मैं तुम्हारे मन को मजबूत न करूंगा। मैं तुम्हारे मन को मिटाऊंगा, काटूंगा। और उस घड़ी की प्रतीक्षा करूंगा कि तुम मन को, जैसे कोई प्याज को छीलता हो, छीलते जाओगे एक-एक पर्त प्याज की, तुम्हारे विचार की एक-एक पर्त गिरती जाएगी। और एक दिन आएगा कि प्याज की सारी पर्तें अलग हो जाएंगी और कुछ भी हाथ में न बचेगा, शून्य बचेगा।

बुद्ध ने कहा है, मन प्याज की गांठ की भांति है। बस, पर्त विचारों की उघाड़ते जाओ, आखिर में मन भी नहीं बचता, जैसे प्याज नहीं बचती। और जब मन बिल्कुल नहीं बचता, तब तुम अपने परिपूर्ण स्वरूप में प्रगट होते हो।
तुम कैसे मिटो, यही महामंत्र है। एकाग्रता से तुम सघन होओगे, ध्यान से तुम मिटोगे। एकाग्रता तुम्हारी शक्तियों को एक जगह लगाती है, ध्यान तुम्हारी शक्तियों को परमात्मा में समर्पित करवाता है। तो परमात्मा को एकाग्रता का बिंदु नहीं बनाना है, परमात्मा में समर्पित होना है। मन को एकाग्र नहीं करना है, परमात्मा में मन को खोना है।
ये बड़ी भिन्न बातें हैं। विलीन होना है, तल्लीन होना है, खो जाना है। ऐसी घड़ी आ जाए, जब तुम्हें तुम्हारा पता न चले। ऐसी घड़ी आ जाए, जब तुम खोजो भी तो अपने को न पा सको। तुम भीतर जाओ तो पाओ कि घर खाली है। तुम दर्पण के सामने खड़े होओ, अपनी आंखों में झांको, तो पता चले कि भीतर कोई भी नहीं है। जहां तुम विसर्जित हो गए, वहीं निर्वाण है।
इसलिए वस्तुतः धर्म ने कोई मंत्र नहीं दिए हैं, पुरोहितों ने मंत्र दिए हैं। तीर्थंकर मंत्र नहीं देते, न अवतार मंत्र देते हैं, पुरोहित मंत्र देते हैं। और पुरोहित से धर्म का कोई संबंध नहीं। पुरोहित ही धर्म को नष्ट करता है, क्योंकि पुरोहित धर्म को व्यवसाय के जगत का हिस्सा बना देता है। वह तुम्हारी आकांक्षाओं का सेवक है। तुम जो चाहते हो, वह कहता है, हो सकता है। वह तुम्हें आश्वासन देता है, तुम्हारी आशा को जगाए रखता है। और धर्म तो तभी शुरू होगा, जब तुम्हारी सारी आशा गिर जाएगी। जब तुम्हारी निराशा परम होगी। जब एक किरण भी न बचेगी आशा की। क्योंकि एक भी किरण बची, तो तुम संसार में चलते ही रहोगे। अगर जरा सा भी तुम्हें लगा कि कल कुछ हो सकता है, तो तुम कल की प्रतीक्षा करोगे। तुम्हारा विषाद इतना सघन हो जाए कि कल पर से तुम्हारा भरोसा हट जाए। तुम्हारा संताप इतना गहरा हो कि कोई आशा पैदा न हो।
जहां आशा नहीं, कल नहीं, वहां वासना के खड़े होने की जगह नहीं। क्योंकि वासना खड़ी होती है आशा से, और वासना खड़ी होती है कल में, आज तो जगह भी नहीं है। कल, और आने वाला कल, आने वाला जन्म, वहां आशा, वासना खड़ी होती है। समय का विस्तार वासना को खड़ा करने के लिए जगह बनाता है।
इसलिए तुम कल में जीते हो, आज नहीं। फिर चाहे तुम मंत्रों का पाठ करो, चाहे मंदिरों-मस्जिदों में पूजा करो, प्रार्थना करो। लेकिन तुम्हारी सारी प्रार्थनाएं तुम्हारी वासनाओं की संततियां हैं। इसलिए सब झूठी हैं। जो प्रार्थना वासना का अनुषंग है, वह झूठी है। तुम कुछ मांगते हो, इसलिए प्रार्थना करते हो। यह प्रार्थना शब्द ही मांगने से बना है। तुम जाते हो मंदिर में, लेकिन मांगते संसार हो। तुम्हारी मांग जब तक बनी है, तुम कैसे प्रार्थना करोगे? जब तक तुम परमात्मा से कुछ मांग रहे हो, तब तक एक बात पक्की है कि तुम परमात्मा को नहीं मांग रहे हो। तब तक परमात्मा से बड़ी कोई चीज है।
यह बड़े आश्चर्य की बात है कि परमात्मा के सामने भी खड़े होकर तुम क्षुद्र चीजें मांग पाते हो। इसका अर्थ है कि परमात्मा से बड़ी हैं वे क्षुद्र चीजें।
ऐसा हुआ कि रामकृष्ण के पास जब विवेकानंद आए, तो उनका घर बड़ी दीन अवस्था में था। पिता चल बसे थे। और पिता संसारी मनमौजी आदमी थे, तो बड़ा कर्ज छोड़ गए थे। घर में रोटी का भी इंतजाम न था। किसी तरह रोटी जुटती थी, तो मां और बेटे दोनों के लिए काफी नहीं होती थी। तो विवेकानंद मां को कहते कि मुझे किसी मित्र ने निमंत्रण दिया है आज, ताकि मां रोटी खा ले, अन्यथा विवेकानंद को खिला देती और खुद भूखी रह जाती। तो ऐसा कहकर आस-पास की गलियों में चक्कर लगाकर वहां से बड़े प्रसन्न और डकार लेते लौटते थे। न किसी मित्र ने निमंत्रण दिया है, लेकिन मां को दिखाने को कि भोजन कर आया हूं, बड़ा प्रसन्न हूं, बड़ा अच्छा भोजन था, ताकि मां भी निश्चिंतता से भोजन कर ले।
रामकृष्ण को पता लगा तो रामकृष्ण ने कहा, तू भी बड़ा मूर्ख है। यहां रोज काली के दरबार में उपस्थित होता है तो मांग क्यों नहीं लेता? इतनी

छोटी सी बात, इसके लिए व्यर्थ कष्ट क्यों उठा रहा है? जब रामकृष्ण ने कहा तो विवेकानंद ने कहा, आप कहते हैं तो मांग लूंगा।
रामकृष्ण बाहर बैठे हैं मंदिर के, विवेकानंद भीतर गए। बड़ी देर बाद वापस लौटे तो रामकृष्ण ने कहा कि पूछा? मां को कहा? तकलीफ बताई? विवेकानंद ने कहा, मैं भूल गया। रामकृष्ण ने कहा, यह भी कोई भूलने की बात है? भूखा है तू, मां तेरी भूखी, घर मुसीबत में, पैसा चुकता नहीं। जरा कह दे, इशारे की बात है, सब हो जाएगा। तू जा वापस। फिर घड़ी भर बाद विवेकानंद आए, आंख से आंसू बह रहे हैं आनंद के। रामकृष्ण ने कहा, निश्चित तूने मांग लिया होगा, इसलिए प्रसन्न है। विवेकानंद ने कहा, मैं फिर भूल गया।
ऐसा तीन बार हुआ। फिर विवेकानंद ने कहा कि नहीं, यह हो ही नहीं सकेगा। क्योंकि जब मैं मां के सामने जाता हूं, तो मां ही दिखाई पड़ती है और सब भूल जाता हूं। मैं खुद को ही भूल जाता हूं तो मेरी तकलीफें, मेरी मुसीबतें कहां टिकें? उनकी स्मृति कैसे रहे? और यह असंभव मालूम पड़ता है। रामकृष्ण ने कहा कि इसीलिए तुझे बार-बार भेजा, यह तेरी परीक्षा थी। क्योंकि मां के सामने अगर तू कुछ मांगने को राजी हो जाए, तो उसका अर्थ है कि अभी प्रार्थना का कोई उपाय नहीं। फिर प्रार्थना ही नहीं हो सकती।
मांगने वाला चित्त भिखारी का चित्त है, वह प्रार्थना क्या करेगा? और परमात्मा से बड़ी चीजें उसके सामने हैं, जिनको वह मांग रहा है। जिसको परमात्मा ही चाहिए, वह उसके सामने कुछ भी नहीं मांग सकता। वह परमात्मा को भी नहीं मांग सकता।
इसे थोड़ा समझें। क्योंकि अक्सर इसका दूसरा दृष्टिकोण ख्याल में आ जाता है कि हम कुछ चीजें न मांगेंगे, हम परमात्मा को ही मांगेंगे। लेकिन तुम तो उसमें भी मौजूद रहोगे। और परमात्मा तुमसे छोटा और तुम बड़े। क्योंकि तुम उसे पा लोगे, वह भी तुम्हारी संपदा बन जाएगा, उसे भी तुम अपनी मुट्ठी में ले लोगे, वह भी तुम्हारे परिग्रह का विस्तार होगा। तुमने जो राज्य बनाया है, उसमें तुम उसे भी एक जगह बिठा दोगे, लेकिन तुम मालिक रहोगे।
तो ध्यान रहे, वस्तुएं तो कोई मांग ही नहीं सकता, संसार तो कोई मांग ही नहीं सकता परमात्मा के सामने--मांगता हो, तो वह परमात्मा के सामने ही नहीं खड़ा है; उसे क्षुद्र अभी विराट से बड़ा है, व्यर्थ अभी उसे सार्थक है, प्रार्थना उसकी झूठी है--लेकिन परमात्मा को भी कोई नहीं मांग सकता। परमात्मा के सामने खड़े होकर मांग ही बंद हो जाती है, मांगना ही व्यर्थ हो जाता है, मांगने वाला ही मौजूद नहीं रह जाता।
इसलिए प्रार्थना कोई कृत्य नहीं है। आप प्रार्थना कर नहीं सकते, करने वाला नहीं रह जाता। प्रार्थना एक भावदशा है, विलीनता की एक अवस्था है, जहां करने वाला खो जाता है। वह जो आप सदा हैं, नहीं होते। वही प्रार्थना है।
तो मैं तो कोई मंत्र आपको दूंगा नहीं। और जब तक मैं मंत्र न दूं, तब तक कोई धर्म मेरे आस-पास खड़ा नहीं हो सकता। अगर मंत्र दूं, तो धर्म खड़ा हो सकता है। मंत्र आया, तो पीछे से मंदिर आता है। मंदिर आया तो पुजारी, पुरोहित आता है। तब सारा जाल फैल जाता है। और सबके बीज में मंत्र है। मंत्र दिया कि मैंने तुम्हें स्वीकार कर लिया कि तुम्हारी खोज जायज है, तुम शक्ति को खोजो। मैं तुम्हें कोई मंत्र न दूंगा, न नमोकार, न ओंकार, न मणि पद्मे हुम्। क्योंकि तुम खतरनाक हो और सभी मंत्रों से तुमने केवल अपने अहंकार को सिद्ध किया है।
मेरे पास तुम आए हो, अगर तुम्हारे पास कोई मंत्र हो, तो उसे तुम छोड़ जाना। मंत्र से अपने को मत भरना, क्योंकि मंत्र तुम्हारे मन का ही खेल है। सोचो, मन के बिना तुम कैसे मंत्र का पाठ करोगे? मन न होगा, तो कौन नमोकार पढ़ेगा? तो नमोकार विचार की ही एक प्रक्रिया हुई। कोई आदमी फिल्म का गीत गा रहा है, क्योंकि उसकी वासना स्त्रियों में उलझी है, काम में उलझी है। वह जिस ऊर्जा से, जिस मन से फिल्म का गीत गा रहा है, उसी ऊर्जा से मंत्र भी पढ़ सकता है, अगर उसकी वासना धर्म में उलझ जाए।

तो मंत्र हो कि गीत हो, दोनों ही विचार के रूप हैं। और मेरे लिए इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि कौन शुद्ध है, कौन अशुद्ध है। सभी विचार अशुद्ध हैं, विचार मात्र अशुद्धि है। शुद्ध विचार होता ही नहीं। शुद्ध विचार हो ही नहीं सकता। वैसे ही जैसे स्वस्थ बीमारी नहीं हो सकती। बीमारी ही अस्वास्थ्य का नाम है, तो स्वस्थ बीमारी कैसे होगी? शुद्ध गंदगी कैसे होगी? या कि आप सोचते हैं हो सकती है? विचार ही अशुद्धि है, विचार की तरंग का होना ही चेतना को अशुद्ध करता है। फिर वह विचार कामवासना का है कि प्रार्थना का है, मंत्र है कि दुकानदारी है, इससे कोई बुनियादी फर्क नहीं पड़ता। चेतना में विचार का होना अशुद्धि है। शुद्ध विचार जैसी कोई चीज नहीं होती। क्योंकि शुद्धि का अर्थ निर्विचारता है, शुद्धि का अर्थ ही विचार का अभाव है।
आप ऐसा समझें कि आप दूध में पानी मिला देते हैं। बिल्कुल शुद्ध पानी मिलाते हैं और शुद्ध ही दूध है और शुद्ध ही पानी है, तो दोनों मिलकर दोहरी शुद्धि हो जानी चाहिए। लेकिन दूध शुद्ध नहीं होता पानी मिलाने से, अशुद्ध हो जाता है। क्योंकि पानी का स्वभाव अलग, दूध का स्वभाव अलग। पानी कितना ही शुद्ध हो, शुद्ध होने से कोई फर्क नहीं पड़ता, दूध में मिलने से अशुद्ध होगा। और आप यह मत सोचना कि दूध ही अशुद्ध हुआ, पानी भी अशुद्ध हो गया। वह तो आपकी नजर दूध पर है इसलिए दूध अशुद्ध लग रहा है, अन्यथा पानी ने भी अपनी शुद्धि खो दी और दूध ने भी अपनी शुद्धि खो दी। दो शुद्ध चीजें मिलीं और दोनों अशुद्ध हो गईं।
विचार का अपना स्वभाव है। चेतना का अपना स्वभाव है। दोनों के स्वभाव अलग-अलग हैं, दोनों के मिलन से अशुद्धि होती है। विचार अपने में शुद्ध है, चेतना अपने में शुद्ध है। अपने में होना शुद्धि है, स्वभाव में होना शुद्धि है, विभाव अशुद्धि है।
इसलिए कोई शुद्ध विचार चेतना को शुद्ध नहीं कर सकते। कोई शुद्ध पानी दूध को शुद्ध नहीं कर सकता। निर्विचार जब भीतर का आकाश होता है, जहां कोई बादल नहीं, मंत्र के बादल भी नहीं, तब परमात्मा प्रत्यक्ष है। तब आप उस निराकार के साथ एक हैं।

प्रश्नः ओशो, आपके वचनों से ऐसा लगता है कि आध्यात्मिक साधना चाहे इस पार हो या उस पार की बात है।
या तो हम अधर्म में हैं या धर्म में, बंधन में या मोक्ष में, रावण में
या राम में। शायद बीच की कोई स्थिति नहीं है।
यदि ऐसा है, तो साधना और समर्पण में संबंध क्या है?

निश्चय ही बीच की कोई स्थिति नहीं है, हो भी नहीं सकती। इसे थोड़ा समझें, क्योंकि कठिन है। और मन को इससे बड़ी निराशा पैदा होती है कि बीच की कोई स्थिति नहीं है। मन बीच की स्थिति पैदा करता है। उससे भरोसा आता है कि हम राम भला न हों, लेकिन रावण भी नहीं हैं। आधे तक पहुंच गए हैं, काफी यात्रा कर ली है। मोक्ष न मिला हो, लेकिन संसार से हम छूट गए हैं। परम ज्ञान न हुआ हो, लेकिन काफी ज्ञान हुआ है, बस थोड़ी ही यात्रा और है।
लेकिन क्या ज्ञान बंट सकता है? क्या ऐसा हो सकता है कि आपको आधा ज्ञान हुआ हो? क्या आधा बुद्धत्व संभव है? और जो आदमी आधा बुद्ध हो गया हो, वह बाकी आधी निर्बुद्धि को क्यों ढोएगा? जिसके भीतर आधे में प्रकाश हो गया हो, क्या इस आधे प्रकाश में इतनी भी सामर्थ्य नहीं कि वह आधे अंधकार को मिटा दे? जिसकी वासना आधी चली गई हो, वह शेष आधी को कैसे बचाएगा?
मगर मन की गहरी तरकीबों में एक तरकीब है कि वह आपको बताता है कि विकास
हो रहा है। इससे आशा बनी रहती है। तो मन कहता है, एक-एक सीढ़ी हम चढ़ रहे हैं, थोड़ी सीढ़ियां बाकी रही हैं। जल्दी कुछ है नहीं, घबड़ाने की कोई बात नहीं, चिंता बनाओ मत। इतनी सीढ़ियां देखो चढ़ चुके हो, थोड़ी सीढ़ियां और, वे भी पार हो जाएंगी। मन सीढ़ियां पैदा करता है, जहां सीढ़ियां हैं ही नहीं। मन डिग्रीज बनाता है, जहां कोई डिग्री नहीं है, जहां डिग्री हो नहीं सकती।

या तो कोई आदमी ज्ञान में है, तब अज्ञान टिक नहीं सकता। रत्तीभर नहीं टिक सकता, आधे की तो बात अलग है। क्योंकि ज्ञान की मौजूदगी में अज्ञान टिकेगा कैसे? और या कोई आदमी अज्ञान में है। और तब वह यह नहीं कह सकता कि रत्तीभर ज्ञान मुझे हुआ है, क्योंकि रत्तीभर ज्ञान अज्ञान को नष्ट कर देगा।
आपका पूरा घर अंधेरे से भरा हो, छोटा सा दीया जल जाए और अंधेरा समाप्त है। कोई पूरे घर को आग थोड़े ही लगानी पड़ेगी, जब प्रकाश होगा! कि पूरे घर को आग लगाएंगे, तब प्रकाश होगा? एक छोटा सा दीया जला कि प्रकाश हो गया, कि अंधकार गया। प्रकाश की मौजूदगी अंधकार का अंत है।
और अगर पूरे घर में अंधकार भरा है और सिर्फ थोड़ी सी जगह प्रकाश जल रहा
है और दीया थोड़ा सा प्रकाश करता है, तो आप समझना कि यह दीया कल्पित है। आप सोच रहे हैं कि यह है, यह है नहीं। आप कोई सपना देख रहे हैं। या यह दीया नहीं होगा, दीए की पेंटिंग होगी। और चित्रकार दीए को पेंट कर सकता है कि देखने पर लगे कि दीया रखा है, और देखने पर लगे कि ज्योति भी जली है, और ज्योति के चारों तरफ प्रकाश भी पेंट किया जा सकता है। लेकिन उससे अंधेरा नहीं मिटेगा। यह दीया झूठा है।
हमारा ज्ञान इस चित्रित दीए की भांति है, उसे हमने शास्त्रों से इकट्ठा किया है, वे चित्र हैं। उसे हमने संजो लिया है मन के एक कोने में। अंधेरा अपनी जगह है, ज्ञान उसके बीच में बैठा हुआ है। जो ज्ञान अंधेरे को आमूल न मिटा देता हो, समझना कि वह उधार है। वह कहीं न कहीं मिथ्या और झूठा है।
या तो रावण हो सकते हैं या राम, मध्य में होने का कोई उपाय नहीं। हमारे
मन की तकलीफ यह है कि यह तो हम भी समझते हैं कि राम हम नहीं हैं, मगर यह अहंकार को चोट होती है कि तो फिर रावण ही बचते हैं, वह मानने को मन राजी नहीं होता। मन कहता है, माना कि राम नहीं हैं, क्योंकि इतनी घोषणा करनी भी जरा मुश्किल मालूम पड़ती है। और चारों तरफ लोग जानते हैं कि राम हम नहीं हैं, किसके सामने घोषणा करें? लोग सिर्फ हंसेंगे। तो राम तो हम अपने को नहीं कह पाते। कहना तो चाहते हैं, कह नहीं पाते, वास्तविक कठिनाइयां हैं, लेकिन रावण मानने का भी मन नहीं होता। तो बीच का हम मार्ग खोज लेते हैं। हम कहते हैं, न हम राम हैं अभी न रावण हैं, मध्य में हैं, अभी हम बीच में हैं। अभी परम ज्ञान नहीं हुआ, बुद्धत्व उपलब्ध नहीं हुआ, लेकिन हम कोई मूढ़ और अज्ञानी भी नहीं हैं।
यह जो बीच का ख्याल है, यह बहुत खतरनाक है, क्योंकि यह तुम्हें तुम्हारी स्थिति से परिचित ही न होने देगा। अच्छा है कि तुम समझ लो कि तुम रावण हो। और रावण में खराबी क्या है, जिसकी वजह से तुम डरते हो? अगर रावण के व्यक्तित्व को समझो, तो तुम पाओगे कि तुम मध्य में तो हो ही नहीं सकते, छोटे या बड़े रावण हो सकते हो। यह हो सकता है कि तुम छोटे रावण हो।
पर तुम्हारा ढंग और तुम्हारी चेतना का गुण, एक बूंद हो कि सागर, इससे क्या फर्क पड़ता है? सागर की एक बूंद भी खारी है, पूरा सागर भी खारा है। बुद्ध कहते थे, सागर की एक बूंद चख लो, तुमने पूरा सारा सागर चख लिया। वैज्ञानिक कहते हैं, सागर की एक बूंद का विश्लेषण कर लो, तुमने पूरे सागर का विश्लेषण कर लिया। जो एक बूंद में है, वही पूरे सागर में है; सागर मैग्नीफाइड है, बस उसका ही विस्तार है। और बूंद संकुचित है, बस उसी का संकोच है। तो यह हो सकता है कि तुम सागर न हो, बूंद हो, पर तुम्हारा मूल गुणधर्म वही है।
रावण की क्या कठिनाई है? रावण में क्या है, जो तुम पाते हो, तुममें नहीं है। इसे थोड़ा हम समझें। रावण धन का दीवाना है, साम्राज्य के विस्तार की आकांक्षा है। स्त्रियों के लिए लोलुप है। वे चाहे स्त्रियां पराई, दूसरों की स्त्रियां ही क्यों न हों, अगर उसे पसंद पड़ जाएं, तो उन्हें उसके राजमहल में ही होना चाहिए। पंडित है बड़ा, शास्त्र का ज्ञाता है।
रावण में ये जो गुणधर्म हैं, इनमें कौन सा है, जो हम कोशिश करें तो अपने में न पाएं, खोजें तो न पाएं! स्त्री आकर्षित करती है। और सच तो यह है कि अपनी स्त्री कम आकर्षित करती है, दूसरे की ही सदा आकर्षित करती है।

क्योंकि अपनी से तो हम धीरे-धीरे आदी हो जाते हैं। और मन अपने से तो ऊब जाता है। खुद की पत्नी में कभी कोई आकर्षण होता है? खुद की पत्नी में कोई आकर्षण नहीं रह जाता। असल में जो चीज हमें उपलब्ध हो, उसमें आकर्षण रह ही नहीं जाता। आकर्षण तो उसमें होता है, जो उपलब्ध नहीं है। और जितना कठिन हो पाना, उतना ही आकर्षण बढ़ता है।
राम की स्त्री में रावण का रस कठिनाई के कारण है। कठिनाई निश्चित बड़ी
थी और कठिनाई बड़ी गहरी थी। कठिनाई क्या थी? राम की स्त्री को चुराना बहुत कठिन नहीं था, वह तो रावण ने किया ही। राम की स्त्री को झुकाना कठिन था, जो रावण नहीं कर पाया। वही कठिनाई थी, वही चुनौती थी। सीता का लगाव राम की तरफ ऐसा परिपूर्ण था कि सीता के हृदय में जरा सी भी रंध्र न थी, जिसमें से रावण भीतर प्रवेश कर जाए--यह चुनौती थी।
वेश्या में थोड़े ही आकर्षण होता है! सती में आकर्षण होता है। वेश्या में क्या आकर्षण है? थोड़ा आपका खीसा हल्का होगा और वेश्या उपलब्ध हो जाएगी। वेश्या खरीदी जा सकती है। उसमें क्या रस हो सकता है? रस था सीता में, उसे खरीदना असंभव था। कोई उपाय न था, जिससे उसे खरीदा जा सके। और कोई उपाय न था कि उसके हृदय में प्रवेश किया जा सके।
इसलिए पूरब की स्त्रियों में जो आकर्षण है, वह पश्चिम की स्त्री में नहीं है। पश्चिम के लोग भी अनुभव करते हैं कि पूरब की स्त्री में जो आकर्षण है, वह पश्चिम की स्त्री में नहीं है। पश्चिम की स्त्री ज्यादा सुंदर हो सकती है, उसके शरीर का अनुपात ज्यादा ढंग का हो सकता है, लेकिन फिर भी उसमें वह आकर्षण नहीं जो पूरब की साधारण स्त्री में होगा। क्योंकि पूरब की स्त्री के हृदय में प्रवेश असंभव है। चुनौती बड़ी है।
रावण के पास सुंदर स्त्रियों की कमी न थी, सीता से शायद ज्यादा सुंदर रही हों। लेकिन सीता की जो अनन्य भक्ति है राम के प्रति, वह चुनौती बन गई रावण को।
तुम्हारे लिए भी सदा वही चुनौती है। दूसरे की स्त्री में रस है। वह रावण की चेतना का गुणधर्म है। जो दूसरे के पास है उसमें रस है, जो अपने पास है उसमें रस नहीं है।
राम को किसी दूसरी स्त्री में कोई रस नहीं, जैसे सीता में सारा संसार पूरा हो गया। यह राम की चेतना का हिस्सा है कि जो अपने पास है, वह सब है; जो अपने पास है, वह पूरा है; जो अपने पास है, उसमें संतोष है, उसमें संतुष्टि गहन है, उससे ज्यादा की कोई मांग नहीं है। उससे ज्यादा दिखाई ही नहीं पड़ता, सब उसमें समाया हुआ है। जैसे सारी दुनिया की स्त्री का स्त्रीत्व सीता में समा गया है। सीता मिल गई, तो सब स्त्रियां मिल गईं।
रावण की चेतना, जब तक सारी स्त्रियां न मिल जाएं, तब तक तृप्ति नहीं होती। और तब भी तृप्ति होगी, कहना कठिन है। व्यक्ति का मूल्य रावण को नहीं है, खुद के स्वार्थ और खुद की संवेदना का मूल्य है।
जिसके पास हम रहते हैं, उसके प्रति हमारी संवेदना बोथली हो जाती है। रोज उसे देखते हैं, फिर देखने योग्य कुछ नहीं बचता; रोज उसे खोजते हैं, फिर खोजने योग्य कुछ नहीं बचता। फिर उसके पूरे व्यक्तित्व से हम परिचित हो जाते हैं, तो सब बासा हो जाता है। यही सभी इंद्रियों का ढंग है। आज भोजन मिला, वही कल भी मिला। आज कहा, बहुत अच्छा है; लेकिन कल उतना अच्छा नहीं कह सकेंगे, वही भोजन। फिर तीसरे दिन भी वही भोजन फिर मिला, तो ऊब पैदा हो गई। चौथे दिन थाली सरका देंगे। वही है, जो पहले दिन बहुत अच्छा कहा था, लेकिन चार दिन में ऊब गए।
इंद्रियां पुराने से ऊबती हैं। इंद्रियों का ढंग है, रोज नए की तलाश। क्योंकि इंद्रियों को उत्तेजना चाहिए। उत्तेजना नए से मिलती है। इसलिए जितने ऐंद्रिक समाज होंगे, नए की खोज उनका सूत्र होगा। जितने आध्यात्मिक समाज होंगे, पुराने के साथ तृप्ति उनका स्वभाव होगा। चेतना तो सनातन की खोज करती है, इंद्रियां नवीन की।
तो राम ने तो सीता में सनातन को खोज लिया। वह जो शाश्वत है, जो कभी पुराना नहीं पड़ता और जिसे नया करने की कोई जरूरत नहीं, जिससे ऊब कभी पैदा ही नहीं होती।

प्रेम से कभी ऊब पैदा नहीं होती, काम से ऊब पैदा होती है। क्योंकि प्रेम है हृदय का और काम है इंद्रियों का। इसलिए अगर कामवासना आपका केंद्र है, तो रोज आपको नई स्त्री चाहिए, नया पुरुष चाहिए, नया भोजन चाहिए, रोज! क्योंकि शरीर तो प्रतिपल नए में जी सकता है, उससे उत्तेजना मिलती है, चुनौती मिलती है। लेकिन चेतना तो सनातन में जीती है, शाश्वत में जीती है। इसलिए प्रेम शाश्वत हो सकता है।
राम और सीता के बीच तो प्रेम घटा है, रावण और उसकी पत्नियों के बीच कामवासना के संबंध हैं। सीता में रावण की उत्सुकता इस बात की खबर है कि उसकी अपनी पत्नियों में उत्सुकता नहीं रही है।
यही तो हमारी दशा है, चेतना हमारी भी इसी तरह बह रही है। जो हमारे पास है, वह बेकार; और जो दूसरों के पास है, वहां स्वर्ग; और जब तक मैं उसे न पा लूं, तब तक बेचैनी; और पाते ही से वह बेकार हो जाता है। क्योंकि जैसे ही पा लिया, वह मेरा हो गया, फिर नजर और पर जाने लगी। यह जो दूसरे पर जाती नजर है, सदा दुख लाती है। और संतुष्टि का तो कोई आयाम इससे खुल नहीं सकता।
रावण धन के लिए दीवाना है, इसलिए कथा है कि उसकी नगरी स्वर्ण की नगरी है। उसकी लंका सोने की बनी है। लेकिन फिर भी दूसरे का धन, दूसरे का राज्य आकर्षित करता है। रावण की लंका तो सोने की है, राम की अयोध्या सोने की नहीं है। फिर भी राम को कोई रस दूसरे के राज्य में नहीं है।
सोने का भी राज्य आपको मिल जाए, तो भी जो दूसरे का है, उसमें आपको रस रहेगा। महल भी आपके पास हो, तो भी दूसरे का झोपड़ा आपको आकर्षित करेगा। राम जैसी चेतना का व्यक्ति झोपड़े में रहे, तो भी महल आकर्षित नहीं करता। राम जैसा व्यक्ति जहां भी रहे, वहीं महल है। रावण जैसा व्यक्ति जहां भी रहे, वहीं दुख है, वहां महल नहीं है। महल कहीं और, किसी और के पास, जिसको जीतना है।
रावण के दस सिर हमने कहे हैं। अगर मनोवैज्ञानिकों से हम पूछें, तो वे कहते हैं, हर आदमी के दस सिर हैं। क्योंकि आपको कई चेहरे तैयार रखने पड़ते हैं, सुबह से शाम तक कई दफे बदलने पड़ते हैं। आपको ख्याल में नहीं है, क्योंकि आपको अपने मन का ठीक विश्लेषण ही नहीं है। जब आप अपने नौकर के सामने खड़े होते हैं, तो आप दूसरे चेहरे का उपयोग करते हैं। जब आप अपने मालिक के सामने खड़े होते हैं, तो दूसरे चेहरे का उपयोग करते हैं।
इसे थोड़ा ख्याल करना, तो आप पाएंगे, तत्क्षण आप चेहरा बदलते हैं। जैसे
कई चेहरे स्पेअर तैयार हैं, जिनको आप तत्क्षण बदल लेते हैं। अगर किसी आदमी से काम लेना हो, तो आप और चेहरे का उपयोग करते हैं। और अगर कोई आदमी आपसे काम लेने आया हो, तो तब आपका चेहरा देखिए। जब आपको किसी से रुपए उधार लेने हैं, तब आप अपना चेहरा आईने में देखिए। और जब कोई आपसे रुपए उधार लेने आया है, तब अपने चेहरे को आईने में देखिए। आप पाएंगे कि अलग आदमियों के चेहरे हैं, यह एक ही आदमी का चेहरा नहीं है। दस का मतलब आप दस मत समझ लेना, दस तो आखिरी संख्या है, इसलिए दस। चेहरे तो हजार हैं, दस आखिरी संख्या है, बाकी संख्या तो फिर पुनरुक्ति है।
इसलिए सभी संख्याओं में, दुनियाभर की संख्याओं में, दस पर संख्या का अंत हो जाता है। ग्यारह का मतलब है फिर एक के ऊपर एक, फिर पुरानी संख्या दुहरने लगी। बारह का मतलब एक के ऊपर दो, लेकिन दस पर काम पूरा हो गया। और दस पर काम पूरा हो गया, क्योंकि आदमी की दस अंगुलियां हैं। आदमी ने पहले अंगुलियों पर गिनना शुरू किया, दस पर संख्या पूरी हो गई। फिर वह दस को ही बढ़ाता रहा है।
तो वे जो रावण के दस चेहरे हैं, वे तो सिर्फ संख्या का अंत बताने के लिए हैं, चेहरों का कोई अंत नहीं है। सुबह से शाम तक हजारों चेहरे आप बदल रहे हैं।
राम का एक ही चेहरा है, चाहे सुख में मिलें, चाहे दुख में, चाहे उनको आप राजमहल में मिलते और चाहे जंगल में। उनके चेहरे में भेद नहीं है।
और जिस आदमी ने एक चेहरा पा लिया, वह राम हो गया। इसका अर्थ है, जिसका चेहरा आथेंटिक हो गया, प्रामाणिक हो गया। जिसका चेहरा भीतरी हो गया। जो बाहर को देखकर अब चेहरे को नहीं बदलता। परिस्थिति जिस पर अब प्रभावी नहीं

है। जिसका चेहरा अब एक आंतरिक दशा और स्थिति है। आप उसे गाली दें तो भी उसका चेहरा वही है, प्रशंसा करें तो भी उसका चेहरा वही है। अब कोई परिस्थिति उसके चेहरे को डांवाडोल नहीं करती। उसका होना थिर हो गया है। राम इस थिरता का नाम है।
रावण को मारना मुश्किल हुआ युद्ध में, क्योंकि एक गर्दन काटो, इससे क्या फर्क पड़ता है? असली गर्दन का तो कोई पता ही नहीं है, जिसके कटने से रावण मरेगा। और झूठा चेहरा एक गिरा कि दूसरा उग आता है। झूठे चेहरे काटने से कुछ हल नहीं है, क्योंकि वह कोई चेहरा ही नहीं है। इसलिए रावण के सिर गिरते जाते हैं और नए उगते आते हैं।
आपके झूठे चेहरे को कोई काट भी दे, क्या फर्क पड़ता है! न वहां रक्त है,
न मांस है, न कुछ है; वह तो सिर्फ एक ख्याल था, एक भाव था, वह काट दिया, आप दूसरा तत्क्षण पैदा कर देंगे।
रावण को मारने की भी कठिनाई यही थी कि उसके असली चेहरे का पता लगाना
ही सूत्र था कि असली चेहरा कौन सा है। और आप भी अपने को न मिटा पाएंगे परमात्मा के सामने। राम के सामने रावण ऐसे ही खड़ा था, जैसे आप भी परमात्मा के सामने खड़े हैं। आपको तक पता नहीं कि आपका असली चेहरा कौन सा है, जिसको काटने से आप मिट जाएंगे। कई बार आप झूठे चेहरे काटकर चढ़ा आते हैं मंदिर में और घर लौट आते हैं। वे झूठे चेहरे हैं, उनके काटने से कुछ हल नहीं होता।
देखें मंदिर में, एक आदमी जाता है, सिर झुकाकर चरणों में रख देता है परमात्मा के। लेकिन अगर आप गौर से देखें, तो उसकी अकड़ तो वहां वैसी की वैसी खड़ी है। असली चेहरा तो खड़ा ही हुआ है, नकली चेहरा झुका हुआ है। और असली चेहरा चारों तरफ देख रहा है कि देख लो, मेरे जैसा भक्त इस गांव में कोई भी नहीं!
मैंने सुना है, एक सम्राट सुबह-सुबह चर्च में प्रार्थना कर रहा था। और सम्राट था और पर्व का दिन था, इसलिए पहला हक उसी का था। जैसा हरिद्वार में या गंगा पर स्नान के वक्त पहला हक कि कौन स्नान करेगा?
धर्म के जगत में भी पहले का हक करने वाले लोग हैं! ये अहंकारी हैं। दंगा-फसाद हो जाता है कुंभ के मेले में। क्योंकि जिनका हक था, उनके पहले किसी ने स्नान कर लिया, तो वहीं मार-पीट शुरू हो जाएगी। भगवान के दरवाजे पर भी आप इतनी आसानी से न घुस पाओगे, वहां लट्ठ लिए लोग खड़े होंगे कि हमारा हक पहले, तुम पहले कैसे जा रहे हो?
वह सम्राट था, चर्च में पहला उसका हक था पर्व के दिन, तो अंधेरे में सुबह पांच बजे प्रार्थना करता था, क्योंकि फिर लोग आना शुरू हो जाते, भगवान से पहली मुलाकात उसकी होनी चाहिए। तो वह प्रार्थना कर रहा था और अंधेरे में कह रहा था, हे परमपिता! मैं ना-कुछ हूं, मैं दीन-दरिद्र हूं, पापी हूं, मुझे अपने चरणों में समा ले। तभी उसे लगा कि कोई और अंधेरे में मौजूद है। अंधेरे में दिखाई तो ठीक से नहीं पड़ता था, तो उसने कान सजग किए। पास में ही कोई आदमी वेदी के पास झुका था और यही शब्द दोहरा रहा था कि हे परमात्मा, मैं ना-कुछ हूं, दीन-दरिद्र, तेरे पैरों की धूल, मुझे अपने चरणों में समा ले।
सम्राट ने कहा, यह कौन आदमी मेरे सामने कहने का दावा कर रहा है कि मैं ना-कुछ हूं? मुझसे ज्यादा ना-कुछ दूसरा कोई भी नहीं हो सकता। यह कौन है जो कह रहा है कि मैं दीन-दरिद्र हूं? जब मैं कह चुका, तो मुझसे ज्यादा दीन-दरिद्र कोई भी नहीं हो सकता। अपने शब्द वापस ले ले!
अगर सम्राट कह रहा हो कि मैं निरअहंकारी हूं, तो आप यह नहीं कह सकते कि
आप भी निरअहंकारी हैं। क्योंकि सम्राट का अहंकार खड़ा हुआ, वह कहेगा, मुझसे ज्यादा होने का दावा? वह चाहे धन का हो, चाहे निरअहंकारिता का, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, लेकिन मुझसे ज्यादा तुम नहीं हो सकते। दीन-दरिद्र तो मैं प्रथम, ना-कुछ तो मैं प्रथम, लेकिन मेरा प्रथमपन जारी रहेगा।
तो तुम झुक जाते हो मंदिर में, लेकिन तुम्हारा अहंकार तो खड़ा रहता है।
तुम्हारा सिर झुकता है, जो झूठा है, जिसका कोई मूल्य नहीं।

रावण के मन को अगर समझें, तो आप अपने भीतर रावण को पूरी तरह प्रतिष्ठित पाएंगे। और वही रावण आपको समझा रहा है कि राम तुम भला न हो, लेकिन रावण नहीं हो।
उसकी बिल्कुल मत सुनें। उसकी काफी सुन चुके हैं। उसकी सुनने के कारण
यह दुर्दशा है। अगर आपको लगता है कि राम मैं नहीं हूं, तो पक्का जानें कि आप रावण हैं। यह पक्का जानना राम की तरफ जाने का पहला कदम होगा। अपने को बुरा जानना शुभ होने की पहली क्रांतिकारी घटना है। मैं अंधेरे में हूं, ऐसी गहन प्रतीति प्रकाश की खोज बनती है। मैं अज्ञानी हूं, तो ज्ञान की जिज्ञासा शुरू होती है।
मध्य और आधे की बात मत सोचें। या इस पार या उस पार। और जो इस पार से छूटता है, वह तत्क्षण उस पार पहुंच जाता है। क्योंकि दोनों के बीच में जरा भी जगह नहीं है, जहां आप खड़े हो सकें। ज्ञान और अज्ञान के बीच जरा सी भी जगह नहीं है, जहां आप खड़े हो सकें। यहां अज्ञान गया कि ज्ञान आया, यह घटना युगपत है। जैसे सौ डिग्री पानी गरम हुआ, फिर भाप और पानी के बीच में जरा सी भी जगह नहीं है कि पानी का कुछ हिस्सा बीच में रुक जाए और कहे, हम पानी तो न रहे, लेकिन अभी भाप नहीं हैं, बीच में हैं। न, या तो पानी या भाप, इन दोनों के बीच कोई भी जगह नहीं है।
वह जो दूसरा किनारा है और यह किनारा है, इन दोनों के बीच में कोई नदी नहीं बह रही, जिसमें आप मध्य में अपनी नाव टेक दें। नदी वहां है ही नहीं, बस दो किनारे हैं। यह किनारा छूटा कि दूसरा किनारा मिला। और जब तक दूसरा न मिला हो, तब तक आप इस किनारे पर हैं, इसे बहुत गहनरूप से अनुभव करना। मन के धोखे में मत पड़ना। या तो अंधकार या प्रकाश, या तो जीवन या मृत्यु। अधमरा आदमी भी अधमरा नहीं होता, हम कहते ही हैं। जिंदा होता है, पूरा जिंदा होता है। अधमरा कैसे कोई हो सकता है? यह भाषा की भूल है। आधा जिंदा कोई कैसे हो सकता है? एक आदमी बिल्कुल बेहोश भी पड़ा हो, तो भी जिंदा है, पूरा जिंदा है, सौ प्रतिशत जिंदा है। आधा मर गया है, ऐसा नहीं कह सकते। और एक आदमी मर गया, तो आप यह नहीं कह सकते कि आधा जिंदा है। मर गया तो मर गया, जिंदा है तो जिंदा है। इन दो किनारों के बीच कोई भी जगह नहीं है, कोई स्पेस, कोई रिक्तता नहीं है।
ठीक से अपना विचार करें, और रावण को आप छिपा हुआ पाएंगे। और ठीक-ठीक आप अनुभव कर लें कि मैं रावण हूं। वही रावण की भूल थी। क्योंकि रावण अपने को रावण नहीं समझता था, समझता था महापंडित, ज्ञानी। और शायद शास्त्रार्थ करता तो राम को हरा देता, शास्त्र उसे कंठस्थ थे। शक्तिशाली भी कम नहीं था, क्योंकि अज्ञानी सदा शक्ति की तलाश करता है। बड़ी सिद्धियां उसने इकट्ठी कर रखी थीं। और सिद्धियां इकट्ठा करने के लिए अज्ञानी कुछ भी करने को राजी होता है।
इसलिए कथा है कि वह अपनी गर्दन को काटकर शिव के सामने चढ़ा देता था। इस सीमा तक जा सकता है अज्ञानी। सब कुछ छोड़ने को राजी है, अहंकार भर उसका मजबूत होता चला जाए। मरने तक को राजी है, अहंकार अगर बचता हो। तो सिद्धि की तलाश थी उसकी, मंत्रों की साधना थी उसकी, बड़ा साधक था।
राम के जीवन में कोई साधना की खबर ही हमें नहीं है कि राम ने कहां साधना की, कौन सी सिद्धियां पाईं, रावण के जीवन में हमें खबर है, उसने बड़ी साधना की, बड़ी सिद्धियां पाईं। आखिर शिव को उसने प्रसन्न कर लिया और वह परम शक्ति का मालिक हो गया। ज्ञान भी उसके पास था, पांडित्य उसके पास था, सब कुछ उसके पास था। इसलिए स्वाभाविक है कि वह सोचता हो कि राम मैं हूं। अगर शक्ति से ही तौला जाए, साम्राज्य से तौला जाए, स्वर्ण से तौला जाए, ज्ञान से तौला जाए, तो राम बिल्कुल निरीह हैं। राम का वह चित्र, जहां वह जंगल जा रहे हैं, बिल्कुल निरीह है। जो था, वह भी छिन गया है। कुछ भी नहीं है पास। एक ना-कुछ व्यक्ति की तरह जंगल में निरीह खड़े हैं। रावण के पास सब कुछ है। उसको ख्याल रहा होगा कि राम मैं हूं।
तो अगर शक्ति से ही हम सोचें, तो यह तर्क स्वाभाविक है।
जब तक आपको ख्याल न आ जाए ठीक से कि रावण हैं आप, तब तक आपकी वास्तविक जीवन-क्रांति का कदम नहीं उठता। और जैसे ही यह ख्याल आ जाए कि रावण मैं

हूं, महल रावण का गिरना शुरू हो गया। क्योंकि कोई भी व्यक्ति सचेतन होकर रावण नहीं हो सकता। जानते हुए कि रावण मैं हूं, कोई रावण नहीं हो सकता।
जानते हुए कि बुरा मैं हूं, बुराई नहीं टिक सकती। क्योंकि यह जानना एक आग है, जिसमें बुराई जल जाती है, राख हो जाती है।
अगर बुराई को बचाना हो, तो यह जानना जरूरी है कि मैं बुरा नहीं हूं। भला कहना मुश्किल हो, तो भी इतना तो कहूं कि और लोगों से कम बुरा हूं, भलाई की तरफ चल रहा हूं।
एक आदमी मरा। उस गांव का रिवाज था कि जब कोई मर जाए, तो उसकी प्रशंसा में कुछ कहा जाए। और जब तक उसकी प्रशंसा में कुछ न कहा जाए, तब तक उसका अग्नि-संस्कार नहीं किया जा सकता। और वह आदमी इतना बुरा था कि गांव भर के लोगों ने बहुत सोचा, लेकिन कुछ भी न खोज पाए कि प्रशंसा में क्या कहें!
उस जैसा दुष्ट खोजना मुश्किल था। उपद्रवी ऐसा था कि बिना कारण उपद्रव खड़ा करे। पूरा गांव उससे त्रस्त था और सभी प्रसन्न थे उसकी मृत्यु से। न केवल गांव के लोग, उसके घर-परिवार के लोग भी बड़े आनंदित और आह्लादित थे कि झंझट मिटी। क्योंकि वह आदमी झंझटी था और सुबह से सांझ तक किसी न किसी को, किसी न किसी झंझट में डाले रखता था। पूरे गांव को उसने अदालत के चक्कर लगवा दिए थे। और उससे रास्ते पर नमस्कार करना भी खतरनाक था। उससे कोई भी संबंध बनाना उपद्रव की बात थी, क्योंकि उतने में ही वह कुछ जाल खड़ा कर दे। मरघट पर उसकी लाश रखे बैठे हैं और कोई उठकर खड़ा नहीं होता जो प्रशंसा में कुछ कहे। गांव का पुराना रिवाज कि जब तक प्रशंसा में कोई कुछ न कहे, तब तक आग न दी जाए। फिर सांझ होने लगी, गांव परेशान है। आखिर लोगों को लगा कि मरकर भी सता रहा है, अब इसको कैसे जलाएं! और जब तक जलाओ न, तो गांव कैसे जाएं? और रात उतरने के करीब है, अब करना क्या?
फिर एक आदमी खड़ा हुआ और उसने कहा कि यह आदमी अपने चार भाइयों की तुलना में देवता था। इसके चार भाई और हैं गांव में, वे इससे भी ज्यादा उपद्रवी हैं और दुष्ट हैं। अपने चार भाइयों की तुलना में यह आदमी देवता था! अग्नि- संस्कार करके लोग घर लौट आए।
आप भी अपने को समझाए रखते हैं कि औरों की तुलना में मैं देवता हूं! इतने बुरे लोग हैं संसार में, मैं इतना बुरा नहीं। बुद्ध जैसा भला नहीं, राम जैसा भला नहीं, रावण जैसा बुरा भी नहीं हूं। और पृथ्वी रावणों से भरी है, मैं मध्य में हूं।
मध्य में कोई भी नहीं है, कोई भी हो नहीं सकता। मध्य की भ्रांति को छोड़ दें, तो क्रांति शुरू हो सकती है।
आज इतना ही।

नहिं राम बिन ठांव
सातवां प्रवचन

सीताः प्रेम की अनन्य घटना

प्रश्नः ओशो, आपके अनुसार ही, प्रेमी-प्रेमिका का प्रेम तो टिकाऊ भी होता है, लेकिन पति-पत्नी का नहीं।
और कल आपने कहा कि राम और सीता का प्रेम अपने आप में इतना पूर्ण था कि
वे एक-दूसरे से आजीवन संतुष्ट रहे। क्या यह संभव है? या यह नियम को सिद्ध करने वाला मात्र अपवाद है? और यदि संभव है, तो कैसे संभव होता है? और दूसरी बात, आपने गृहस्थों को संन्यास की दीक्षा दी है। कितने ही दंपति और प्रेमी-प्रेमिकाओं के जोड़े आपके संन्यास में दाखिल हैं। वे अपने सेक्स और संसार को, साधना और संन्यास को कैसे समन्वित करें, इस दिशा में भी कृपया हमारा मार्गदर्शन करें।

राम और सीता का संबंध प्रेम का ही संबंध है, पति-पत्नी का नहीं। विवाह
दो भांति संभव हो सकता है। एक आयोजित, कि माता और पिता निर्णय लें, पंडित-ज्योतिषी निश्चय करें, परिवार-समाज सहयोगी हो, लेकिन जिन व्यक्तियों का विवाह हो रहा है, उनकी कोई भी मरजी न पूछी जाए, समाज तय करे। ऐसा विवाह आयोजित विवाह है। ऐसे विवाह में बड़ी सुरक्षा है, बड़ी सिक्योरिटी है। क्योंकि बड़े-बूढ़े जब तय करते हैं, तो पूरे गणित का उपयोग करते हैं, पूरे अनुभव का उपयोग करते हैं। जीवन में जो उन्होंने जाना है, सीखा है, समझा है, उस हिसाब से तय करते हैं। बड़े-बूढ़े चालाक स्वभावतः होते हैं। उनकी चालाकी, उनकी कनिंगनेस, उनका गणित वे उपयोग में लाते हैं। और उन्होंने जीवन में कुछ महत्वपूर्ण बातें देखी हैं, जो कि बच्चे बच्चे होने के कारण नहीं देख सकते। उन्होंने देखा है कि भाव की दशाएं सदा टिकती नहीं हैं। उन्होंने जाना है कि भाव की ऊंचाई पर जो निर्णय लिए जाते हैं, जब भाव नीचे गिरेगा तो वे निर्णय नष्ट हो जाएंगे। उन्होंने यह भी जाना है कि सपनों में ज्यादा देर तक नहीं जीया जा सकता। सपने अंततः टूट जाते हैं। रोमांस एक सपना है। रोमांस एक ऐसा सपना है, जिसमें हम दूसरे को परमात्मा देखते हैं, दूसरे में परमात्मा देखते हैं। लेकिन हमारी मनोदशा तो ऐसी नहीं कि दूसरे में परमात्मा हम सतत देख सकें। क्षणभर को झलक मिलती है और खो जाती है, फिर घुप्प अंधेरा हो जाता है। और जब दूसरे में परमात्मा हमें नहीं दिखाई पड़ेगा, तो उस झलक के आधार पर जो संबंध हमने निर्मित किया था, वह बिखरित हो जाएगा।
इसलिए पश्चिम में इतना ज्यादा तलाक है। क्योंकि पश्चिम में समाज विवाह को तय नहीं कर रहा है, बच्चे स्वयं तय कर रहे हैं। सौ विवाह इस वर्ष होंगे, तो उसमें से पच्चीस अगले वर्ष टूट जाएंगे। जो पचहत्तर चलते हैं, वे भी मजबूरी में चलते मालूम पड़ते हैं। अन्य कारणों से चलते मालूम पड़ते हैं, प्रेम के कारण नहीं। बच्चे हैं, नौकरी है, अकेलापन है, छोड़ने में मजबूरी है, छोड़ने में सम्मान को धक्का लगता है, इन सब कारणों से टिकते हैं।
तो जो विवाह समाज तय करता है, वह बड़ा टिकाऊ है। पहली बात। और टिकाऊ वह इसीलिए है कि उसमें कोई प्रेम की ऊंचाई नहीं है, उसमें गणित का समतल जगत है। उसमें हिसाब को प्रधानता है, भावना को नहीं। समाज जब तय करता है तो बुद्धि से तय करता है, उसमें हृदय को स्थान नहीं। और हृदय भरोसे योग्य नहीं है, क्योंकि हृदय इस क्षण कह सकता है हां और दूसरे क्षण कह सकता है न। हृदय की थिरता तो केवल समाधिस्थ पुरुषों को उपलब्ध होती है। बुद्धि
का तो तर्क और गणित है, उसकी थिरता तो सभी को उपलब्ध हो सकती है। इसलिए बुद्धि को शिक्षित किया जा सकता है, विद्यालय, विश्वविद्यालय, परीक्षाएं; लेकिन हृदय का न कोई विद्यालय है, न कोई विश्वविद्यालय है, न कोई परीक्षाएं हैं। हृदय को शिक्षित नहीं किया जा सकता।
हृदय पारे की भांति है, उसे पकड़ा नहीं जा सकता। हृदय को तो पकड़ने में
वे ही सफल हो पाते हैं, जो समाधिस्थ हुए, जो लीन हो गए, जिनका अहंकार संपूर्ण रूप से समाप्त हो गया। उनका हृदय समाधिस्थ होता है। ऐसे समाधिस्थ

हृदय से जो प्रेम उठता है, वह तो सनातन है, शाश्वत है। उसका कभी कोई अंत नहीं होता।
पर ऐसा प्रेम तो कभी उठेगा किसी राम को, किसी सीता को। ऐसे प्रेम का आसरा लेकर समाज नहीं चलाया जा सकता। और इसको हम आधार मानकर चलेंगे, तो अधिक लोग दुखी हो जाएंगे, पीड़ित हो जाएंगे।
तो समाज-आयोजित विवाह है। अनुभव, समझ, गणित, सभी आयोजित विवाह के पक्ष में हैं। उससे चीजें टिकती हैं। माना कि आकाश नहीं छुआ जा सकता, लेकिन पृथ्वी पर पैर जमे रहते हैं। कोई बहुत आनंद की वर्षा भी नहीं होगी, लेकिन सुख-दुख का छोटा-सा झरना सदा बहता रहता है।
वे जो आनंद की वर्षा की आकांक्षा करते हैं, उसमें से सौ में से निन्यानबे, अक्सर दुख के मरुस्थल में खो जाते हैं। वे जो थोड़े से सुख-दुख के झरने पर राजी हैं, उन्हें न तो कभी आकाश मिलता है आनंद का और न कभी दुख का मरुस्थल मिलता है। वे जीवन को चला लेते हैं। उनके जीवन में सुख-दुख दो चाक बन जाते हैं और उनकी गाड़ी चल जाती है। और उस चलती गाड़ी का हमने नाम जीवन दे रखा है।
आयोजित विवाह टिकाऊ होगा, स्थायी होगा, उसमें महासुख न होंगे, उसमें महादुख भी न होंगे। न वह प्रेम के कारण बना है, न प्रेम के खोने पर टूटेगा। और जब प्रेम के कारण बना ही नहीं है, तो प्रेम के खोने का सवाल नहीं है। वह एक सामाजिक संस्था है। हजारों साल के अनुभव के बाद, हृदय को हम मौका नहीं देते हैं और बुद्धि से तय करते हैं। विवाह बुद्धि का निर्णय है।
लेकिन प्रेम बिल्कुल अनूठी बात है, उसका बुद्धि से कोई संबंध नहीं।
प्रेम का विचार से कोई संबंध नहीं। जैसा ध्यान निर्विचार है, वैसा ही प्रेम निर्विचार है। और जैसे ध्यान बुद्धि से नहीं सम्हाला जा सकता, वैसे ही प्रेम भी बुद्धि से नहीं सम्हाला जा सकता।
ध्यान और प्रेम करीब-करीब एक ही अनुभव के दो नाम हैं।
जब किसी दूसरे व्यक्ति के संपर्क में ध्यान घटता है, तो हम उसे प्रेम कहते हैं। और जब बिना किसी दूसरे व्यक्ति के, अकेले ही प्रेम घट जाता है, तो उसे हम ध्यान कहते हैं। ध्यान और प्रेम एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
ध्यान और प्रेम एक ही दरवाजे का नाम है, दो अलग-अलग स्थानों से देखा गया। अगर बाहर से देखोगे, तो दरवाजा प्रेम है। अगर भीतर से देखोगे, तो दरवाजा ध्यान है। जैसे एक ही दरवाजे पर बाहर से लिखा होता है एंट्रेन्स, प्रवेश; और भीतर से लिखा होता है एग्जिट, बहिर्गमन। वह दरवाजा दोनों काम करता है।
अगर बाहर से उस दरवाजे पर आप पहुंचे, तो लिखा है प्रेम। अगर भीतर से उस दरवाजे को अनुभव किया, तो लिखा है ध्यान।
ध्यान अकेले में ही प्रेम से भर जाने का नाम है और प्रेम दूसरे के साथ ध्यान में उतर जाने की कला है।
कभी कोई पहुंच पाएगा। क्योंकि कितने कम ध्यानी हैं! उतने ही कम प्रेमी होंगे। ध्यानियों के हिसाब से हम दुनिया नहीं चलाते, प्रेमियों के हिसाब से भी नहीं चला सकते। इसलिए ध्यानी और प्रेमी, दोनों दुनिया की आंखों में पागल हैं। ध्यानी और प्रेमी, दोनों को दुनिया अंधा कहती है। इन्हें कुछ सूझता नहीं।
असल में आंखें हैं बुद्धि के पास। और बुद्धि सोचती है, बस उसके ही पास आंखें हैं। हृदय के पास कोई और आंखें हो सकती हैं, इसका बुद्धि को पता भी नहीं। और पता भी हो जाए तो भरोसा नहीं। क्योंकि हृदय जीता है पल-पल, क्षण-क्षण। हृदय एक सहज धारा है।
हृदय हिसाब नहीं रखता अतीत का कि कल क्या हुआ, परसों क्या हुआ। बुद्धि हिसाब रखती है पूरे अतीत का और अतीत के आधार पर निर्णय लेती है वर्तमान में। जो जीवन में जाना है, उस पूरे को मौजूद करके आज क्या करना है, उस संबंध में निर्णय लेती है। हृदय के पास कोई संगृहीत संपदा नहीं है। हृदय निर्भार है, हृदय का कोई अतीत नहीं है, उसकी कोई स्मृति नहीं है। वह इसी क्षण झटके से निर्णय लेता है। वह कुछ सोचता-विचारता नहीं। वह अतीत में नहीं जाता। वह अनुभव को बीच में नहीं लाता। वह स्मृति का प्र्रयोग नहीं

करता। उसका जो प्रतिसंवेदन है, रिस्पांस है, वह इसी पल है, नया और ताजा है। हृदय सदा, जैसे सुबह की ओस ताजी होती है, ऐसा ताजा है।
बुद्धि सदा बासी है। हृदय सदा ताजा है। जैसे वसंत में नई कोंपल फूटती
है वृक्ष से, ऐसा ताजा है। बुद्धि सदा पुरानी है, सड़ी-गली है। बुद्धि सदा खंडहर है। हृदय सदा यहां और अभी है। इसलिए हृदय बुद्धि की दृष्टि में अंधा और पागल है।
प्रेमी और ध्यानी ज्यादा नहीं हैं, ज्यादा हो भी नहीं सकते। ध्यानियों के संबंध में तो हम भी मानते हैं कि ज्यादा नहीं हैं, लेकिन प्रेमियों के संबंध में हम नहीं मानते। प्रेमी तो हम सभी समझते हैं, हम सब हैं। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, इस भ्रांति को छोड़ दें। जितने न्यून ध्यानी हैं, उतने ही न्यून प्रेमी हैं। क्योंकि प्रेम भी ध्यान की ही एक घटना है। और जैसे बुद्ध, महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट, इने-गिने ध्यानी हुए, ऐसे ही इने-गिने प्रेमी हुए हैं। सीता, राधा या मीरा, इने-गिने प्रेमी हुए हैं। जिस कामवासना को आप प्रेम समझते हैं, वह प्रेम नहीं है। और जिस कामवासना की दौड़ को आप समझते हैं, आपके जीवन का कोई बहुत महत्वपूर्ण कृत्य है, वह जरा भी महत्वपूर्ण नहीं है। वह सिर्फ प्रकृति के द्वारा संचालित प्रक्रिया है। वह प्रकृति के द्वारा आपको जबर्दस्ती दिया गया धक्का है। जिसमें प्रकृति संतति के लिए आपको नियोजित करती है।
बीज टूटते हैं, वृक्ष बनते हैं, वृक्षों में बीज लगते हैं। पक्षी गीत गाते हैं, आकर्षित करते हैं एक-दूसरे को, संभोग करते हैं, अंडे रखते हैं, बच्चे देते हैं। बस आप भी यही कर रहे हैं। मछलियों में, पक्षियों में, वृक्षों में, आप में, जहां तक कामवासना का संबंध है, कोई भी भेद नहीं है। कामवासना प्राकृतिक घटना है। प्रेम अप्राकृतिक, अलौकिक, परा- प्राकृतिक घटना है। प्रकृति के बहुत पार है प्रेम। इसे ख्याल में ले लें, और फिर समझने की कोशिश करें।
राम और सीता का प्रेम, प्रेम है, विवाह नहीं। और अगर बाल्मीकि की रामायण आपने पढ़ी है, अन्यथा पढ़नी चाहिए। क्योंकि बाल्मीकि के बाद फिर तुलसी और सबने रामायण लिखी हैं, लेकिन उन सब रामायणों में शुद्धता खो गई। बाल्मीकि की रामायण शुद्ध है। शुद्ध इसलिए है कि बाल्मीकि को न नीति की चिंता है, न धर्म की। बाल्मीकि ने रामायण वैसी कही है जैसे राम रहे होंगे। तुलसी को बड़ी चिंता है राम की प्रतिमा को सम्हालने की। तो जो भी लगे
कि इसमें कुछ नीति को कष्ट होगा, उस सबको गिरा दिया है। जिस बात में भी लगे कि राम की प्रतिमा में थोड़े धब्बे आ जाएंगे, उसको हटा दिया है।
तुलसी आदर्शवादी हैं। बाल्मीकि यथार्थवादी हैं, रिअलिस्ट। इसलिए बहुत सी तो बातें आपको बड़ा कष्ट देंगी बाल्मीकि में, क्योंकि आप सोच ही नहीं सकते कि राम और सीता के आस-पास ऐसी बात भी हो रही है।
राम पहुंचते हैं सीता की नगरी में, बगीचे में घूमते हैं, सीता को देखकर प्रेम में पड़ जाते हैं। यह हम सोच ही नहीं सकते। यह तो हम कहेंगे, यह तो एक आवारा लड़का भी यही करता है, किसी लड़की को देखा और प्रेम में पड़ जाता है। ये कोई ढंग राम के हैं? लेकिन राम का प्रेम हो गया विवाह के पहले। फिर विवाह तो उसी प्रेम की परिपूर्ति की यात्रा है।
सीता को भी प्रेम हो गया इस युवक को देखकर। ये दो हृदय मिल गए, समाज गवाही बाद में देगा। इन दो हृदयों के मिलने की घटना पहले घट गई है। और इसके बाद मेरी समझ है कि अगर सीता का किसी और से भी विवाह हो जाता, तो वह ऊपर ही ऊपर रहता। वह जो ताजगी, इन दो हृदयों के कुंआरेपन में जो प्रेम का जन्म हुआ था, वैसा कुंआरापन फिर किसी और प्रेम में नहीं हो सकता था। वह उधार होता, शरीर पर होता।
रावण भी सीता को ले जाता, तो सीता को कभी पा नहीं सकता था। वह पाने की घटना घट चुकी, वह कोई और व्यक्ति पा ही चुका था। राम किसी और से विवाह कर लेते, तो भी जो सीता से संगीत जन्मा था, उनके दोनों के हृदय के मिलने की जो अनायास घटना घटी थी, जो आकस्मिक हुआ था, अन-आयोजित हुआ था, वैसा फिर नहीं हो सकता था।

इस दिशा से राम और सीता को कभी अध्ययन नहीं किया गया है। क्योंकि हम प्रेम का अध्ययन ही नहीं करते, हम प्रेम से बचना चाहते हैं। यह राम का और सीता का प्रेम में पड़ जाना प्रथम घटना है। इसके बाद शेष सारा विकास हुआ है। और इसे हम न समझें, तो राम और सीता के जीवन में बड़ी व्यर्थ की झंझटें और प्रश्न खड़े होते हैं, जिनको हल करना मुश्किल हो जाता है।
एक पंडित मेरे पास आए। वे कृष्ण-भक्त हैं और राम-विरोधी हैं। सिर्फ पंडित ही ऐसा कर सकते हैं कि राम-भक्त हों कि कृष्ण-विरोधी हों, कि कृष्ण-भक्त हों कि राम-विरोधी हों, क्योंकि पंडित हमेशा पक्ष और विपक्ष में होगा। उसके पास हृदय तो नहीं होता है, जो समझ पाए। अगर समझ पाए तो राम और कृष्ण एक ही दिखाई पड़ेंगे।
उस पंडित ने मुझे कहा कि और सब तो ठीक है राम के जीवन में, लेकिन सीता
का निष्कासन एक दो कौड़ी के आदमी, एक धोबी के कहने पर, एक सुनी हुई बात पर, एक अफवाह पर गर्भवती सीता को घर से निकाल देना, जंगल में फेंक देना, यह बात कुछ मर्यादा पुरुषोत्तम के योग्य मालूम नहीं पड़ती। इसमें प्रेम की बड़ी कमी मालूम होती है। तो राम राजपुरुष रहे होंगे, एक राजनीतिज्ञ रहे होंगे, लेकिन प्रेमी तो नहीं हैं। क्योंकि यह कैसा प्रेम?
जब मैंने उन पंडित को कहा कि मेरे देखे यह प्रेम की बड़ी अनूठी घटना है
और सिर्फ प्रेमी ही यह कर सकता है, तो उनकी समझ में आना मुश्किल हो गया। मैं मानता हूं कि राम सीता को जंगल में फेंक सके, सिर्फ इसीलिए कि प्रेम इतना गहन है कि राम के मन में यह ख्याल भी नहीं उठता कि सीता संदेह करेगी, कि सीता ऐसा भी सोच सकती है कि राम ने गलत किया। सीता इसे स्वीकार करेगी। यह प्रेम ऐसा अनन्य है। सीता समझेगी कि यही उचित है।
तो दुनिया में और सारे लोगों ने अनुचित का सवाल उठाया हो, लेकिन सीता
ने नहीं उठाया है। राम के बच्चों ने, लव-कुश ने उठाया है, लेकिन सीता ने नहीं उठाया है। लक्ष्मण के मन में सवाल उठा है। जो भी रामायण पढ़ेगा उसको सवाल उठेगा ही कि यह बात क्या है, लेकिन सीता ने सवाल नहीं उठाया है। सीता ने स्वीकार कर लिया है।
जब हम किसी को प्रेम करते हैं, तो वह जैसा भी है, हम उसे वैसा पूरा स्वीकार कर लेते हैं। वह हमारे साथ जो भी करेगा, वह बुरा तो हो ही नहीं सकता। यह प्रेम की सहज निष्पत्ति है कि वह सारी दुनिया को बुरा दिखाई पड़े, लेकिन प्रेमी को बुरा दिखाई नहीं पड़ सकता।
प्रेमी अपने अहंकार को छोड़ ही चुका होता है। और राम सीता को भेज सकते हैं वनवास, क्योंकि यह सीता का भेजना नहीं, खुद का ही जाना है। यह भेद इतना भी नहीं रहा है।
इसलिए जब हम दूसरे को कुछ कष्ट दे रहे हों, तो विचार भी उठता है। जब अपने को ही किसी त्याग या कष्ट में ले जा रहे हों, तो विचार का कोई सवाल नहीं। सीता इतनी अपनी है राम को कि छोड़ने में उन्हें यह विचार नहीं उठा कि कुछ अनुचित हो रहा है। जैसे वे खुद एक दिन पिता के कहने पर जंगल चले गए थे, वैसे ही सीता भी जंगल चली जाती है। जहां प्रेम है, वहां प्रश्न नहीं है, वहां एक परम स्वीकृति है।
राम और सीता के बीच जो घटना घटी है, वह प्रेम की ही अनन्य घटना है। और पति-पत्नी होना गौण है। वह सामाजिक उपचार है। वह समाज की स्वीकृति है। वह मूल आधार नहीं है।
और सीता के मन में दूसरे पुरुष का सवाल नहीं उठेगा। जहां प्रेम की कमी है, वहीं दूसरे का सवाल उठता है। और राम के मन में दूसरी स्त्री का प्रश्न नहीं उठेगा। जहां प्रेम की कमी है, जहां हम तृप्त नहीं हैं, अतृप्त हैं, वहीं दूसरा हमें आकर्षित करता है।
प्रेम एक अद्वैत है, जहां दूसरा बिल्कुल... दूसरे का कोई सवाल ही नहीं। जिस दिन भी आप किसी के प्रेम में पड़ गए, उस दिन सारी स्त्रियां उस स्त्री में समा गईं, सारे पुरुष उस पुरुष में समा गए। फिर वह स्त्री प्रकृति है और आपका पुरुष पुरुष है और यह सारा जगत खो गया। और इसीलिए प्रेम की इतनी भूख है; और जब तक ऐसा प्रेम न मिल जाए, तब तक तृप्ति भी न होगी; तब तक आप कितने ही साथी बदलें। और बदल चुके हैं आप।

पश्चिम में वे जरा जल्दी में हैं, इसीलिए एक ही जीवन में बदलते हैं; आप इतनी जल्दी में नहीं, अलग-अलग जीवन में बदलें, बुनियादी कोई फर्क नहीं है। इस देश में हमें पता है कि जन्मों-जन्मों की लंबी यात्रा है, कोई जल्दी नहीं है। एक जीवन, एक पत्नी; फिर दूसरे जीवन, दूसरी पत्नी, दूसरा पति बदलने की हमें सुविधा है। पश्चिम में चूंकि ईसाइयत ने कहा, एक ही जन्म है। इतनी सुविधा नहीं है। तो एक ही जन्म में उनको उतना काम करना पड़ता है, जो आप कई जन्मों में फैलाकर कर रहे हैं। उन्हें जल्दबाजी है, क्योंकि समय कम है। आपके पास समय बहुत है, इसलिए जल्दबाजी नहीं है। लेकिन कोई बुनियादी अंतर नहीं है।
एक सुंदर स्त्री को देखकर क्षणभर को आपको अपनी पत्नी खो जाती है, भूल जाती है। क्षणभर को आपके मन में वासना का धुआं भर जाता है। क्षणभर को आप इस स्त्री को भोगने को आतुर हो जाते हैं। चाहे राम-राम जपकर भुला देते हों, आंख बदल देते हों, भाग खड़े होते हों, पीछे लौटकर न देखते हों, लेकिन इस सबसे कोई फर्क नहीं पड़ता है। न तो आंख चुराई जा सकती है भीतर की वासना से, न राम-राम कहकर उसे दबाया जा सकता है। वह है। और वह तब तक रहेगी, जब तक आपके जीवन में प्रेम नहीं घटा।
और दो यात्राएं हैंः या तो प्रेम घट जाए और या ध्यान घट जाए। और दो तरह
के व्यक्ति हैं, एक स्त्री का चित्त है, जहां प्रेम पहले घट सकता है, फिर ध्यान घटेगा। और एक पुरुष का चित्त है, जहां ध्यान पहले घटे, फिर प्रेम घटेगा। ये दो ढंग हैं। लेकिन कोई भी पहले घटे, दूसरा अनिवार्य-रूप से घटने वाला है। एक कदम उठ गया है, तो दूसरा भी उठेगा।
तो आप अपने को पहचान लें, अगर आपके जीवन में प्रेम से ही परमात्मा की खोज होने वाली है, और आपको लगता है कि ध्यान में मेरी कोई रुचि नहीं, प्रेम में ही मेरा रस है, तो आप ध्यान की व्यर्थ चेष्टा मत करें। आप प्रेम में ही डूबने का उपाय करें।
और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वह प्रेम किसका है। वह आपकी पत्नी का
है कि आपके बच्चे का है कि आपकी गाय का है कि एक वृक्ष के साथ है, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि सवाल दूसरे का नहीं, सवाल प्रेम करने की प्रक्रिया का है। एक पत्थर से भी आप प्रेम कर लें, तो भी वही घट सकता है। इसलिए ऐसा मत सोचना आप कि पत्थर की जो मूर्तियां रखी हैं, वे मूर्तियां सदा ही व्यर्थ रखी रही हैं। वहां भी कई बार प्रेम घट गया है। पत्थर की मूर्ति के पास भी भक्त ने भगवान को पा लिया है। क्योंकि पत्थर की मूर्ति का सवाल ही नहीं है, सवाल तो भीतर के हृदय का है।
भक्त को आप देखें, उसका व्यवहार देखें उसकी पत्थर की मूर्ति से, वैसा व्यवहार आपने किसी जीवित चिन्मय व्यक्ति के साथ भी नहीं किया है। उसकी चिंता, उसकी फिक्र। भगवान को सुबह उठाता है, उनके द्वार पर घंटी बजाता है। कहता है, उठो नंदकिशोर, सुबह हो गई। और हमें हंसी आएगी। क्योंकि हम यह सोच ही नहीं सकते कि यह क्या नासमझी है, क्या पागलपन है। पानी ले जाकर रखेगा कि दतौन करो, दतौन रखेगा, हाथ-मुंह धुलाएगा, उठाएगा, कपड़े बदलेगा। और लीन है, जैसे कोई मां अपने बच्चे की चिंता करती हो, कोई प्रेयसी अपने प्रेमी की चिंता करती हो, वैसा लीन है। और उस लीनता के क्षण में सारा जगत खो गया है, वह पत्थर की मूर्ति ही सारा अस्तित्व है। भोजन तैयार करेगा, भोग लगाएगा, तभी खुद प्रसाद ले सकेगा। सांझ होगी तो सुलाएगा, भगवान थक गए। दोपहर होगी तो द्वार बंद करेगा। रात होगी तो मच्छरदानी लगाएगा।
हमें लगेगा कि सब पागलपन है। और अगर एक मनोवैज्ञानिक को ले आएं जांच करने को, तो वह कहेगा, यह पैथालॉजिकल है। यह आदमी रुग्ण है, इसकी बुद्धि खराब हो गई, यह क्या कर रहा है? परवर्शन मालूम होगा, विकृति मालूम होगी, क्योंकि मनोविज्ञान को कोई भी पता नहीं प्रेमी के हृदय का।
इससे कोई भी संबंध नहीं कि प्रेम-पात्र कौन है। प्रेम-पात्र तो सिर्फ बहाना है। प्रेम-पात्र के बहाने के द्वारा भीतर प्रेम की सरिता जो अवरुद्ध पड़ी है, वह बह उठे, जो झरना रुक गया है, वह फिर झरने लगे, कहीं पत्थर अटक गए हैं, वे पत्थर हट जाएं। तो पात्र तो सिर्फ पत्थर हटाने का काम कर रहा है। झरना तो मेरे भीतर है। एक दफा बहने लगे, तो आप निश्चिंत होकर जान

लेंगे कि इसका प्रेम-पात्र से कोई भी संबंध न था। यह झरना तो मेरा स्वभाव था। लेकिन मैंने ही पत्थर रख-रखकर झरने को रोक रखा था। प्रेम-पात्र ने सहायता दी और पत्थर हट गए और झरना निर्बाध बहने लगा।
तो अगर प्रेम आपका रस हो, तो पागल होने की तैयारी चाहिए। फिर किससे प्रेम, यह सवाल ही नहीं है। कृष्ण की मूर्ति काम दे सकती है, जीसस की मूर्ति काम दे सकती है, एक अनगढ़ पत्थर भी काम दे सकता है।
मैंने सुना है कि एक फकीर के पास एक आदमी गया और उस आदमी ने कहा, मुझे परमात्मा को खोजना है। और उस फकीर ने कहा, खोज बड़ी कठिन है और परमात्मा बड़ी छलांग है, पहले तुम थोड़ी छोटी-छोटी छलांगें भरना शुरू करो। उस आदमी ने कहा, वह कौन-सी छोटी छलांग है? उस फकीर ने कहा, तुम किसी को प्रेम करो। यह छोटी- छोटी छलांग का अभ्यास है। फिर परमात्मा प्रेम की आखिरी छलांग है, जिसमें तुम बिल्कुल न बचोगे, खो जाओगे अनंत खाई में, फिर तुम्हारा नामोनिशान न बचेगा, फिर तुम्हारी राख भी खोजे से न मिलेगी। वह आखिरी छलांग है, उसको जरा रुको। शायद उतनी हिम्मत अभी तुम न जुटा पाओ, थोड़ी-थोड़ी छलांग लो, छोटे-छोटे गड्ढों में अभ्यास करो। तो उस आदमी ने कहा, मेरा तो किसी से प्रेम नहीं। और मैं तो अब तक यही सोचता रहा कि ये पत्नी, बच्चे, इनसे कैसे छुटकारा हो ताकि मैं परमात्मा तक जाऊं। और मैंने तो कभी किसी की तरफ प्रेम भरी नजर से नहीं देखा, क्योंकि मैं डरता रहा कि प्रेम बंधन बन जाएगा।
निश्चित ही प्रेम बंधन बनता है। अगर भीतर अहंकार हो, तो प्रेम बंधन बनता है। अगर भीतर अहंकार न हो, तो बंधेगा कौन? हम सबको प्रेम बंधन बन जाता है, क्योंकि भीतर बंधने वाला मौजूद है। और प्रेम चारों तरफ से कसता है। और जब प्रेम कसता है, तो हम भीतर तड़फड़ाते हैं। लेकिन अगर भीतर मैं हूं, तो प्रेम तो हो ही नहीं सकता। इसलिए प्रेम के नाम पर जिसे हम चलाते हैं, वह मोह है, वासना है, तृष्णा है, कामना है। और अहंकार भीतर है, तो वासना, तृष्णा, मोह, सब बांध लेते हैं।
हमने वासना को पाशविक कहा है। लेकिन आपको शायद ख्याल न हो कि पाशविक शब्द का अर्थ क्या होता है! पशु का क्या अर्थ होता है! पशु का अर्थ है, जो बंधा हुआ है। पाश का अर्थ होता है, बांधने वाला, बंधन। पशु का अर्थ होता है, जो बंधा हुआ है। पाशविक का अर्थ होता है, बंधने को तत्पर। पशु का अर्थ जानवर से नहीं है, जो भी बंधा है, वह पशु है। पाश उसके चारों तरफ है। और बंध वही सकता है, जो भीतर खड़ा है।
प्रेमी तो बंध ही नहीं सकता है। इसलिए प्रेम को जो जानते हैं, उन्होंने परम स्वतंत्रता कहा है। उन्होंने कहा, प्रेम मोक्ष है, क्योंकि प्रेम में तुम मिट जाओगे, बंधेगा कौन? अगर पाश होंगे भी, तो शून्य में भटकते रहेंगे, बंधेगा कौन? और शून्य को तुम पाश से बांधने की कोशिश करोगे, तो तुम्हारे पाश में ही गांठ पड़ जाएगी, लेकिन भीतर तो कोई पाया नहीं जा सकता है।
तो उस आदमी ने कहा कि मैं तो बचता रहा प्रेम से, क्योंकि प्रेम पाश है,
और प्रेम बंधन है। और यह तुम मुझे क्या सिखाते हो! तो मैंने तो कभी किसी को प्रेम किया नहीं।
उस फकीर ने कहा, फिर भी सोचो, क्योंकि ऐसा आदमी खोजना कठिन है--चाहे उसने बचाने की कितनी ही चेष्टा की हो--जिसने वस्तुतः किसी को कभी प्रेम न किया हो। यह खोजना ही कठिन है, क्योंकि प्रेम स्वभाव है। तुम जरा सोचो, आंख बंद करो।
उस आदमी ने बहुत सोचा। उसने कहा कि अगर ऐसा ही हो, तो मेरे पास एक गाय है, उससे मेरा थोड़ा लगाव है। तो फकीर ने कहा, बस पर्याप्त है। गाय ही तुम्हारा पहला अभ्यास हो जाएगी छलांग में। तुम जाओ और गाय को हृदयपूर्वक प्रेम करो। गाय तुम्हारी स्मृति में समा जाए, रोएं-रोएं में बैठ जाए। उठो तो गाय, बैठो तो गाय, चलो तो गाय, तुम गायमय हो जाओ। उस आदमी ने कहा, आप भी मुझे क्या पागलपन बता रहे हैं! दुनिया क्या कहेगी? और यह बात ही उन्मत्तता की मालूम पड़ती है!
फकीर ने कहा, प्रेम सदा उन्मत्तता है। और जो मस्त होने को तैयार हैं, केवल उन्हीं पर परमात्मा प्रेम की तरह बरसता है। तुम जाओ, कोशिश करो।

और कहते हैं, उस आदमी ने गाय से ही परमात्मा को पा लिया। फिर वह पूछने नहीं आया फकीर को वापस कि अब और कहां छलांग लगाऊं। वह गाय में देख-देखकर, गाय की आंख में डूब-डूबकर, उसे परमात्मा की आंख स्मरण आ गई।
और गाय के पास आंख है भी। इसलिए हिंदू गाय को माता कहते रहे हैं। गाय
के पास जैसी निर्विकार आंख है। वैसी कहीं भी खोजनी कठिन है। आदमी की आंख भी वैसी निर्विकार नहीं। जैसा शुद्ध, जैसे आकाश बिल्कुल निरभ्र हो, बादल बिल्कुल न हों। गाय की आंख के पास बैठकर कभी देखने की कोशिश करें। और अगर आपके हृदय में प्रेम हो, तो तत्क्षण गाय के हृदय का प्रेम उठना शुरू हो जाएगा। क्योंकि गाय पर न तो समाज के कोई बंधन हैं, और न गाय को कोई नीति की शिक्षा दी गई है, न गाय को कोई अपना-पराया है, न गाय के पास कोई बुद्धि है, जो हिसाब रखती है, गणित लगाती है, सोच-विचारकर चलती है। गाय तो शुद्ध हृदय है। अगर आपके भीतर प्रेम है, तो गाय तत्क्षण प्रेम की तरंगें आपकी तरफ भेजने लगेगी।
आप चकित होंगे, अभी पश्चिम में बड़ा काम चलता है पौधों के ऊपर। गाय तो बहुत दूर, वे कहते हैं, जब आप पौधे के प्रति भी प्रेम-पूर्ण खड़े होते हैं तो पौधा प्रेम की तरंगें भेजना शुरू कर देता है। एक वैज्ञानिक, जो इस संबंध में बड़ा काम कर रहा था, उसने यंत्र खोज रखे हैं। विद्युत के यंत्र हैं, जो पौधे से बांध दिए जाते हैं। और जैसा कार्डियोग्राम में नक्शा बन जाता है, ग्राफ बन जाता है कागज पर कि हृदय कैसा धड़क रहा है, ऐसा पौधे के भीतर विद्युत की तरंगें कैसी धड़क रही हैं, उसका ग्राफ बन जाता है।
तो उसने देखा कि जब पौधे को प्रेम करने वाला पास खड़ा हो व्यक्ति, जो उसे सहला रहा हो, जो उसके कारण प्रसन्न हो रहा हो, तो अलग ग्राफ बनता है। पौधा प्रफुल्लित है, वह ग्राफ से पता चलता है। माली कैंची लेकर आता है, ग्राफ फौरन बदल जाता है। अभी माली काटा भी नहीं है, सिर्फ कैंची लेकर आ रहा है, और ग्राफ बदल गया। और जैसे ही माली काटता है, तो न केवल जिस पौधे को काट रहा है, उसका ग्राफ बदलता है, जो पौधे पास हैं, उनका भी ग्राफ बदल जाता है। क्योंकि वे भी उसकी पीड़ा को अनुभव करते हैं।
यह वैज्ञानिक बहुत हैरान हुआ कि न केवल पौधा काटा जाए तो दूसरे पौधे
को पीड़ा होती है और उसकी पीड़ा के ग्राफ बनते हैं, अगर आप पौधे के पास एक मुर्गी की गरदन मरोड़ दें, तो भी सारे पौधे रोते हैं, और उनके ग्राफ बदल जाते हैं।
यही नहीं, उस वैज्ञानिक ने यह भी अनुभव किया कि जो आदमी पौधों को नुकसान पहुंचाए या मुर्गी को मार डाले, वह दूसरे दिन भी आए, तो उसके कमरे में प्रवेश करते से ही, बगीचे में आते से ही, ग्राफ बदल जाते हैं। क्योंकि पौधे सचेत हैं, एक बुरा आदमी भीतर आ रहा है। महीनों के बाद भी उस आदमी के प्रवेश पर पौधे शंकित हो जाते हैं कि यह आदमी अच्छा नहीं है।
तो पौधे तो और भी कम विकसित जीवन-धारा के अंग हैं। अगर आप गाय को प्रेम
कर सकें और उसकी आंख में झांक सकें, तो उसकी आंख वह द्वार हो जाएगी, जिसमें बाहर से लिखा है प्रेम और भीतर से लिखा है ध्यान।
किसी को भी प्रेम कर सकें, अगर प्रेम आपके जीवन का ढंग है, अगर लगता है
कि प्रेम आपकी प्यास है, तो उसमें डूब जाएं। पर पूरे डूबें, तो ही उबर सकेंगे। बचाने की कोशिश की, तो फिर न उबर पाएंगे।
या आपको लगे कि नहीं प्रेम मेरा रस नहीं--ऐसे लोग हैं, जिनका प्रेम रस नहीं--तो उन्हें कुछ दुखी और चिंतित और निराश हो जाने की जरूरत नहीं। ध्यान उनका मार्ग है। तब वे अकेले हों और अपने में डूबें। अगर दूसरे में नहीं डूब सकते, तो अपने में डूबें। अगर अपने में नहीं डूब सकते, तो दूसरे में डूबें। डूबने के दो ही ढंग हैं। या तो अपने में ही लीन हो जाएं या दूसरे में लीन हो जाएं।
महावीर अपने में लीन होते हैं। इसलिए महावीर कहते हैं, कोई परमात्मा नहीं। परमात्मा की कोई जरूरत नहीं ध्यानी को, क्योंकि ध्यानी को दूसरे की ही जरूरत नहीं है। परमात्मा तो दूसरा है, मुझसे अन्य। इसलिए महावीर कहते हैं, परमात्मा की कोई जरूरत नहीं। अप्पा सो परमप्पा! वे कहते हैं, वह जो भीतर छिपा है, आत्मा है, वही परमात्मा है और कोई परमात्मा नहीं है।

यह कोई नास्तिकता नहीं है। यह ध्यानी का वक्तव्य है। और प्रेमी इससे बड़े परेशान हो जाते हैं, क्योंकि वे समझते हैं कि यह आदमी नास्तिक है।
मीरा सुने तो नाराज हो जाए; सीता सुने तो नाराज हो जाए; चैतन्य महाप्रभु सुनें तो कहें, यह क्या बात हुई! यह आदमी नास्तिक है।
महावीर नास्तिक नहीं हैं। यह ध्यानी की आस्तिकता है।
और महावीर सुनेंगे मीरा को आंसू बहाते और नाचते और कहते कि मेरा तो गिरधर गोपाल, दूसरा न कोई रे, तो महावीर कहेंगे, यह क्या हो रहा है? यह क्या पागलपन है? यह क्या मोह-जाल है? यह क्या मन का खेल है? महावीर इसे धर्म न कह पाएंगे। क्योंकि यह प्रेमी का धर्म है, यह प्रेमी की आस्तिकता है। प्रेमी की आस्तिकता, ध्यानी को सदा ही कुछ उन्मत्त, कुछ पागल, कुछ गलत बात मालूम पड़ेगी। ध्यानी की आस्तिकता प्रेमी को सदा नास्तिकता मालूम पड़ेगी।
इसलिए हिंदुओं ने जैन, बौद्ध और चार्वाक, तीनों को एक साथ नास्तिक परंपराएं गिनाया है। चार्वाक तो ठीक है, लेकिन उसमें जैन और बौद्ध भी गिनाए, ये तीन संप्रदाय नास्तिक हैं।
उसका कारण है, प्रेमी सोच ही नहीं सकता कि अपने में कैसे डूबोगे? यह अपने में डूबना तो ऐसे ही हुआ, जैसे कोई अपने ही पैरों को पकड़कर उठाने की कोशिश करे। अपने में कैसे डूबोगे? यह अपने में डूबना तो ऐसे ही हुआ, जैसे कोई चमीटे से उसी चमीटे को पकड़ने की कोशिश करे। यह अपने में कोई कैसे डूब सकता है? डूबने के लिए कुछ तो और चाहिए। कोई अन्य चाहिए। वह अन्य ही परमात्मा है, जिसमें हम डूब सकेंगे।
लेकिन ध्यानी कहता है कि जब तक दूसरा है, तब तक थोड़ा न बहुत तनाव बना
ही रहेगा। दूसरे की चिंता, दूसरे का विचार, प्रार्थना, पूजा, तो मन जारी ही रहेगा। जब तक दूसरा है, तब तक डूबोगे कैसे? जब तक दूसरा है, उसकी मौजूदगी भी डूबने में थोड़ा-सा अंकुश बनी रहेगी। दूसरा बिल्कुल नहीं है, तभी तुम डूबोगे, तभी डूबना पूरा होगा।
वे दोनों ही ठीक कहते हैं। और मेरे देखे, ये एक ही दरवाजे के दो नाम हैं।
राम और सीता के बीच अनन्य प्रेम घटा है। किसी और साधना की जरूरत न रही। कुछ और करना आवश्यक न रहा, बस प्रेम ने सब कर दिया है। यह प्रेम इतना अनूठा था कि हिंदुओं ने राम के नाम को पीछे कर दिया और सीता के नाम को आगे कर दिया। हिंदू कहते हैं, सीता-राम। क्योंकि राम फिर भी पुरुष हैं, उनके प्रेम में ध्यान की छाया होगी। सीता स्त्री है, उसके ध्यान में भी प्रेम होगा। तो प्रेमियों ने नाम ही आगे-पीछे कर दिया।
सिर्फ हिंदू अकेली जाति है, जो सीता-राम कहती है, राधा-कृष्ण कहती है। क्योंकि हिंदुओं का सारा मनोभाव प्रेम के द्वार से विकसित हुआ है। यहां ध्यानी भी हुए हैं, लेकिन ध्यानी हिंदू-धारा के बाहर पड़ गए हैं। हिंदू- धारा का मूल-सूत्र प्रेम है।
तो बुद्ध यहां हुए, महावीर यहां हुए, पतंजलि यहां हुए, लेकिन वे हिंदू- धारा के बाहर फिंक गए। वे मूल-स्रोत नहीं बन सके। वे इस परंपरा की प्रमुख धारा नहीं हैं। आनुषंगिक, छोटे झरने हैं, जो इसके साथ बह रहे हैं। हिंदू विचार को जिसे भी समझना हो, उसे प्रेम की अल्केमी को पूरा समझ लेना जरूरी है।
यह जो राम और सीता के बीच घटा है, यह आपके और किसी के भी बीच घट सकता है। तो आप यह मत सोचना कि कहां खोजें राम को, कि कहां खोजें सीता को, और अब यह मिलना कहां होगा? अगर आपने ऐसा सोचा, तो शुरू से ही आप गलत तर्क में पड़ गए। असल में जब भी आप किसी को प्रेम करेंगे, वहीं सीता आपको मिल जाएगी; जब भी आप किसी को प्रेम करेंगे, वहीं राम मिल जाएगा। क्योंकि कोई भी प्रेयसी इससे कम में तो राजी हो ही नहीं सकती कि अपने प्रेमी को राम देखे। इससे कम में राजी नहीं हो सकती।
तो जो हम कहते रहे हैं कि पति परमात्मा है, पतियों ने भला उसका लाभ उठाया हो, चाहे उससे भारी नुकसान हुआ हो, चाहे उसके कारण स्त्रियों का बड़ा शोषण किया गया हो, दमन किया गया हो, लेकिन बात में तो मौलिक सत्य है। जब भी

आप किसी को प्रेम करते हैं, तो तत्क्षण मनुष्य खो जाता है और परमात्मा प्रगट हो जाता है। प्रेम जैसे छैनी है, जो पत्थर से मूर्ति को प्रगट कर देती है। जैसे प्रेम पर्दे को हटा देना है। आप पर जो मनुष्यता है, वह पर्दा है। प्रेमी उसे हटा देता है और आपके भीतर छिपे हुए चिन्मय-स्वरूप को देख लेता है। आपका जो स्त्री या पुरुष होना है, वह एक ऊपर का रूप है, एक औपचारिकता है। उसे प्रेमी हटा देता है और सीता प्रगट हो जाती है।
तो आप सीता को खोजने अयोध्या मत चले जाना। और सीता को खोजने अतीत में
भी जाने की कोई जरूरत नहीं है। और राम के लिए बैठने से नहीं चलेगा। अगर प्रेम है, तो जहां भी प्रेम का प्रकाश पड़ेगा, वहीं राम दिखाई पड़ना शुरू होगा, वहीं सीता प्रगट हो जाएगी।
प्रत्येक व्यक्ति को ठीक से समझ लेना जरूरी है कि मेरी प्यास क्या है? बड़े से बड़ा कठिन काम यही है कि हम ठीक से अपनी प्यास समझ लें। नहीं तो प्रेमी ध्यान करता रहे, व्यर्थ समय जाएगा; ध्यानी प्रेम का उपाय करता रहे, व्यर्थ समय जाएगा। क्योंकि पूरे वक्त भीतर से विरोध बना रहेगा।
महावीर को ले जाएं हम रासलीला में, विरोध बना रहेगा। महावीर के मन में प्रतिरोध चलता ही रहेगा कि यह सब व्यर्थ हो रहा है। कि हम कहें चैतन्य महाप्रभु को कि बैठ जाओ बुद्ध के वृक्ष के पास तुम भी आंख बंद करके, उनको मंजीरा और ढोलक याद आते रहेंगे। ढोलक और मंजीरे के बिना कैसा बोधि-वृक्ष? वह बोधि-वृक्ष चैतन्य के लिए नहीं है।
और इन दोनों के बीच, मैं आपसे कहता हूं, कोई विरोध नहीं है। अपने-अपने ढंग हैं। और हर व्यक्ति का अपना अनूठा ढंग होता है जिससे वह यात्रा करता है। परमात्मा तक हम सब अद्वितीय ढंग से पहुंचते हैं। और जब भी कोई चेतना परमात्मा के पास पहुंचती है, तो ऐसी घटना पहले कभी नहीं घटी होती। यह पहली दफा घटती है और आखिरी दफा घटती है। और यही महिमा है कि इस जगत में कोई पुनरुक्ति नहीं होती। और इस जगत का जो आत्यंतिक अनुभव है, वह तो पुनरुक्त हो ही नहीं सकता। हर व्यक्ति जब परमात्मा के निकट पहुंचता है, तो ऐसी घटना न तो कभी पीछे घटी होती है और न आगे घटने वाली होती है। यह मिलन सदा ही अद्वितीय और बेजोड़ होता है।
अपनी नियति को पहचानें, अपने रस को। फिर प्रेम या ध्यान की विधि को चुन लें। अगर कठिन हो और लगता हो कि कुछ समझ में नहीं आता, विभ्रम बना रहता हो, तो प्रेम से शुरू करें। पहले प्रेम का प्रयोग करें। अगर असफल हो जाएं, तो ध्यान का प्रयोग करें। अगर लगता हो कि ध्यान ही मेरा मार्ग है, तो ध्यान का प्रयोग करें। असफल हो जाएं, तो प्रेम का प्रयोग करें। और इस दिशा में कोई भी असफलता असफलता नहीं है। क्योंकि अगर ध्यान में असफल भी हुए, तो जितना भी ध्यान आ जाएगा, वह प्रेम में काम पड़ेगा। अगर प्रेम में असफल हुए, तो जितना प्रेम आ जाएगा, वह ध्यान में काम पड़ेगा।
इस जगत में कोई भी, परमात्मा का जो सृजन का क्रम है, उसमें कोई भी पत्थर व्यर्थ नहीं जाता। सब पत्थर काम में आ जाते हैं। अस्वीकृत पत्थर भी भवन में काम आ जाते हैं। और कभी-कभी तो ऐसा होता है, अस्वीकृत पत्थर ही भवन की बुनियाद बनते हैं।

प्रश्नः ओशो, आपके किसी प्रवचन में दुर्वासा ऋषि का जिक्र आया है। एकाग्रता की परिणति को विक्षिप्तता की अवस्था के उदाहरण के रूप में दुर्वासा ऋषि बताए गए हैं। पर त्राटक में एकाग्रता का ही भाव रहता है। इन दोनों में क्या फर्क है, कृपा करके बताएं।

परंपरागत जो त्राटक है, त्राटक की जो परंपरागत धारणा है, वह तो एकाग्रता की ही है। और एकाग्रता से शक्ति पैदा होती है, सिद्धियां अर्जित होती हैं, लेकिन जो परम विश्रांति की हमें खोज है, उस परमात्मा से मिलन नहीं होता। एकाग्रता अहंकार का ही अंग और विस्तार है। तुम मिटते नहीं, तुम और मजबूत हो जाते हो। तुम पिघलते नहीं, तुम और बर्फ की तरह जम जाते हो। तुम्हारी शक्ति तो बढ़ जाती है, तुम्हारा आनंद नहीं।

लेकिन जिसे मैं त्राटक कह रहा हूं, वह एकाग्रता का प्रयोग नहीं है, वह केवल देखने का प्रयोग है, जस्ट लुकिंग।
फर्क को समझ लें। त्राटक का अर्थ होता है, किसी एक बिंदु पर--सूर्य पर, मूर्ति पर, बिंदु पर--किसी भी चीज पर अपने सारे मन को एकजुट लगा देना है। मन को कर लेना है संकीर्ण कि मन यहां-वहां न भागे। मन की सब धाराएं एक तरफ मुड़ जाएं। मन एक बिंदु की तरफ बहता हुआ रह जाए। जरा-सी भी चेतना की किरण यहां- वहां न बिखरती हो। बिना बिखरे सब एक बिंदु पर आकर टिक जाए। चेष्टा एक बिंदु पर टिकाने की है। मन को बांध-बांधकर, पकड़-पकड़कर एक जगह बिठाने की है। जिसे मैं त्राटक कहता हूं, वह सिर्फ नाम-मात्र को त्राटक है, इस अर्थ में। मैं त्राटक कहता हूं कि तुम भीतर खाली हो जाओ। मन को पकड़-पकड़कर मेरी तरफ लाने की जरूरत नहीं, तुम भीतर खाली हो जाओ, सिर्फ मेरी तरफ देखो। इस देखने में तुम भीतर कोई उपाय मत करो। इस देखने में तुम खाली, शांत खड़े हो जाओ और सिर्फ देखो। आंख तुम्हारी अपलक मेरी तरफ हो। आंख के द्वारा तुम्हें मेरे तक नहीं आना है, आंख के द्वारा मैं तुम तक आऊंगा। आंख तुम्हारा द्वार है। लेकिन अगर भीतर तुम अतिशय भरे हो, तो जगह नहीं है। तुम भीतर अगर खाली हो और तुम्हारा सिंहासन रिक्त है, तो तुम्हारी खाली आंखों के द्वार से मैं प्रवेश कर सकता हूं।
परंपरागत त्राटक में, साधक अपनी चेतना को बिंदु तक ला रहा था, इस त्राटक में साधक कहीं भी नहीं जा रहा है, सिर्फ अपने भीतर खाली हो रहा है। और आंखों को खुली रखे, ताकि मैं उसके भीतर आ सकूं। यह बिल्कुल बुनियादी रूप से भिन्न है।
और यह जो सिर्फ देखने की प्रक्रिया है, बड़ी अनूठी है। क्योंकि जब तुम सिर्फ देखते हो, त्राटक करने की चेष्टा भी नहीं करते--क्योंकि उस करने में भी देखना अशुद्ध हो जाएगा, विचारों की तरंगें चित्त में आ जाएंगी--जब तुम सिर्फ देखते हो, तो तुम्हारी आंखें आकाश की तरह कोरी हो जाती हैं। जब तुम कुछ देखने की कोशिश नहीं करते, मात्र देखते हो, तो तुम भीतर एकदम शांत, तनावरहित हो जाते हो।
कभी जमीन पर लेटकर आकाश की तरफ सिर्फ देखो। सोचो मत। आकाश में बादल बन रहे हों तो उन बादलों में मूर्तियां मत देखो, हाथी-घोड़े मत देखो, कुछ सोचो मत। तुम सिर्फ देख रहे हो। तुम्हारी आंखें जैसे आंखें नहीं, बल्कि कैमरे का लेंस हैं, जो कुछ सोच नहीं रहा, सिर्फ देख रहा है। जो भी गुजर रहा है, तुम एक दर्पण की भांति लेटे हो। दर्पण से जो भी गुजरेगा, दिखाई पड़ेगा। लेकिन दर्पण सोचता नहीं कि बादल काला है कि सफेद है, कि ऐसा होना था कि नहीं होना था, कि क्यों बादल आ गए हैं! क्या वर्षा होने के करीब है? कुछ मत सोचो, तुम सिर्फ देखते रहो। सिर्फ आंखें खुली रखो, झपको मत।
तुम थोड़ी ही देर में पाओगे कि बाहर का आकाश तुम्हारे भीतर प्रवेश कर गया। जल्दी ही तुम पाओगे कि भीतर का आकाश और बाहर का आकाश एक महाआकाश बन गए। उनके बीच की जो छोटी सी पतली दीवाल थी, वह तिरोहित हो गई। तब तुम पाओगे, कौन बाहर, कौन भीतर? भीतर कहां है, बाहर कहां है? कहां भीतर समाप्त होता है और कहां बाहर शुरू होता है? सब सीमाएं खो गईं। तुम भी आकाश हो।
ठीक ऐसा ही प्रयोग है मेरे त्राटक का प्रयोग। मैं इधर शून्य बैठा हूं। तुम उधर भरे बैठे हो, मिलना कैसे हो? मैं यहां बहने को उत्सुक, तुम्हारा पात्र वहां उलटा रखा है। मैं यहां तत्पर कि सब तरफ से तुममें प्रवेश कर जाऊं, लेकिन तुमने कहीं कोई रंध्र भी नहीं छोड़ी है। तुमने सब तरफ दीवाल मजबूत सीमेंट-कांक्रीट की बना रखी है। तुम तड़फते हो, चिल्लाते हो, तुम्हारी प्यास मुझे सुनाई पड़ती है, तुम्हारी पीड़ा मुझे दिखाई पड़ती है, तुम्हारी खोज ईमानदारी से भरी है, लेकिन तुम अपने ही बनाए हुए घेरे में बंद हो गए हो।
और तुम्हारी कठिनाई यह है कि तुमने अपने कारागृह को अपना निवास-स्थान समझ रखा है। और तुमने अपनी जंजीरों को आभूषण मान रखा है। तुम उन्हें सम्हालते हो। तुम डरते हो, कहीं वे चोरी न चली जाएं। तुम उन्हें बचाते हो, तुमने सब तरह के पहरे लगा रखे हैं। तुमसे बड़ा तुम्हारा और कोई दुश्मन नहीं है।

फिर भी तुम्हारी पीड़ा सच है। तुम तड़फते हो, उसमें कुछ झूठ नहीं है। तुम बाहर निकलना चाहते हो, वह आयोजन, वह आकांक्षा भी है। लेकिन तुम्हें यह पता नहीं कि बाहर निकलने में तुम ही बाधा डालते हो। तुम उस आदमी की भांति हो, जो दौड़ना चाहता हो लेकिन अपने पैरों में जंजीरें बांध रहा हो। और शायद सोचता हो कि जंजीरें बांधने से पैर मजबूत होंगे और मैं ठीक से दौड़ सकूंगा।
तुम अपने ही विपरीत बहुत से कृत्यों में लगे हो।
यही मनुष्य का दुख है। वह सोचता है कि जो मैं कर रहा हूं, वह हितकर है।
और उससे अकल्याण सिद्ध होता है। और जब तक तुम्हें यह साफ न हो जाएगा, तब तक तुम्हारी पीड़ा का कोई अंत नहीं हो सकता।
एक बात समझ लेनी बहुत गहरे में जरूरी है कि तुम्हारी पीड़ा के निर्माता तुम ही हो, कोई दूसरा नहीं। तुम ही हो जिम्मेवार, दायित्व तुम्हारा है। पीड़ा के बीज तुम बोते हो, लेकिन बीज बोते समय तुम सोचते हो, तुम आनंद के बीज बो रहे हो। क्योंकि बीज में तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता, न पीड़ा और न आनंद, बीज तो बंद है। जब तुम बीज बोते हो, तब तुम आनंद के सोचकर बोते हो। वर्षों बाद जब फल आने शुरू होते हैं, दुख आता है, तब तुम सोचते हो, यह दुख किसने दिया?
और बीज में और फलों के आने में इतना फासला है कि तुम भूल चुके होते हो
कि ये बीज तुमने बोए थे। और फासला इतना ज्यादा है और बीज और फल इतने भिन्न हैं कि तुम याद भी कैसे रखो कि ये वे ही बीज हैं जो हमने बोए थे। अक्सर तुम सोचते हो हमारे आनंद के बीज तो व्यर्थ चले गए, सड़ गए, गल गए, ठीक भूमि उन्हें न मिली, और ये दुख के बीज, जो दूसरों ने हम पर फेंके, ये फल गए हैं। जानकर हैरानी होगी तुम्हें कि अफ्रीका में अभी सौ वर्ष पहले तक, ऐसे बहुत से कबीले थे, जिनको यह ख्याल ही नहीं था कि बच्चे के जन्म का कोई भी संबंध संभोग से है। सिर्फ सौ वर्ष पहले तक! और उसका कारण था। और वैज्ञानिक कहते हैं कि वही धारणा सदियों पूर्व सारी दुनिया में थी। क्योंकि बच्चा तो नौ महीने बाद पैदा होगा। यह नौ महीने का फासला इतना बड़ा है--हमें हैरानी होती है, क्योंकि हमें पता है अब--यह फासला इतना बड़ा है कि तुमने जो संभोग नौ महीने पहले किया था, उससे यह बच्चा पैदा हो रहा है, इसका कैसे संबंध जोड़ो? फिर सभी संभोग से बच्चे पैदा नहीं होते। सैकड़ों संभोग में से एकाध संभोग से बच्चा पैदा होता है? फिर वह नौ महीने बाद पैदा होता है।
तो अफ्रीका में ख्याल था कि यह बच्चे के पैदा होने का कारण कुछ और है। ईश्वर की कृपा, देवी-देवताओं की पूजा, गंडे-ताबीज, किसी साधु-संन्यासी का आशीर्वाद--ऐसा कोई कारण, जो प्रत्यक्ष दिखाई पड़े। लेकिन यह संभोग इसका कारण हो सकता है, यह ख्याल में नहीं था।
ठीक वैसी ही दशा भीतर गहरे में पूरी मनुष्यता की है। तुम्हें ख्याल
ही नहीं कि तुम्हारे दुख के बीज तुम्हीं बोते हो। नौ महीने से भी ज्यादा बड़ा फासला है। और बीज और भी सूक्ष्म हैं, संभोग से भी ज्यादा सूक्ष्म हैं। फिर फल कभी नौ साल बाद आते हैं, कभी नब्बे साल बाद आते हैं। क्योंकि ये दुख के सभी बीज मौसमी नहीं हैं। कुछ के तो जल्दी आ जाते हैं, कुछ के वर्षों समय लेते हैं। कुछ तो छोटे फूलों की तरह हैं, जो मौसम में आते हैं और खो जाते हैं। और कुछ बड़े देवदार वृक्षों की भांति हैं, जो लंबे समय तक तुम्हारा पीछा करते हैं। फिर उस छोटे से सूक्ष्म बीज से इतना बड़ा वृक्ष, आकाश को छूने वाला, पैदा होगा, इसका ख्याल भी नहीं उठता।
लेकिन तुम ही जिम्मेवार हो। तुम्हारी भूमि में कोई दूसरा बीज न तो फेंक रहा है, न फेंक सकता है। फेंकने का उपाय ही नहीं है। क्योंकि तुम्हारी जो मनोभूमि है, उसमें दूसरे का कोई प्रवेश ही नहीं है। तुम ही वहां बोते हो, तुम ही पानी डालते हो, तुम ही सम्हालते हो, तुम ही फल आ जाते हैं तो फसल काटते हो, तुम ही हो वहां अकेले।
इस बात की प्रतीति सघन हो जाए, तो तुममें साधक का जन्म हुआ। और तब तुम ठीक-ठीक आंखें पाओगे। और तब तुम वे बीज बोना बंद कर दोगे, जो जहरीले हैं। और तब तुम घास-पात को काटना शुरू कर दोगे। तब तुम्हारी पूरी ऊर्जा अमृत को पैदा करने में संलग्न हो जाएगी।

यह अनुभव अमृत का, तुम्हें बिल्कुल भी नहीं है। आनंद को तुमने कभी जाना नहीं है। इसलिए बड़ी कठिनाई है और कठिनाई वास्तविक है, कि जिसे हमने जाना नहीं है, उसकी हम ठीक से आकांक्षा कैसे करें? और जिसका हमें स्वाद भी नहीं मिला, उसकी हम फसल कैसे उगाएं? और जिसके संबंध में हमें कोई भी प्रतीति नहीं है, कोई संस्पर्श नहीं हुआ, उसको हम पुकारें कैसे, बुलाएं कैसे, खोजें कहां? तुम्हें दुख का अनुभव हुआ है, तुम्हें सुख का भी अनुभव हुआ है, आनंद का तुम्हें कोई अनुभव नहीं हुआ। तो यह आनंद की खोज कैसे शुरू होगी?
तुम खोजते हो आनंद। तुम कहोगे, हम खोज रहे हैं। वह आनंद नहीं है, वह तुम्हारे सुख की ही बड़ी कल्पना है बस। तुम सोचते हो, आनंद महासुख जैसी चीज होगी। तुम सोचते हो, जैसा संभोग में सुख मिला है, ऐसा आनंद में सहस्रगुना मिलेगा। मगर वह है गुना। वह सुख का ही फैलाव है। तुम अपनी प्रेयसी से मिले, तो सुख मिला। तुम सोचते हो, परमात्मा का मिलना ऐसा ही कुछ सुख होगा, अनंतगुना। उसमें गुण का फर्क नहीं है, परिमाण का ही फर्क है। वह जो अंतर तुम्हें दिखाई पड़ता है, क्वांटिटी का है, क्वालिटी का नहीं है। तुम सोचते हो, बहुत धन मिल जाता है, राज्य मिल जाता है, बड़ा साम्राज्य मिल जाता है, तो जो सुख मिलता है, जब परमात्मा का राज्य मिलेगा, तो इसी का ही अनंत-अनंतगुना सुख होगा। लेकिन फर्क मात्रा का है।
और मैं तुमसे कहता हूं, फर्क मात्रा का बिल्कुल नहीं है। आनंद कुछ है,
जो तुमने कभी जाना ही नहीं। सुख के छोटे से तराजू से तुम उसे न तौल पाओगे। सुख के आयाम से तुम उसे न पहचान पाओगे। लेकिन तुम सुख को ही खोज रहे हो, तुम उसे आनंद कहते हो बस।
इसलिए मेरे त्राटक का प्रयोग है। त्राटक का प्रयोग सत्संग का गहरा प्रयोग है। जब मैं तुमसे कहता हूं, तुम चुप और खाली हो जाओ, सिर्फ मेरी तरफ देखो, ताकि मैं तुम्हारे भीतर आ सकूं; उस मेरे तुम्हारे भीतर आने में, तुम्हें पहला स्वाद मिलेगा। वह स्वाद तुम्हारी कोशिश को सजग कर देगा। वह स्वाद तुम्हें पहली बार कहेगा कि आनंद की बूंद कैसी हो सकती है। फिर तुम सागर की खोज पर निकल जाओगे, फिर मुझे कुछ करना नहीं है। फिर वह स्वाद ही तुम्हें खींचेगा और ले जाएगा। फिर तुम्हें कोई रोकने वाला नहीं। फिर दुनियाभर की ताकतें भी तुम्हारे बीच में बाधा बनें, हिमालय भी खड़े हो जाएं, तो तुम पार कर जाओगे। एक बार तुम्हारा स्वाद जग गया, फिर सब बाधाएं छोटी हैं। और जब तक तुम्हारा स्वाद नहीं जगा, तब तक सागर हो सकता है तुम्हारी पीठ के पीछे ही लहरें ले रहा हो, लेकिन तुम लौटकर भी न देखोगे। क्योंकि देखने का कोई प्रयोजन नहीं है। तुम्हारी आंखें वहां लगी रहती हैं, जहां तुम्हें सुख का स्वाद है।
जो लोग सिंह या शेर को घर में पालते हैं, उनका अनुभव है कि वह उसी दिन
से खतरा शुरू होगा, जिस दिन से उसे मांस का स्वाद मिल जाएगा। उसको शाक-सब्जी खिलाते रहो, रोटी खिलाते रहो, बचपन से ही उसे स्वाद ही न दिया हो मांस का, खून का, तो वह शाकाहारी रहेगा।
एक शिकारी के संबंध में मैंने सुना है, उसने एक सिंह के बच्चे को पाला था, शुद्ध शाकाहारी। उसे एक बार भी मांस का कोई स्वाद न मिला। लेकिन एक दिन शिकारी अपने बगीचे में बैठा है और उसके पैर में चोट लग गई, तो थोड़ी-सी खून की बूंद झलक गई। और उसका सिंह उसके पास बैठा है। उस सिंह ने उसकी खून की बूंद को चाट लिया। बस, उपद्रव शुरू हो गया। फिर अब इस सिंह को घर में रखना असंभव है, इसे स्वाद लग गया।
बस ऐसा ही स्वाद तुम्हें लगाने के लिए मेरा त्राटक है। जरा सा तुम्हें स्वाद आ जाए, एक किरण उतर जाए, फिर तुम सूरज को पा लोगे। एक बूंद पर तुम्हारी पकड़ आ जाए, फिर सागर ज्यादा दूर नहीं है।
सत्संग का यही अर्थ है कि ऐसे किसी व्यक्ति के साथ, जिसने जाना हो, तुम्हें भी जानने की दौड़ लग जाए। ऐसे किसी व्यक्ति के पास, जिसने जीया हो, तुम्हारा दीया भी भभक उठे और लपट पकड़ ले। इसलिए संत निरंतर कहते रहे हैं, बिना गुरु के यह न होगा।

इसका कारण यह नहीं कि गुरु कुछ सिखाएगा, तब होगा, इसका कारण यह है कि स्वाद ही बिना गुरु के नहीं होगा। यह कोई शिक्षण की बात नहीं है कि गुरु तुम्हें सिखाएगा, विधि देगा, गणित देगा, नक्शा देगा, किताब देगा और कहेगा, यह गाइड-बुक है, इससे तुम चले जाओ।
न, यह मतलब नहीं है। इसके बिना जा सकते हो। क्योंकि उस अनंत के लिए, अनंत रास्ते हैं, सभी तरफ से रास्ते हैं, गाइड-बुक की कोई जरूरत नहीं है। कहीं से भी तुम वहां पहुंच सकते हो। नक्शों का कोई सवाल नहीं है, नक्शा नाहक बोझ हो जाएगा। अनेक पर हो गया है। कोई वेद को सिर पर रखे है, कोई बाइबिल को, कोई गीता को रखे है। वह उसकी वजह से ही नहीं चल पाता। क्योंकि नक्शा काफी बड़ा है, उसको ढोकर... और बिना उसको लिए, कहां जाएं?
न, बिना नक्शे के भी तुम पहुंच जाओगे, क्योंकि उसका कोई नक्शा नहीं है। वह सब जगह है। असली सवाल स्वाद है। जो तुम्हें स्वाद लगा दे, वही शास्त्र। जो तुम्हें स्वाद दे दे, वही सदगुरु। जहां तुम्हें स्वाद आ जाए, वही तीर्थ।
और एक बार, एक बूंद भी तुमने चख ली, अचानक तुम पाओगे, यह जगत व्यर्थ हो गया। कोई और सार्थकता का आयाम खुला, एक नई यात्रा शुरू हुई। पुराना सपना टूट गया, एक नए जागरण का प्रारंभ हुआ।
त्राटक का अर्थ है, मैं तुम्हारा स्वाद बन जाऊं। जरा देर को तुम जगह
दे दो, जरा-सी रंध्र, तुम्हारे अंधेरे में थोड़ा-सा प्रकाश, बस उतना काफी है।
त्राटक की जो परंपरागत धारणा है, वह मेरी धारणा नहीं है। त्राटक मेरे लिए एकाग्रता का नहीं, ध्यान का ही प्रयोग है।
आज इतना ही।

नहिं राम बिन ठांव
आठवां प्रवचन

एक कथाः दो अर्थ

प्रश्नः ओशो, भगवान बुद्ध एक कहानी कहा करते थे। एक आदमी को खेत में बाघ मिल गया। वह भागा। बाघ ने भी उसका पीछा किया। वह एक भयानक खड्ड के किनारे पहुंच गया, जिसके आगे राह नहीं थी। एक जंगली बेल की जड़ को पकड़कर, वह खाई के नीचे लटक गया। बाघ भी वहां पहुंचकर ऊपर से उसको सूंघने लगा। ऐसे कांपते हुए उस आदमी ने खड्ड में झांका तो वहां एक दूसरा बाघ उसको निगलने को तैयार खड़ा था। इस बीच दो चूहे--एक सफेद और एक काला--उस बेल की जड़ को धीरे- धीरे कुतरने लगे। और उस आदमी को उसी समय एक पका हुआ मीठा फल दिख गया। एक हाथ से बेल को थामते हुए उसने दूसरे हाथ से फल को तोड़ लिया। कैसा मीठा उसका स्वाद था! ओशो! इस कहानी को हमें समझाने की कृपा करें।

कहानी बुद्ध से भी पुरानी है। लेकिन बुद्ध ने जिस अर्थों में उसका प्रयोग किया, वह बिल्कुल बुद्ध का अपना है। दोनों ही अर्थ समझ लेने जैसे हैं।
कहानी तो हिंदू-चिंतन का सार है। लेकिन बुद्ध ने उसके ऊपर बड़े नए अर्थ
की कलम लगाई। और तब कहानी का पूरा अर्थ ही बदल गया। और बुद्ध ने उस कहानी की जो परिभाषा की, वह बड़ी अनूठी है।
तो पहले तो हम हिंदू-दृष्टि को समझ लें। उसकी अपनी सार्थकता है। और तब हमें यह भी समझ में आ सकेगा कि एक ही प्रतीक कैसे दो भिन्न दृष्टियों के लिए आधार बन सकता है। देखने का ढंग बदल जाए, तो जो हम देखते हैं, वह भी बदल जाता है। और जगत हमारी दृष्टि में है, वस्तुओं में नहीं। देखने वाला जैसा होता है, वैसा ही जगत दिखाई पड़ता है।
हिंदू-चिंतन का आधार है कि जगत माया है। उसमें मिले हुए सुख क्षणभंगुर हैं, सत्य नहीं। अभी हैं, अभी नहीं हो जाएंगे। मौत जीवन को पोंछ डालेगी। प्रतिपल पोंछ ही रही है। और वह जो सफेद और काला चूहा है, वे दिन और रात, जीवन की जड़ों को काट रहे हैं। जितनी देर हम जीते हैं, उतनी देर हम मरते हैं। और जन्म के साथ ही मरना शुरू हो जाता है। बच्चा पैदा नहीं हुआ कि मरना शुरू हो गया। काले-सफेद चूहों ने जड़ें काटनी शुरू कर दीं। जड़ें अभी जम भी नहीं पाईं और जड़ों का अंत प्रारंभ हो गया।
यहां जन्म के साथ ही मृत्यु जुड़ी है। जन्म है एक कदम, मृत्यु उसी का दूसरा कदम है। तो जिसे हम जन्म-दिन कहते हैं, वह मृत्यु का भी दिन है। फासला है--सत्तर वर्ष का हो, सौ वर्ष का हो--लेकिन वह दो कदमों का ही फासला है। स्वभाव जन्म और मृत्यु का बिल्कुल एक है।
हिंदू कहते हैं, जो जन्मा है, वह मरेगा। और जो गहरा देख सकता है, वह जन्म में ही मृत्यु को देख लेगा। इसलिए जन्म कोई खुशी का अवसर नहीं। और जन्म अगर खुशी का अवसर है, तो मृत्यु कोई रोने की बात नहीं। अगर तुम जन्म में हंसे और मौत में रोए, तो उसका अर्थ है कि तुम अंधे हो।
काल कुतर रहा है, तुम्हारी जड़ों को काटता जा रहा है। एक-एक क्षण जा रहा है, उतने ही तुम चुकते जाते हो, रिक्त होते जाते हो। और हिंदू कहते हैं, बचने का कोई उपाय नहीं है।
संसार में बचने का कोई उपाय ही नहीं है। क्योंकि संसार मृत्यु का ही विस्तार है। तो तुम कहीं भी भागो, तुम कहीं भी छिपो, मृत्यु तुम्हें खोज लेगी। मन सोचता है कि कोई उपाय खोज लेंगे, कोई घर बनाएंगे, कोई सुरक्षा, कोई पहाड़, कोई दीवाल और छिप रहेंगे। तो मन धन की दीवालें बनाता है, पद-प्रतिष्ठा खड़ी करता है। विज्ञान, ज्ञान, टेक्नालॉजी, और सोचता है कि बच रहेंगे, मौत से बचने का कोई उपाय होगा।
हिंदू कहते हैं, बचने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि संसार का स्वभाव मृत्यु है। तुम भागो कहीं भी, मौत तुम्हारा पीछा करेगी। वह जो बाघ है, वह तुम्हारे पीछे लगा है। और आज नहीं कल, वह जगह आ जाएगी, जहां आगे रास्ता न होगा, जहां भागना भी छोड़ देना पड़ेगा। जिसको अंग्रेजी में इम्पासे कहते

हैं, वह जगह आ जाएगी, जिसके आगे फिर कोई मार्ग ही नहीं है। पीछे लौटो तो मौत, आगे जाओ तो गड्ढ। और नीचे झांककर तुम देखोगे तो पाओगे वहां भी मौत प्रतीक्षा कर रही है। गड्ढ में कूदकर भी बचने का उपाय नहीं है। ऐसे तो गड्ढे में कूदोगे तो भी मिट जाओगे, लेकिन एक आशा की किरण रह सकती है कि बच जाएं, शायद बच जाएं। तो वहां दूसरा बाघ तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। हिंदू कहते हैं, जीवन चारों तरफ मृत्यु से घिरा है। सब दिशाएं उसी से आच्छादित हैं। इसलिए एस्केप, पलायन नहीं हो सकता। भागने से कुछ हल नहीं है। सिर्फ थकोगे और उस जगह पहुंच जाओगे, जहां रुकना पड़ेगा। फिर भी आदमी कोशिश करेगा--नीचे मौत है, ऊपर मौत है, भयंकर गड्ढ है, हाथ छूट जाए तो मौत है--तो भी आदमी कोशिश करेगा। आदमी का मन आखिरी क्षण तक कोशिश करता है। जड़ों को पकड़कर ही लटक जाएगा। जड़ें कोई बहुत भरोसे की नहीं हैं, क्योंकि दिन और रात उन्हें काट रहे हैं। लेकिन आशा तिनके में भी सहारा खोज लेती है, सपने में भी साथी खोज लेती है। जहां कुछ भी नहीं हो सकता, वहां भी मन कल्पना करके सोचता है, कुछ जरूर हो सकेगा।
मन का यह गुणधर्म है कि वह आशा किए चला जाता है। उमर खय्याम की एक रुबाई है कि गुरुओं से पूछा, ज्ञानियों से पूछा, आचार्यों से पूछा कि यह जीवन चलता क्यों जाता है, रुक क्यों नहीं जाता? क्योंकि कोई भी सुखी नहीं दिखाई पड़ता, सब दुखी हैं। फिर भी जीवन चलता जाता है। तो इस जीवन के चलने का मूल-सूत्र कहां है?
कोई उत्तर न पाया। उमर खय्याम ने लिखा है, जिस द्वार से भीतर गया, उसी द्वार से बाहर आया। बड़े पंडित थे, पर कोई उत्तर न पाया। फिर मैंने आकाश से पूछा, क्योंकि आकाश सदा रहा है। सब बदलता गया है--लोग आए हैं, मिटे हैं, जन्म हुआ, मृत्यु हुई, सभ्यताएं खड़ी हुईं, खो गईं--आकाश सदा देखता रहा है। इससे बड़ा और कोई गवाह नहीं। तो मैंने आकाश से पूछा कि इस जीवन का राज क्या है? यह चलता क्यों जाता है? तो आकाश से एक आवाज आई--आशा के सहारे।
दुख बहुत है, लेकिन आशा उससे भी बड़ी है। यह सुख के सहारे नहीं चल रहा
है जीवन, क्योंकि सुख तो बिल्कुल नहीं है। अगर अकेला दुख ही दुख हो, तो यह टूट जाए, आप अभी आत्मघात कर लें। इसलिए जो भी थोड़ा विचारशील है, वह जीवन में कभी न कभी आत्मघात का विचार करता है। कभी न कभी सोचता है, मिटा लूं। क्या है सार सुबह उठ आने का, सांझ सो जाने का? फिर वही भोजन, फिर वही वस्त्र, फिर वही काम। इस पूरे चाक पर घूमते रहने का कोई भी तो प्रयोजन नहीं मालूम पड़ता। और अंत में मर ही जाना है, तो आज मरने में क्या बुराई है? तीस साल, चालीस साल और चक्कर खाने के बाद मरना ही पड़ेगा। और जब खाई लील ही लेगी, तो आज ही उसे समर्पित हो जाने में हर्ज क्या है? यह इतना कष्ट क्यों? यह बीच की इतनी व्यर्थ की चिंता, उपद्रव, संताप क्यों?
इसलिए विचारशील कभी न कभी आत्मघात की सोचता ही है। सिर्फ निर्बुद्धि हैं, जो कभी आत्मघात की न सोचते हों। मूढ़ हैं, जो कभी न सोचते हों कि जीवन खत्म करने जैसा है। विचारशील तो निरंतर, अनेक बार उस जगह आ जाता है, जहां सोचता है, मिटा दूं! जब मिटना ही है, तो अपने हाथ से ही मिटा दूं!
इसलिए दुख की तो परिपूर्णता है। सुख की कहीं कोई झलक भी नहीं है। लेकिन फिर भी आशा कहती है, जो आज नहीं मिला, वह कल मिलेगा। इसलिए कल तक रुकना जरूरी है। आत्मघात रुका है आशा के कारण, जीवन के कारण नहीं। और आशा कहे ही चली जाती है कि क्यों घबड़ाते हो, जो आज तक नहीं हुआ, वह भी कल हो सकता है। कौन जाने, दूसरे क्षण द्वार खुल जाए स्वर्ग का। दूसरे क्षण खजाना मिल जाए जीवन का। वह दूसरा क्षण लुभाता है। इसलिए हम कल में जीते हैं।
मन कल की आशा का नाम है। ऊपर मौत है, नीचे मौत है, लटके हुए हम हैं। जड़ें किसी भी क्षण टूट सकती हैं। न भी टूटें, तो हाथ थक जाएंगे थोड़ी देर में। फिर भी आशा है, कुछ हो सकता है। समय अभी बाकी है, तो प्रतीक्षा जारी है।
और ऐसी ही प्रतीक्षा के क्षण में दिखाई पड़ जाता है एक फल, जंगल का बेर,
या कोई और फल, और सब भूल जाता है। न आगे खड़ी मौत, न पीछे खड़ी मौत दिखाई पड़ती है, न गड्ढ दिखाई पड़ता है। न हाथ छूटे जा रहे हैं जड़ों से, यह समझ में आता है। उस जंगली फल का मधुर स्वाद, उस स्वाद के क्षण में सब भूल जाता है।

क्षणभंगुर है सुख, लेकिन सबको भुला देता है। गहरा नशा है उसका। स्वाद बिल्कुल क्षणभर टिकेगा, लेकिन बेहोशी उसकी परम है। एक क्षण को होगा, लेकिन उस एक क्षण में सब जगत भूल जाता है--सारे दुख, सारी यात्रा का कष्ट, सारे संताप जो बीत गए हैं, और सारे संताप जो आएंगे--सब भूल जाता है। क्षणभर होगा सुख, लेकिन पूरे ब्रह्म को आच्छादित कर लेता है।
हिंदुओं ने इस कथा का उपयोग किया था कि ऐसे क्षणभर के स्वाद में मत भटको। सजग रहो। मौत को भुलाओ मत ऐसे, कोई फल का स्वाद मौत से बचा न सकेगा। जीवन को, स्वयं को मोहित करने का कोई भी मार्ग मत दो--न स्वाद से, न काम से, न लोभ से--कोई भी इंद्रिय से जीवन को आच्छादित मत होने दो।
स्वाद तो एक इंद्रिय है। आंख से भी यह हो सकता था। कहानी हो सकती थी कि
एक सुंदर युवती दिखाई पड़ गई, या एक मोर नाचने लगा, या सूरज निकला, या एक इंद्रधनुष आकाश में फैल गया और उस क्षण में सब भूल गया। या हो सकता था कि सिर्फ सुगंध आई होती, बेला के फूल खिले होते, और सुगंध की एक लहर नासापुटों को भर गई होती, उस क्षण में सब भूल जाता।
तो कहानी तो केवल प्रतीक है। कोई भी इंद्रिय भुला सकती है। सभी इंद्रियां मूर्च्छित होने को तत्पर हैं। इंद्रिय का रस ही मूर्च्छा में है। जब आप होश में होते हैं, तब इंद्रिय मृत होती है। जब इंद्रिय जगती है, तब आप मूर्च्छित होते हैं। आपकी मूर्च्छा में इंद्रिय का जागरण है, इंद्रिय की मूर्च्छा में आपका जागरण है। तो जब इंद्रिय जगी और स्वाद मन को भर गया, उस समय भीतर सब मूर्च्छा हो गई। और ऐसी स्थिति में, विकट स्थिति में, जब कि मौत सामने खड़ी थी!
महात्मा गांधी ने अपने बचपन का संस्मरण लिखा है। और वह संस्मरण उनके जीवनभर का घाव हो गया। उस घाव ने उनके पूरे जीवन को प्रभावित किया, रूपांतरित किया। ऐसे घाव को मनोवैज्ञानिक ट्रामेटिक कहते हैं, जो फिर मिटते नहीं और जिनके आधार पर फिर पूरे जीवन की प्रक्रिया बुनी जाती है। गांधी के पिता मर रहे हैं। और चिकित्सकों ने कहा कि यह रात आखिरी है,
आज बच न सकेंगे। सुबह सूरज इन्हें जीता हुआ न देखेगा। तो स्वाभाविक था कि बेटा बाप के पास बैठे। यह आखिरी रात थी, किसी भी क्षण श्वास टूट जाएगी। और ऐसा भी नहीं था कि बेटे को बाप में श्रद्धा न थी, प्रेम न था; बड़ा लगाव था, बड़ा भाव था, पिता के प्रति बड़ा सम्मान था। तो गांधी उनके पैर दबाते हुए बैठे रहे। फिर बारह बजे, फिर एक बजा, फिर पिता को झपकी लग गई। और जब पिता को झपकी लग गई, तो गांधी के मन में विचार उठने लगे कि चिकित्सक कोई भविष्यवक्ता तो नहीं, कि नहीं ही बचेंगे सुबह; ऐसी भी क्या बात है, सिर्फ अनुमान है।
मन ने दरवाजा खोल दिया। और जब पिता सो ही गए हैं, विश्राम कर रहे हैं,
तो पत्नी की स्मृति मन में उठने लगी। एक दीवाल के पार पत्नी है। और क्षणभर को जाकर उसे प्रेम कर आऊं, तो कुछ हर्ज नहीं है। पिता को सोया छोड़कर गांधी पत्नी के कमरे में चले गए। संभोग कर रहे थे पत्नी से, तभी द्वार पर दस्तक पड़ी और किसी ने खबर दी कि पिता चल बसे।
यह जीवनभर के लिए घाव हो गया। सारा ब्रह्मचर्य गांधी का इसी घाव से निकला। इसलिए गांधी के ब्रह्मचर्य में महावीर वाला ब्रह्मचर्य नहीं है। उसमें रोग है, उसमें एक रुग्णता है। उसमें एक पीड़ा है। उस ब्रह्मचर्य में आनंद और अहोभाव नहीं है, एक प्रायश्चित्त है। और यह समझ लेने जैसा जरूरी है, क्योंकि ब्रह्मचर्य ब्रह्मचर्य भी एक से नहीं होते। कहां से निकलती है धारा? क्यों निकलती है?
तो गांधी का जो भाव है ब्रह्मचर्य का, वह एक प्रायश्चित्त है, जो पिता
से जुड़ा हुआ है। फिर वह पत्नी के पास दुबारा कभी उस निर्दोष भाव से न सो सके, क्योंकि हमेशा पिता की मृत्यु बीच में खड़ी हो गई। और ऐसा लगने लगा कि मैं अपराधी हूं। और ऐसा लगने लगा कि यह भी क्या बात हुई कि पिता मरते हों और मैं एक रात पत्नी से दूर न रह सका! पत्नी गर्भवती थी और चार या आठ दिन बाद ही बच्चा हुआ। वह बच्चा भी मरा हुआ हुआ। इसलिए और भी घाव लग गया कि हो सकता है मेरे संभोग का ही यह परिणाम है कि बच्चा मरा हुआ हुआ। क्योंकि

इतने, नौ महीने की गर्भवती स्त्री के साथ संभोग कभी-कभी खतरनाक हो सकता है, बच्चे का प्राण जा सकता है।
अभी कुछ दस-पंद्रह साल पहले तक तो चिकित्सक कहते थे कि यह भ्रांति है
कि गर्भ के आखिरी दिनों में संभोग करने से बच्चा मरेगा। यह केवल एक अंधविश्वास है। लेकिन इधर दस-पंद्रह वर्षों में जो नई शोध हुई है, तो पता चला कि अंधविश्वास सही हो सकता है। क्योंकि जब स्त्री संभोग के क्षण में आती है, तो उसके हृदय की धड़कनें बढ़ जाती हैं। और जब संभोग अपने परम शिखर पर पहुंचता है, तो उसके हृदय की जो सामान्य गति है, वह डांवाडोल हो जाती है और उसके शरीर में आक्सीजन की मात्रा में रूपांतरण हो जाता है। और बच्चे के पास जो भी आक्सीजन पहुंचती है, वह मां से ही पहुंचती है। और बच्चा अभी इतना कोमल है कि इस अस्तव्यस्त अवस्था का परिणाम उस पर घातक हो सकता है।
अभी नई एक शोध प्रकाशित हुई है, जो कहती है, इस बात की संभावना है कि इस पुराने अंधविश्वास में सचाई हो। क्योंकि पूरा का पूरा संभोग के क्षण में, आरगाज्म के क्षण में स्त्री का पूरा रासायनिक रूपांतरण हो जाता है। शरीर पसीना छोड़ता है, हृदय धड़कता है, शरीर जैसे बुखार से भर जाता है। और बच्चा जो अभी कोमल है और सब भांति मां पर निर्भर है--अभी वह खुद श्वास भी नहीं लेता, अभी मां की ही श्वास उसकी श्वास है--यह इतना बड़ा तूफान है बच्चे के लिए कि इसमें उसकी श्वास घुट सकती है। और एक क्षण को भी उसे आक्सीजन न मिले, तो वह मृत हो सकता है।
फिर गांधी को बड़ी पीड़ा रहीः बच्चा मरा, पिता मरे और उस क्षण में भी मैं वासना से पूरित रहा! पत्नी गर्भवती थी, तो भी वासना न रोक सका! पिता मर रहे थे, तो भी मैं वासना न रोक सका! इसलिए वासना के प्रति एक गहन पश्चात्ताप, अपराध, घृणा, निंदा, मन में प्रवेश कर गई।
लेकिन उस क्षण में, जब पत्नी ने मन को घेर लिया, तो सारा संसार भूल गया। उस क्षण, पिता मर रहे हैं, यह बात याद न रही। उस क्षण, पत्नी गर्भवती है, यह बात याद न रही।
कोई भी वासना मन को पकड़ ले, तो चेतना मूर्च्छित हो जाती है। या हम ऐसा
कह सकते हैं कि जब भी चेतना मूर्च्छित होती है, तभी कोई वासना मन को पकड़ती है। ये दोनों एक-दूसरे से जुड़ी घटनाएं हैं।
स्वाद तो केवल प्रतीक है। कोई भी इंद्रिय का द्वार खुला कि चेतना के द्वार बंद हुए।
हिंदुओं ने यह कथा कही है, ताकि क्षण में आप न खो जाएं और सनातन को न भूल जाएं। क्षण की क्षमता है सनातन को भुला देने की। यह बड़ा ऊहापोह का प्रश्न है। और निरंतर चिंतक पूछते रहे हैं कि यह हुआ कैसे कि माया, जो कि असत्य है, उसने ब्रह्म को आच्छादित कर लिया! यह हुआ कैसे कि अंधेरा, जो है ही नहीं, उसने प्रकाश को ढंक लिया! यह हुआ कैसे कि अविद्या, अज्ञान, जिनकी कोई जड़ें नहीं, मूल नहीं, उन्होंने परम ज्ञान, परम चैतन्यस्वरूपी आत्मा को भटका दिया! यह हुआ कैसे? अगर माया सच में ही नहीं है, तो फिर हम भटक कैसे रहे हैं?
यह हुआ। इस कथा को अगर समझें, तो समझ में आ जाएगा। क्षणभर को भी अगर हम
सो जाएं तो ब्रह्म खो जाता है। हमारी निद्रा उसका खो जाना है।
जैसे सूरज उगा हो, और मैं आंख बंद कर लूं। माना कि आंख की क्या ताकत सूरज के सामने! बड़ी कमजोर है, लेकिन बंद तो कर ही सकता हूं। पलकों की सामर्थ्य क्या है? छोटे-छोटे हैं। लेकिन सूरज को ढंक लेते हैं। आंख बंद कर ली, सूरज खो गया। हिमालय खड़ा हो, छोटी सी पलक बंद कर लूं, हिमालय खो गया। एक जरा सा रेत का कंकड़ आंख में पड़ जाए, आंख बंद हो गई। कंकड़ बड़ा छोटा है, लेकिन गौरीशंकर खो गया। तो कंकड़ के छोटेपन से यह मत सोचना कि हिमालय को नहीं ढंक सकता है। ढंक सकता है, क्योंकि आंख को बंद कर सकता है।
ब्रह्म अपनी जगह है। हमारे लिए खो जाता है, मेरे लिए खो जाता है। जब मेरी आंख बंद है, तब खो जाता है। और सभी इंद्रियां सुलाने के उपाय हैं। इंद्रियों का रस निद्रा में है, सो जाने में है। इसलिए तमस का इतना विरोध है।

तमस का अर्थ हैः सोने की वृत्ति। तमस का अर्थ हैः निद्रित भाव। तमस का अर्थ हैः मूर्च्छित जीने का ढंग। जो चीज भी तमस लाती है, वही संसार को बढ़ाती है।
उस क्षण, जब स्वाद लिया जंगली फल का, घेर लिया तमस ने। मन आच्छादित हो गया, स्वाद में खो गया। स्वाद ही बचा और सब खो गया। ब्रह्म, सत्य, वह जो चारों तरफ मौजूद है, वह कुछ भी दिखाई न पड़ा।
और अक्सर ऐसा होता है। जब जीवन में दुख हो, तब हम मूर्च्छा की तलाश करते हैं। दुनियाभर में शराब का इतना आकर्षण है, और कितना ही समझाएं उपदेशक, आदमी से शराब का छुटकारा आसान नहीं है। क्योंकि संसार में इतना दुख है। और उपदेशक के उपदेश से दुख नहीं मिटता। और दुख इतना ज्यादा है कि आदमी भुलाने के उपाय न करे, तो क्या करे! या तो दुख के पार जाए, जो कभी किसी बुद्ध के लिए संभव हो पाता है। और या फिर दुख को विसर्जित न कर सके, तो विस्मृत कर दे, जो कि शराब से हो सकता है; हजार ढंग के नशे हैं, जिनसे हो सकता है।
सभी तरह की ऐंद्रिकता मादकता है। जब आप एक स्त्री को देखते हैं सुंदर,
या एक सुंदर पुरुष को, तो क्षणभर को शराब पकड़ लेती है। और जब मैं यह कह रहा हूं, तो सिर्फ प्रतीक के अर्थ में नहीं कह रहा हूं। अब तो मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक भी गवाही देते हैं कि जब एक सुंदर स्त्री को आप देखते हैं, तो आपके भीतर शरीर में हार्मोन्स में फर्क पड़ जाता है। और आपके शरीर में ग्रंथियां हैं, जिनसे मादक-द्रव्य खून में विस्तारित होते हैं।
तो जैसे ही एक सुंदर स्त्री को आपने देखा, आपके शरीर की ग्रंथियां नशीले तत्वों को खून में छोड़ देती हैं। तो यह हो सकता है कि आप दुनिया को भूलकर उस स्त्री के पीछे चल पड़ें; नियम, व्यवस्था, समाज, कानून को भूलकर स्त्री पर हमला कर दें। और अगर अदालत में आप कहें कि यह मैंने नहीं किया, तो वह भी सच होगा। यह आपके भीतर मादकता इतनी घनी हो गई कि हो गया आपसे, आपने किया नहीं, आप मालिक थे भी नहीं। करने का निर्णय आपने लिया नहीं, भीतर शरीर के हार्मोन, शरीर के रासायनिक तत्वों ने लिया।
धन को देखकर आप पागल हो सकते हैं। भूल ही जा सकते हैं कि मैं क्या कर रहा हूं।
हिंदुओं ने इस कथा का प्रयोग किया था कि क्षणभर भी इंद्रिय का स्वाद सनातन ब्रह्म को छिपा देता है। लेकिन बुद्ध ने इस कथा का बड़ा दूसरा उपयोग किया। क्योंकि बुद्ध और हिंदू-विचार के कुछ मौलिक भेद ख्याल में आ जाएं, तो कथा का अर्थ-भेद समझ में आएगा।
हिंदू कहते हैंः क्षण तो असत्य है; शाश्वत सत्य है। वह जो सदा है, वह सत्य है। और जो क्षण है, वह सत्य नहीं है; क्षण केवल सपना है। क्योंकि क्षण का मतलब है, क्षणभर पहले नहीं था और क्षणभर बाद फिर नहीं हो जाएगा। हिंदू- विचार कहता हैः जो क्षणभर पहले नहीं था, जो क्षणभर बाद फिर नहीं हो जाएगा, उसका अभी होना सत्य नहीं हो सकता; जिसके दोनों तरफ असत्य है, वह मध्य में सत्य नहीं हो सकता; जिसके दोनों तरफ शून्य है, वह बीच में पूर्ण नहीं हो सकता; जिसके दोनों छोरों पर भ्रम है, वह मध्य में वास्तविक नहीं हो सकता। वास्तविक वही है--सत्य की यही हिंदू-परिभाषा है--कि जो शाश्वत है, जो सदा है, सदा था, सदा रहेगा। जो न मिट सकता है, न मिटाया जा सकता है।
लेकिन बौद्धों की परिभाषा बड़ी अलग है। बुद्ध हैं क्षणवादी; हिंदू हैं शाश्वत-सनातनवादी।
बुद्ध कहते हैंः क्षणमात्र ही सत्य है; सनातन है ही नहीं कुछ, शाश्वत कुछ है ही नहीं। शाश्वत केवल विचार है, शाश्वत केवल सिद्धांत है; शाश्वत दार्शनिकों की खोज, कल्पना, परिकल्पना, हाइपोथीसिस है। क्षण ही केवल सत्य है। जो अभी और यहां है, वही केवल सत्य है। इस क्षण से ज्यादा और कोई सत्य नहीं है।
बौद्ध-चिंतन में सत्य का अर्थ हैः जो वर्तमान में है, जो अभी है, जस्ट हियर एंड नाऊ, बस वही सत्य है। और बौद्ध कहते हैंः जो अभी सत्य है, उसको तुम असत्य कहते हो, और जो कभी भी अभी नहीं होता है, उसे तुम सत्य कहते हो? क्षण

के अतिरिक्त समय है ही नहीं। क्योंकि एक क्षण से ज्यादा आपको उपलब्ध नहीं होता। शाश्वतता धारणा है, क्षण वास्तविकता है।
और बड़े मजे की बात यह है कि इन दो विपरीत दृष्टिकोणों से जो आत्यंतिक लक्ष्य फलित होता है, वह बिल्कुल एक है।
तो अब हम बुद्ध के हिसाब से इस कथा को समझें।
बुद्ध कहते हैंः भाग रहे तुम जंगल में और एक सिंह तुम्हारा पीछा करता है; मौत पीछे लगी है, पहुंच गए खाई के किनारे, लेकिन नीचे सिंह खड़ा हुआ तुम्हारी प्रतीक्षा करता है। इससे बुद्ध कुछ तुम्हें भयभीत नहीं करना चाहते। वह कहते हैं, ऐसा जीवन का स्वरूप है।
हिंदू-कथा में भय का अंश है। होगा, क्योंकि माया से तुम भयभीत हो जाओगे, तो ही तुम ब्रह्म की खोज पर निकलोगे।
बुद्ध कहते हैंः यहां कोई ब्रह्म तो है नहीं जिसकी खोज पर जाना है।
इसे तुम चाहे माया कहो और चाहे जो, बस यही है। यह जीवन की वास्तविकता है कि मौत तुम्हारे पीछे लगी है। इसमें भय का कारण भी तुम्हारा मन है। अन्यथा तुम समझोगे कि ऐसा जीवन का स्वभाव है। इस तरफ भी मौत है, उस तरफ भी मौत है।
और उस जगह हम पहुंच गए हैं खाई पर, जिसके आगे कोई मार्ग नहीं है।
बुद्ध के हिसाब से प्रतिक्षण तुम उस खाई पर खड़े हो, जिसके आगे कोई मार्ग नहीं है। मार्ग है ही नहीं। क्योंकि मार्ग तभी हो सकता है, जब तुम्हारे हाथ में एक क्षण से ज्यादा समय हो।
यह थोड़ा जटिल है।
अगर आपके पास एक क्षण मात्र है, तो गति करने का उपाय ही नहीं है। दो क्षण हों, तो गति हो सकती है। अगर खड़े भर होने को जमीन है, तो मार्ग कहां होगा? चलने को जगह चाहिए। मन के चलने को समय चाहिए। यह जो घड़ी है, यही सब कुछ है, तो तुम चलोगे कहां? जाओगे कहां? अपनी जगह पर खड़े होकर तुम कितने ही कूदते रहो, जागिंग करते रहो, जाना-आना कहीं भी नहीं है।
बुद्ध के हिसाब से कोई यात्रा नहीं है। तुम उसी जगह खड़े कूद रहे हो। जैसा घर में किसी को व्यायाम करना हो, अपने ही बाथरूम में खड़े होकर कूदता रहे, ऐसा मीलों की यात्रा का भ्रम पैदा हो सकता है। चलना मीलों हो जाए और जगह फीट भर की हो।
बुद्ध कहते हैंः एक क्षण ही तुम्हारे पास है, तुम्हारा मन उसी में कूदता रहता है। इसलिए प्रतिक्षण, तुम वहां खड़े हो, जहां से आगे कोई मार्ग नहीं है। जिस दिन तुम्हें दिख जाएगा, उसी दिन तुम रुक जाओगे, व्यर्थ उछल-कूद न करोगे।
संसार आदमी के मन की व्यर्थ उछल-कूद है, जिससे कुछ निष्कर्ष भी नहीं निकलता। व्यायाम जरूर हो जाता है, सो हम जन्मों-जन्मों से कर रहे हैं। पहुंचते कहीं भी नहीं, लेकिन दौड़ काफी हो जाती है। चलते बहुत हैं, मंजिल कभी नहीं आती। फिर भी हम कभी बैठकर नहीं सोचते कि इतना चले और कहीं न पहुंचे, कहीं ऐसा तो नहीं कि हम उसी जगह पर कूद रहे हैं! नहीं तो इतना चलकर कहीं तो पहुंचना चाहिए था!
जीवनभर आदमी यात्रा करता है और मरते वक्त वहीं पाता है, जहां जन्म के वक्त पाया था। यह यात्रा कुछ स्वप्निल मालूम पड़ती है। जैसे रात आप सो गए, और एक सपना देखा कि हवाई जहाज में उड़ रहे हैं, या न्यूयार्क पहुंच गए हैं, और बड़ी यात्रा है और बड़े कष्ट यात्रा के उठाए। और सुबह जब आंख खुलती है तो अपने घर में, अपने ही बिस्तर पर अपने को पाते हैं। तब आप कहते हैं, सब सपना था।
क्यों कहते हैं सपना था? अगर न्यूयार्क में आंख खुले, तब आप कह सकेंगे, सपना था? अगर कहीं पहुंच गए, फिर तो सपना न कह सकेंगे। सपने का अर्थ ही यह होता है कि चले बहुत, रहे वहीं। इसलिए सुबह कह पाते हैं, सपना है। अगर रात में कुछ आपके साथ तरकीब की जाए, आप सपना देखते हों न्यूयार्क जाने का और आपकी खाट को आपके मित्र उठाकर न्यूयार्क पहुंचा भी दें, और सुबह आंख खुले, तो पहली दफे जिंदगी में आपके मुसीबत खड़ी होगी। तब आपको बड़ा कठिन हो जाएगा कहना कि रात जो देखा, वह सपना था। तब वह सत्य हो जाएगा।

बुद्ध कहते हैंः सत्य का अर्थ है, जिस चलने से मंजिल मिले। असत्य का अर्थ है, जिसमें चलना तो बहुत हो, मंजिल बिल्कुल न मिले। यात्रा लंबी, पहुंचना कहीं भी नहीं। और जब आंख खुले तो आप पाएं कि वहीं के वहीं खड़े हैं। बुद्ध का जगत को सपना कहने का यह अर्थ है। बुद्ध भी जगत को माया कहते हैं, लेकिन ब्रह्म के विपरीत नहीं। वे कहते हैंः ब्रह्म तो है ही नहीं, बस यह माया है। और बुद्ध की बात समझने जैसी है।
वे कहते हैंः ब्रह्म भी तुम्हारे मन की नई आशा है। तुम आशा छोड़ते ही नहीं। धन से छोड़ दी, संसार से छोड़ दी, तो तुम ब्रह्म में स्थापित कर लेते हो। संसार व्यर्थ हो गया, समझ लिया यहां कुछ भी नहीं है, तो ब्रह्म में सब कुछ है। पहले संसार को पाना था, अब ब्रह्म को पाना है। लेकिन मन पाने से नहीं हटता। और बुद्ध कहते हैं, जब तक पाना बाकी है, तब तक मन बाकी है। इसलिए बुद्ध कहते हैंः ब्रह्म को क्षमा करो, मत बीच में लाओ। क्योंकि तुम उसे भी वासना की दौड़ ही बना लोगे। कल तक बाजार की तरफ जाते थे, अब मंदिर की तरफ जाओगे, लेकिन जाओगे जरूर। कल तक धन इकट्ठा करते थे, रोज गिनती करते थे; अब पुण्य इकट्ठा करोगे, लेकिन इकट्ठा करोगे जरूर। धन भी संपदा है, पुण्य भी संपदा है।
और ध्यान रहे, धन भी समाज की मान्यता है और पुण्य भी समाज की मान्यता है। वह जो सौ का नोट है, वह सौ का इसीलिए है कि समाज स्वीकार करता है कि वह सौ का है। कल समाज कह दे, राज्य घोषणा कर दे कि सौ का नोट समाप्त हुआ--दो कौड़ी उसके दाम नहीं। जिसको हम पुण्य कहते हैं, वह भी समाज की मान्यता है। हिंदुस्तान में एक विवाह करना पुण्य है; चार तुम कर लो, तो झंझट में पड़ोगे। हिंदू एक विवाह करे तो पुण्य है। क्योंकि पितृ-ऋण चुकेगा नहीं बिना विवाह के--बच्चे न होंगे, कैसे पितृ-ऋण चुकेगा? हिंदू चार विवाह कर ले, तो पाप है। और मुसलमान चार विवाह करे, तो पुण्य है; कोई भी पाप नहीं है। चार विवाह के सिक्के को मुसलमान स्वीकार करता है, हिंदू स्वीकार नहीं करता।
पुण्य-पाप भी सिक्के हैं, वे भी समाज के द्वारा। अगर तुम जंगल में अकेले हो तो वहां क्या पुण्य है और क्या पाप है? और सौ के नोट का क्या करोगे, एक का नोट क्या उपयोग का है? जंगल में सौ का नोट कागज है। पुण्य कागज है, पाप कागज है। जंगल में तुम कितने ही भले हो, तो भी भलाई को अर्जित नहीं कर सकते। और भले भी तुम किस भांति होओगे जंगल में? कोई वहां है नहीं, जिस पर दया करो। कोई है नहीं, जिसकी सेवा करो। बुरे कैसे होओगे? कोई है नहीं, जिसको गाली दो, जिसकी हत्या करो। तुम अकेले हो, तो पाप-पुण्य खो गया। पाप-पुण्य सिक्के हैं समाज के।
तो एक दफा आदमी धन इकट्ठा करता है, तिजोड़ी बनाता है। उस तिजोड़ी से भी अहंकार को भरता है कि मैं कुछ हूं, देखो कितनी संपदा मेरे पास है! फिर इससे हट जाता है तो--बुद्ध कहते हैं--वह पुण्य इकट्ठा करता है, फिर वह पुण्य की तिजोड़ी बनाता है।
और ध्यान रहे, पुण्य की तिजोड़ी ज्यादा चालाकी की बात है। क्योंकि यह तिजोड़ी यहीं छूट जाए, पुण्य की तिजोड़ी की आशा है कि साथ जाएगी, मौत उसको नहीं छीन पाएगी।
मैं एक गांव में था। उस गांव में मुसलमानों का एक संप्रदाय मानता है
कि उनका पुरोहित मरते वक्त चिट्ठी पर लिख देता है कि इस आदमी ने इतने-इतने पुण्य किए, इतना दान किया; और दस्तखत कर देता है। वह चिट्ठी उस मरे हुए आदमी के साथ कब्र में रख दी जाती है, ताकि वह भगवान को दिखा दे कि यह पुरोहित का लिखा हुआ सर्टिफिकेट साथ लाया हूं।
बुद्ध कहते हैंः इस मूढ़ता में मत पड़ना। क्योंकि तुम्हारा यह भगवान, तुम्हारी दुकान का ही फैलाव हुआ। और तुम्हारा अहंकार नष्ट नहीं हो रहा है, खो भी नहीं रहा है। अब ब्रह्म के नाम से जुड़ रहा है, अब तुम ब्रह्म को पाकर रहोगे। अब, तब तक तुम्हें चैन नहीं है, जब तक ब्रह्म तुम्हारी मुट्ठी में न आ जाए, जब तक तुम घोषणा न कर दो कि देखो, मैंने संसार में ही जीता नहीं, ब्रह्म को भी जीतकर ले आया हूं।

तुम्हारा मैं, तुम्हें स्वयं के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं देखने देता। तुम्हारा ब्रह्म भी तुम्हारे भीतर रहेगा; तुम्हारा धन भी तुम्हारे भीतर; तुम्हारी वासना भी तुम्हारे भीतर; तुम्हारी प्रार्थना भी तुम्हारे भीतर। सुना है मैंने, एक यहूदी धनपति एक हसीद फकीर के पास गया और उस धनपति ने कहा कि प्रार्थना करना चाहता हूं, कितनी ही कोशिश करूं, लेकिन प्रार्थना नहीं होती, वासना ही बनी रहती है। देना चाहता हूं, दान करना चाहता हूं, लेकिन दान के पीछे भी लोभ खड़ा रहता है; पाने की आकांक्षा खड़ी रहती है। छोड़ सकता हूं, लेकिन वह भी सौदा है। कुछ मिलने की आशा, और ज्यादा मिलने की आशा, तो छोड़ सकता हूं। और कितनी ही आंख बंद करता हूं, किसी परमात्मा का कोई दर्शन नहीं होता। मैं से ही भरा रहता हूं। क्या करूं? और क्या है इस उपद्रव का कारण?
उस हसीद फकीर ने कहा, आओ मेरे साथ। उठाया उस धनपति को, ले गया खिड़की के पास। खिड़की पर स्वच्छ कांच है। बाहर वृक्ष हैं, पक्षी हैं, आकाश में बगुले उड़ रहे हैं, बादल हैं, सूरज निकला है। उसने कहा, देखो बाहर। सब दिखाई पड़ता है। धनपति ने कहा, सब दिखाई पड़ता है, कांच बिल्कुल निर्मल है, ट्रांसपेरेंट है, पारदर्शी है। फिर फकीर ले गया दूसरी दीवाल पर, जहां एक आईना लटका है, और कहा, इस कांच में और उस कांच में तुम कुछ फर्क पाते हो? धनपति खड़ा हुआ, सिवाय खुद की शकल के और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है।
दोनों ही कांच हैं, फकीर ने कहा, फर्क क्या है?
धनपति हंसने लगा, उसने कहा, मैं समझ गया, रजत की एक पर्त! उस कांच पर कोई रजत की पर्त नहीं है, इस कांच पर इसके पीछे रजत की एक पर्त है। उस पर्त के कारण इसके आर-पार नहीं दिखाई पड़ता, मेरी ही शकल मुझे दिखाई पड़ती है। समझ गया, उस धनपति ने कहा, ऐसी ही रजत की पर्त मेरे चारों तरफ है। इसलिए जब भी देखता हूं कुछ और, कोई परमात्मा नहीं, कोई ब्रह्म नहीं, बस मैं ही दिखाई पड़ता हूं।
रजत कई तरह की हो सकती है। वह सांसारिक हो सकती है, आध्यात्मिक हो सकती है। लेकिन जब तक आपके ऊपर वासना की कोई भी पर्त है--वही रजत है--तब तक आप अपने से घिरे हैं।
बुद्ध ने एक बड़ी गहन घोषणा की, पृथ्वी पर पहली बार उतने शुद्ध ढंग से घोषणा की, और वह घोषणा यह थी कि तुम्हारा ब्रह्म तुम्हारे अहंकार का ही विस्तार है। इसलिए बुद्ध ने कहा, कोई ब्रह्म नहीं है। इसका तुम यह मतलब मत समझ लेना कि ब्रह्म नहीं है। बुद्ध ने कहा, कोई परमात्मा नहीं है। इससे तुम यह मतलब मत समझ लेना--अन्यथा भूल हो जाएगी--कि बुद्ध ने परमात्मा को इनकार किया।
बुद्ध ने जब कहा, कोई परमात्मा नहीं, कोई ब्रह्म नहीं, तब उन्होंने यह कहा कि तुम्हारा परमात्मा और तुम्हारा ब्रह्म, तुम्हीं हो। और तुम्हारा ही खेल है। तुम्हारे ही अहंकार के नए द्वार, नया फैलाव, नया विस्तार। तुम्हारा ब्रह्म तुम्हारे अहंकार का नया उपनिवेश है, वहां भी तुम अपने को ही बसाने चले हो।
इसलिए बुद्ध अति कठोर हैं, क्योंकि उनकी करुणा महान है। वे कहते हैंः
न कोई परमात्मा, न कोई आत्मा, न कोई मोक्ष, कुछ भी नहीं है। बस, यह क्षण सब कुछ है।
और अगर बुद्ध की बात समझ में आ जाए कि यही क्षण सब कुछ है और आगे कोई समय नहीं, पीछे कोई समय नहीं--कोई शाश्वत, कोई सनातन नहीं--तो तुम कहां जाओगे? वासना तुम्हारी दौड़ेगी कहां? सब उपाय छीन लिए, सब मार्ग मिटा दिए, सब सेतु गिर गए। तुम यहीं खड़े रह जाओगे।
पीछे मौत है--इसे थोड़ा हम समझें--बुद्ध के हिसाब से। क्योंकि बुद्ध कहते हैं, जन्म के पहले मौत। क्योंकि अगर तुम मरते न, तो तुम पैदा कैसे होते? जैसे जन्म के बाद मौत, वैसे ही जन्म के पहले मौत। मौत और जन्म एक ही सिक्के के दो हिस्से हैं। तुम मरे पिछले जन्म में, इसलिए इस जन्म में पैदा हुए। तुम इस जन्म में पैदा हुए, इसलिए फिर मरोगे। मरते ही तुम फिर पैदा हो जाओगे। अगर मौत एक कदम, तो दूसरा कदम हमेशा मौजूद है। अगर जन्म एक कदम है, तो दूसरा कदम हमेशा मौजूद है।

इसलिए बुद्ध कहते हैंः पीछे मौत, आगे मौत, जन्म बीच में है। हर दो मौतों के बीच में एक जन्म है, हर दो जन्मों के बीच में एक मौत है। तुम जहां भी खड़े हो, दोनों तरफ मौत है, आगे भी, पीछे भी। यह स्थिति है। लटके हो तुम खाई-खड्ड पर, और देखा कि एक मधु का छत्ता है--बुद्ध की कथा में फल नहीं है, मधु का एक छत्ता है--और उससे एक बूंद मधु की लटक रही है, किसी भी क्षण गिर सकती है। तुम्हारी आंखें उसमें उलझ गई हैं। तुमने अपना मुंह खोल लिया है। तुम प्रतीक्षा कर रहे हो। और फिर बूंद गिरती है और बुद्ध कहते हैं, आह, कितनी मधुर! कैसा स्वाद!!
अगर तुम दोनों मौतों को भी भूल सकते हो--बुद्ध की कथा का अर्थ है-- तुम्हारे हाथ कमजोर और शिथिल हुए जा रहे हैं, जड़ें आज नहीं कल छूट जाएंगी, इसे भी भूल सकते हो; और यह क्षण का स्वाद तुममें इतना गहन हो सकता है कि इस क्षण में सिर्फ स्वाद रह जाए, कुछ और न रहे। क्योंकि जब तुम मौत को भूलते हो, तब तुम स्वयं को भी भूल जाते हो। जब न मौत है, न समय है, न स्थिति का कुछ पता रहा, तब यह स्वाद तुम्हारी समाधि बन गया, तब यह तुम्हारा ध्यान हो गया। और इसी क्षण में तुम मुक्त हो गए। इसी क्षण में तुमने जान लिया, ब्रह्म क्या है।
तो बुद्ध के लिए यह कथा बड़ा और अर्थ रखती है।
बुद्ध के ध्यान का यही अर्थ हैः प्रतिपल, पल-पल जीना। और प्रतिपल का स्वाद इस समग्रता से लेना कि लेने वाला भी भीतर न हो। नहीं तो समग्रता खंडित हो जाती है।
अगर, जब तुम्हारे मुंह में गिरे मधु की बिंदु और तुम भी वहां मौजूद रहो, तो स्वाद पूरा न हो पाएगा।
सिर्फ स्वाद ही रह जाए। सिर्फ फैलते हुए मधु की मधुरता तुम्हारे भीतर
रह जाए, तुम्हारी पूरी आत्मा मधु की मधुरता हो जाए। कुछ भी न बचे। जानने वाला, भोगने वाला भी न हो। कर्ता भी न हो। कोई न हो। सिर्फ मधु की मधुरता फैलती चली जाए। उस क्षण में समाधि है।
तो बुद्ध कहते हैं कि प्रत्येक इंद्रिय समाधि का द्वार बन सकती है।
इंद्रियों में उपद्रव नहीं है बुद्ध के हिसाब से, अहंकार में उपद्रव है।
अगर अहंकार इंद्रियों का उपयोग करे, तो हर इंद्रिय बंधन बन जाती है। और अगर अहंकार भीतर शांत हो जाए, तो हर इंद्रिय मुक्ति बन जाती है।
ये बड़ी विपरीत बातें हैं। लेकिन दोनों का आत्यंतिक परिणाम एक है। तुम्हें जो उचित लगे। मैं तुम्हें भ्रम में नहीं डालना चाहता, लेकिन कथाओं के दोनों अर्थ कह देने जरूरी हैं। चुनाव फिर तुम स्वयं कर ले सकते हो। तुम्हें अगर लगती हो पहली धारणा ठीक, तो तुम्हारे जीवन का पथ बिल्कुल अलग होगा। फिर तुम्हें अलग मार्ग से, जिसको तप कहें, उससे यात्रा करनी होगी, संकल्प जिसको कहें, उससे यात्रा करनी होगी। संघर्ष! एक-एक इंद्रिय को काटना और प्रत्येक इंद्रिय से स्वयं को जाग्रत करना। तल्लीनता तुम्हारा मार्ग नहीं होगा, तुम्हारा मार्ग होगा संघर्ष-पूर्ण संकल्प। अपने को बचाना और खड़ा करना।
और अंत में तुम्हें जो सबसे बड़ी तकलीफ आएगी, वह यह आएगी कि इन सब इंद्रियों को जब तुम पार कर चुके होओगे और कोई इंद्रिय का तुम पर कोई प्रभाव न रह जाएगा, तब तुम पाओगे, अब मैं जो शुद्ध रूप में बचा हूं, इसको कैसे ब्रह्म में लीन करूं? क्योंकि हर इंद्रिय से लड़कर तुम्हारा मैं मजबूत होगा, और शुद्ध होता जाएगा।
इसलिए हिंदू साधना-पद्धति में जो अंतिम सवाल उठता है, वह यह है कि तपस्वी अपने अहंकार को कैसे लीन करे? क्योंकि तपस्वी का अहंकार बड़ा सघन हो जाता है। साधारण सांसारिक आदमी के पास अहंकार जैसा क्या है? लेकिन तपस्वी के पास है।
हिंदू-साधना प्रथम चरणों में बड़ी सरल है। क्योंकि लड़ाई हमेशा आसान है। लड़ने को हम तैयार ही बैठे हैं। लड़ना हम चाहते ही हैं--चाहे दूसरे से लड़ें, चाहे खुद से लड़ें। हिंसा सुलभ है। काटना, पीटना, समझ में आता है। मिटाने में हम सबकी उत्सुकता है। विध्वंस हमारा रस है। इसलिए तपश्चर्या एकदम गहरी अपील करती है।

कोई आदमी को देखकर कांटों पर सोया, तुम भी रुक जाते हो, तुम भी महिमा
से भर जाते हो। कोई आदमी खड़ा है और वर्षों से बैठा नहीं, उसे देखकर तुम्हारा सिर झुक जाता है। किसी ने उपवास किया है, महीनों से जल भी नहीं पीया, उसके चरणों में तुम जाकर लीन होना चाहते हो।
तपश्चर्या जंचती है, क्योंकि तपश्चर्या आत्महिंसा जैसी है, अपने को मिटाने की।
लेकिन जो मिटा रहा है, वह भीतर बन रहा है। शरीर मिटेगा, अहंकार मजबूत होगा। हिंदू-साधना प्रथम चरण पर बड़ी सरल है, अंतिम चरण पर बहुत कठिन है। क्योंकि फिर आखिरी छलांग इकट्ठी लगानी पड़ेगी। उस अहंकार को, जिसको इतने दिन सम्हाला और साधा, सजाया,शृंगार से भरा, इतना निखारा, शुद्ध बनाया, वह स्फटिक-मणि की भांति हो गया। पहले दिन फेंकते तो अनगढ़ पत्थर था। तब छोड़ने में कोई अड़चन न आती शायद। लेकिन इतनी तपश्चर्या के बाद उसे इतना शुद्ध कर लिया कि अब उसे छोड़ने में बड़ी कठिनाई होगी। इसलिए अंतिम चरण में हिंदू- साधक बड़ी कठिनाई का अनुभव करता है--कैसे इस स्फटिक-मणि को अब परमात्मा में छोड़ दे?
बौद्ध-साधना शुरू में बहुत कठिन है, क्योंकि इंद्रिय के स्वाद को ध्यान बनाना अति कठिन बात है। इंद्रिय का स्वभाव मूर्च्छा है, और ध्यान का अर्थ है अमूर्च्छा। तो इंद्रिय के रस को अमूर्च्छित भोगना, इतनी पूर्णता से भोगना कि भीतर न अहंकार बचे, न भोक्ता बचे, सिर्फ भोग रह जाए, अति कठिन है। क्योंकि इंद्रियां हमें सुलाती हैं। सोने के लिए ही हम उनकी शरण जाते हैं। और बुद्ध कहते हैं, शुरू से ही जागना। और अहंकार के द्वारा उनका नियंत्रण नहीं करना है, अहंकार को हटा ही देना है। इसलिए बुद्ध कहते हैं, न भीतर कोई आत्मा है, न कोई अस्मिता है--भीतर कोई है ही नहीं। तुम मात्र रथ हो, वहां सारथि कोई है ही नहीं। इस भाव से ही चलो।
तो शुरू अत्यंत कठिन है। लेकिन अंत बड़ा सरल है। क्योंकि इस भाव से जो चलेगा, उसको एक दिन ऐसा नहीं आएगा कि अचानक बढ़े हुए अहंकार को परमात्मा में फेंकना पड़े। वह तो धीरे-धीरे पाएगा कि अहंकार बचा ही नहीं। उसका विसर्जन बड़ा सुगम होगा। एक दिन अचानक वह पाएगा कि मैं तो हूं ही नहीं, ब्रह्म ही है। इस अवस्था को बुद्ध ने निर्वाण कहा है।
लेकिन अगर हम पूरी साधना-पद्धति को देखें, तो बात एक जैसी है। चाहे शुरू में कठिनाई, अंत में सरलता; चाहे शुरू में सरलता, अंत में कठिनाई। पूरे हिसाब में बात बराबर है। दोनों तराजू बराबर हो जाते हैं।
इसलिए प्रत्येक साधक को अपने लिए ही सोच लेना है। बुद्ध के साथ चलना
हो तो शुरू में ही कठिनाई है। शंकर के साथ चलना हो तो अंत में कठिनाई है। इसलिए तुम पर निर्भर है। कठिनाई तो है ही, उसे तो पार करना ही होगा। तुम पर निर्भर है, तुम्हारा झुकाव, तुम्हारी नियति, तुम्हारा अपना जीवन, व्यक्तित्व का ढांचा, तुम्हारा टाइप। उसे तुम समझ लो, उस हिसाब से तुम आगे बढ़ो। पहुंच तुम वहीं जाओगे।
बुद्ध उसे निर्वाण कहते हैं, शंकर उसे ब्रह्म कहते हैं। शंकर शाश्वत
को साधकर वहां पहुंचाते हैं, बुद्ध क्षण को साधकर वहां पहुंचाते हैं। बुद्ध का विचार इसीलिए भारत में बहुत जड़ें नहीं जमा सका, क्योंकि हिंदू-विचार की लंबी परंपरा थी। और हिंदू-विचार ने क्षण का इतना विरोध किया था कि यह बात ही समझ में आनी मुश्किल थी कि क्षण के द्वारा भी कोई सत्य को पहुंच सकता है। और हिंदू-विचार ने इंद्रियों का इतना निरोध और विरोध किया था, क्योंकि पतंजलि ने पूरी परिभाषा ही योग की कीः चित्तवृत्ति-निरोध। वह वृत्ति और चित्त को लड़ाना ही था। इसकी लंबी परंपरा थी। इस धारा में बुद्ध की बात बिल्कुल विरोधाभासी मालूम पड़ी और लगा कि इससे हिंदू-विचार का सारा तंत्र टूट जाएगा।
इसलिए हिंदुओं ने जैसा दुश्मन बुद्ध में देखा, वैसा उनको कहीं और दिखाई नहीं पड़ा। महावीर से हिंदुओं ने उतना विरोध नहीं किया, इसलिए जैन हिंदुस्तान में बच सके। क्योंकि महावीर की भी साधना संकल्प की है, इंद्रियों के ऊपर वश पाने की है। साधना का मौलिक ढंग हिंदू है। इसलिए जैन

में और हिंदू में कोई बुनियादी फासला नहीं है। सैद्धांतिक बातचीत का फर्क होगा। लेकिन ढांचा व्यक्तित्व का एक है।
इसलिए जैन हिंदुस्तान में बच सके, लेकिन बौद्ध को बचने देना असंभव हुआ। बुद्ध को तो उखाड़ना ही पड़ेगा। उखाड़ने का कारण है, क्योंकि बिल्कुल विरोधी दृष्टि है यात्रा की। वह जो मधु का बिंदु टपका है, उसके स्वाद में इस भांति लीन हो जाना है कि वह मधु-बिंदु ब्रह्म हो जाए। यहां मधु का बिंदु था हिंदू-धारणा में, इंद्रिय, माया। बुद्ध की धारणा में मधु-बिंदु हो गया ब्रह्म, परम सत्य, वही।
दोनों सही हैं। और जब मैं कहता हूं दोनों सही हैं, तो बड़ी कठिनाई खड़ी होगी। क्योंकि सदा आसान है एक को सही कहना और दूसरे को गलत कहना। क्योंकि दोनों विपरीत दिखाई पड़ते हैं। और धर्म की सबसे बड़ी कला यही है कि जहां भी आप विपरीत को पाएं, वहां जल्दी मत कहना कि दूसरा गलत है। क्योंकि धर्म, विपरीत को जोड़ने का ही नाम है। जल्दी मत करना। क्योंकि विपरीत को मन तत्क्षण कहना चाहता है, यह गलत है। क्योंकि मन यह कहता है कि दो में से एक ही ठीक हो सकता है। दोनों कैसे ठीक हो सकते हैं?
जीवन मन से बहुत बड़ा है। मन बहुत संकरा है। उसमें एक ही ठीक हो सकता है। जीवन में दोनों ठीक हो सकते हैं। बुद्धि बड़ी छोटी है। वहां जगह नहीं है विरोधी को समाने की। अस्तित्व विराट है। वहां विरोधी समाया हुआ है। वहां विरोधी भी साथ-साथ है। जितनी तुम्हारी धार्मिक दृष्टि पैनी होगी, उतना ही तुम पाओगे, सब विरोध समाहित हो जाते हैं।

प्रश्नः ओशो, आप हमें समर्पण के लिए कहते हैं और साथ ही यह भी कहते हैं
कि मुझे जकड़ मत लो।
और अब जो हमारी हालत है, उससे लगता है कि समर्पण के नाम पर आपको जकड़ ही लिया है।
अब जैसे आपके बिना हम मर ही जाएंगे!
ऐसा होने की वजह क्या है?
ऐसे में हमें क्या करना चाहिए?

मर जाना चाहिए! वही समर्पण का अर्थ है। बचने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। मरने में कुछ भी बुराई नहीं है, सारी बुराई बचने में है। और क्या है बचाने को, जिसके लिए हम इतने चेष्टारत रहते हैं कि बचाओ! बचाओ! बचाओ! क्या है बचाने को? एक क्षण भी गौर से देखोगे, शांत बैठकर सोचोगे, तो तुम्हारे पास बचाने को भी क्या है?
और जब तुम्हें यह दिखाई पड़ जाएगा कि बचाने को कुछ भी नहीं है, तो मरने
का भय तत्क्षण खो जाएगा। क्योंकि मरेगा कौन? जब बचाने को कुछ नहीं, तो खोना क्या है? यह डर कि कहीं कुछ खो न जाए, इस भ्रांति पर खड़ा है कि कुछ मेरे पास है। और तुम अपने घर के द्वार खोलकर कभी देखते भी नहीं हो कि वहां कुछ है? शायद इसी डर से नहीं देखते कि कहीं दिखाई न पड़ जाए कि कुछ भी नहीं है। क्योंकि फिर यह जो इतना शोरगुल मचाए रखते हो बचाने का, बचने का, यह भी न कर सकोगे। फिर बड़े असहाय मालूम पड़ोगे। तिजोड़ी न हो, लेकिन शोरगुल तो हम मचाए ही रखते हैं कि कहीं चोरी न हो जाए। उससे भी ऐसा लगता है कि कुछ है। मरने का डर क्या है? उसमें इतना भय क्या है? तुम्हारे मिटने से क्या खोएगा? यह गहन से गहन सवाल है, जो साधक को अपने भीतर पूछना चाहिए कि मैं अगर मिट गया, तो हर्ज क्या है? क्या होगा मेरे मिटने से? अगर मैं नहीं हो जाऊं, तो इस नहीं स्थिति को स्वीकार करने में बेचैनी क्या है? क्योंकि जो है की स्थिति है, वहां कोई सुख तो है नहीं। वह मैंने जो पीछे कहा, बस आशा है कि शायद सुख कभी होगा।
तुम जो भी हो, वहां पीड़ित और परेशान हो; जैसे भी हो, वहां पीड़ित और परेशान हो। फिर भी तुम कहते हो कि यह कहीं खो न जाए!
नहीं, मर जाओ! मरना ही बड़ी से बड़ी कला है। और जो मरना सीख लेता है, उसे
ही जीवन का पूरा उत्सव उपलब्ध होता है।

जिस क्षण तुम अपने को छोड़ दोगे, उस क्षण तुम्हारे भीतर जीवन की सारी शक्तियां एक अनूठे नृत्य में लीन हो जाएंगी। तुम जब तक अपने को बचा रहे हो, उस बचाने के कारण नृत्य मुक्त नहीं हो पाता। तुम इतने डरे हुए हो कि तुम हंस नहीं सकते। तुम इतने भयभीत हो कि तुम्हारे भीतर फूल खिल नहीं सकते। तुमने अपने ही जीवन को अपने ही हाथों से इस बुरी तरह कस लिया है कि तुम्हारे हाथ ही तुम्हारी गर्दन को फांसी का फंदा बन गए हैं। और तुम दबाए जा रहे हो कि कहीं मैं मिट न जाऊं। और मिटने की तुम्हें जो प्रतीति हो रही है, वह तुम्हारे अपने ही हाथों की है। एक दुष्टचक्र पैदा हो जाता है।
एक मित्र मेरे पास आते हैं। दिनभर उन्हें सिरदर्द रहता है। तो सिरदर्द से बचने को रात शराब पी लेते हैं। शराब की वजह से दूसरे दिन सुबह से सिरदर्द शुरू हो जाता है। अब क्या करना चाहिए? सांझ को जब मुझे मिलते हैं तो वह कहते हैं, क्या करूं! पीना पड़ेगी, क्योंकि यह सिरदर्द है। सुबह जब मिलते हैं तो शिकायत करते हैं कि कैसे इससे छुटकारा हो? क्योंकि पी लेता हूं तो सिरदर्द हो जाता है।
बस यह जीवन की स्थिति है। एक तरफ तुम अपना दुख पैदा करते हो और दूसरी तरफ दुख से बचना चाहते हो। उनकी इच्छा क्या है अब? मैंने उनसे कहा कि तुम्हारी इच्छा कुछ ऐसी है कि शराब पीना तो जारी रहे और सिरदर्द न हो।
उन्होंने कहा, बात आपने बिल्कुल पकड़ ली। बस यही है।
और यह हो नहीं सकता। तुम्हारी भी इच्छा यही है कि तुम भी रहो और मुक्ति भी हो जाए। यह नहीं हो सकता। तुम मरो, तो मुक्ति। तुम बचो, तो बंधन।
क्योंकि तुम ही बंधन हो। तुम्हारा न होना ही मोक्ष है।
आज इतना ही।

नहिं राम बिन ठांव
नौवां प्रवचन

दो पक्षीः कर्ता और साक्षी

प्रश्नः ओशो, उपनिषद का प्रसिद्ध रूपक है, जिसका उल्लेख आपके वचनों में भी आया है। दो पक्षी साथ रहने वाले हैं, और दोनों मित्र हैं। वे एक ही वृक्ष को आलिंगन किए हुए हैं। उनमें से एक स्वाद वाले फल को खाता है और दूसरा फल न खाता हुआ केवल साक्षीरूप से रहता है। उस वृक्ष पर एक पक्षी-- जीव--आसक्त होकर, असमर्थता से धोखा खाता हुआ शोक करता है। किंतु जब अपने दूसरे साथी--ईश--और उसकी महिमा को देखता है, तब शोक के पार हो जाता है। कृपापूर्वक इस रूपक के महत्व को हमें बताएं।

इस छोटे-से रूपक में जीवन की सारी व्यथा, जीवन का सारा संताप और उस वरदान की भी पूरी संभावना छिपी है, जो समाधिस्थ व्यक्ति को उपलब्ध होता है। व्यथा और समाधि, एगनी और एक्सटेसी, दोनों इस छोटे से रूपक में छिपे हैं। पहले हम जीवन की व्यथा को समझ लें, फिर जीवन के परम आनंद को। और तब इस रूपक का अर्थ सहज ही स्पष्ट हो जाएगा।
रात आप एक सपना देखते हैंः भटक गए हैं घने वन में; खोजते हैं, मार्ग नहीं मिलता; पूछते हैं, कोई बताने वाला नहीं; प्यासे हैं, जल का कोई झरना नहीं दिखाई पड़ता; भूखे हैं, दूर-दूर तक कोई फल दृष्टि नहीं आता। रोते हैं, चीखते हैं, चिल्लाते हैं, बड़े व्यथित होते हैं। फिर नींद खुल जाती है। एक क्षण में सब बदल जाता है। जहां व्यथा थी वहां हंसी आ जाती है। आप मुस्कुराने लगते हैं, यह सोचकर कि यह व्यथा एक स्वप्न थी।
लेकिन स्वप्न इतना निकट कैसे आ गया? स्वप्न इतना सत्य क्यों मालूम हुआ? स्वप्न में आप इतने क्यों खो गए? याद क्यों न कर पाए स्वप्न में कि यह स्वप्न है? क्यों यह बोध न जगा कि जो मैं देख रहा हूं, वह वास्तविक नहीं, मेरी ही कल्पना है।
नहीं जगा बोध, क्योंकि जागते भी साक्षी होना मुश्किल है, तो निद्रित, स्वप्न में तो साक्षी कैसे हुआ जा सकता है? जागते भी हम कर्ता हो जाते हैं, तो नींद में तो कर्ता हो ही जाएंगे। और कर्ता हो जाना जीवन की व्यथा है, वही जीवन की पीड़ा है।
कर्ता का अर्थ है, जो अपने आप हो रहा है, उसमें हम मान लेते हैं कि मैं
कर रहा हूं। जो इंद्रियों में घटित हो रहा है, मान लेते हैं, मुझमें घट रहा है। जो मुझसे बाहर हो रहा है, समझ लेते हैं कि भीतर हो रहा है। कर्ता होने का अर्थ है, जिसके होने में मैं केवल साक्षीमात्र हूं, जहां मेरी उपस्थिति एक देखने वाले की है, वहां भ्रांति से मैंने अपने को नाटक का पात्र समझ रखा है, दर्शक नहीं।
स्वप्न में वह जो भटका है, वह आप नहीं हैं, क्योंकि आप तो भलीभांति अपने बिस्तर पर विश्राम कर रहे हैं। वह जो जंगल में भटक गया है, वह मन का ही एक रूप है।
मैंने सुना है, ऐसा हुआ कि एक आदमी की पत्नी मरी। पत्नी जब जिंदा थी,
तब भी पति को सब तरफ से बांधे हुई थी। जरा भी हिलने-डुलने का उपाय न था। पति ऐसे ही दब्बू था, डरता था; कोई ज्यादा उत्पात खड़ा न हो, तो पत्नी जो कहती, मानता था। पत्नी मरी, तो मरने के पहले उससे कह गई कि ध्यान रखना, कभी दूसरी स्त्री पर विचार भी मत लाना, अन्यथा मैं भूत बनकर तुम्हें सताऊंगी।
डरा हुआ आदमी था। और डरा हुआ खुद ही भूत को पैदा करने में समर्थ हो जाता है। भय भूत बन जाता है। पत्नी मर गई। कुछ दिन तक तो उसने संयम रखा, भय के कारण।
और ध्यान रखें, जो संयम भय के कारण है, वह क्या संयम हो सकता है? तुम्हारे अधिक साधु-संन्यासी भय के कारण संयम रखे हैं। वैसे ही उस पति की दशा थी। भय कि कहीं नर्क न जाना पड़े, भय कि कहीं दंड न मिले, भय कि कहीं परमात्मा पकड़ न ले कुछ गलत करते हुए और पीड़ा न भोगनी पड़े--इससे संयम साधा हुआ है।

भय पर खड़ा हुआ संयम न केवल असत्य है, बल्कि बड़ी प्रवंचना है। और जो भय
से संयम को साधता है, वह वास्तविक संयम को कभी उपलब्ध नहीं हो सकता। कुछ दिन चल सकता है।
कुछ दिन आदमी ने सम्हाला अपने को, लेकिन कब तक सम्हालता! फिर मन की वासनाएं कहने लगीं, तू भी क्या पागल है, जीते जी उससे डरा, अब मरकर भी उससे डरता है! और क्या पता, वह प्रेत हुई हो, न हुई हो! और उसके बस में थोड़े ही है प्रेत हो जाना! तो उसने एक स्त्री से प्रेम का खेल शुरू किया।
उस रात घर लौटा कि पत्नी मौजूद थी। वह बिस्तर पर बैठी थी। हाथ-पैर कंप गए, घबड़ाकर वहीं गिर पड़ा। पत्नी ने कहा, कहां से आ रहे हो, मुझे पता है। यह है नाम उस स्त्री का, ऐसा है उसका घर। क्या-क्या तुमने उससे कहा--यह-यह तुमने उससे कहा। और अभी भी सावधान हो जाओ, पहला कदम ही तुमने उठाया है।
अब तो पक्का था। न केवल पत्नी प्रेत हो गई है, बल्कि एक-एक शब्द जो उसने उस दूसरी स्त्री से कहा था, वे जो प्रेम की बातें और कविताएं कही थीं, वे भी सब उसने दोहराईं। मकान का सब नक्शा बताया, स्त्री का ढंग, रूप-रंग, सब बताया। बात साफ थी कि पत्नी वहां भी मौजूद थी।
बहुत परेशान हो गया। और पत्नी रोज सताने लगी। वह एक झेन फकीर के पास गया, नानइन उस फकीर का नाम था। नानइन सुनकर खूब हंसने लगा, उसने कहा कि तू जिस पत्नी से परेशान है, वह तो है ही नहीं। जिनकी पत्नियां नहीं मरी हैं, वे भी परेशान हैं, उन पत्नियों से, जो नहीं हैं। सभी पत्नियां प्रेत हैं, और सभी पति प्रेत हैं। वास्तविकता तो मन देता है। इस जगत में जिस चीज को भी हम मन दे देते हैं, वही वास्तविक हो जाता है; मन हटा लेते हैं, वास्तविकता तिरोहित हो जाती है।
लेकिन उस आदमी ने कहा, ज्ञान की बातें न करो। तुम्हें पता नहीं कि किस मुसीबत में हूं! घर नहीं लौट सकता, दरवाजे पर खड़ी मिलती है। और ऐसे हाथ-पैर कंप जाते हैं; जिंदा थी तो इतना डर नहीं लगता था कि जिंदा है। अब वह मर चुकी है। कुछ तरकीब बताओ। और उसे सब पता है। जाते ही से वह कहेगी, नानइन के पास गए थे? पूछने तरकीब गए थे? मुझसे छुटकारा चाहते हो? मैं जो कहूंगा, वह भी सुन रही है वह; आप जो कहेंगे, वह भी सुन रही है। आप जो तरकीब बताएंगे, मुसीबत तो यह है कि वह सुन रही होगी, वह तरकीब काम न करेगी।
नानइन ने कहा, तरकीब ऐसी बताता हूं कि वह काम करेगी। वहां पास ही कोई फूलों के बीज नानइन को भेंट कर गया था, उसने एक मुट्ठी भरकर उस आदमी को दे दिए और कहा कि मुट्ठी बांध लो बीजों पर, घर चले जाओ। और सब बातें तो पत्नी बताएगी, तुम सुनते रहना। फिर उससे पूछना कि कितने बीज हैं, इनकी संख्या बता! और अगर संख्या ठीक न बता पाए तो समझ लेना कि सब झूठ है।
आदमी भागा बीज लेकर, तरकीब काम कर गई। पत्नी ने सब बताया कि नानइन क्या बोला, तूने क्या कहा। नानइन ने कहा कि बीज उठा ले, मुट्ठी में बांध ले और जाकर पूछ पत्नी से कि कितनी संख्या है और अब तू पूछने की तैयारी कर रहा है। डरा तो आदमी, कि यह बीज की संख्या बता देगी, यह काम होने वाला नहीं। लेकिन फिर भी उसने कहा, एक आखिरी कोशिश। पूछा। पत्नी तिरोहित हो गई। हैरान हुआ। लौटकर नानइन से कहा कि तरकीब क्या थी इसमें?
नानइन ने कहा कि तेरा मन जो जानता है, वही वह प्रेत बता सकता है। जो तेरा मन नहीं जानता, तेरा प्रेत नहीं बता सकता। क्योंकि तेरा प्रेत तेरे मन का विस्तार है। अगर तूने गिन लिए होते बीज, तो वह प्रेत भी बता देता। क्योंकि वह तेरा ही प्रोजेक्शन है, वह तेरी ही छाया है।
लेकिन हम प्रेत से डर सकते हैं। हम प्रेतों से ही डरे हुए हैं। शंकर
इस जगत को माया कहते हैं, उसका अर्थ है, यह सारा जगत प्रेत है। यह है नहीं और दिखाई पड़ता है। यह है नहीं और है। और इसमें जितना है-पन है, वह तुमने डाला है। पहले तुम इसमें है-पन डालते हो, फिर फंस जाते हो, फिर बंध जाते हो। सपने को सच करने की सामर्थ्य तुम्हारी है। तुम खो जाते हो, तुम भूल जाते हो कि तुम हो।
भूख लगती है और तुम्हें लगता है कि मुझे भूख लगी, वहीं भ्रांति हो जाती है। भूख शरीर को लगती है, तुम्हें कभी लगी नहीं। और कभी लग भी नहीं

सकती। तुम बहुत करीब हो, यह सच है। तुममें और शरीर के बीच जरा-सा भी फासला नहीं है, लेकिन तुम अलग हो। बहुत निकट खड़े हो।
पुराने शास्त्र कहते हैं, जैसे नीलमणि के पास अगर कोई कांच के टुकड़े
को रख दे, तो वह कांच का टुकड़ा भी नीला दिखाई पड़ने लगता है। वह नीला हुआ नहीं है, लेकिन नीलमणि की छाया उस पर पड़ने लगती है। ऐसे ही तुम पास हो शरीर के, शरीर तुम नहीं हो। शरीर में जो भी घटता है, वह इतने पास घटता है कि तुम्हारे ऊपर उसकी छाया पड़ने लगती है। तुम कहते हो, मुझे भूख लगी। और वहीं भ्रांति हो गई, वहीं संसार खड़ा हो गया।
भूख लगी शरीर को, और तुमने कहा, मुझे भूख लगी। चोट लगी शरीर को, और तुमने कहा, मुझे चोट लगी। शरीर बूढ़ा हुआ, और तुमने कहा, मैं बूढ़ा हुआ। शरीर मरने लगा, और तुमने कहा, मैं मरा। बस वहीं भ्रांति हो गई।
काश! तुम देख पाओ कि शरीर को भूख लगी और मैं देख रहा हूं, जान रहा हूं। काश! तुम समझ पाओ कि शरीर बीमार हुआ, शरीर बूढ़ा हुआ, शरीर मरने के करीब आया, मैं जान रहा हूं, मैं देख रहा हूं, मैं द्रष्टा हूं। सारा नाटक शरीर पर हो रहा है। शरीर जैसे एक विराट मंच है और उस सारे नाटक के पात्र तुम्हारे मन के ही प्रक्षेप हैं। और तुम खड़े दूर दर्शक-दीर्घा में देख रहे हो।
एक तुम्हारा कर्ता-पन है, जिससे संसार पैदा होता है। एक तुम्हारा साक्षी-पन है, जिससे ब्रह्म के दर्शन होते हैं। निद्रा में तो याद रह ही नहीं जाता, जागते में तुम भूल-भूल जाते हो। शरीर को चोट लगती है, तत्क्षण तुम भूल ही जाते हो कि शरीर को चोट लगी, मैंने जाना।
बस इतना ही साधना का सूत्र है कि कर्ता निर्मित जब होता हो, तब तुम होश
से भर जाओ और कर्ता को निर्मित मत होने दो। सब कर्म शरीर पर छोड़ दो। सब वासनाएं, सब क्षुधाएं, सब आकांक्षाएं शरीर पर छोड़ दो। अपने पास तुम सिर्फ जानने की क्षमता बचाओ, सिर्फ होश, सिर्फ देखने की कला बचाओ।
इसलिए हमने इस मुल्क में दर्शन, फिलासफी को दर्शन का नाम दिया है।
देखने की क्षमता तुम बचा लो। बस जैसे ही तुम देखने में समर्थ हो जाओगे, उसी क्षण तुम पाओगे, सारे स्वप्न खो गए, सारे भूत-प्रेत तिरोहित हो गए, संसार नहीं है। स्वप्न लीन हो गया। तुम जाग गए।
इस परम जागरण को हम बुद्धत्व कहते हैं। बुद्ध का अर्थ है, जागा हुआ।
और यह परम जागा हुआ परम आनंद को उपलब्ध होता है। हम सोए हुए पीड़ा और व्यथा और दुख को उपलब्ध होते हैं।
एक ही दुख है, स्वयं की वास्तविकता को भूल जाना। और एक ही आनंद है, स्वयं की वास्तविकता को पुनः उपलब्ध कर लेना। आत्म-साक्षात्कार कहें, ब्रह्म-साक्षात्कार कहें, समाधि कहें, जो भी नाम रुचिकर लगे वह नाम दें, पर एक ही बात है।
उपनिषद की यह छोटी कथा, यह छोटा-सा रूपक! एक वृक्ष, जिस पर दो पक्षियों
का वास है।
वृक्ष बहुत पुराने दिनों से जीवन का प्रतीक है। जैसे बीज से वृक्ष फैलता है, खुले आकाश में उसकी शाखाएं दूर-दूर तक जाती हैं, बड़ी आकांक्षाएं लेकर वृक्ष आकाश को छूने चलता है, ऐसे ही जीवन फैलता है एक छोटे-से बीज से, एक वीर्य-कण से। फिर बड़ी आकांक्षाएं हैं, बड़ा फैलाव, बड़ी महत्वाकांक्षाएं, सारे आकाश को ढंक लेने का मन है, दूर-दिगंत तक पहुंच जाने की वासना है। जीवन का वृक्ष है। इस जीवन के वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं। एक पक्षी है, जो स्वाद लेता है, फलों को चखता है। और एक पक्षी है, जो सिर्फ देखता है, जो न फलों को चखता है, जो न स्वाद लेता है, जो किसी भी कर्म में नीचे नहीं उतरता। तो वह जो भोगी पक्षी है, वह नीचे की शाखा पर बैठा है। वह जो साक्षी पक्षी है, वह ऊपर की शाखा पर बैठा है।
वह जो भोग है, उसका अंतिम परिणाम व्यथा है। सुख तो मिलते हैं, लेकिन सुख सदा दुख मिश्रित मिलते हैं। और हर सुख अपने साथ अपने ढंग का दुख लाता है। और सुख तो ठहरता है क्षणभर, दुख पीछे लंबी धूमिल रेखा की भांति छूट जाता है। एक सुख के लिए हमें नामालूम कितने दुख उठाने पड़ते हैं।
और सुख को भी थोड़ा गौर से देखें, तो बहुत भ्रांत सिद्ध होता है। गौर से देखें, तो मिला भी या नहीं मिला, यह भी संदिग्ध हो जाता है। गौर से न देखें,

तो लगता है मिला। पीछे लौटकर देखें, पचास साल गुजर गए, चालीस साल गुजर गए, साठ साल गुजर गए, इन साठ वर्षों में सच में कोई क्षण याद आता है, जिसकी आप ठीक से कसौटी करें और जो सुख का सिद्ध हो?
सुकरात का एक बहुत प्रसिद्ध वचन है, जिसमें उसने कहा है, अनएक्जामिन्ड लाइफ इज नाट वर्थ लिविंग, अपरीक्षित जीवन जीने योग्य नहीं है।
लेकिन अगर तुम जीवन की परीक्षा करोगे, तो तुम हैरान हो जाओगे कि वहां परीक्षा करने पर कुछ बचता ही नहीं।
लौटो और देखो, कब मिला सुख? शायद थोड़े से ख्याल आएंगे। पहली दफा प्रेम में किसी के पड़े थे, तब सुख मिला था। लेकिन अब याददाश्त बड़ी धूमिल हो गई। और बड़ी धूल जम गई। उस धूल को निखारो और फिर से खोजो, हाथ-पैर भीतर कंपने लगेंगे। क्योंकि खोज करने से पता चलेगा कि तब भी आभास हुआ था, मिला नहीं था। और जितना ही खोजेंगे, उतना ही खो जाएगा।
बहुत विचार जो करेगा, उसे लगेगा, जीवन रिक्त है। इसलिए विचारक हमेशा जीवन में एंपटीनेस, रिक्तता अनुभव करेगा। सिर्फ मूढ़ हैं, जिनका जीवन भरा हुआ मालूम पड़ता है। चाहे वे रास्ते के किनारे कंकड़-पत्थर इकट्ठे करके जीवन की झोली भर रहे हों, लेकिन उन्हें यह ख्याल होता है कि वे हीरे- जवाहरात इकट्ठे कर रहे हैं। झोली खोलकर देखेंगे, कंकड़-पत्थर पाएंगे, झोली गिर जाएगी और जीवन बड़ा रिक्त मालूम पड़ेगा।
जिसको अपने जीवन की रिक्तता नहीं दिखाई पड़ी, उसके जीवन में अभी धर्म
का द्वार खुल नहीं सकता। क्योंकि जब भोग व्यर्थ दिखाई पड़ता है, तभी योग का जन्म होता है।
एक भी क्षण सुख का नहीं है और इतना दुख हम झेलते हैं उसे पाने के लिए।
एक आदमी एक भवन बनाता है। बड़े कष्ट लेता है, दा.ैडता है, धूपता है, मुश्किल से धन इकट्ठा करता है। फिर भवन में आकर खड़ा हो जाता है और सोचता है, कहां सुख! लेकिन पुरानी आदत के कारण कुछ और बनाने में लग जाता है। दस रुपए पास हैं, दस हजार कर लेता है। दस हजार रखकर बैठ जाता है, सोचता है, कहां सुख! लेकिन इतनी भी फुर्सत हम मन को देते नहीं, क्योंकि इतनी फुर्सत खतरनाक है। दस हजार हो भी नहीं पाते कि दस लाख की हम चिंता में पड़ जाते हैं और सोचते हैं, दस लाख जब मिलेंगे, तब सुख होगा।
यह मन का ढांचा हो जाएगा। दस लाख मिलकर भी सुख नहीं होगा, क्योंकि तब
दस करोड़ की वासना पैदा हो जाएगी। और हम कभी खाली जगह न छोड़ेंगे, जिसमें हम विचार कर लें, लौटकर देख लें, पुनर्विचार कर लें, फिर से ख्याल में ले लें कि इतने दिन तक मेहनत करके दस लाख इकट्ठे किए; सुख, जो सोचा था, वह मिला या नहीं?
अगर आप अपना श्रम और अपनी उपलब्धि को सामने रखकर सोचेंगे, तो आप बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। उपलब्धि बिल्कुल भी नहीं है, श्रम बहुत है। मेहनत में आपके कोई कमी नहीं, मेहनत इतनी ज्यादा है कि अपने को उसमें गंवाए ही दे रहे हैं। लेकिन डर लगता है, जांचने में डर लगता है। और डर इस बात का लगता है कि अगर जांचने से पता चला कि मुझे कुछ भी नहीं मिला, तो मैं असफल हो गया। असफलता का भय भारी है।
मैंने सुना है कि दो भिखारी एक सड़क के किनारे बैठकर बात कर रहे थे। एक भिखारी रोना रो रहा था, जैसा कि सभी भिखारी रोते हैं, फिर चाहे वे धनी भिखारी हों और चाहे निर्धन।
वह रोना रो रहा था अपने धंधे के संबंध में कि सब धंधा बिगड़ गया है। काम
ही नहीं चलता। कोई देने को उत्सुक ही नहीं है। लोगों की नजर ही खराब हो गई है। जिसके सामने हाथ फैलाओ, वही और कहीं देखने लगता है। किसी से मांगो, तो पच्चीस उपदेश देता है, एक धेला देने की तैयारी नहीं है। संसार बिल्कुल बिगड़ा जा रहा है, कलियुग आ गया है। लोगों में न दया है, न दान है, न ममता रही, न मनुष्यता का कोई प्रेम रहा। बस पैसे पर लोगों की पकड़ हो गई है, एक पैसा कोई देने को तैयार नहीं है। और अब मैं बहुत थक गया इस आवारागर्दी से, एक गांव से दूसरे गांव, न कोई इज्जत, न कोई प्रतिष्ठा। ट्रेनों में धक्के खाओ,

बिना टिकिट सफर करो, जबर्दस्ती जगह-जगह उतारे जाओ। पुलिस है कि पीछे पड़ी रहती है, जैसे इसी के लिए नियुक्त किया है। जीवन बड़ा बदतर है।
तो दूसरे ने कहा कि फिर तू यह भिखारी का धंधा छोड़ ही क्यों नहीं देता?
उस पहले आदमी ने सिर ऊंचा करके, रीढ़ ऊंची करके कहा कि क्या तुम समझते हो, मैं अपनी असफलता स्वीकार कर लूं?
भिखारी भी अपनी असफलता स्वीकार करने को राजी नहीं है, तो आप तो कैसे राजी होंगे! और चूंकि अहंकार असफलता स्वीकार करने को राजी नहीं होता, इसलिए अहंकार जीवन पर विचार करने को राजी नहीं होता। क्योंकि विचार की निष्पत्ति असफलता होगी। साफ दिखाई पड़ जाएगा कि सब असफल हुआ है, सब असफल गया है। सुख जरा भी नहीं है, दुख की बड़ी भीड़ है।
यह पहले पक्षी का जीवन-ढंग और ढांचा है। यह उसके जीवन की शैली है। बड़ी व्यथा उसे होती है, बड़े दुख में वह भरता है। और तब किसी क्षण में वह ऊपर सिर उठाकर देखता है।
उसका ही साथी, ठीक उसके ही जैसा, कहें कि दोनों जैसे साथ-साथ जन्मे; कहें, जैसे एक दूसरे के प्रतिरूप, एक दूसरे की छाया! वह दूसरा शांत और आनंदित बैठा है। वहां कोई कंपन नहीं, वहां दुख की कोई कालिमा नहीं, वहां आनंद का सूरज सदा ही उगा हुआ है, कभी डूबता नहीं।
उस दूसरे के आनंद का राज क्या है? उसका राज यह है कि वह भोक्ता नहीं है, कर्ता नहीं है। वह मात्र नीचे जो उछल-कूद चल रही है, उसे देखता है। और जब आप कर्ता नहीं होते, भोक्ता नहीं होते, तो सुख तो आपका हो ही नहीं सकता, दुख कैसे आपका होगा! जिसने सुख को अपना बनाना चाहा, दुख उसका हुआ। जिसने सुख को भी कह दिया, मेरा नहीं, सिर्फ देखने वाला हूं, दुख उससे सदा के लिए दूर हो गया।
दूरी तो हम भी चाहते हैं, लेकिन दुख से चाहते हैं। सुख से निकटता चाहते हैं। चाहते हैं, सुख तो मेरा हो, मैं भोक्ता रहूं; दुख मेरा न हो। दुख में बहुत लोग साक्षी होने का उपाय करते हैं।
दुखी लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं कि बहुत उपाय करते हैं साक्षी होने का, कुछ हो नहीं रहा। मैं उनसे कहता हूं, दुख में उपाय मत करो, सुख में उपाय करो साक्षी होने का। और अगर तुम सुख में सफल हुए, तो ही दुख में सफल हो पाओगे।
दुख से दूर होने की आकांक्षा तो सभी की है, वह कोई साधना नहीं है। सुख
से दूर होने की आकांक्षा सभी की नहीं है, वही साधना है। तो जब तुम्हारे जीवन में सुख का क्षण हो, तब तुम बैठकर अपने को दूर करना। जब तुम्हारे जीवन में शांति का क्षण हो, तब तुम बैठकर अपने को शांति से भी दूर कर लेना। यदि तुम ध्यान के मार्ग पर हो और किसी दिन ध्यान में परम शांति उतरने लगे, तत्क्षण अपने को दूर कर लेना।
बड़ा कठिन होगा। क्योंकि लोग सोचते हैं, शरीर के भोग से दूर करना है। ध्यान का भोग भी भोग है। किसी दिन प्रार्थना में लीन हो गए हो और तुम्हारे चारों तरफ एक नई सुगंध आ गई, जैसे अंधेरे में अचानक घी के दिए जल गए; या भीतर जहां कभी कुछ नहीं खिला था, कोई कमल खिल गया और तुम बड़े आनंदित हो, तत्क्षण दूर कर लेना।
स्त्री से जो सुख मिलता है, पुरुष से जो सुख मिलता है, भोजन से जो सुख मिलता है, सुंदर वस्त्र पहन लेने से जो सुख मिलता है, स्वास्थ्य से जो सुख मिलता है, उससे तो अलग करना ही है, ध्यान से जो सुख मिलता है, उससे भी अलग कर लेना है। जहां भी सुख मिलता है, वहां तुम साक्षी होना, भोक्ता मत होना।
बस तुमने नींव रख दी जीवन को बदलने की। अचानक तुम पाओगे कि दुख अब तुम्हें नहीं छूता। दुख उसी को छूता है, जो सुख को पकड़ना चाहता है। सुख को पकड़ना, दुख के लिए निमंत्रण है। और तुम सभी सुख को पकड़ने को आतुर हो, हालांकि पकड़ में हमेशा दुख आता है। फिर भी तुमने कभी सोचा नहीं कि पकड़ना सदा चाहा सुख, पकड़ में सदा आया दुख! तुमने यह हिसाब भी कभी नहीं लगाया। इतनी तेजी में हो, इतनी जल्दी में हो, और नए सुख को पकड़ने के लिए इतनी भाग-दौड़ है, इतनी आपा-धापी है कि पीछे का हिसाब कौन लगाए?

जब भी सुख का कोई क्षण तुम पर उतरने लगे, सुख का कोई घूंघर तुम्हारे भीतर बजने लगे, तत्क्षण होश सम्हाल लेना। यही वास्तविक ध्यान है। यह होश का सम्हालना सुख में, यही वास्तविक ध्यान है।
मुश्किल होगा, क्योंकि कभी तो ऐसी शांति मिली और उससे भी अलग होने की बात की जा रही है! कभी तो झलक आई प्रकाश की एक!
तो जब भी मैं अपने साधकों को कहता हूं कि ध्यान में जो मिले, उसके साथ
एक मत हो जाना तो वे मेरी तरफ ऐसे देखते हैं कि बामुश्किल तो थोड़ी-सी झलक मिली, उसको भी मैं नष्ट करवाने की तैयारी कर रहा हूं। उनकी आंखों को देखकर मुझे लगता है, वे कहते हैं कि इतनी जल्दी नहीं, थोड़ा इस सुख को ले लेने दें, थोड़ा इसमें डूबने दें। और हम तो पूछने आए थे कि यह सुख कैसे बढ़े? और हम तो पूछने आए थे कि जो सुख आज मिला, वह कल भी कैसे मिले? और जो सुख अभी क्षणभर दिखा, वह शाश्वत कैसे हो जाए? और आप कहते हैं, इससे दूर कर लेना!
यह जो मैं कह रहा हूं, इससे दूर कर लेना, यही इसके शाश्वत होने का उपाय है। अगर तुम दूर न कर पाए, तो जो मिला है, वह भी खो जाएगा। कल तुम फिर खाली हाथ हो जाओगे और दुख पैदा होगा। ध्यान करने वालों को अगर सुख मिल जाए थोड़ा, तो दूसरे दिन दुख मिलता है। क्योंकि फिर वह जो सुख मिला था, वह नहीं आ रहा। फिर वे पूछते हैं कि कैसे वह फिर वापस आए। वह जो झरोखा खुला था, वह फिर कैसे खुले? और कुछ ऐसी तरकीब कि वह झरोखा बंद हो ही न, खुला ही रहे।
बस, दुख का उपाय शुरू हो गया। जिसने भी सुख को पकड़ना चाहा, उसने दुख को पकड़ लिया। जिसने सुख की पुनरुक्ति चाही, वह जो मिला था, वह भी खो गया। जीसस का एक वचन है, जिनके पास है, उनसे छीन लिया जाएगा। और जिनके पास नहीं है, उन्हें दे दिया जाएगा। इसे तुम सुख के संबंध में याद रखना। किसी भी भांति का सुख है, वह छिनेगा। अगर तुम खुद ही उसे फेंक दोगे, तब तुमसे उसे छीनने वाला कोई भी नहीं। और जिसके पास नहीं है, उन्हें अनंतगुना मिलता रहेगा। और जब भी मिले, तब तुम उसे फेंकते जाना। तुम हर बार अनंत को अनंतगुना करते जाओगे।
और एक ऐसी घड़ी आती है, जब तुम समझ जाओगे कि सुख फेंकने की कला है और दुख पकड़ने की कला है।
जितना पकड़ोगे, उतने दुखी। नर्क में जो लोग हैं, उनका दुख और कुछ नहीं है, उन्होंने बड़े सुख पकड़ रखे हैं। स्वर्ग में जो लोग हैं, उनका सुख और कुछ भी नहीं है, उन्होंने सब सुख छोड़ रखे हैं।
अगर यह समझ में तुम्हें आ जाए, तो सुख का अर्थ हुआ स्वतंत्रता और दुख
का अर्थ हुआ परतंत्रता। इसलिए हमने परम आनंद को मोक्ष कहा है। मोक्ष का अर्थ है परम-स्वातंष्य, जहां सब छोड़ दिया गया है।
वह जो ऊपर बैठा पक्षी है, वह तुम्हारे भीतर भी बैठा है, तुम्हारे वृक्ष पर भी बैठा है। कभी-कभी उसकी तुम्हें झलक भी मिलती है। जब तुम देखने वाले हो जाते हो, तब तुम्हारी चेतना, नीचे के पक्षी से हट जाती है और ऊपर के पक्षी में लीन हो जाती है। कभी-कभी तुम्हें भी झलक मिली है। और उस झलक में जैसे बादल हट गए हों और नीला आकाश पीछे दिखाई पड़ा हो, तुम्हें भी दिखाई पड़ा है। चाहे तुम पहचान पाए न पहचान पाए, चाहे तुम समझ पाए इस घटना को न समझ पाए। लेकिन ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है, जिसे कभी न कभी, साक्षी होने की क्षणभर को प्रतीति न हुई हो।
और जब भी ऐसी प्रतीति हुई है, तभी आनंद बरस गया है। तभी एक झोंका आया
है और तुम्हारे चारों तरफ सब जीवित हो गया है।
कर्ता होने की प्रतीति तो हमको चौबीस घंटे है। चौबीस घंटे हम नीचे के पक्षी के साथ तादात्म्य साधे हुए हैं। दुख भोग रहे हैं। अब समय आया है कि आंख उठाओ और ऊपर के पक्षी को देखो। और वह तुम्हारे ही वृक्ष पर बैठा हुआ है। और अनंतकाल से प्रतीक्षा कर रहा है कि कब तक तुम दुख भोगते रहोगे? और दुख भोगकर भी तुम आंख नहीं उठाते!
कुछ ऐसा लगता है कि दुख में भी तुम्हें रस आ रहा है। अगर विरोधाभास न दिखे, तो कुछ ऐसा लगता है कि दुख में तुम कुछ सुख अनुभव कर रहे हो। दुख में भी हमारा इनवेस्टमेंट है। इसलिए तुम कहते जरूर हो कि हम दुख छोड़ना चाहते हैं, लेकिन तुम छोड़ना नहीं चाहते। तुम आते भी ऐसे लोगों के पास हो, जहां

दुख छूट जाए, लेकिन तुम पूरी तरह नहीं आते। शायद तुम अपनी आत्मा को घर ही छोड़ आते हो। आधे-आधे आते हो, अंश-अंश में आते हो। दुख में तुम्हारा कुछ न्यस्त स्वार्थ है।
एक महिला को मैं जानता था। वह जब भी आती तो उसका एक ही रोना था कि पति शराबी, जुआरी, सब पाप जो हो सकते हैं पति में, शिकायत और शिकायत। और मैं ही घर को चलाती हूं, न पति काम करता, न नौकरी पर जाता। और निश्चित ही वह चलाती थी घर को, खुद काम भी करती, कुछ छोटे-मोटे व्यवसाय भी सम्हालती। पति की भी चिंता रखती। और एक लड़की घर में, वह पंगु, उसको लकवा लग गया है। उसका भी एक बोझ उसके ऊपर, वह उठ भी न सके बिस्तर से। उठाना हो तो भी सहायता की जरूरत, भोजन भी करवाना हो तो उसी को करवाना पड़े। उसका जीवन एक शहीद का जीवन था। वह जब भी आती, यही दुख सुनाती। लेकिन उसकी आंखों और चेहरे में मैं गौर करता, तो मुझे लगता, उसे इसमें रस है। क्योंकि इस पति के शराबी और जुआरी होने के कारण उसके अहंकार को बड़ी तृप्ति मिल रही है। पति दो कौड़ी का है, तो वह लाख का हीरा हो गई है। जीते हम तुलना में हैं। अगर पति श्रेष्ठ हो, तो पत्नी साधारण हो जाएगी। वह जो पत्नी की असाधारणता है, और गांवभर उसकी प्रशंसा करता है कि स्त्री हो तो ऐसी हो, वह पति के शराबी और जुआरी होने पर निर्भर है।
तो वह कहती है कि मैं बड़ी दुखी हूं, लेकिन सच में ही वह उस दुख से छुटकारा चाहेगी नहीं। क्योंकि उस दुख का छुटकारा, उसके सम्मान और गौरव-गरिमा का भी अंत होगा। वह लड़की दुखी है, बीमार है, परेशान है। और उसके लिए वह दुखी है, रोती है, इलाज का इंतजाम करती है। लेकिन वह भी उसकी शहीदगी का हिस्सा है। लोग दुख में रस लेते हैं, क्योंकि दुख तुम्हें शहीद बनाता है। और इसलिए शिकायत नहीं कर रही है वह असल में, प्रचार कर रही है। उसकी आंखों में देखो तो शिकायत का भाव नहीं दिखता, प्रचार का भाव दिखाई देता है।
फिर दुर्भाग्य से ऐसा हुआ कि लड़की मर गई। जिस दिन लड़की मरी, उसी दिन से उसके जीवन में आधा सुख चला गया। होना तो उसे प्रसन्न चाहिए था; कि चलो, लड़की दुख से छूटी और मैं भी दुख से छूटी। और भी दुर्भाग्य की बात कि आखिर में परेशान होकर पति भाग गया।
इस सबको मैं निरंतर अध्ययन करता रहा, क्योंकि वह अक्सर आती थी। जिस दिन उसका पति भाग गया, उस दिन सब दुख का अंत हो जाना चाहिए था। क्योंकि यही वह कहती थी कि यह कैसे मर भी जाए तो भी ठीक है। यह चला जाए, इसका चेहरा मुझे नहीं देखना। आखिर वह चला भी गया, फिर लौटा भी नहीं। लेकिन उसी दिन से उसके चेहरे पर जो चमक थी, पत्नी के, वह खो गई। उसी दिन से वह उदास हो गई, उसके जीवन का सारा सार ही खो गया। वह उस जुआरी और शराबी पति में ही था। उसके कारण ही उसके जीवन में व्यस्तता थी। उसके कारण ही अर्थ था, अभिप्राय था। सब अभिप्राय खो गया, सब अर्थ खो गया।
आखिरी बार जब उस स्त्री को मैंने देखा, तो वह साधारण स्त्री हो गई थी।
अब न कोई उसकी प्रशंसा करता है, न कोई उसके गीत गाता है। वह स्त्री जल्दी मर जाएगी, क्योंकि जीवन में जो भी धारा भी, गति थी, वह सब खो गई।
आप अपने दुखों की बात करते हैं। था.ेडा सोचना, उन दुखों के कारण कहीं
आप शहीद तो नहीं हैं? थोड़ा सोचना, उन दुखों में कहीं आपका कोई सुख तो नहीं छिपा है?
आदमी बड़ा जालसाज है। वह अपने दुख को भी लीप-पोत लेता है, अपने दुख को
भी साज-संवार लेता है, वह अपने दुख को भीशृंगार बना लेता है। और तब मुश्किल हो जाती है, क्योंकि वहशृंगार को कैसे फेंके? दुख तुम कभी का फेंक देते, अगरशृंगार तुमने न बनाया होता। कारागृह के तुम कभी के बाहर आ गए होते, लेकिन कारागृह को तुमने निवास समझा है। जंजीरें तुम्हारी, तुम्हारे सिवाय कोई नहीं पकड़े हुए है, लेकिन जंजीरों को तुम आभूषण माने हुए हो। इसलिए ऊपर का पक्षी बैठा प्रतीक्षा करता है और तुम नीचे बड़ा दुख भोग रहे हो, बड़ा प्रचार कर रहे हो दुख का। और ऊपर का पक्षी हंसता होगा। वह तुम्हारे ही भीतर बैठा हंस रहा है, तुम जानते हो भलीभांति। कभी-कभी तुम्हें उसकी झलक भी मिली है। क्योंकि वही तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है, तुम कितना ही उसे भूलो, कैसे भूल पाओगे? कभी न कभी उसकी याद आ ही जाएगी।

कभी न कभी तुम्हारी शांति के क्षण में उसका स्वर तुम्हें सुनाई पड़ जाएगा। कभी न कभी खाली बैठे वह तुम्हें भर देगा।
लेकिन तुम उससे बच रहे हो। कर्ता होने में तुम्हें इतना मजा आ रहा है
कि तुम साक्षी होने से बच रहे हो। मजे के कारण तुम काफी दुख उठा रहे हो, दुखों का प्रचार भी कर रहे हो। लेकिन शायद दुख अभी उस वाष्पीकरण के बिंदु तक नहीं पहुंचे हैं, उस जगह दुख नहीं आ गए हैं, जहां तुम्हारी गर्दन बिल्कुल घुट जाए और तुम सिर उठाकर ऊपर देखो।
एक बार भी तुम सिर उठाकर ऊपर देख लो, तो तुम हैरान होओगे कि अब तक तुमने जन्मों-जन्मों में जो भोगा, वह एक लंबे दुखद स्वप्न से ज्यादा नहीं था। तुम्हारा वास्तविक स्वरूप सदा उसके बाहर रहा है।
इसलिए हिंदू कहते हैं कि तुम नित्य, सच्चिदानंद ब्रह्म हो। तुमने कभी कोई पाप नहीं किया, तुमसे कभी कोई बुराई नहीं हुई। हो नहीं सकती, क्योंकि करना तुम्हारा स्वभाव नहीं है।
जब पहली बार पश्चिम में उपनिषदों का अनुवाद हुआ, तो पश्चिम के विचारक राजी न हो सके। और पश्चिम के विचारकों को लगा कि ये कैसे धर्म-शास्त्र हैं! क्योंकि पश्चिम तो एक ही धर्म को जानता था, ईसाइयत को। और ईसाइयत का सारा आधार अपराध और पाप के भाव पर है, कि तुम पापी हो, पुण्य की चेष्टा करो; कि तुम भटक गए हो, मार्ग पर आओ; कि तुम निष्कासित किए गए हो परमात्मा के राज्य से, तो वापस लौटने के लिए परमात्मा को प्रसन्न करो; कि तुमने अपराध किया है, उसका पश्चात्ताप करो।
ईसाइयत का तो पूरा आधार ही पश्चात्ताप है, रिपेंटेन्स है। और ये उपनिषद कहते हैं कि तुमने कभी कोई पाप नहीं किया। किया ही नहीं, तुम करना भी चाहो, तो कर नहीं करते, क्योंकि कर्ता तुम्हारा स्वभाव नहीं है। तुम सिर्फ सपना देख सकते हो कि तुमने पाप किया या कर रहे हो, लेकिन कर नहीं सकते। तुम चाहो तो भी परमात्मा के राज्य से बाहर जाने का उपाय नहीं, क्योंकि उसके बाहर कुछ है ही नहीं। इस बगीचे के बाहर तुम्हें फेंका जा सकता है, लेकिन परमात्मा के बगीचे के बाहर तुम्हें नहीं फेंका जा सकता। क्योंकि जहां भी है, जो भी है, उसका ही बगीचा है।
ईसाइयों का इदन का बगीचा छोटा रहा होगा। हिंदुओं का इदन का बगीचा विराट है। वे कहते हैं, उसके बाहर कोई जगह नहीं, जहां तुम्हें भेज दें। परमात्मा तुम्हें भगाना भी चाहे, तो कहां भगाएगा? निकालना भी चाहे, तो कहां भेजेगा? वही है। तुम जहां भी रहोगे, उसी में रहोगे। और वह सब जगह एक ही मात्रा में है, कहीं कम और कहीं ज्यादा भी नहीं हो सकता।
क्योंकि अस्तित्व... इसे थोड़ा समझ लें। सब चीजों में मात्रा में भेद
हो सकते हैं, अस्तित्व की मात्रा में भेद नहीं होते। यह वृक्ष है, इसका रंग हरा है; दूसरा वृक्ष है, उसका रंग पीला है, रंग का भेद है। एक पक्षी है, छोटा है, एक पक्षी बड़ा है, वजन का भेद है। एक आदमी है, थोड़ी बुद्धि है, एक आदमी है, बड़ी बुद्धि है, बुद्धि का भेद है। लेकिन अस्तित्व है वृक्ष का, अस्तित्व है पक्षी का, अस्तित्व है पत्थर का, अस्तित्व है आदमी का, उसमें जरा भी भेद नहीं है। अस्तित्व कम-ज्यादा नहीं है, अस्तित्व छोटा-बड़ा नहीं है। अस्तित्व एकमात्र चीज है जो बराबर और सम है। पत्थर भी उतना ही अस्तित्ववान है, जितने तुम। उसके होने का ढंग अलग, तुम्हारे होने का ढंग अलग, लेकिन दोनों का होना बराबर है, होने में कोई भेद नहीं है। हम उस होने को ही ब्रह्म कहते हैं।
तो जब उपनिषद पहली दफा गए तो बड़ा मुश्किल हुआ पश्चिम के लोगों को समझना, कि यह कैसा धर्म है? यह तो बड़ा खतरनाक है! अगर लोग ऐसा समझ लें कि पाप उनसे न हुआ है, न हो सकता है, तो फिर पश्चात्ताप वे क्यों करेंगे? और बिना पश्चात्ताप के प्रभु के मंदिर में प्रवेश कैसे होगा? और अगर पापी यह समझ लें कि हम स्वयं ब्रह्म हैं, तो फिर पुरोहित की क्या जरूरत? फिर पुरोहित क्या समझाएगा? किसको सुधारेगा? किसको ठीक करेगा? चर्च खो जाएगा। इसलिए यह जानकर आपको हैरानी होगी कि हिंदू-धर्म अकेला धर्म है, जिसके पास कोई चर्च नहीं है, जिसके पास पुरोहितों का कोई संगठित समाज नहीं है, जिसके मंदिर में पादरी जैसा कोई व्यक्ति नहीं है और जिसका धर्म निजी और

व्यक्तिगत सूझ-बूझ से चलता है, किसी व्यवस्था से नहीं। कोई व्यवस्थापक नहीं है ऊपर। धर्म निजी, अंतर्भूत, स्वयं की प्रतीति से संचालित होता है। हिंदू-धर्म बहती हुई नदियों की भांति है। ईसाइयत पटरियों पर चलती हुई रेलगाड़ियों की भांति है, सब आयोजित है, सब व्यवस्थित है। हिंदू-धर्म एक अराजकता है, एक अनार्की।
और धर्म अराजक ही हो सकता है। क्योंकि धर्म कोई राज्य नहीं है। धर्म परम स्वतंत्रता है। तो परम स्वतंत्रता तो अराजकता के माध्यम से ही उपलब्ध होगी। और यह सबसे बड़ा अराजक सूत्र है कि तुमने न कभी कुछ किया है, न तुम चाहो तो भी कुछ कर सकते हो, न तुम कभी कुछ कर सकोगे! तुम्हारा होना परम शुद्धता है। तुम्हें शुद्ध नहीं होना है, क्योंकि तुम अशुद्ध हुए नहीं। तुम्हें सिर्फ यह पहचान, यह प्रत्यभिज्ञा, यह रिकग्नीशन लाना है कि मैं शुद्ध हूं।
इसलिए हिंदुस्तान में हम ब्रह्म को खोज नहीं रहे हैं, सिर्फ ब्रह्म
को पुनः स्मरण कर रहे हैं। संत इसलिए अपने साधना के सूत्र को स्मृति कहते हैं। कबीर सुरति कहते हैं, वह स्मृति का ही बिगड़ा हुआ नाम है। बस, एक याद आनी है। जैसे कोई सम्राट का पुत्र हो और भीख मांग रहा हो और उसे याद आ जाए कि यह मैं क्या कर रहा हूं, मैं सम्राट का पुत्र हूं, बात खतम हो गई।
इस याद के साथ ही उसकी चेतना का गुण-धर्म बदल जाएगा।
जिस दिन तुम्हारा दुख काफी हो जाए और जिस दिन तुम अपने दुखों में रस लेना बंद कर दो... । क्योंकि जब तक तुम्हें रस आता हो, तब तक रोकने वाला मैं भी कौन हूं? और जब तक तुम्हें रस आता हो, रस लेना ही चाहिए। और जल्दी से कुछ भी न होगा, फल पकेंगे, तो ही गिरेंगे। और कच्चे फल तोड़ना उचित भी नहीं है। अगर तुम्हें अभी भी दुखों में रस आ रहा हो, तो वही तुम्हारी नियति है, खूब रस लेना। और जल्दी मत करना, किसी की सुनकर बीच रास्ते से मत मुड़ आना, नहीं तो वह रास्ता फिर पूरा करना पड़ेगा। उससे बचने का कोई उपाय नहीं है।
इस जगत में कोई भी विकास, कोई भी ग्रोथ उधार नहीं हो सकती। अगर तुम्हें अभी दुख में रस आ रहा है, तो तुम ठीक से रस लेना। ताकि पूरा रस ले लो और दुख अपनी परिपूर्णता पर पहुंच जाएं, उनकी निष्पत्ति आ जाए। अगर जहर ही पीना है, तो आकंठ पी लेना। ताकि तुम उसमें डूबो, तो उबर सको।
तुम्हारी तकलीफ क्या है कि न तुम अमृत की तरफ जाते, न तुम जहर को पूरी तरह पीते, इसलिए तुम उलझ गए हो, तुम बीच में अटक गए हो। जहर तुम पीना चाहते हो, उसमें रस तुम्हें है। लेकिन उससे जो दुख आता है, वह भी तुम नहीं झेलना चाहते। तुम एक असंभव की कोशिश कर रहे हो कि जहर तो पीऊं और आनंद अमृत जैसा आए। यह नहीं होगा। यह नहीं होगा, क्योंकि यह वस्तुओं का स्वभाव नहीं है। अमृत पीओगे तो आनंद आएगा, जहर पीओगे तो दुख आएगा। और जहर में रस है, तो पूरी तरह पीओ। ताकि पूरा दुख हो जाए, तुम दुख के द्वारा पक जाओ।
व्यथा पकाती है। और दुख तुम्हें तैयार करता है आत्यंतिक छलांग के लिए। एक न एक दिन तुम लौटकर पीछे देखोगे और उस दूसरे पक्षी को बैठा हुआ पाओगे।
और ध्यान रहे, दूसरे पक्षी के संबंध में सुनी हुई बातों से कुछ भी न होगा, तुम्हें स्वयं ही देखना पड़ेगा। ये उपनिषद कितना ही कहें, उपनिषदों के द्वारा जो कहा गया है, वह ऐसा ही है जैसे किसी ने हिमालय को चित्रों में देखा हो। हिमालय के उत्तुंग शिखरों पर छाई हुई सफेद बर्फ देखी हो। लेकिन उससे शीतलता नहीं मिलेगी। जो हिमालय के उस उत्तुंग शिखर पर गया है, उसने जो जाना है, वह तुम न जानोगे। कागज पर खींची हुई लकीरें हिमालय कैसे हो सकती हैं? उसको छाती से लगाकर तुम बैठ जाओ और यह मान लो कि तुम पहुंच गए हिमालय और पा लिया तुमने वह शांति और सुख का साम्राज्य, तो तुम्हारी यात्रा ही समाप्त हो गई। तुम उठोगे और चलोगे भी नहीं।
मैंने सुना है, ऐसा हुआ एक बार। दुर्भाग्य से काशी का एक गधा पढ़-लिख गया। दुर्भाग्य इसलिए कि एक तो वैसे ही गधा और फिर पढ़ा-लिखा। वह जैसे कोई नीम के झाड़ पर करेले को चढ़ा दे। वैसे ही कडुवा फिर नीम का सत्संग। काशी का गधा था, चारों तरफ पांडित्य की हवा थी, जल्दी ही पंडित हो गया। शास्त्र उसे कंठस्थ हो गए।

गधों की स्मृति अक्सर अच्छी होती है। बुद्धि जितनी कम होती है, स्मृति उसको पूरा करती है। बहुत बुद्धिमान लोग अक्सर भुलक्कड़ हो जाते हैं। बुद्धू बुद्धि पर तो टिक नहीं सकते, तो उन्हें याददाश्त से ही अपने जीवन को चलाना पड़ता है।
तो इस गधे की याददाश्त बड़ी अच्छी थी। जो भी पढ़ता, बिल्कुल कंठस्थ हो जाता। पंडितों के आस-पास जहां चर्चाएं चलतीं, सत्संग होते, वह भी खड़ा सुनता था। अक्सर उसे सुनाई पड़ता था, काशी की हवा, वहां भंग और भंग का पीना और भंग का आनंद और भंग का घुटना और जय भवानी, वह सब सुनता था। भंग के संबंध में उसने इतनी बातें सुनीं और काशी की सड़कों पर चलते हुए भंगेड़ियों को ऐसे आनंद से डोलते देखा कि उसके मन में भी वासना जगी कि यह भंग तो ब्रह्म का द्वार है और इसके बिना कोई प्रवेश हो नहीं सकता, इस भंग को खोजूं। शास्त्रों में बड़ी महिमा पढ़ी, महिमा कंठस्थ भी हो गई।
फिर एक दिन एक कबाड़ी की दुकान पर उसे एनसायक्लोपीडिया ब्रिटानिका दिखाई पड़ गया। तो उसमें उसने उलटकर देखा तो भंग के पौधे की तस्वीर बनी थी।
तो उसने तस्वीर को बिल्कुल आंखों में बसा लिया।
अब उसके पास पूरी साधना के सूत्र थे। भंग की पूरी महिमा उसे पता थी। भंगेड़ियों के कृत्य भी उसने देखे थे, उनका आनंद भी देखा था, उनकी आंखों की मस्ती, उसकी भी उसे खबर थी। भंगेड़ियों के सत्संग में खड़े होकर उनकी चर्चा भी सुनी थी। किसी अलौकिक लोक की वे बातें कर रहे थे! किसी अज्ञात का हल्का स्पर्श उसे इनकी चर्चाओं में हुआ था। शब्दों से उसे खबर मिल गई थी। और अब उसके पास चित्र भी था। अब वह जल्दी ही तलाश कर लेगा।
गंगा के किनारे चरते उसने एक दिन देखा कि एक पौधा ठीक वैसा, जैसा ब्रिटानिका में चित्र बना था, वैसा ही है। लेकिन पक्का कैसा हो कि वह भंग ही है, मिलता-जुलता कोई पौधा हो सकता है। उचित यही है कि उस पौधे से ही पूछ लिया जाए।
वह पौधा साधारण घास-पात था। अक्सर उग आता है, तो लोग बगीचे से उसे उखाड़कर फेंक देते हैं, क्योंकि उसकी कोई उपयोगिता नहीं।
इस गधे ने जाकर पूछा कि क्या मेरे भाई, तुम भंग के पौधे हो? वही जिसकी महिमा शास्त्रों में है? और ब्रिटानिका में तुम्हारा चित्र देखा, हूबहू वही हो। जहां तक मेरी समझ जाती है और स्मृति, तुम ही हो वह, जिसकी मैं तलाश में हूं।
वह पौधा साधारण घास-पात का था। कभी किसी ने इतनी महिमा उसे न दी थी कि कहे कि जय भंग-भवानी या ऐसा धार्मिक पद और ऐसी ऊंचाई की प्रतिष्ठा कभी किसी ने न दी थी। माना कि यह गधा है, फिर भी गधे भी प्रशंसा करें तो अहंकार को अच्छी लगती है। अहंकार यह नहीं देखता कि कौन कर रहा है, अन्यथा दुनिया में खुशामद बंद हो जाए।
पौधा थोड़ा तो सकुचाया कि न कर दूं, लेकिन यह मौका दुबारा जीवन में आएगा, इसकी आशा नहीं है। यह सम्मान का क्षण खोने जैसा नहीं है। तो उस पौधे ने कहा कि हां, मैं ही हूं वह, जिसकी तुम तलाश कर रहे हो। झटपट गधे ने जो भी सीखा था भंगेड़ियों से, जो भी क्रियाकलाप, कर्म-कांड करना था, वह किया। पौधे को चर गया।
चरकर उसने देखा, लेकिन कोई मस्ती आती नहीं मालूम पड़ रही। शायद अभ्यास
न होने से ऐसा हो। तो पैर डांवाडोल किए, झूला, भंगेड़ियों को देखा था, वैसा चलने भी लगा, अनर्गल बकने भी लगा। लेकिन भीतर उसे शक तो बना ही हुआ है। यह सब हो रहा है ठीक, लेकिन यह हो रहा है ऊपर-ऊपर। या तो ब्रिटानिका में कहीं कोई भूल हो गई, या बाकी भंगेड़ी भी ऐसा ही कर रहे हैं और या यह पौधा धोखा दे गया। समझाने की सब तरफ कोशिश करता है कि ठीक ही हो रहा है, लेकिन भीतर तो कोई देख ही रहा है कि यह सब ठीक हो नहीं रहा, यह सब मैं कर रहा हूं, यह मैं करता हूं।
शास्त्र से तुम ब्रह्मज्ञान सुन लो, उपनिषद तुम्हें बता दें ऊपर के पक्षी की बात, तुम्हें कंठस्थ भी हो जाए, तुम ऐसे ही जीने भी लगो, ऐसे ही चलने भी लगो, जैसा संन्यासी को उठना-बैठना, चलना चाहिए--बाकी तुम्हें भीतर लगता ही रहेगा कि कहीं कुछ गड़बड़ है।

स्वानुभव के बिना, स्वयं जाने बिना, कोई और जानना किसी भी अर्थ का नहीं है। उपनिषद की कथा समझ में आने से कुछ भी समझ में न आएगा। जब तुम्हारे भीतर की कथा खुलेगी, और तुम्हारे जीवन के वृक्ष पर तुम दूसरे पक्षी को बैठा देख पाओगे, तब तुम्हें उपनिषद भी समझ में आएगा। उसके पहले उपनिषद भी समझ में नहीं आ सकता।
तो मेरी तकलीफ तुम्हें ख्याल में ले लेनी चाहिए। यह रूपक मैंने तुम्हें समझाया, यह भलीभांति जानते कि तुम इसे कैसे समझोगे! भलीभांति जानते हुए कि मेरे शब्दों को अगर तुमने समझ लिया कि समझ गए, तो नुकसान हुआ। लेकिन फिर भी यह रूपक समझाया कि यह भी तुम्हारे ख्याल में आ जाए कि ऐसी संभावना है। अभी तुम इसे मान मत लेना कि तुम्हारे पीछे एक साक्षी बैठा ही हुआ है। कौन जाने उपनिषद गलत कहते हों, ब्रिटानिका में गलत तस्वीर छपी हो, पौधा धोखा दे रहा हो, कोई नहीं जानता। तुम जल्दी मत कर लेना, मानने की जल्दी करना ही मत। क्योंकि जो जल्दी-जल्दी मान लेता है, वह जानने से वंचित रह जाता है। सिर्फ एक संभावना।
मेरी सारी कोशिश इतनी ही है कि तुम्हारे जीवन में एक संभावना की प्रतीति हो जाए। इतना भर हो कि तुम जो हो, उतना ही तुम्हारा पूरा होना नहीं, कुछ बाकी है। इतना ही कि जहां तुम खड़े हो, वहां से थोड़ा आगे जाया जा सकता है, यात्रा समाप्त नहीं हो गई है। इतना ही कि तुमने जो पाया है, वही पाने को नहीं था, और भी कुछ पाने को है। बहुत धुंधला-धुंधला ख्याल हो, कोई हर्जा नहीं, धुंधला ही होगा, ख्याल ही होगा।
इस ख्याल के पैदा करने के लिए तो तुम्हें समझा रहा हूं। उस ख्याल के पैदा होने पर दो रास्ते निकलते हैं। एक कि तुम उस ख्याल को ही कंठस्थ करते चले जाओ तो बिना भंग पीए तुम्हारे पैर थोड़े दिनों में डगमगाने लगेंगे, बिना भंग पीए थोड़े दिन में तुम मस्ती में आ जाओगे। वह मस्ती झूठी होगी, वह डगमगाहट झूठी होगी, तब तुम भटक गए।
दूसरा एक उपाय है कि वह जो ख्याल तुम्हारे मन में पैदा हो जाए कि कुछ
और संभव है, मैं चुक नहीं गया हूं, अभी और भी अस्तित्व मेरा बाकी है जो खुल सकता है; यह किताब पूरी नहीं हो गई, इसमें अभी कुछ बंधे हुए अध्याय शेष रह गए हैं; यह घर मैंने पूरा नहीं छान लिया, अभी कुछ तलघरे बाकी हैं, जिनमें खजाना हो सकता है--ऐसा आभास! लेकिन यह आभास तुम्हारा बौद्धिक ज्ञान न बने, बल्कि तुम्हारे जीवन की साधना बन जाए। इसे तुम मानकर न बैठ जाओ, बुद्धि में प्रत्यय न बना लो, बल्कि ध्यान और समाधि की दिशा में तुम कुछ करना शुरू कर दो।
वह जो दूसरा पक्षी है, उसे देखने के लिए कुछ बातें सूत्र की तरह ख्याल
ले लेनी चाहिए। पहला, तुम अभी पहले पक्षी हो, जो नीचे बैठा है। इस पक्षी से ठीक से परिचित हो जाओ। इसका दुख पूरा भोगो, इसकी जलन, इसका दंश पूरा अनुभव करो। इसके जो कांटे सब तरफ से चुभ रहे हैं, उन्हें चुभ जाने दो, ताकि उनकी पूरी पीड़ा तुम्हारे हृदय को घेर ले। इसमें तुम झूठे, मादकता के, भुलावे के उपाय मत करो।
तुम कई तरकीबें निकालते हो। तुम कहते हो, पिछले जन्मों के कर्मों के कारण जरा दुख भोग रहा हूं। इस जन्म के कर्मों के कारण नहीं, पिछले जन्मों के कर्मों के कारण।
इससे तुम्हें क्या आश्वासन मिलता होगा? एक आश्वासन मिलता है कि पिछले जन्मों के कर्मों के संबंध में अब कुछ किया नहीं जा सकता। जो हो गया, सो हो गया, भोगना पड़ेगा।
अगर मैं कहूं, इस जन्म के कर्मों के कारण, तो थोड़ी निकट है बात, कुछ किया जा सकता है। और अगर मैं कहूं कि इसी क्षण कर्ता होने के कारण, तब तुम बहुत मुश्किल में पड़ जाओगे। क्योंकि कर्मों के कारण भी दूर की बात हुई। कर्म का अर्थ, जो हो चुका।
तुम कर्मों के कारण दुख नहीं भोग रहे हो, तुम कर्ता होने के कारण दुख भोग रहे हो। कर्ता तुम पिछले जन्मों में थे, उसका भी भोग रहे हो; कर्ता तुम अभी भी हो, उसका भी भोग रहे हो। लेकिन भोग का कारण तुमने क्या किया, वह नहीं है, तुम करने के साथ एक हो जाते हो, वह है। इसे तुम इसी क्षण छोड़ सकते हो।

तो धीरे-धीरे कर्ता होना कम करो। बजाय उस दूसरे की खोज के, तुम जहां हो, वहां थोड़े रूपांतरण करो, कर्ता होना कम करो। और देखने की प्रक्रिया पर ज्यादा जोर दो, जहां भी तुम्हें मौका मिले। ये दो उपाय हैं--या तो कर्ता हो जाओ या द्रष्टा। तुम कोशिश करो द्रष्टा होने की।
यहां मैं बोल रहा हूं, तुम सुन रहे हो। अगर तुम सुन ही रहे हो, तो तुम कर्ता हो गए, क्योंकि सुनना तुम्हारी क्रिया हो गई। अगर तुम द्रष्टा होने की कोशिश करोगे, तो यहां फिर मैं बोल रहा हूं, तुम सुन रहे हो और तुम देख भी रहे हो। अगर मेरा द्रष्टा भी जागा हुआ है और तुम्हारा द्रष्टा भी जागा हुआ है, तो जहां दो व्यक्ति हैं, वहां चार हो गए। एक बोलने वाला, एक देखने वाला, एक सुनने वाला और एक देखने वाला। सुनो भी और देखो भी कि तुम सुन रहे हो। यह इसी क्षण तुम कर सकते हो। इसके करने के लिए कुछ उपाय-आयोजन नहीं है। तुम सुन रहे हो। सुनने की घटना शरीर और मन में घट रही है, तुम इस सुनने की घटना को भी पीछे खड़े देख रहे हो कि यह सुनना हो रहा है। जरा-सी भी झलक तुम्हें मिलेगी, तत्क्षण तुम पाओगे कि उसी क्षण में दुख खो जाता है, अशांति खो जाती है, तनाव खो जाता है।
तो जहां-जहां द्रष्टा और कर्ता का मौका हो, वहां-वहां तुम द्रष्टा की तरफ ढलो, झुको। कर्ता की पुरानी पकड़ है लंबी, संस्कार गहरे हैं, जरा ही भूल हो गई कि कर्ता तुम्हें खींच लेगा। लेकिन कोई हर्जा नहीं। कर्ता के संस्कार कितने ही गहरे हों, वह झूठ है। झूठ के संस्कार कितने ही गहरे हों, तो भी उनका कोई बड़ा वजन और कोई बड़ा मूल्य नहीं है। साक्षी तुम्हें कितना ही भूल गया हो, वह स्वभाव है; कितनी ही विस्मृति हो गई हो, उसे पाना कठिन नहीं है, उसे पुनः जगाया जा सकता है।
भोजन करते, रास्ते पर चलते, स्नान करते, करने पर भाव कम, देखने पर भाव ज्यादा। अपने बाथरूम में खड़े हो, स्नान कर रहे हो शावर के नीचे, स्नान भी करो और देखो भी कि शरीर स्नान कर रहा है। भोजन कर रहे हो, करो भी और देखो भी कि शरीर भोजन कर रहा है।
जल्दी ही दूसरा पक्षी फड़फड़ाता हुआ तुम्हें मालूम पड़ने लगेगा। दूसरा पक्षी जल्दी ही पर फड़फड़ाएगा, जल्दी ही तुम सचेत हो जाओगे कि कोई और भी वृक्ष पर मौजूद है, तुम कर्ता की तरह अकेले नहीं हो। और जैसे-जैसे दूसरे की प्रतीति सघन होगी, पहले की प्रतीति विरल होती जाएगी। जैसे-जैसे दूसरा दिखाई पड़ेगा, पहला खोता जाएगा।
और कथा में जो नहीं कहा है, वह मैं तुमसे कहता हूं, जिस दिन तुम्हारी प्रतीति पूरी हो जाएगी साक्षी की, उस दिन दूसरा खो जाएगा, तुम वृक्ष पर पाओगे कि एक ही पक्षी है।
अज्ञानी भी पाता है कि एक ही पक्षी है, कर्ता। दूसरा उसे दिखाई नहीं पड़ता। ज्ञानी भी पाता है कि एक ही पक्षी है, साक्षी। दूसरा उसे दिखाई नहीं पड़ता।
यह उपनिषद ने दो पक्षी कहे हैं, अज्ञानी और ज्ञानी दोनों की समझ को एक साथ समाहित करने के लिए। दो पक्षी वहां हैं नहीं। अज्ञानी के लिए भी एक है, वह कर्ता है। ज्ञानी के लिए भी एक है, साक्षी। चूंकि ज्ञानी अज्ञानियों से बोल रहा है उपनिषद में, इसलिए दो पक्षियों की बात है। ज्ञानी अपने अनुभव को भी रख रहा है और अज्ञानी के अनुभव को भी रख रहा है। क्योंकि तुम्हारे अनुभव को भी स्वीकार करना पड़े, तभी तुम यात्रा करोगे। एक घड़ी आएगी, जब तुम्हें खुद ही दिखाई पड़ जाएगा कि पक्षी एक है। और जिस दिन एक ही पक्षी रह जाता है, उस दिन अद्वैत का अनुभव हुआ। उस एक का नाम ही अद्वैत है।

प्रश्नः ओशो, आत्मज्ञान की यात्रा में बुद्धि जब इतना बड़ा अवरोध खड़ा करती है, तो क्या बुद्धि को प्रशिक्षित करना और निखारना व्यर्थ ही नहीं है? क्या ऐसा संभव नहीं है कि बच्चों की सरलता अबाधित रखने के लिए उनको बुद्धि का प्रशिक्षण दिए बिना, सीधा ही ध्यान में उतारा जाए?

विचारणीय है, महत्वपूर्ण भी। और प्रश्न सहज ही उठता है कि अगर बुद्धि इतना बड़ा अवरोध है, तो बुद्धि को प्रशिक्षित ही क्यों किया जाए? बच्चों को

हम उनकी सरलता और भोलेपन में ही ध्यान क्यों न दे दें, बजाय विश्वविद्यालय भेजने के। उनका तर्क, उनका विचार नियोजित करने की बजाय, शिक्षित करने की बजाय, हम सीधा ही उन्हें ध्यान की सरलता और निर्दोषता में क्यों न डुबा दें? बुद्धि अगर बाधा है, तो बाधा को बढ़ाएं क्यों? बढ़ाने के पहले ही नष्ट क्यों न कर दें?
बुद्धि अगर सिर्फ बाधा ही होती, तो यह बात ठीक थी। बाधा सीढ़ी भी बन सकती है। रास्ते पर आप गए हैं और एक बड़ा पत्थर पड़ा है; वह बाधा है, अगर आप लौट आएं सोचकर कि रास्ता बंद है। अगर आप पत्थर पर चढ़ जाएं, तो एक नए रास्ते का उदगम होता है, जो नीचे रास्ते के तल से बिल्कुल भिन्न है। एक नए आयाम का उदगम होता है। जो नासमझ है, वह पत्थर को बाधा मानकर लौट आएगा। जो समझदार है, वह पत्थर को सीढ़ी बना लेगा।
और समझदारी, विजडम, जिसे हम बुद्धि कहते हैं, उससे बड़ी भिन्न बात है। बुद्धि के प्रशिक्षण के बिना बच्चे जंगली जानवरों की भांति रह जाएंगे, ज्ञानी नहीं हो जाएंगे। बुद्ध और महावीर और कृष्ण और क्राइस्ट नहीं हो जाएंगे, जंगली जानवरों की भांति रह जाएंगे। बाधा तो नहीं है उनके पास, लेकिन चढ़ने का कोई साधन भी नहीं है। बाधक पत्थर भी नहीं है, साधक सीढ़ी भी नहीं है।
इसलिए हर बच्चे को बौद्धिक प्रशिक्षण से गुजरना जरूरी है। और जितना सुघड़ यह प्रशिक्षण हो, जितना तीक्ष्ण यह प्रशिक्षण हो, यह बुद्धि का पत्थर जितना मजबूत और जितना विराट और बड़ा हो, उतना अच्छा है। क्योंकि वह उतनी ही बड़ी ऊंचाई पर खड़े होने का उपाय है। इस पत्थर के नीचे दबकर जो मर जाए, वह पंडित; इस पत्थर के ऊपर जो खड़ा हो जाए, वह ज्ञानी। इस पत्थर के पहले ही डर के कारण पत्थर के पास ही न आए, वह अज्ञानी।
अज्ञानी की बुद्धि प्रशिक्षित नहीं हुई। पंडित की बुद्धि प्रशिक्षित हुई, लेकिन वह बुद्धि के पार न हो सका। ज्ञानी की बुद्धि प्रशिक्षित भी हुई, वह बुद्धि के पार भी गया।
बचने से कुछ भी न होगा। पार जाना है। और जिस अनुभव से भी हम गुजरते हैं, वही अनुभव हमें सघन कर जाता है, सतेज कर जाता है।
बुद्ध या कृष्ण असाधारण रूप से बौद्धिक पुरुष हैं। मोहम्मद पढ़े-लिखे नहीं हैं, लेकिन बौद्धिक रूप से असाधारण पुरुष हैं। थोड़ा सोचो, मोहम्मद जैसे गैर पढ़े-लिखे आदमी ने कुरान जगत को दी और कुरान ने करीब-करीब एक तिहाई मनुष्यता को आंदोलित किया और प्रभावित किया। और कुरान का वचन मुसलमान के लिए आज भी जीवन का सूत्र है। यह आदमी गैर पढ़ा-लिखा भले रहा हो, इसकी बुद्धि की तीक्ष्णता अनूठी है। और इसने जो नियम बनाए, वे आज भी कारगर हैं और लाखों-करोड़ों हृदय उनसे आंदोलित, संचालित होते हैं। और इसने जिस ढंग से कुरान को व्यवस्था दी, उस ढंग की व्यवस्था न तो बाइबिल में है, न उपनिषद में है, न गीता में है। कुरान एक अर्थ में सर्वांर्ंगीण है। वह सिर्फ धर्म नहीं है, वह समाजशास्त्र भी है। वह सिर्फ समाजशास्त्र नहीं है, राजनीति भी है। मोहम्मद ने जीवन को सब तरफ से पूरा का पूरा अनुशासित करने की कोशिश की। जीवन की क्षुद्रता से लेकर ब्रह्म की विराटता तक सबको कुरान में समा लिया।
इसलिए कुरान इस्लाम के लिए अकेला शास्त्र काफी है। इसलिए मुसलमान कहते हैं, एक ही अल्लाह है और उस एक अल्लाह का एक ही पैगंबर है। एक पैगंबर काफी है। यह आदमी रहा तो बहुत बुद्धिमान होगा। इसकी बुद्धि में तो कोई शक नहीं कर सकता। बेपढ़ा-लिखा था, लेकिन बेपढ़े-लिखे होने से बुद्धि के होने न होने का कोई संबंध नहीं है। क्योंकि पढ़े-लिखों को हम देखते हैं और बुद्धि नहीं पाते। पढ़े-लिखे से बुद्धिमत्ता का क्या संबंध है? बुद्धिमत्ता तो जीवन के अनुभव से सार को निचोड़ लेने का नाम है।
तो बच्चे की बुद्धि तो प्रशिक्षित करनी होगी, उसके तर्क पर धार रखनी होगी, उसका तर्क तलवार जैसा हो जाए। फिर तलवार से वह खुद को काटेगा, आत्महत्या करेगा, या किसी के जीवन को बचाएगा--यह बुद्धिमत्ता पर निर्भर है।

तर्क तो एक साधन है। उसका उपयोग हम जीवन को नष्ट करने में कर सकते हैं, विध्वंसक हो सकता है; सृजनात्मक कर सकते हैं, जीवन का निर्माण कर सकते हैं। पर एक बात निश्चित है कि अगर बच्चों को हम बुद्धि से वंचित रखें, तो वे बुद्धिमान नहीं हो जाएंगे। वे पशुओं की भांति भोले तो होंगे, लेकिन संतों की भांति ध्यानी नहीं होंगे।
बहुत बार ऐसा हुआ है कि कुछ बच्चों को जंगल के भेड़िए चुराकर ले गए। आज
से कोई चालीस साल पहले कलकत्ते में दो बच्चियां पाई गईं, कलकत्ते के पास के जंगलों में। अभी कोई दस साल पहले लखनऊ के पास जंगल में एक बच्चा पाया गया, जो भेड़ियों ने पाला। वह बच्चा तो काफी बड़ा हो गया था। चौदह साल के करीब उसकी उम्र हो गई थी। उस बच्चे को कोई प्रशिक्षण नहीं मिला, कोई स्कूल नहीं जाना, किसी आदमी का साथ नहीं जाना। छोटा बच्चा था, झूले से उठाकर भेड़िए ले गए। और वह उनके साथ बड़ा हो गया। वह दो पैर पर भी खड़ा नहीं हो सकता था, क्योंकि यह भी शिक्षा का हिस्सा है।
तुम यह मत सोचना कि दो पैर पर तुम खड़े हो अपने आप। यह तुम्हें सिखाया गया है। आदमी का शरीर तो बना था चारों हाथ-पैर पर चलने के लिए। कोई बच्चा दो पैर पर चलता हुआ पैदा नहीं होता, चार ही हाथ-पैर पर चलता है। दो पर चलना तो सीखता है।
अगर तुम वैज्ञानिकों से, शरीर-शास्त्रियों से पूछो, तो वे बड़ी अनूठी बात कहते हैं। वे कहते हैं, आदमी का शरीर जानवरों जैसा स्वस्थ कभी भी नहीं हो सकता। क्योंकि आदमी का शरीर बना था चार हाथ-पैर पर चलने के लिए, उसने सब गड़बड़ कर लिया, वह दो से चल रहा है। इसलिए पूरा आयोजन बिगड़ गया है।
जो कार पहाड़ चढ़ने के लिए बनाई नहीं गई थी, वह पहाड़ चढ़ रही है। सारा ग्रेविटेशन का नियम बिगड़ गया है। क्योंकि जब आप चार हाथ-पैर से चलते हैं जमीन पर, तो आप संतुलित होते हैं, चारों हाथ पर बराबर बोझ होता है और ग्रेविटेशन और आपके बीच एक समानांतर रेखा होती है। आपकी रीढ़ और जमीन की कशिश बराबर होती है, कोई अड़चन नहीं होती। जब आप दो पैरों पर खड़े हो जाते हैं, सब उपद्रव हो गया। खून को उलटा बहना पड़ता है सिर की तरफ। फेफड़ों को अनर्थक काम करना पड़ता है। पूरे वक्त कशिश से लड़ना पड़ता है। जमीन नीचे खींच रही हैं।
इसलिए अगर आदमी हृदय की दुर्बलता से मरता है, तो कुछ आश्चर्य नहीं है। कोई जानवर नहीं मरता हृदय की दुर्बलता से। हृदय की दुर्बलता जानवर में पैदा नहीं हो सकती, आदमी में होगी ही। जिनमें नहीं होती वह चमत्कार है, अन्यथा हृदय दुर्बल हो ही जाएगा। क्योंकि एक उलटा काम कर रहे हैं, पंपिग करनी पड़ रही है पूरे वक्त, जो कि जरूरी है। प्रकृति ने वैसा बनाया नहीं था। तो वह लड़का चल नहीं सकता था दो पैर से, वह चार से ही भागता था। और भागना
भी उसका आदमियों जैसा नहीं था, भेड़ियों जैसा था। खाता भी कच्चा मांस था, जैसे भेड़िए खाते हैं। बड़ा शक्तिशाली था, आठ-आठ आदमी उसे पकड़कर भी बांध नहीं पाते थे। और भेड़िया ही था वह बिल्कुल। लोंच दे, खा जाए, खूंख्वार! ध्यानी संत तो वहां पैदा नहीं हुआ, एक जंगली जानवर पैदा हुआ। और ऐसी
और घटनाएं पश्चिम में भी घटी हैं। बच्चे जंगल में पल गए हैं जानवरों के साथ, तो वे जानवरों जैसे पाए गए।
फिर इस बच्चे को सिखाने की कोशिश की गई छह महीने। हजारों तरह की मालिश
और विद्युत की सेंक, बामुश्किल उसको खड़ा किया जा सका दो पैर पर। मगर जरा ही आप चूके कि वह फिर अपने चारों पैरों पर आ जाएगा, क्योंकि वह बड़ा कष्टपूर्ण है। वह तो आपको पता नहीं कि चार का मजा क्या है, तो आप दो पर खड़े हैं और कष्ट झेल रहे हैं।
उसका नाम राम रख दिया था। उसको सिखा-सिखाकर परेशान हो गए, मरने के पहले बस वह एक शब्द सीख पाया था, राम। नाम बता देता था। डेढ़ साल के भीतर वह मर गया। और जो वैज्ञानिक उसका अध्ययन कर रहे थे, उनका कहना है कि वह मर गया शिक्षण के कारण। क्योंकि वह जंगली जानवर जैसा बच्चा है।
इससे यह भी पता चलता है कि बच्चों को स्कूल भेजकर हम उनके जीवन का कितना हिस्सा नहीं मार देते होंगे। उनकी प्रफुल्लता तो मारते हैं, उनका जंगलीपन तो मारते ही हैं, वही तो उपद्रव है स्कूल में। तीस बच्चों को

कक्षा में बिठा देते हैं एक शिक्षक के हाथ में, वे तीस जंगली जानवर। इनके हाथ में उन्हें सभ्य करने का काम पड़ा है। इसलिए शिक्षकों से ज्यादा उदास कोई व्यवसाय नहीं है। उनसे ज्यादा परेशान कोई आदमी नहीं है। तो उनका काम बड़ा मुश्किल का है।
लेकिन ये बच्चे शिक्षित करने ही होंगे, अन्यथा ये मनुष्य ही न हो पाएंगे। निर्दोष तो होंगे, लेकिन वह निर्दोषता अज्ञान की निर्दोषता होगी। न जानने से भी आदमी निर्दोष होता है। लेकिन जब जानकर कोई निर्दोष होता है, तब जीवन का फूल खिलता है।
बुद्धि का प्रशिक्षण जरूरी है, फिर बुद्धि का अतिक्रमण जरूरी है। और
जो तुम्हारे पास ही नहीं है, उसे तुम खोओगे क्या?
इसलिए मैं निरंतर कहता हूं, इसके पहले कि तुम्हें बुद्ध और महावीर जैसी निर्धनता जाननी हो, तो बुद्ध और महावीर जैसा धन तुम्हें इकट्ठा करना पड़ेगा। वह निर्धनता तुम नहीं जान सकते, जो बुद्ध जानते हैं। उस निर्धनता का मजा तो राजमहल से बाहर निकलने में ही हो सकता है।
अगर कृष्ण जैसी चेतना जाननी हो, तो कृष्ण जैसी बुद्धि भी तलाशनी पड़े। क्योंकि जो तुम्हारे पास है, उसे ही छोड़ने का तुम मजा ले सकते हो। अगर आइंस्टीन बुद्धि का त्याग करे, तो जिस शांति को आइंस्टीन अनुभव करेगा, उसे तुम कैसे कर सकोगे? वह शांति बड़ी अनूठी होगी। क्योंकि वह तूफान के बाद की शांति होगी। तुम्हारा तूफान कभी आया ही नहीं। जैसे बीमारी के बाद स्वास्थ्य का जो शुद्ध स्वाद आता है, ऐसे ही बुद्धि के बड़े ऊहापोह के बाद, जब बुद्धि को कोई छिटकाकर अलग फेंक देता है, तब जो स्वाद आता है!
त्याग परम आनंद है इस अर्थ में कि त्याग के पहले वह जो भोग है, वह परम दुख है। बुद्धि के दुख से गुजरो, ताकि प्रज्ञा का आनंद तुम्हें उपलब्ध हो सके। संसार की व्यथा से गुजरो, ताकि परमात्मा की समाधि तुम्हें उपलब्ध हो सके।
विपरीत से जाना ही होगा, वही मार्ग है।
आज इतना ही।

नहिं राम बिन ठांव
दसवां प्रवचन

माया मिली न राम

प्रश्नः ओशो, बच्चों की बुद्धि का प्रशिक्षण आपने अनिवार्य बताया। लेकिन क्या ध्यान का प्रशिक्षण भी युगपत देना चाहिए? बहुत से संन्यासी परिवार वाले हैं। उनको अपने बच्चों के प्रति कौन-सी दृष्टि रखनी चाहिए? जोर किस बात पर होना चाहिए, इस पर कृपया प्रकाश डालिए।

जीवन में जितना संतुलन हो, उतनी ही संभावना शुभ की बढ़ती जाती है। जितना असंतुलन हो, उतने ही दुख का उपाय हो जाता है। गहरे देखने पर असंतुलन ही दुख है, संतुलन सुख। और संतुलन सबसे बड़ी कला है, इसलिए हमने इस देश में संतुलन को संयम कहा है।
संयम का अर्थ हैः ठीक दो विरोधों के बीच में स्थित हो जाना, दो अतियों
के बीच में मध्य को खोज लेना। मन की आदत अति की तरफ जाने की है, एक्सट्रीम की तरफ जाने की है। मन हमेशा एक कोने से दूसरे कोने पर जाना चाहता है, बीच में नहीं रुकना चाहता।
अगर आप हिंसक हैं, तो मन आपसे पूरी हिंसा करवाएगा; और जब आप हिंसा से ऊबेंगे, तो आपको विपरीत दिशा में अति पर ले जाएगा। हिंसा की एक अति है, दूसरे को मिटाना। और हिंसा की दूसरी अति होगी, स्वयं को मिटाने में लग जाना। दूसरे को मारते थे, फिर खुद को मारने लगे, लेकिन बीच में न रुकेंगे। बुद्ध ने कहा है, भोगी जब भी कभी भोग से ऊब जाता है, तो तत्क्षण योगी हो जाता है। पहले अगर शरीर के सुखों के लिए पागल था, तो अब शरीर को दुख देने के लिए आतुर हो जाता है। पहले अगर चलता था, तो रास्तों पर फूल चाहता था, अब अपने हाथ से कांटे बिछा लेता है। पहले अगर स्वाद में रुचि थी, तो अब भोजन को जब तक बेस्वाद न कर ले, तब तक नहीं करता है। पहले अगर वस्तुओं से प्रेम था, तो अब नग्न खड़ा हो जाता है।
मन एक अति से दूसरी अति पर जाता है, जैसे घड़ी का पेंडुलम एक कोने से दूसरे कोने पर जाता है, बीच में नहीं रुकता। बीच में रुक जाए, तो घड़ी रुक जाए। एक कोने से दूसरे कोने पर जाने में ही घड़ी की गति है, घड़ी चलती है। और जब घड़ी का पेंडुलम बाएं तरफ जाता है, तब आपको दिखाई पड़ता है कि बाएं तरफ जा रहा है; लेकिन जो गहरा देख सकते हैं, उनको यह भी दिखाई पड़ता है कि बाएं तरफ जाने में घड़ी का पेंडुलम दाएं तरफ जाने की शक्ति इकट्ठी कर रहा है, मूमेंटम इकट्ठा हो रहा है। जब बाएं जा रहा है पेंडुलम तो दाएं तरफ जाने के लिए तैयार हो रहा है। और जितना बाएं जाएगा, उतनी ही छलांग फिर दाएं की तरफ भर सकेगा। जब दाएं जाएगा तब बाएं तरफ जाने की शक्ति इकट्ठी करेगा।
यह सूत्र बहुत समझ लेने जैसा है, क्योंकि जब भी तुम प्रेम की तरफ जाते हो, तुम घृणा की शक्ति इकट्ठी करते हो। जब तुम भोग की तरफ जाते हो, तब तुम योग की शक्ति इकट्ठी करते हो। और जब तुम्हारा मन चोरी की तरफ जाता है, तब दूसरे कोने पर तुम अचोर होने की तैयारी भी शुरू कर देते हो। जब तुम दान देते हो, तभी तुम शोषण के लिए भी तत्पर हो जाते हो। जो गहरे देखेगा, उसे दिखाई पड़ेगा कि मन चूंकि सदा विपरीत में डोलता है, एक अति से दूसरी अति, यह स्वाभाविक है।
और जब तक मन डोल रहा है, तब तक तुम दुख में रहोगे। तुम्हारे दुख बदल जाएंगे। भोगी का दुख है, त्यागी का भी दुख है। भोगी को नहीं दिखाई पड़ता कि त्यागी का दुख क्या है, क्योंकि भोगी को तो त्यागी में सुख ही सुख दिखाई पड़ता है। त्यागी को दिखाई पड़ता है कि भोगी के क्या सुख हो सकते हैं।
मेरे पास संन्यासी भी आते हैं, संसारी भी आते हैं। संसारी सदा लोलुप नजरों से देखता है संन्यासी की तरफ कि किस आनंद में जी रहा है! संन्यासियों को मैं जानता हूं, जो तीस, चालीस, पचास वर्ष से संन्यास में रहे हैं, जिन्होंने सब छोड़ दिया है। उनके दुख का तुम्हें पता नहीं, उनके मन में तुम्हारे प्रति ईर्ष्या है। वे सोचते हैं, संसारी बड़ा मजा ले रहे हैं, बड़ा भोग कर रहे हैं।

एक वृद्ध संन्यासी ने मुझे कहा--जिनकी उम्र कोई सत्तर वर्ष है--कि पचास साल पहले उन्होंने दीक्षा ली, सब छोड़कर संन्यासी हो गए। अब किसी से कह भी नहीं सकते कि पचास साल से एक ही बात मन में बनी रही है कि कहीं भूल तो नहीं कर दी, कहीं ऐसा तो नहीं है कि संसार को बिना जाने ही मैं छोड़ आया, और वहां सुख हो। और यहां कोई सुख मिला नहीं। निकले थे परमात्मा को खोजने, संसार तो छूट गया हाथ से, परमात्मा की कोई पग-ध्वनि सुनाई नहीं पड़ती है। इस संन्यासी का दुख तुम न समझ पाओगे। इसने किसी आशा में छोड़ा था, वह आशा पूरी नहीं हुई। इसने कोई सौदा किया था। जो हाथ में था, वह चला गया; और जो आने वाला था, वह अब तक आया नहीं। अब जीवन चुक रहा है, सत्तर वर्ष उम्र हुई। और अब ऐसा लगता है कि दोनों तरफ से गए। न संसार मिला, न संन्यास मिला। माया मिली न राम--वैसी गूंज इस संन्यासी के मन में गूंजना स्वाभाविक है। यह मन का स्वभाव है कि तुम जहां हो, वहां दुख देखता है; और तुम जहां नहीं हो, वहां सुख देखता है। झोपड़े में रहने वाले को दिखाई पड़ता है महलों में सुख है, लेकिन महलों में रहने वालों ने कहा है कि महल जब तक न छोड़ा तब तक उन्हें सुख न मिला।
बुद्ध और महावीर राजपुत्र हैं। वे महल छोड़ते हैं, त्यागते हैं। निश्चित ही उन्हें झोपड़े में कुछ दिखाई पड़ रहा होगा, जो झोपड़े में रहने वाले को नहीं दिखाई पड़ता है। विपरीत अति निमंत्रण देती है। और विपरीत अति पर जाने का अर्थ है कि मन डोलता रहेगा, मन की घड़ी चलती रहेगी।
बहुत लोगों के पिछले जीवन में झांकने के बाद एक अनूठा सूत्र मुझे समझ में आया और वह यह कि जो लोग पिछले जन्म में संन्यासी रहे हैं, वे इस जन्म में परम भोगी हो जाते हैं। और जो लोग पिछले जन्म में भ्रष्ट भोगी थे, इस जन्म में संन्यासी हो जाते हैं। तब बड़ी हैरानी मालूम पड़ती है। होना तो उलटा चाहिए तार्किक दृष्टि से। अगर पिछले जन्म में आप संन्यासी थे, तो उसीशृंखला में आपको और बड़ा संन्यासी इस जन्म में होना चाहिए। यह तो तर्क सीधा है, गणित है। लेकिन हालत उलटी है। जब भी मैं देखता हूं किसी महाभोगी को और उसके पिछले जन्म में झांकता हूं, तो लगता है, पिछले जन्म में वह त्यागी रह चुका है। उसका मन एक अति को छू चुका, अब इस जन्म में दूसरी अति को छू रहा है।
साधारणतः ऐसा होना चाहिए कि जो आदमी पिछले जन्म में पुरुष था, वह इस जन्म में भी पुरुष हो, जो स्त्री थी, वह स्त्री हो। लेकिन ऐसा होता नहीं। अक्सर ऐसा होता है कि पिछले जन्म में जो पुरुष था, वह इस जन्म में स्त्री हो जाता है। और इस जन्म में जो स्त्री है, वह पिछले जन्म में पुरुष थी। अगर आप पिछले जन्म में स्त्री थे, तो आपके मन में यह सुख की आशा बनी ही रही है कि सुख तो पुरुष भोग रहे हैं, स्त्रियां तो सिर्फ दुख भोग रही हैं। इसलिए आप पुरुष होने की आकांक्षा को अर्जित कर रहे हैं। लेकिन पुरुष भी गहरे में आपके प्रति ईर्ष्या से भरा है, कहे या न कहे। स्त्रियां कह देती हैं, ज्यादा साफ-सुथरा है उनका हिसाब, कि वे नहीं चाहतीं कि स्त्री हों, परमात्मा करे कि वे पुरुष हो जाएं। पुरुष ऐसा नहीं कह सकता, नहीं तो लोग हंसेंगे। क्योंकि यह पुरुषों का समाज है।
लेकिन पुरुष भी गहरे में स्त्री के प्रति ईर्ष्या से भरा है। न तो वैसा सौंदर्य है उसके पास, न वैसा सुघड़ शरीर है उसके पास, और न वैसे सुख को भोगने की क्षमता उसे मालूम पड़ती है, जैसा स्त्री के पास है। स्त्री कम असंतुष्ट होती है, पुरुष ज्यादा असंतुष्ट होता है। स्त्री को थोड़ा भी मिल जाए, तो राजी होती है; पुरुष को कितना भी मिल जाए, तो राजी नहीं होता। स्त्री की मांग बहुत बड़ी नहीं है, उसका छोटा-सा घर, उसका छोटा-सा आंगन उसका राज्य बन जाता है। पुरुष की मांग इतनी विराट है कि सिकंदर जैसा साम्राज्य भी हो, तो भी आंगन पूरा नहीं होता, छोटा रह जाता है। स्त्रियां कम पागल होती हैं, पुरुष ज्यादा पागल होते हैं। स्त्रियां कम आत्मघात करती हैं, पुरुष ज्यादा आत्मघात करते हैं। स्त्रियां ज्यादा स्वस्थ रहती हैं, पुरुष ज्यादा बीमार पड़ते हैं।
यह सिर्फ पुरुषों का ख्याल है कि पुरुष ज्यादा मजबूत हैं स्त्रियों से, सिर्फ ख्याल है। अगर आप चिकित्सकों से पूछें, तो वे कहेंगे, स्त्रियां

ज्यादा मजबूत हैं। पुरुष की मजबूती कम है, सिर्फ दिखाई पड़ती है। इसलिए दुनिया में विधवाएं ज्यादा दिखाई पड़ती हैं, विधुर कम। क्योंकि पुरुष पहले विदा हो जाते हैं। चार साल औसत उम्र ज्यादा है स्त्रियों की सारी पृथ्वी पर, पुरुषों से। अगर आप सत्तर साल जीएंगे, तो आपकी पत्नी की संभावना चौहत्तर साल जीने की है। वह कम बीमार पड़ेगी, ज्यादा स्वस्थ रहेगी। और उसके पास रेसिस्टेंस की, प्रतिरोध की बड़ी क्षमता है।
आप थोड़ा सोचें, एक पुरुष नौ महीने तक गर्भ को खींच सकता है? असंभव है।
वह उसके शरीर की क्षमता नहीं। वह स्त्री की ही क्षमता है, एक नए जीवन के बोझ को नौ महीने तक खींच लेना। और नौ महीने पर भी गर्भ समाप्त कहां होता है! सिर्फ बाहर आता है। फिर बाहर खींचना शुरू होता है।
पुरुष के मन में भी ईर्ष्या जगती है, कहीं गहरे अचेतन में वह स्त्री होना चाहता है। और इसलिए अक्सर जन्मों में योनि बदल जाती है। ऐसा ही जीवन के सभी पहलुओं पर है।
मन डांवाडोल रहे, तो ही जी सकता है; संतुलित हो जाए, मन खो जाता है।
जहां मन खोता है, वहीं समाधि है। अब मैं आपके प्रश्न को लूं।
बच्चों को निश्चित ही तर्क में प्रशिक्षित करना है, गणित में प्रशिक्षित करना है। उनका मस्तिष्क साफ-सुथरा हो, प्रतिभाशाली हो, सक्षम हो। उनकी प्रतिभा बढ़े। बच्चों को पशुओं की भांति नहीं छोड़ देना है। पशुओं के जीवन में कुछ है, लेकिन बहुत कुछ नहीं है। पशुओं के जीवन में
एक भोलापन है, लेकिन भोलापन मूढ़ता का है, भोलापन संतत्व का नहीं। एक सरलता है, लेकिन सरलता मजबूरी की है, उपलब्धि की नहीं। पशु इसलिए सरल हैं कि चालाक नहीं हो सकते। संत इसलिए सरल नहीं है कि चालाक नहीं हो सकता है, चालाक हो सकता है, नहीं होता है। वह उसका अपना निर्णय है। और जो भी आपका अपना निर्णय है, वही आपके जीवन को आत्मा देता है। पशुओं के पास आत्मा है, लेकिन उस अर्थों में नहीं, जिस अर्थ में मनुष्य के पास आत्मा है। क्योंकि मनुष्य अपना निर्णय लेता है।
अगर आप चोर हो ही न सकें, तो आपके अचौर्य का क्या मूल्य है? अगर आप क्रोध कर ही न सकें, तो आपकी करुणा का क्या अर्थ है? विपरीत आप कर सकते हैं, फिर भी नहीं करते हैं। यह जो आपका अपना न करने का निर्णय है, यही आपकी आत्मा को निखारता है, धार देता है, तेजस्विता लाता है।
तो पशुओं जैसा भोलापन नहीं चाहिए, संतों जैसा भोलापन चाहिए।
बच्चे को प्रशिक्षित करना होगा, ताकि मनुष्य की सारी चालाकी को वह जाने। मनुष्य की सारी उपद्रव की जो दुनिया है, उससे परिचित हो, उस अनुभव से गुजरे। लेकिन अगर इतना ही किया गया, तो एक असंतुलित व्यक्तित्व पैदा होगा। तो बुद्धि तो प्रखर होगी, हृदय बिल्कुल सूना होगा। गणित तो साफ होगा, प्रेम बिल्कुल धुंधला होगा। मिटा तो सकेगा, लेकिन बना न सकेगा। जीत तो सकेगा, लेकिन हार न सकेगा।
और जो आदमी सिर्फ जीत सकता है, वह आदमी पूरा आदमी नहीं है। क्योंकि जीवन के कुछ आयाम हैं, जो हारे हुए को मिलते हैं। संसार तो, जो जीतता है, उसको मिलता है; परमात्मा उसको मिलता है, जो हारना भी जानता है। धन तो उसे मिलता है, जो जीतता है; प्रेम उसे मिलता है, जो हारता है। हार की भी अपनी विजय है।
लेकिन गणित और तर्क तो सिर्फ जीतना सिखाते हैं, हारना ध्यान सिखाता है। गणित और तर्क तो संसार में कैसे हम परिग्रह को बढ़ा लें, कैसे संपदा ज्यादा हो, साम्राज्य बड़ा हो, इसकी कला देते हैं। ध्यान, कैसे हमारी आत्मा का राज्य बड़ा हो, कैसे चेतना विस्तीर्ण हो जाए, सारे आकाश को छा ले, उसकी कला है।
अगर अकेला गणित और तर्क और बुद्धि ही बच्चों को सिखाई गई, तो वे बच्चे पंगु होंगे, पैरालाइज्ड होंगे, लकवा खाए हुए होंगे। जैसे उनका एक अंग तो चलता हो और दूसरा अंग न चलता हो। उनके जीवन में पूर्णता न होगी, वे समग्र न होंगे, उनका एक पैर सदा बंधा रहेगा, उनकी जिंदगी एक लंगड़ी दौड़ होगी। चूंकि और लोग भी लंगड़े हैं, इसलिए पता नहीं चलता। जैसे बच्चों का एक खेल होता है, लंगड़ी दौड़, जिसमें एक पैर दूसरे के एक पैर से बांध दिया जाता है, तो एक ही

पैर से भागना पड़ता है। करीब-करीब हमारी जीवन की व्यवस्था ऐसी लंगड़ी दौड़ ही है, जिसमें हम एक पैर से भाग रहे हैं। फिर हार जाते हैं, टूट जाते हैं, मिट जाते हैं, तो आश्चर्य नहीं है।
ध्यान दूसरा चरण है। तो जैसे ही हम बच्चे को बुद्धि की शिक्षा दें, वैसे ही ध्यान की भी शिक्षा दें। जैसे-जैसे बच्चा विज्ञान को समझे, वैसे- वैसे धर्म को भी समझे। और जैसे-जैसे उसका मस्तिष्क निखरे, वैसे-वैसे उसके हृदय में भी प्रकाश आए। वह जाने ही नहीं, हो भी। उसके पास चीजें ही न बढ़ें, वह भी बढ़े। उसके बाहर का ही फैलाव न हो, भीतर की भी गहराई हो। जैसे वृक्ष उठते हैं आकाश की तरफ, लेकिन जड़ें चली जाती हैं भीतर की तरफ। और जितनी जड़ें गहरी जाती हों, उतना ही वृक्ष ऊपर आकाश की तरफ जाता है।
तुम ऐसे वृक्ष हो, जिसके पास जड़ें नहीं। तुम बस बाहर और ऊपर की तरफ जा रहे हो, भीतर और अंदर की तरफ जाने का तुम्हारे पास कोई उपाय नहीं। इसीलिए तुम प्रतिपल कंप रहे हो। जरा सा हवा का झोंका आता है कि तुम घबड़ा जाते हो; क्योंकि तुम्हारे पास जड़ें नहीं हैं।
तुम्हारे पास अगर जड़ें होतीं गहरी पाताल को छूती, तो तुम तूफानों को निमंत्रण देते। और जब तूफान आता, तब तुम्हारे आनंद का कोई ठिकाना न होता। तभी तुम्हारे उत्सव का क्षण होता, तब तुम नाचते। क्योंकि तूफान चुनौती देता है, और चुनौती की पृष्ठभूमि में ही तुम्हें अपने होने का पूरा-पूरा पता चलता है, उसके पहले पता नहीं चलता। तब तुम तूफान को धन्यवाद देते और कहते कि अक्सर आया करो।
अभी छोटा सा हवा का झोंका और तुम घबड़ाते हो कि मौत आ गई। तुम चिल्लाते
हो कि हे भगवान, बचाओ। तुम भगवान को धन्यवाद नहीं देते कि तूने तूफान भेजा; तुम भगवान से कहते हो कि बचाओ; इस तूफान से छिपाओ। तुम डरे हो, क्योंकि तुम्हारे पास जड़ें नहीं। जड़ें भीतर की तरफ जाती हैं। जितनी जड़ें भीतर जाएंगी, उतना ही तुम्हारा बाहर का फैलाव सुदृढ़ हो जाएगा।
इसलिए ध्यान एक अर्थ में तो बुद्धि के विपरीत है, जैसे जड़ें एक अर्थ में वृक्ष के विपरीत हैं। वृक्ष ऊपर जाता है, जड़ें नीचे जाती हैं, दोनों की दिशा विपरीत है। इस अर्थ में ध्यान बुद्धि के विपरीत है, लेकिन एक अर्थ में जड़ों के ऊपर ही वृक्ष का सारा फैलाव खड़ा है। विपरीत नहीं हैं। ध्यान के ऊपर ही बुद्धि की सारी गरिमा निर्भर होती है।
इसलिए जो बुद्धि बुद्ध के पास है, वैसी बुद्धि आइंस्टीन के पास नहीं
हो सकती। क्योंकि बुद्ध के पास बुद्धि का ऊपरी जाल ही नहीं है, भीतर जलता हुआ ध्यान का दीया भी है। उस भीतर ध्यान के दीए से बुद्धि आलोकित है। इसलिए बुद्धि जो भी कर सकती थी गलत, वह नहीं कर पाएगी। ध्यान का दीया उसे नियोजित रखेगा, ध्यान का दीया सदा मार्ग-दर्शन देगा। इसलिए बुद्धि भटक न पाएगी। ये घोड़े बुद्धि के कहीं भी भागकर किसी गड्ढे में नहीं गिरेंगे, भीतर सारथि बैठा हुआ है। वह प्रज्ञावान ध्यान भीतर का मालिक है।
बच्चे को बुद्धि भी दो, बच्चे को ध्यान भी दो। उसे जड़ें भी दो, आकाश में फैलाव भी दो। और यह ध्यान रखो कि दोनों के बीच संतुलन बड़ी बात है। कोई भी अंग ज्यादा न हो पाए, कोई भी अंग कम न हो पाए। अगर तुम ऐसा कर सको, तो ही तुमने ठीक अर्थों में माता का या पिता का कृत्य पूरा किया, तो ही तुम सही अर्थों में बच्चे को जन्म दिए। अन्यथा तुमने शरीर को जन्म दिया और आत्मा को तुमसे कोई सहारा न मिला। शरीर का जन्म तो बड़ी साधारण बात है। पशु-पक्षी भी उसे पूरा कर लेते हैं। उसमें तुम्हारी कुछ खूबी नहीं, कोई विशेषता नहीं।
और एक और बात ख्याल रख लेना कि जब तुम बच्चे की आत्मा को निखारते हो,
तब तुम भी उसके साथ निखरते हो। क्योंकि यह असंभव है, दूसरे को निखारना और खुद निखरने से बच जाना असंभव है। अगर तुमने अपने बच्चे को प्रेम किया, उसे बुद्धि की यात्रा दी, उसे ध्यान की जड़ें दीं, तो तुम अचानक पाओगे कि उसे बनाने में तुम भी बनने लगे हो। जब मूर्तिकार एक मूर्ति को सुंदर बनाता है, तो सिर्फ मूर्ति ही सुंदर नहीं बनती, उसके बनते-बनते मूर्तिकार भी सुंदर होता जाता है। क्योंकि सौंदर्य को जन्म देना असंभव है बिना सुंदर हुए। संतुलन को जन्म देना असंभव है, बिना संतुलित हुए।

अगर तुम सच में पिता हो, तो तुम्हारे घर में एक बेटे का जन्म तुम्हारी पूरी जिंदगी को बदल देगा। क्योंकि अब तुम बेटे को सुंदर, स्वस्थ, शांत बनाने की चेष्टा करोगे, तो तुम कैसे अशांत रह पाओगे? तुम जो बेटे के लिए करोगे, उसके पहले तुम्हें अपने लिए करना होगा।
एक पति और पत्नी तब तक स्वच्छंद रह सकते हैं, जब तक एक बच्चे का जन्म नहीं हुआ। बच्चे के जन्म के साथ एक नई कड़ी पैदा हो गई। अब खिलवाड़ नहीं चल सकता। अब जिंदगी एक गहन दायित्व है। और दायित्व रसपूर्ण है, क्योंकि प्रेम से भरा है। यह बच्चा मां-बाप, दोनों को बदलना शुरू करेगा। अगर सच में तुम इसे प्रेम करते हो, तो तुम बदल जाओगे। अगर तुम इसे प्रेम नहीं करते हो, तो तुम चीख-पुकार मचाते रहोगे कि बच्चा बिगड़ रहा है, समाज खराब है, सब खराब हुआ जा रहा है।
बच्चा कभी भी समाज के कारण नहीं बिगड़ता, तुम्हारे कारण बिगड़ता है और तुम ही समाज हो। और बड़े मजे की बात है कि जिसको तुम समाज कहते हो, वह सभी के बच्चे हैं। लेकिन बाप वैसा ही बना रहता है, जैसा वह बच्चे के पैदा होने के पूर्व था। मां वैसी ही बनी रहती है, जैसे वह बच्चे के पैदा होने के पूर्व थी। तो यह बच्चा पैदा तो जरूर हो गया, लेकिन तुम्हारे हृदय में इसके लिए प्रेम नहीं है। तुम्हारा प्रेम पूरे समाज को बदल देगा।
इसे ठीक से गहरे में बैठ जाने दो कि तुम जो भी निर्माण करते हो, वह तुम्हें भी निर्मित करता है। निर्माता अपनी निर्मिति से मुक्त नहीं हो सकता। एक सुंदर कविता का जब जन्म होता है, तो उसके साथ एक सुंदर कवि का भी जन्म हो जाता है। और अगर ऐसा न हो तो समझना कि कविता उधार है, वह जन्मी नहीं है, बाजार से खरीद लाई गई है। इसलिए जब तुम्हें कोई कवि मिले और तुम पाओ कि उसकी कविता की सुगंध उसमें नहीं, तो समझना वह कविता उसकी रही ही न होगी। इस देश में हम पुराने समय में कवि को ऋषि कहते थे। अब नहीं कहते, क्योंकि अब कहना उचित भी नहीं है। ऋषि का अर्थ कवि ही होता था। बड़ी अजीब बात है। आज तो ऋषि और कवि में बड़ा फर्क दिखाई पड़ता है। न तो ऋषियों में कविता दिखाई पड़ती है, न कवियों में ऋषित्व दिखाई पड़ता है। दोनों कहीं खो गए हैं।
हमारी प्राचीन धारणा यह थी कि जब भी कोई व्यक्ति कवि होगा, उससे काव्य
का जन्म होगा, तब यह काव्य का जन्म उसकी पूरी अंतर्धारा को, उसकी चेतना को बदल जाएगा। क्योंकि सुंदर का जन्म कुरूप से हो कैसे सकता है, अगर वस्तुतः यह जन्म है? तुमने बच्चे को गोद ले लिया हो, तो बात अलग है। अडॉप्ट कर लिया हो, तो बात अलग है। तुमने किसी और की कविता में तुकबंदी जोड़कर थोड़ा ऊपर हेर-फेर कर लिया हो, तो बात अलग है। तुमने किसी और की अनुभूति को रंग-रोगन लगाकर अपना बता दिया हो, तो बात अलग है। लेकिन तब तुम कवि नहीं हो, तुकबंद हो। और तुकबंदी कितनी ही सुंदर हो, छिछली है।
वह सौंदर्य वैसा ही है, जैसे किसी स्त्री ने ऊपर अपने चेहरे पर पावडर वगैरह लगाकर, लिपस्टिक वगैरह लगाकर धोखा दिया हो। नाटक के मंच पर ठीक, लेकिन जीवन में वह रंग-रोगन काम न आएगा। जरा सी वर्षा होगी और पावडर बह जाएगा। और तब स्त्री इतनी कुरूप लगेगी, जितनी कि बिना पावडर के कभी न लगती। क्योंकि जगह-जगह छिद्र हो जाएंगे सौंदर्य में, और जगह-जगह से कुरूपता झांकने लगेगी।
वस्तुतः जो स्त्री सुंदर होती है, वह पावडर से बचती है। क्योंकि पावडर कुरूपता को छिपाने का ढंग हो सकता है, सौंदर्य को पैदा करने का उपाय नहीं। सुंदर स्त्री भी अगर पावडर पोत लेती है तो कुरूप हो जाती है, क्योंकि झूठ कभी सुंदर नहीं हो सकता। साधारण सी घरेलू स्त्री भी, जिसको होमली कहें, जिसको नाटक के मंच पर खड़ा न किया जा सके, अगर अपने को ढांके न, छिपाए न, रंग-रोगन से पोते न, पाखंड न खड़ा करे, तो साधारण घरेलू स्त्री में भी एक सौंदर्य की ज्योति जलती है--सरल, स्वच्छ, ताजी, कम से कम आथेंटिक, प्रामाणिक।
तो भारत की पुरानी धारणा यह थी कि जब किसी व्यक्ति से काव्य का जन्म होगा, जब कोई कवि होगा, तो ऋषि तो हो ही गया। क्योंकि वह सुंदर कविता पीछे

उस सुंदर हृदय को छोड़ जाएगी, जहां से आई है। अगर गंगा इतनी प्रीतिकर है, तो गंगोत्री पवित्र हो ही जाएगी।
हम गंगोत्री की पूजा करने जाते हैं, गंगा से भी ज्यादा। क्योंकि जिससे गंगा का जन्म हुआ, वह गंगा से ज्यादा होगी। तो कविता से कवि सदा ज्यादा होगा, अगर है। तो कितनी ही कविताएं निकलती जाएं, कवि ज्यादा होगा, क्योंकि वह मूल उदगम है। कवि ऋषि हो जाएगा।
दूसरी बात भी सच है कि जब भी कोई ऋषित्व को उपलब्ध होगा, तो कवि हो जाएगा। इसलिए कवि और ऋषि संस्कृत में पर्यायवाची शब्द हैं। ऐसा दुनिया की किसी भी भाषा में नहीं है। पोएट और सेंट, संत और कवि, ऋषि और कवि, दुनिया की किसी भाषा में पर्यायवाची नहीं हैं, केवल संस्कृत में पर्यायवाची हैं। बड़ा गहरा अर्थ है।
जब भी कोई व्यक्ति ऋषि होगा--ऋषि का अर्थ है जो सत्य को उपलब्ध हुआ, ऋषि का अर्थ है जो सौंदर्य को उपलब्ध हुआ, ऋषि का अर्थ है जिसने भीतर की गरिमा को पा लिया; जिसकी ज्योति जल गई; जो जाग गया; जिसके फूल खिल गए; जो पहुंच गया वहां, जहां उसकी नियति थी; जिसने अपने अंतिम शिखर को छू लिया, उसे हम ऋषि कहते हैं--जब भी कभी ऐसा कोई व्यक्ति होगा, तो उससे काव्य का जन्म अनिवार्य है। भला छंदों में कविता पैदा न हो, लेकिन वह जो भी करेगा, काव्य होगा।
बुद्ध का चलना अगर आप देखें, तो उसमें कविता है। बुद्ध की आंखों का खुलना आप देखें, तो उसमें कविता है। बुद्ध बोलें, चुप रहें, तो उसमें कविता है। बुद्ध का पूरा जीवन एक काव्य है। जरूरी नहीं है कि बुद्ध छंद लिखें, छंद-बद्ध कविता को लिखें, चित्र बनाएं, एक गीत को जन्म दें या एक मूर्ति बनाएं--जरूरी नहीं है। लेकिन अब बुद्ध का पूरा होना काव्य-पूर्ण है। वे जो भी करेंगे, रेत पर चलते उनके पैर के चिह्न बन जाएंगे, तो उन चिह्नों से सुंदर चित्र खोजना कठिन है।
ऋषि अनिवार्य-रूपेण कवि हो जाएगा, कवि अनिवार्य-रूपेण ऋषि है।
अगर तुमने अपने बच्चे को सच में ही प्रेम किया है... । और प्रेम अपने बच्चे को परमात्मा बनाना चाहेगा, इसके अतिरिक्त प्रेम और क्या चाह सकता है? इससे छोटे पर प्रेम कभी राजी नहीं होता। प्रेम इससे कम पर राजी हो ही नहीं सकता। अगर तुम अपने बेटे को डॉक्टर बनाना चाहते हो, तो तुमने अभी प्रेम किया ही नहीं। अगर तुम अपने बेटे को एक बड़ा दुकानदार बनाना चाहते हो, तो तुमने प्रेम अभी जाना ही नहीं।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि बेटे को दुकानदार मत बनाना और डॉक्टर मत बनाना; डॉक्टर भी बनना होगा, दुकानदार भी बनना होगा। लेकिन उतने पर मां की, पिता की आकांक्षा नहीं रुकेगी। वह बीच का पड़ाव हो सकता है, राह हो सकती है। लेकिन जहां भी प्रेम है, वहां परमात्मा से कम पर तृप्ति नहीं है। तुम जिसे प्रेम करोगे, उसे तुम परमात्मा की तरह, अंततः परमात्मा हो जाए, ऐसी आकांक्षा करोगे।
प्रेम परमात्मा को जन्म देने की कीमिया है। उससे कम पर जो राजी हो जाए, वह प्रेम नहीं। उसमें कुछ और होगा, संसार का सौदा होगा, व्यवसाय होगा, धन के प्रति महत्वाकांक्षा, कुछ और रस होंगे, लेकिन प्रेम नहीं है। और जब भी प्रेम होता है, तो परमात्मा को जन्म देने की संभावना पैदा होती है। तुम बच्चे को ध्यान भी देना, बुद्धि भी देना और दोनों के बीच संतुलन
भी देना। और उसको देते-देते ही तुम अनजाने पाओगे कि तुम बदलते गए हो। जिस दिन तुम्हारे बेटे की प्रतिमा पूरी निखरेगी, उसके पहले तुम निखर चुके होओगे। अचानक तुम पाओगे कि बेटे को बनाने में तुम बन गए हो। और अगर बेटा बिगड़ रहा है, तो उसका अर्थ है कि तुम बिगड़े हुए हो और तुम्हारा प्रेम इतना नहीं है कि तुम अपने को बदलने को राजी हो बेटे के लिए।
तो बड़े मजे की घटना घटती है। बाप वही किए चला जाता है, जो वह चाहता है
कि बेटा न करे। मां वही किए चली जाती है, जो उसने सदा चाहा है कि उसकी बेटी न करे, उसका बेटा न करे। और बच्चे तुम्हारी शिक्षाओं से नहीं सीखते, तुमसे सीखते हैं। और बच्चों की आंखें बड़ी साफ और पैनी हैं। अभी उन पर धूल नहीं जमी जीवन की। तुम्हारे शब्दों के आर-पार देख लेते हैं। बच्चे तुम्हारे

शब्दों के जाल में नहीं पड़ते। तुम क्या कह रहे हो, इसकी उन्हें फिक्र नहीं। वे तुम्हें देख लेते हैं, वे सीधा तुम्हें पहचान लेते हैं। उनकी पकड़ प्रत्यक्ष है।
इसलिए बच्चों से झूठ बोलना बहुत मुश्किल है। क्योंकि वह तुम्हारे... तुम जब झूठ बोलते हो, तब झूठ कोई बोला थोड़े ही जाता है सिर्फ, झूठ बोलते वक्त तुम्हारा पूरा चेहरा कहता है कि झूठ, तुम्हारी आंखें कहती हैं कि झूठ, तुम्हारा हाथ बच्चे को छू रहा है, वह कहता है कि झूठ। अभी बच्चा जिंदगी के बहुत करीब है, तुम न पकड़ पाओ, लेकिन बच्चा फौरन पहचान लेता है। तुम्हारी सारी तरंगें कहती हैं कि तुम झूठ बोल रहे हो। इसलिए बच्चों को धोखा देना मुश्किल है, जब तक कि तुम उनको इतना भ्रष्ट न कर दो।
हम सब कोशिश में लगते हैं उनको भ्रष्ट करने की। और जब तक वे भ्रष्ट न
हो जाएं, तब तक हम संदिग्ध रहते हैं, तब तक डर रहता है। मां-बाप बच्चों को शिक्षा दे रहे हैं, झूठ मत बोलो। और बच्चे प्रतिपल पाते हैं कि मां-बाप झूठ बोल रहे हैं। इससे क्या शिक्षा मिलती है? सिर्फ एक शिक्षा मिलती है और वह यह कि तुम भी अपने बच्चों को समझाना कि झूठ मत बोलो और झूठ बोलना! यह तथ्य पकड़ में आ जाता है।
ये बच्चे भी अपने बच्चों को समझाएंगे कि झूठ मत बोलो और झूठ बोलेंगे। यही तुम्हारे पिता ने तुम्हारे साथ किया, यही तुम अपने बच्चों के साथ कर रहे हो। ये बच्चे देखते हैं कि इनको ब्रह्मचर्य का उपदेश दिया जाता है और मां-बाप अभी कामवासना से पूरी तरह भरपूर हैं। उनको दिखाई पड़ता है। तुम्हारा व्यवहार उनकी समझ में आता है। वे भी अपने बच्चों को ब्रह्मचर्य का उपदेश देंगे। एक बड़ा पाखंड है, जो चलता है।
हमारा समाज एक विराट पाखंड है। हमें दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि हम उसी में पैदा हुए हैं; जैसे मछलियों को सागर नहीं दिखाई पड़ता, क्योंकि वे उसी में पैदा हुई हैं। हमारा पाखंड इतना गहरा है कि अगर हमें दिखाई पड़ना शुरू हो जाए तो हम बहुत बेचैन हो जाएंगे, बहुत घबड़ा जाएंगे कि यह क्या हो रहा है? हम सोचते भी नहीं, हम क्या कह रहे हैं? क्या कर रहे हैं? क्या उसका परिणाम होगा?
तुम बच्चों को बुद्धि की शिक्षा देते हो, ध्यान की नहीं, क्योंकि बुद्धि के लिए उधार शिक्षक मिल जाते हैं, किराए के आदमी मिल जाते हैं। इसलिए आसान है। स्कूल है, विश्वविद्यालय है, वहां तुम भेज देते हो। अगर अधिक मां-बाप की आकांक्षा को ठीक से समझा जाए, तो शायद वे शिक्षा लेने नहीं भेजते, सिर्फ झंझट से बचने भेजते हैं। यह घर का उपद्रव टल जाता है। रविवार को घर में उपद्रव वापस लौट आता है।
स्कूल जो हैं, मां-बाप को बच्चों से बचाने के उपाय हैं, वहां तुम उन्हें ढकेल आते हो। वहां तुमने किराए के नौकर रख छोड़े हैं, जो उन बच्चों को उलझाए रखते हैं ऐसी बातों में, जिनमें निन्यानबे प्रतिशत बिल्कुल कचरा हैं, जिनको सिखाने की कोई जरूरत नहीं है, जिनको सीखकर सिवाय भूलने के बच्चे कुछ भी न करेंगे, जिनमें सार न के बराबर है। शिक्षक जो है, वह एक तरह का पहरेदार है, जो मां-बाप और बच्चों के बीच में डंडा लिए खड़ा रहता है। कम से कम पांच-सात घंटे के लिए तुम्हें शांति दे देता है।
कैसा यह प्रेम है, जो बच्चों के कारण अशांत होता हो? यह प्रेम नहीं है।
ये बच्चे आकस्मिक घटनाएं हैं, जो तुम्हारे ऊपर पड़ गए हैं, दुर्घटनाएं हैं। इनको किसी तरह ढोना है।
और तुम उन्हें स्कूल क्यों भेज रहे हो? इसलिए नहीं कि इनकी आत्माएं निखर आएं। तुम इन्हें स्कूल भेज रहे हो, ताकि ये समाज का सारा पाखंड, यह व्यवस्था सीख जाएं। समाज का सारा जाल, गणित, चालाकी ये सीखकर वापस लौट आएं। ये निष्णात हो जाएं, ये समाज के सदस्य हो जाएं। तुम इनको तैयार कर रहे हो। तुम्हारी महत्वाकांक्षाएं अधूरी रह गई हैं। तुम करोड़ कमाना चाहते थे, नहीं कमा पाए, तुम्हारा बेटा इसे पूरी करेगा। तुम बेटे को तैयार कर रहे हो। और अगर बेटा परीक्षाओं में असफल होता है, तो तुम दुखी होते हो--इसलिए नहीं कि बेटा असफल हुआ; इसलिए कि तुम्हारी महत्वाकांक्षा डांवाडोल होती है। यह बेटा कैसे तुम्हारी महत्वाकांक्षा पूरी करेगा?

ये बच्चे तुम्हारी महत्वाकांक्षाओं का फैलाव हैं। ये तुम्हारी वासनाएं हैं। तुम इनके कंधे पर सवार होकर यात्रा करना चाहते हो। इसलिए बेटा अगर धन कमाकर घर लाए, तो बाप खुश होता है, छाती से लगाता है; बेटा अगर धन गंवाकर घर आए, तो कोई उसका स्वागत नहीं करता।
जीसस की एक बड़ी प्यारी कथा है, वह तुम समझो। जीसस निरंतर कहते थे। और चूंकि जीसस का सारा जोर प्रेम पर था, वह कहानी सूचक है। जीसस कहते थे, एक बाप के दो बेटे थे। बाप बड़ा धनी था। एक बेटा बाप का आज्ञाकारी था और एक बड़ा विद्रोही था। एक कमाई को बढ़ाता और एक कमाई को तोड़ता और घटाता।
अंततः इन दोनों बेटों को अलग कर देने के सिवाय कोई उपाय न रहा। आधा- आधा धन बांट दिया गया। बड़ा बेटा बाप के पास रुका, धन को उसने व्यवसाय में लगाया, खेत खरीदे, बगीचे बनाए। छोटा बेटा धन मिलते ही नदारद हो गया गांव से। थोड़े दिनों बाद खबरें आने लगीं कि जुए में उसने सब बरबाद कर दिया, शराब पी डाली, वेश्याओं के नाच-गान में वह जो मिला था, सब मिट्टी हो गया।
बाप ने खबर भेजी कि घर वापस लौट आओ। छोटा बेटा जो घर छोड़कर चला गया था, जुआरी था, शराबी था, उसे भरोसा न आया कि मेरे सब बरबाद कर देने पर भी बाप मुझे वापस बुला सकता है।
प्रेम भरोसे योग्य है भी नहीं। और जब कभी प्रेम घटता है, तुम्हें भी भरोसा न आएगा। चोरी घटे, भरोसा आता है। घृणा हो, भरोसा आता है। प्रेम ऐसा अनहोना है कि कहां दिखाई पड़ता है!
लड़के को भी भरोसा नहीं आया। लेकिन जार-जार था, दीन हो गया था, भीख मांगता था। सोचा, लौट चलूं! इस भीख से तो घर के एक कोने में पड़ा रहूंगा, वही ठीक है।
बेटे के आगमन की खबर आई तो बाप ने बड़ा उत्सव-समारोह मनाया। मिष्ठान्न
और भोजन तैयार करवाए। सारे गांव को भोजन पर आमंत्रित किया।
बड़ा बेटा खेत से लौट रहा था, तब गांव के कुछ लोगों ने कहा कि हद्द हो गई, तुम्हारा दुर्भाग्य! तुम यहां घर में हो, बाप की सेवा करते हो, कमाते हो, मेहनत करते हो, लेकिन तुम्हारे स्वागत में कभी इस तरह कालीन नहीं बिछाए गए, और न तुम्हारे स्वागत में कभी बैंड-बाजे बजे, और न तुम्हारे स्वागत में कभी भोज-उत्सव हुआ। और वह आवारा लड़का, तुम्हारा छोटा भाई, वापस लौट रहा है सब बरबाद करके, और उसके स्वागत का इंतजाम हो रहा है। जाओ, तुम भी स्वागत में सम्मिलित हो जाओ। दीए जलाए गए हैं घी के, बैंड-बाजे बजते हैं, मेहमान इकट्ठे हैं। बाप गांव के द्वार पर आवारा बेटे की प्रतीक्षा कर रहा है। बड़े बेटे को भी दुख हुआ, चोट लगी। वह घर जाकर उदास बैठ गया।
और जब बाप बेटे को लेकर लौटा, नए छोटे बेटे को, जो भाग गया था, वापस लौटा, तो बड़े बेटे को उदास पाकर उसने पूछा कि तू उदास क्यों है? उस बड़े बेटे ने कहा, उदासी स्वाभाविक है। मेरा कभी कोई स्वागत नहीं होता और मैं तुम्हारी सेवा कर रहा हूं। मैं तुम्हारे लिए धन कमा रहा हूं। तुमने जितना धन दिया है, उससे चार गुना मैंने कर दिया है। और यह आवारा सब बरबाद करके लौट रहा है, इसका स्वागत हो रहा है! तो बाप ने कुछ बातें कहीं, जो समझने जैसी हैं।
बाप ने कहा, प्रेम कमाने वाले में और गैर कमाने वाले में फर्क नहीं करता। और प्रेम, जो निकट है, उसके प्रति तो आश्वस्त है; जो दूर चला गया है, उसे पास लाने की कोशिश करता है। और तुम तो ठीक ही हो, इसलिए तुम्हारे लिए किसी विशेष उत्सव की जरूरत नहीं, तुम्हारे लिए तो मेरे आशीर्वाद प्रतिपल चल रहे हैं; लेकिन जो भटक गया है, उसके लिए विशेष आयोजन की जरूरत है, तभी वह आश्वस्त हो सकेगा।
और जीसस कहते थे कि ठीक वैसे ही जैसे कोई गडरिया घर लौटता हो सांझ अपनी भेड़ों को लेकर, और अचानक पाता है कि एक भेड़ खो गई, तो हजार भेड़ों को वहीं जंगल के अंधेरे में छोड़कर वह एक भेड़ को खोजने निकल जाता है। हजार की चिंता नहीं करता कि क्या होगा, लेकिन एक जो भटक गई है, उसे लेने निकल जाता है। और जब वह एक भेड़ मिल जाती है जो भटक गई, तो उसे कंधे पर रखकर वापस लौटता है।

जीसस कहते थे कि प्रेम महत्वाकांक्षा नहीं है। यही मैं तुमसे कहता हूं। प्रेम की कोई मांग नहीं है। प्रेम बच्चे के द्वारा कुछ पाना नहीं चाहता। प्रेम तो बच्चे को ही परमात्मा की तरह पाना चाहता है, बच्चे के द्वारा कुछ नहीं पाना चाहता। बच्चे के कृत्यों का बड़ा सवाल नहीं है, बच्चे की आत्मा का सवाल है।
लेकिन शिक्षा दी जा सकती है विद्यालय में, धर्म कौन देगा?
धर्म के भी विद्यालय हमने बना रखे हैं, वे नकली हैं। क्योंकि धर्म का कोई विद्यालय नहीं हो सकता। एक पंडित के पास भेज देते हैं, जिसे खुद भी धर्म का कुछ भी पता नहीं है। जो खुद वैसा ही जी रहा है, जैसे तुम जी रहे हो। तुम दुकान कुछ और करते हो, वह धर्म की दुकान करता है। तुम दोनों ही दुकानदार हो। उसके पास हम बच्चों को भेज देते हैं धर्म सीखने। वह सिखा देता है; जैसे धर्म कोई ज्यॉग्रफी हो, कि इतिहास हो, पाठ पढ़ा देता है, बच्चे को कंठस्थ करवा देता है। और धर्म की भी परीक्षाएं हैं। बच्चे परीक्षा पास करके, सर्टिफिकेट लेकर लौट आते हैं।
यह धोखा है। धर्म की कोई परीक्षा नहीं, जीवन ही पूरी उसकी परीक्षा है।
और धर्म का कोई सर्टिफिकेट नहीं दे सकता, मौत ही देगी। मरते क्षण ही मौत सर्टिफिकेट देगी कि तुम धार्मिक थे या नहीं। उसके पहले कोई सर्टिफिकेट नहीं दे सकता। मौत के क्षण में अगर तुम आनंदित रहे, तो तुम उत्तीर्ण हुए। मौत के क्षण में अगर तुम दुखी हुए, तो तुम अनुत्तीर्ण हुए। जीवन, पूरा जीवन, धर्म की शिक्षा है। और मृत्यु उसकी परीक्षा है।
कौन पंडित इसे पूरा करेगा? कौन सा शास्त्र इसे पूरा करेगा? कोई शास्त्र, कोई पंडित काम नहीं आ सकता। और तुम्हें धर्म की कोई खबर नहीं है, इसलिए कैसे तुम बच्चे को धर्म दो? कैसे तुम उसे ध्यान दो? तुमने खुद ही ध्यान कभी नहीं जाना, तुम खुद ही कभी उस रस में नहीं बहे। बच्चे को तुम्हें जो देना हो, वह तुम्हारे पास होना चाहिए। धनी बाप होगा, तो बेटे को धन देगा। ध्यानी बाप होगा, तो बेटे को ध्यान देगा। जो तुम्हारे पास नहीं है, वह तुम दोगे कैसे? प्रेमी बाप होगा, तो प्रेम देगा। हम वही दे सकते हैं, जो हमारे पास है।
मुझसे लोग पूछते हैं--कभी कोई युवक, कोई युवती--कि क्या यह उचित होगा
कि वे एक बच्चे को जन्म दें! तो मैं उनको कहता हूं, पहले तुम ध्यान में गहरे हो जाओ। क्योंकि जब बच्चा सामने खड़ा होगा, तब तुम उसे दोगे क्या? और ध्यान अगर तुम्हारे पास नहीं, तो बच्चे की मौजूदगी तुम्हें बड़ा निर्बल और दुर्बल और दीन सिद्ध करेगी। तुम्हारे पास देने को कुछ भी नहीं है। तुम पहले ध्यान में गहरे उतर जाओ, तब तुम मां बनना या पिता बनना। क्योंकि तब मां और पिता बनने का जो महत दायित्व है, उसे तुम पूरा कर सकोगे। और दायित्व की भांति नहीं, एक आनंद की भांति पूरा कर सकोगे।
ध्यान भी दो बच्चे को, विचार भी दो। विचार से वह संसार में सफल होगा, ध्यान से वह परमात्मा में सफल होगा। विचार उसे दो ताकि उसकी बुद्धि निखरे, ध्यान उसे दो ताकि उसका हृदय पवित्र होता चला जाए।
और जहां हृदय की पवित्रता और बुद्धि की सक्रियता का मिलन होता है, वहां इस जगत में जो महत्वपूर्ण से महत्वपूर्ण घटना है, वह घटती है। वहां सक्रियता और निष्क्रियता दोनों संतुलित हो जाते हैं। वहां रात और दिन दोनों ठहर जाते हैं। वहां मृत्यु और जीवन, दोनों के पार जो है, उसका दर्शन शुरू हो जाता है।

प्रश्नः ओशो, पुराणों में कथा है कि प्रलयकाल में सारी सृष्टि पानी
के नीचे डूब जाती है, और जमीन का एक टुकड़ा बचा रहता है। वहां पर वट-पत्र के ऊपर, अपने पैर का अंगूठा चूसते हुए नन्हें बाल-मुकुंद पाए जाते हैं। और उनसे फिर सारी सृष्टि निर्मित होती है। सदगुरु के पास जाकर भी साधक के भीतर ऐसा ही प्रलय घटित होता है, और उसके बाद उसका आध्यात्मिक पुनर्जन्म होता है। क्या यह कथा इसी घटना का प्रतीक है? इसका वर्णन करिए।

तिपल है मरण और प्रतिपल है तुम्हारा जन्म भी। एक दिन तुम्हारा जन्म हुआ और सौ वर्ष बाद तुम मरोगे, ऐसा नहीं है। प्रतिपल तुम मरते हो और प्रतिपल तुम्हारा नया जन्म होता है। हर क्षण पुराना समाप्त होता है, नए की शुरुआत होती है। सृष्टि कभी हुई थी और प्रलय कभी होगा, यह तो सिर्फ कथा है। सृष्टि अभी हो रही है और प्रलय अभी हो रहा है, यह तथ्य है। परमात्मा ने कभी बनाया जगत और फिर आराम करने लगा, ऐसा नहीं है। जैसा ईसाई सोचते हैं कि छह दिन उसने बनाया, फिर सातवें दिन विश्राम किया--इसलिए सातवां दिन छुट्टी का दिन है--छह दिन में सृष्टि पूरी हो गई, फिर वह सातवें दिन आराम करने लगा। फिर वह आराम कर ही रहा है।
नहीं, ऐसा नहीं है। और परमात्मा के लिए आराम हो भी नहीं सकता। तुम्हारे लिए आराम जरूरी है, क्योंकि तुम थकते हो। अगर परमात्मा भी थकता है, तो विराट नहीं है, तो उसकी ऊर्जा का स्रोत अनंत नहीं, चुक जाता है। अगर परमात्मा भी थक जाए, तो सृष्टि उसी क्षण समाप्त हो जाएगी।
न, परमात्मा ने किसी दिन बनाया, ऐसा नहीं है, बल्कि परमात्मा प्रतिपल बना रहा है। सृजन शाश्वत है। सृष्टि कोई ऐतिहासिक घटना नहीं, शाश्वतता है। प्रतिपल निर्माण चल रहा है। ये पौधे बड़े हो रहे हैं, कलियां फूल बन रही हैं, अंडे फूट रहे हैं, पक्षी उड़ने की तैयारी कर रहे हैं। प्रतिपल कुछ भी रुका नहीं है। विराट में कहीं भी कोई विश्राम नहीं है। वहां कोई छुट्टी का दिन नहीं है। वहां सृजन एक शाश्वत उत्सव है।
और जो विराट के संबंध में सही है, वही तुम्हारे संबंध में, क्योंकि तुम भी विराट के ही एक छोटे से प्रतिबिंब हो। बूंद सही सागर की, पर तुम भी विराट की ही बूंद हो। तुम भी प्रतिपल बन रहे हो, मिट रहे हो। जो भी बीत गया, वह मिट गया। जो आने को है, वह बन रहा है। इन दोनों के बीच में तुम्हारा होना है।
यह कथा मीठी है पुराण की कि प्रलय के क्षण में सब नष्ट हो जाता है, सिर्फ एक छोटा सा बालक--बालकृष्ण या जो भी हम नाम दे दें--एक छोटा सा अबोध बालक बच रहता है। फिर उसी से सारी सृष्टि शुरू होती है। इसके अर्थ बहुआयामी हैं। सब समझने की कोशिश करें।
पहला, बड़े-बूढ़े सब मर जाते हैं, एक छोटा बच्चा बचता है। सब चालाक, अनुभवी नष्ट हो जाते हैं। सब होशियार, ज्ञानी मिट जाते हैं। एक अबोध बालक बच रहता है। अबोधता में कोई सुरक्षा है, जो होशियारी में नहीं है। एक निर्बोध, जिसे कुछ भी पता नहीं है, उसे प्रलय भी नहीं मिटा पाता। और सब ज्ञानी, सब पंडित, सब शास्त्रधर, सब खो जाते हैं। साधु, संत, सब खो जाते हैं, एक बालक बचता है। क्या इसका अर्थ होगा?
लाओत्से कहता है कि ऐसा उसने एक बार देखा कि एक बैलगाड़ी में कुछ लोग बैठे चल रहे थे। बैलगाड़ी उलट गई। दो आदमी मरे, खड्डे में गिरे। एक आदमी जो बचा, वह भी अधमरा, हाथ-पैर टूट गए। लेकिन एक आदमी को जरा भी चोट न आई। गाड़ी उलट गई, वह सड़क के किनारे गिरा, उलटा पड़ा, उलटा ही पड़ा रहा। लाओत्से बड़ा चकित हुआ। वह पास गया, उसने कहा, मामला क्या है! पाया कि वह एक आदमी शराबी था, शराब पीए हुए था। जो होश में थे, वे खतम हो गए। जो बेहोशी में था, उसको पता ही नहीं चला कि यह गाड़ी उलट गई। वे जैसे गाड़ी में थे, वैसे बाहर रहे। थोड़ा समझने जैसा है, अक्सर यह होता है। शराबी को आप रास्ते में पड़ा हुआ अक्सर पाएंगे। आप भी जरा गिरकर देखें! उतने अगर आप गिरें, तो अक्सर आप अस्पताल में ही रहें। शराबी रोज गिरता-पड़ता घर वापस लौट आता है। न हड्डी टूटती है, न फ्रेक्चर होता है। कुछ कला है, जो शराबी जानता है। वह कला इतनी ही है कि उसे होश नहीं है। और जब होश होता है, तो आप अपना बचाव करते हैं; जब होश नहीं होता, तो बचाव क्या करना है?
जब गाड़ी उलटी होगी, तो जो जगे थे, होश में थे, वे डर गए होंगे, उनकी हड्डियां तन गई होंगी, उनके स्नायु खिंच गए होंगे। उन्होंने अपने को बचाया होगा। गाड़ी उलटी होगी और जब वे जमीन पर गिर रहे थे, तब वे जमीन से लड़ रहे थे, बच जाएं किसी तरह, वे तने थे। वह तनाव ही चोट खाता है, वह तनाव में ही मांस-पेशियां टूट जाती हैं, हड्डियां उखड़ जाती हैं। शराबी गिरा, उनको पता ही न था कि कोई लड़ाई है, कि गाड़ी उलट गई, कि अपने को बचाना है। शराबी ऐसे

गिरा होगा, जैसे शराबी वहां है ही नहीं; एक बोरा गिर रहा है, एक बंडल गिर गया, जिसमें भीतर कोई है ही नहीं। तो बंडल की कोई न हड्डी टूटती, न कुछ होता। शराबी ऐसा गिरा, जैसे भीतर नहीं था।
जब भीतर कोई बचाने वाला नहीं होता, सुरक्षा करने वाला नहीं होता, तब कोई अकड़ पैदा नहीं होती। अहंकार नहीं होता, तो प्रतिरोध पैदा नहीं होता। बिना प्रतिरोध के शराबी गिर गया। वे सो गए। उन्होंने इसको परमात्मा का आशीर्वाद समझा होगा, वे विश्राम करने लगे। लाओत्से कहता है, शराबी बच जाता है, होश वाला टूट जाता है। शराबी के बचने का कारण यही है कि उसे अपना पता नहीं है।
यह कथा कहती है कि एक छोटा बच्चा बच जाता है, सब मर जाते हैं। जो-जो बचना चाहते थे, वे सब मर जाते हैं, एक छोटा बच्चा बच जाता है। अक्सर ऐसा होता है कि कोई मकान गिरता है, बड़े-बूढ़े सब मर जाते हैं, एक छोटा बच्चा बच जाता है। आग लग जाती है, बड़े-बूढ़े भाग-दौड़ में आग पकड़ लेते हैं, छोटा बच्चा अपने झूले पर पड़ा हुआ मुस्कुराता रहता है और बच जाता है। अक्सर ऐसा हो जाता है।
इसके हो जाने का रहस्य है। और वह रहस्य यह है कि छोटा बच्चा अपनी रक्षा नहीं कर रहा है। जो खुद को नहीं बचा रहा है, परमात्मा उसे बचाता है। जो खुद को बचा रहा है, वह परमात्मा से लड़ रहा है। उसका अर्थ है, उसने कह दिया, तुम पर हमें भरोसा नहीं, हम खुद अपना आयोजन करेंगे। और अपना आयोजन प्रलय में काम नहीं पड़ेगा। अभी भी काम नहीं पड़ रहा है, तुम्हें ख्याल ही है, तुम अपने को बचा रहे हो। इस जीवन के संघर्ष में, जहां प्रतिपल प्रलय हो रहा है, तुम मिट रहे हो, क्योंकि तुम छोटे बच्चे की भांति नहीं हो, अन्यथा तुम बच जाओगे।
यह कथा और भी गहरा अर्थ रखती है और वह यह है कि जैसे ही अतीत नष्ट होता है, जो भी बीत गया, वह नष्ट हो गया; और जो भविष्य है, वह अभी आया नहीं है, आएगा; तो वर्तमान के क्षण में, तुम सदा ही एक छोटे बच्चे की भांति होते हो। लेकिन तुम अतीत को स्मृति में लेकर चलते हो। तुम जानते हो हिसाब-किताब, बैंक-बैलेंस, खाता-बही, जो किया नहीं किया, जो हुआ नहीं हुआ, वह सब तुम स्मृृति में ढोते हो। वह है नहीं कहीं अस्तित्व में, सिर्फ तुम्हारी बुद्धि में समाया हुआ है। तुम भविष्य को भी अपने मन में लेकर चलते हो, क्या करना, नहीं करना, योजनाएं होंगी कि नहीं होंगी, कैसे होंगी, कैसे नहीं होंगी, वह सब जाल भी तुम लेकर चलते हो, वह भी कहीं नहीं है। अस्तित्व में तो शुद्ध वर्तमान का क्षण है, वहां सब अतीत जा चुका है; केवल वर्तमान है, सारा भविष्य अभी आया नहीं। उस वर्तमान के क्षण में तुम कौन हो! तुम्हारा क्या अनुभव है! क्या ज्ञान है!
उस वर्तमान के क्षण में तुम्हारा कोई भी हिसाब-किताब नहीं। उस वर्तमान के क्षण में तुम एक छोटे बालक की भांति हो, नवजात शिशु, जो अभी-अभी गर्भ से जन्मा है। जिसको तुम यह भी पूछो कि तू कौन है, तो जवाब नहीं दे सकता। जो कुछ भी नहीं जानता है, जिसके हृदय की स्लेट बिल्कुल कोरी है, जिस पर अभी कुछ भी लिखा नहीं गया है। यह जो अनलिखा हृदय है, यही शुद्ध बाल-हृदय है।
ध्यानी प्रतिपल ऐसा ही बाल-हृदय होता रहता है। ध्यान का अर्थ है, जो-
जो कचरा अतीत में छोड़ा, उसे पोंछ डालो; जो-जो तुम सीखे, उसे मिटा दो, अनलर्निंग; जो-जो जाना, उसे फिर से अनजाना कर दो; जो-जो इकट्ठा कर लिया, उसे विसर्जित कर दो। तुम फिर ताजे, हल्के, नए हो जाओ। जैसे नई कोंपल फूटती है वृक्ष पर। सब पुराने पत्ते गिरा दो, पतझड़ प्रतिपल होने दो, ताकि हर पतझड़ के पीछे वसंत हो, नई कोंपल आ जाए। तुम बिल्कुल ताजे, तुम बिल्कुल नए, जिस पर कुछ भी लिखा हुआ नहीं है, जिस पर अतीत के कोई चरण-चिह्न नहीं हैं, जिस पर एक भी रेखा नहीं है, ऐसे निर्मल तुम प्रतिपल हो जाओ, यही ध्यानी का प्रयोग है। ध्यानी प्रतिपल अतीत से अपने को मुक्त करता रहता है, अतीत के प्रति मरता जाता है। और भविष्य को पैदा नहीं होने देता, उसकी जरूरत नहीं है, वह अपने आप पैदा होगा, तुम उसके लिए व्यर्थ परेशान मत होओ, वह तुम्हारे बिना चलता रहेगा।

न आकाश तुमसे पूछकर है, न चांद-तारे तुमसे पूछकर घूम रहे हैं, न नदियां तुमसे पूछकर बह रही हैं। समय भी तुमसे बिना पूछे चल रहा है, तुम उसके पीछे परेशान मत होओ। अतीत को पोंछ दो, वह धूल तुम पर न बचे। भविष्य को तुम जन्माओ मत, वह अपने से जन्मेगा। तब तुम एक नवजात शिशु की भांति इनोसेंट--और यह इनोसेंस, यह निर्दोषता ही ध्यान है।
और तब तुम्हारे भीतर से विराट सृजन होगा, तब तुम्हारी सारी जीवन-ऊर्जा स्रष्टा की ऊर्जा हो जाएगी। तब तुम परमात्मा हो। जो शुद्ध, सरल बालक की भांति है, वह परमात्मा है। जहां तुम चालाक हुए, वहीं तुम संसारी हो।
यह हो सकता है, यह हुआ है। बुद्ध ऐसे ही नवजात शिशु की भांति हो गए, कृष्ण ऐसे ही नवजात शिशु की भांति हो गए। यह जानकर तुम्हें शायद विस्मय हो कि हमने कृष्ण, बुद्ध, महावीर, राम, इनको दाढ़ी-मूंछ वाला नहीं चित्रित किया है। तो दो ही बातें हो सकती हैंः एक तो कि इनके शरीर में हार्मोन की कुछ कमी रही हो। उस हालत में इनका पुरुषत्व संदिग्ध होगा। ये थोड़े-से स्त्रैण साबित होंगे। और एकाध के लिए हो भी सकता था, क्योंकि स्त्रैण व्यक्तित्व वाला पुरुष भी ज्ञान को उपलब्ध हो सकता है, कोई अड़चन नहीं है। लेकिन सभी को? जैनियों के चौबीस तीर्थंकर बिना दाढ़ी-मूंछ, सारे बुद्धों की कल्पना बिना दाढ़ी-मूंछ, अतीत के ही नहीं, भविष्य में जो बुद्ध होने वाले हैं, मैत्रेय, उनका चित्र भी दाढ़ी-मूंछ के बिना; राम, कृष्ण सब दाढ़ी-मूंछ के बिना। कुछ कारण और है।
इनको दाढ़ी-मूंछ सबको उगी होगी, क्योंकि बुद्धत्व दाढ़ी-मूंछ के कुछ विरोध में नहीं है, लेकिन हमने इन्हें चित्रित किया है बिना दाढ़ी-मूंछ के। इसमें हमारा कोई अर्थ है। और वह अर्थ यह है कि हम इन्हें बूढ़ा नहीं होने देना चाहते। और हम जानते हैं कि ये कभी बूढ़े नहीं हुए। ये बूढ़े हुए हैं, इनकी कमर झुकी होगी। लेकिन हम जानते हैं कि इनकी चेतना कभी बूढ़ी न हुई, कभी पुरानी न हुई। वह सदा नवजात शिशु की भांति बनी रही, वह सदा ताजी रही। उस ताजेपन की खबर देने को हमने इनके शरीर को भी ताजा और नया और युवा रखना चाहा। यह जो इनका युवापन हमने चित्रित किया है, यह शारीरिक नहीं है, यह चेतनागत है।
निश्चित ही जब सृष्टि का अंत हो जाता है, प्रलय घट जाता है--अतीत मिटता
है और नया अभी पैदा नहीं हुआ--तो दोनों के बीच में कौन होगा सेतु? अगर हमसे कोई कथा लिखवाता, तो हम किसी बूढ़े समझदार को, किसी पंडित को, वेद के ज्ञाता को बचाते, कि यह आदमी ठीक रहेगा नई सृष्टि शुरू करने को। लेकिन यह कथा एक छोटे बच्चे को बचाती है।
वेद का ज्ञाता निर्दोष नहीं हो सकता। निर्दोष व्यक्ति स्वयं वेद है,
वह वेद का ज्ञाता नहीं है। और यह पूरी प्रकृति की धारा पुराने और जराजीर्ण को मिटाती है, नए को पैदा करती है। भगवान का हिसाब कुछ अनूठा मालूम पड़ता है। अभी वैज्ञानिक सोचते हैं, तो उलटा सोचते हैं।
वैज्ञानिक कहते हैं कि यह बिल्कुल ही अनइकोनॉमिकल है कि बूढ़े मरें और बच्चे पैदा हों। है भी अनइकोनॉमिकल, आर्थिक दृष्टि से बिल्कुल खतरा है। क्योंकि बूढ़ा आदमी सब तरह से तैयार, पढ़ा-लिखा, अनुभवी, सत्तर साल हमने उस पर खराब किए, सब मिला-जुलाकर किसी तरह उनमें थोड़ी बुद्धि आई, वे मरने के करीब पहुंच गए। जो मकान बनकर तैयार हो गया, वह गिरने के करीब है। और एक छोटा बच्चा उसकी जगह ले लेगा, जिनके साथ फिर वही मेहनत। यह बिल्कुल अनइकोनॉमिकल है। कोई भी राज्य इसको चलने नहीं दे सकता। मजबूरी है, कुछ कर नहीं सकते, इसलिए चलता है। नहीं तो बूढ़ों को हम बचाएंगे और बच्चों को हम रोकेंगे। क्योंकि बच्चा! यह बिल्कुल फिजूल खर्च है। इसके साथ फिर वही करना होगा, यह फिर वही नासमझियां करेगा, फिर वही गलतियां करेगा, फिर वही स्कूल, फिर पढ़ाओ-लिखाओ और फिर... और आखिर में, जब बनकर तैयार हो जाएगा, जब हमारे कुछ काम का होता, तब इनकी मौत आ जाएगी।
तो वैज्ञानिक कहते हैं कि यह कोशिश चलती है कि कैसे हम बूढ़ों को बचाएं। एक काम में तो वे सफल हो गए कि बच्चों को हम कैसे रोकें, बर्थ-कंट्रोल, उसमें वे सफल हो गए। वह आधी प्रक्रिया पूरी हो गई कि बच्चे अब

रोके जा सकते हैं। अब दूसरा काम शुरू है कि बूढ़े कैसे रोके जाएं, उनको जाने न दिया जाए। और कई बूढ़े हमें बड़े काम के लगते हैं।
वह आइंस्टीन है, रोक लें तो बड़े काम का लगता है। सदियां बीत जाएंगी, तब शायद ऐसा आदमी फिर पैदा होगा। और अगर आइंस्टीन को हम सौ साल रोक लें, तो वह क्या नहीं करेगा, कहना मुश्किल है। क्योंकि अब, जब उसकी बुद्धि बिल्कुल परिपक्व हो रही थी, तब उसके विदा का वक्त आ गया। इसको अगर हम सौ साल और बचा लें, तो इस बुद्धि के ऊपर नए भवन खड़े होते जाएंगे। और आइंस्टीन कुछ दे सकेगा, जो बच्चे कैसे देंगे? तो इस बात की कोशिश चलती है।
आपको शायद पता न हो कि हजारों लोगों ने अपने बीमा करवाए हैं कि मर जाने के बाद उनकी लाश बचा ली जाए। क्योंकि ऐसा शक है कि इस सदी के पूरे होते-होते व्यक्तियों को पुनरुज्जीवित करने की कला हमारे हाथ में आ जाएगी। तो अमरीका में कई स्थानों पर डीप फ्रीजिंग का उपाय किया गया है, जहां कुछ लाशें सुरक्षित कर दी गई हैं। खर्चीला है, सिर्फ करोड़पति करवा सकते हैं। कोई दस हजार रुपए रोज का खर्च है एक आदमी की लाश को बचाने के लिए। कुछ लाशें तो सुरक्षित हो गई हैं। वे लोग मरने के पहले अपना सारा पैसा जमा कर गए हैं, ट्रस्ट बना गए हैं। वह ट्रस्ट उनकी लाश को बचाएगा तब तक, जब तक कि विज्ञान कला न खोज ले पुनरुज्जीवित करने की। बीस साल, पच्चीस साल में कला हाथ आ जाएगी, तो उनको पुनरुज्जीवित किया जा सकेगा। इस आशा में वे सारा इंतजाम करके गए हैं। एक बड़ा आंदोलन चलता है कि कैसे हम बूढ़े लोगों को बचाएं।
आज नहीं कल, विज्ञान शायद कोई तरकीब खोज ले। जब बच्चे पैदा होने से रोके जा सकते हैं, तो बूढ़े मरने से भी रोके जा सकते हैं। अगर बर्थ-कंट्रोल संभव है, तो डेथ-कंट्रोल भी संभव है। वह उसका ही दूसरा हिस्सा है। और जिस दिन हम बूढ़े को रोक लेंगे, उस दिन तो बर्थ-कंट्रोल हम बिल्कुल ही कर लेंगे पूरा, क्योंकि फिर दोनों के लिए जगह नहीं हो सकती। इसमें जगह का यहां हिसाब ऐसा है कि बूढ़ा सरकता है, तो बच्चे के लिए जगह खाली होती है। जब भी आपके घर में एक बच्चा पैदा होता है, तभी सचेत हो जाना चाहिए, अब कोई बूढ़ा मरने के करीब हुआ। क्योंकि जगह कहां है? हर सांस जगह मांगेगी, बूढ़े को हटना होगा।
लेकिन यह बड़ा सोचने जैसा है कि परमात्मा की प्रक्रिया यह है कि वह बूढ़ों को हटाता है, तैयार को मिटाता है, गैर-तैयार को लाता है। पुराने पत्ते को गिराता है, नई कोंपल को जन्माता है। परमात्मा नए के पक्ष में और पुराने के विपक्ष में है। हम पुराने के पक्ष में और नए के विपक्ष में हैं। इसलिए जो भी पुराना है, उसको हम श्रेष्ठ कहते हैं। और जो भी नया है, हम कहते हैं, नया है, इसका क्या भरोसा?
इसलिए जो शास्त्र जितना पुराना है, हम कहते हैं, उतना ही महान है। जो धर्म जितना पुराना है, हम कहते हैं, उतना ही कीमती है। इसलिए सभी धर्म कोशिश करते हैं--झूठ-सही--कि उनका धर्म बहुत पुराना है, उनकी किताब बहुत पुरानी है।
पुराने का हमको रस है। लेकिन परमात्मा को बिल्कुल पुराने में रस नहीं है, परमात्मा का रस नए में है। परमात्मा तो कहता है, पुराना अगर है, तो उसे मरना चाहिए। नया है, तो उसे जीवन में आना चाहिए। नए में कुछ खूबी परमात्मा को दिखाई पड़ती है, जो हमको नहीं दिखाई पड़ती। हमें पुराने में कुछ खूबी दिखाई पड़ती है।
पुराने का हमारा मोह क्या है? क्योंकि पुराना अनुभवी है, जानता है, जी चुका, परिपक्व हो गया है। नया गैर-अनुभवी है, जानता नहीं है, अपरिपक्व है, भटकने का उपाय है। लेकिन परमात्मा की तरफ से अगर हम समझें तो जो जितना ज्यादा अनुभवी है, उतना ही चालाक है, उतना ही कुशल है, उतना ही होशियार है। और जो जितना चालाक है, उतना ही कम निर्दोष, उतना ही भोलापन उसमें संभव नहीं है। और इस जगत के द्वार भोले हृदय के लिए खुले हैं। और यह अस्तित्व केवल उन्हीं पर वर्षा करता है आनंद की, जो इतने सरल हैं कि जिनकी श्रद्धा में रत्तीभर भी अश्रद्धा नहीं है।

एक बालक जैसी श्रद्धा ही संतत्व को जन्म देती है। एक छोटा बच्चा है,
वह आपमें पूरी श्रद्धा रखता है। उसे ख्याल भी नहीं आता कि मैं श्रद्धा रखता हूं, क्योंकि यह ख्याल भी अश्रद्धालु को आता है। जिसके मन में शक हो गया, उसको लगता है कि मैं श्रद्धा करता हूं। बच्चे की श्रद्धा इतनी परिपूर्ण है कि उसे यह भी पता नहीं कि मैं श्रद्धा करता हूं। बस श्रद्धा उसका स्वभाव है।
यह कथा मीठी है। सृष्टि के अंत पर, जब प्रलय घट जाता है, तो एक छोटा बच्चा बचता है। क्योंकि परमात्मा बचा रहा है, वैज्ञानिक नहीं बचा रहे। और परमात्मा सदा नए के पक्ष में है।
इसलिए मैं कहता हूं, परमात्मा से बड़ा क्रांतिकारी तत्व जगत में दूसरा नहीं है। परमात्मा से बड़ा क्रांतिकारी जगत में दूसरा नहीं है। क्रांति का यही मौलिक स्वर है कि पुराने को जाने दो, नए को आने दो। पुराना मर ही चुका, इसीलिए पुराना है। नया पूरा जीवंत है, इसलिए नया है।
और अगर तुम इस कला को सीख लो--और इसी कला को मैं ध्यान कह रहा हूं--कि तुम कभी पुराने न हो पाओ, तो परमात्मा तुम्हें सदा बचाएगा। जिस दिन सृष्टि नष्ट होगी, उस दिन भी तुम बचोगे; जिस दिन महाप्रलय होगा, उस दिन भी तुम बचोगे। तुम्हारे लायक जमीन बचाई ही जाएगी।
लेकिन उसकी कला यह है कि तुम एक नवजात शिशु बने रहना, तुम बूढ़े मत हो जाना। शरीर तो बूढ़ा होगा, शरीर जाएगा भी, लेकिन तुम बूढ़े मत होना। तुम्हारी आत्मा नई बनी रहे, नई कोंपल की तरह, सुबह गिरी नई ओस की बूंद की तरह तुम्हारी आत्मा ताजी बनी रहे, तो तुम्हें परमात्मा सदा सुरक्षा देगा।
तुम जहां बूढ़े हुए, वहीं तुम परमात्मा के विपरीत गए, वहीं तुमने अपनी मृत्यु को बुलाया।
तुम अमृत हो, अगर तुम सदा नए हो। नयापन अमरत्व है।
आज इतना ही।

नहिं राम बिन ठांव
ग्यारहवां प्रवचन

होतेई का झोला

प्रश्नः ओशो, झेन फकीर होतेई कंधे पर झोला लटकाए घूमता, बच्चों को मिठाइयां बांटता और उनके साथ सिर्फ खेला करता था। जब रास्ते पर कोई झेन भक्त मिल जाता, तो वह नमस्कार करके उससे इतना ही कहता कि एक पैसा दे दो। और जब कोई उससे कहता कि मंदिर में चलकर उपदेश करो, तब भी होतेई यही कहता कि एक पैसा दे दो। एक बार जब वह बच्चों के साथ खेल रहा था, एक दूसरा झेन संत मिला, जिसने उससे पूछाः झेन का अर्थ क्या है? होतेई ने मूक उत्तर में अपना झोला जमीन पर डाल दिया। और जब उस संत ने पूछा कि झेन की उपलब्धि क्या है? तब वह हंसता हुआ बुद्ध अपना झोला कंधे पर रखकर चलता बना। और यह संत बहुत प्रसिद्ध संत हो गया। इनके संदेश क्या थे, कृपया समझाएं।

संतों का वक्तव्य या उनका जीवन किसी तर्क-सरणी के आधार पर नहीं चलता। उनके जीवन का कोई गणित नहीं है। वे किसी बंधी-बंधाई लकीर के फकीर नहीं होते। उनका जीवन है एक सहज स्पंदन। उस स्पंदन में हम कुछ अनुभव कर सकते हैं। उस स्पंदन का हम रहस्य-आस्वाद कर सकते हैं। लेकिन उस स्पंदन की कोई तार्किक, बुद्धिगत व्याख्या नहीं हो सकती।
तो पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि संतों का जीवन किसी नीति-नियम, किसी शास्त्र, किसी परंपरा, किसी ढांचे का जीवन नहीं है। वह नहर की भांति नहीं है, वह बहती हुई सरिता की भांति है। आयोजित नहीं है, क्षण-क्षण चेतना से जो स्पंदन उठते हैं, उनको उनकी परिपूर्णता में जीने से संत का जीवन निकलता है।
दुर्जन हम उसे कहते हैं, जिसके जीवन में बुराई का ढांचा है; जो ढांचे
से जीता है, लेकिन ढांचा बुराई का है। जिसने चोरी का, बेईमानी का आयोजन कर रखा है; जो सोच-विचारकर, हिसाब लगाकर, बुराई के मार्ग पर चल रहा है। बुराई उसकी चुनी हुई जीवन की शैली है, यह उसका निर्णय है।
सज्जन हम उसे कहते हैं, जिसने भलाई को जीवन का ढांचा बनाया है। अच्छा करना, दान, दया, इन सबको उसने सोचा-विचारा है, हिसाब लगाया है। और फिर इनके अनुसार उसने अपने जीवन को ढाला है।
बुरे आदमी और भले आदमी दोनों के जीवन ढांचे में बंधे जीवन हैं। एक तीसरा जीवन है संत का, जो ढांचे से मुक्त जीवन है। इसलिए दो संतों के जीवन एक जैसे नहीं होंगे। एक जैसा जीवन तो तभी हो सकता है, जब एक ढांचे में ढाला गया हो। तो फिएट कारें एक जैसी हो सकती हैं करोड़ों, एक ढांचे से निकलती हैं। लेकिन दो पौधे एक जैसे नहीं हो सकते। पौधे तो दूर, दो पत्ते एक जैसे नहीं हो सकते। दो कंकड़ इस बड़ी पृथ्वी पर एक जैसे नहीं खोजे जा सकते। क्योंकि हर कंकड़ उठा है अनंत से, वह किसी ढांचे से पैदा नहीं हुआ है। इसलिए अस्तित्व में कोई चीज दोहरती नहीं, पुनरुक्त नहीं होती। प्रत्येक वस्तु अनूठी है, बेजोड़ है।
संत अपने को आयोजित नहीं करता--न बुराई की तरफ, न भलाई की तरफ। संत अपने जीवन को कोई व्यवस्था नहीं देता। संत अराजकता में होश से जीता है। यह बात बहुत गहराई से समझ लेने जैसी है। क्योंकि अराजकता में आप बेहोशी से भी जी सकते हैं।
अगर आप अराजकता में बेहोशी से जीए, तो दुर्जन पैदा होगा। आप कितना ही सोचें कि ढांचा नहीं है, ढांचा होगा। अगर आप होश से न जीए, नियम-अनुशासन से जीए, अराजकता से नहीं, तो सज्जन पैदा होगा।
लेकिन अराजकता--कोई नियम नहीं, कोई शास्त्र नहीं, कोई ढांचा नहीं--और होश, जैसे होश ही एकमात्र शास्त्र है। अपने को जगाए रखना ही जैसे एकमात्र नियम है, परम नियम है। यही संत की जीवनचर्या है। इसे चर्या कहना भी ठीक नहीं, क्योंकि चर्या में लगता है कि कुछ सोचा-विचारा हुआ आचरण है। जागे हुए जीने से जो घट जाए, वही संत का आचरण है। अमूर्च्छित आचरण संतत्व है।

इसलिए दो संतों के जीवन एक जैसे न होंगे। और किसी भी संत को समझना हो, तो उसके जीवन को रहस्य की भांति देखना शुरू करना।
समझने के दो रास्ते हैं। एक फूल खिला है, एक रास्ता तो वैज्ञानिक का हैः इस फूल को तोड़ो, इसकी पंखुड़ियां अलग करो, इसका विश्लेषण करो, इसके तत्वों को भिन्न-भिन्न करो; कितने रासायनिक हैं, कितने खनिज हैं, कैसे यह फूल बना है, इस सबकी पूरी व्यवस्था खोज लो--यह विज्ञान का ढंग है समझने का। इसमें तोड़ना जरूरी है, विश्लेषण, एनालिसिस जरूरी है।
फूल खो जाएगा, फूल का ढांचा समझ में आ जाएगा। बिल्कुल पक्का पता चल जाएगा कि किन-किन रासायनिक तत्वों से मिलकर बना। लेकिन इस पता चलने में फूल का सौंदर्य तिरोहित हो जाएगा, क्योंकि फूल कुछ भी था तो अपनी पूर्णता में था। पंखुड़ियां अलग होकर, टूटकर, रासायनिक द्रव्य अलग-अलग शीशियों में रख जाएंगे, फार्मूला कागज पर आ जाएगा, लेकिन फूल खो जाएगा। वह खिलापन, वह सौंदर्य, वह ताजगी, वह सब खो जाएगी। वह जो फूल परमात्मा के एक गीत के टुकड़े की तरह था; वह फूल, जो परमात्मा के एक इंगित-इशारे की तरह था, वह खो गया। कागज पर सूत्र हाथ आ गया। यह विज्ञान का ढंग है समझने का।
इसलिए विज्ञान कभी आत्मा को नहीं समझ पाता, क्योंकि आत्मा को तोड़ने
का कोई उपाय नहीं। शरीर को समझ लेता है, क्योंकि शरीर तोड़ा जाता है। शरीर को समझ लेता है, क्योंकि उसके तत्व अलग किए जा सकते हैं--कितना है पानी, कितना ऑक्सीजन, कितना हाइड्रोजन, कितने खनिज। आत्मा अखंड है। वह किन्हीं चीजों से मिलकर नहीं बनी। इसलिए उसका विश्लेषण नहीं होता। जिसका विश्लेषण नहीं होता, विज्ञान कहता है, वह है ही नहीं, क्योंकि उसको समझने का कोई उपाय नहीं। इतना भी समझने का उपाय नहीं कि वह है।
इसलिए विज्ञान आत्मा को स्वीकार कभी भी नहीं करेगा, जब तक कि आत्मा खंडित होने को राजी न हो, जो कि आत्मा का स्वभाव नहीं है। इसलिए विज्ञान परमात्मा को कभी स्वीकार नहीं करेगा। जगत को स्वीकार करता है, सृष्टि को मानता है, स्रष्टा को नहीं। क्योंकि सृष्टि की व्याख्या हो सकती है। एक तो यह ढंग है।
एक और ढंग है, वह है रहस्यवादी का; वैज्ञानिक का नहीं, संत का। अगर संत
को पूछें कि फूल क्या है, तो संत फूल को तोड़ेगा नहीं। क्योंकि टूटते ही फूल का स्वरूप बदल जाएगा। फिर तुम जो भी जानोगे, वह वही नहीं है, जिसको तुम जानने चले थे। उसका गुणधर्म बदल गया। तो संत तो फूल को वृक्ष से अलग भी नहीं करेगा। क्योंकि वृक्ष के साथ अलग हुआ फूल और ही चीज है। वृक्ष के साथ जुड़ा हुआ फूल और ही चीज है। ये दोनों इतनी पृथक हैं चीजें! क्योंकि वृक्ष के साथ जीवंत था, वृक्ष से अलग होकर मृत है। यह फर्क उतना ही है, जितना तुम जिंदा और तुम मुर्दा, तुम्हारी लाश और तुममें है। तो संत तो कहेगा कि तुमने तोड़ा, वहीं गुणधर्म बदल गया; अब तुम जिसे जानोगे, वह मुर्दा होगा। वह खबर मृत्यु के संबंध में होगी। पूछा था जीवित फूल के संबंध में; सूत्र जब तुम लाओगे निकालकर प्रयोगशाला से, वह मरा हुआ होगा। तो संत फूल को वृक्ष से तोड़ेगा नहीं। फिर संत क्या करेगा?
संत फूल को छुएगा भी नहीं, क्योंकि छूना बाहर से होगा। तो परिधि को हम पहचान सकते हैं स्पर्श से कि कोमल है, कि खुरदरी है। लेकिन अंतरात्मा को हम कैसे छुएंगे? उसे छूने का कोई उपाय नहीं, वह स्पर्श के बाहर है। और संत फूल के शरीर में उत्सुक भी नहीं है। क्योंकि फूल में जब आपको सौंदर्य दिखता है तो वह शरीर नहीं है, वह शरीर के भीतर से आती हुई आत्मा की किरणें हैं। संत क्या करेगा?
संत ध्यान करेगा, फूल के पास बैठ जाएगा। फूल में कुछ भी बदलाहट न करेगा, अपने में बदलाहट करेगा; कि सब विचार शांत हो जाएं। फूल को जरा भी न छुएगा, अपने को रूपांतरित करेगा; कि यहां हृदय बिल्कुल मौन हो जाए। यहां हृदय इतना मौन हो जाए कि फूल पूरी तरह प्रवेश कर सके। यहां भीतर की सब सीमाएं गिर जाएं, ताकि फूल भी अपनी सुरक्षा का आयोजन तोड़ दे।
क्योंकि जब तुम आयोजित होते हो सुरक्षा में, तो दूसरा भी तैयार होता है। जब तुम अपने चारों तरफ दीवाल खड़ी करते हो, तो दूसरा भी खड़ी करता है।

दूसरा तुमसे डरा है। जब तुम अपनी सब दीवाल हटा लेते हो, तो दूसरा भी निर्भय हो जाता है।
संत ध्यान से प्रेमपूर्वक फूल के पास बैठेगा। यह फूल का जो ध्यान है, इसमें वह अपने को फूल में लीन करेगा, फूल को अपने में लीन होने देगा। एक घड़ी आएगी, जब संत भी वहां नहीं बचेगा, फूल भी वहां नहीं बचेगा। दोनों की जीवनधाराएं एक-दूसरे में लीन, एक-दूसरे में लयबद्ध हो जाएंगी। तब संत जानेगा कि फूल क्या है! तब वह कहेगा, जिसने एक फूल को जान लिया, उसने सब परमात्मा को जान लिया। यह रहस्यवादी का ढंग है।
होतेई की यह जीवन की घटना है। यह बड़ा अनूठा संत हुआ होतेई। इसको अगर
आप पुराने किसी और संत से तौलेंगे, तो मुश्किल खड़ी होगी, क्योंकि तुलना हो नहीं सकती। इस जैसा दूसरा संत कभी हुआ नहीं। यह होतेई जीवनभर एक गांव से दूसरे गांव चलता रहा, कहीं रुका नहीं, रुकना उसकी आदत न थी। किसी ने होतेई से एक बार पूछा कि ध्यान का सार-सूत्र क्या है? तो होतेई ने कहा, वाक ऑन! चलते जाओ, रुको मत। रुके कि ध्यान गया। जहां हम रुकते हैं, वहीं मन निर्मित होता है। जहां नदी रुकती है, वहीं सरोवर हो जाती है और सड़ने लगती है। होतेई कहता है, चलते रहो, रुको मत। कोई मंजिल नहीं, चलना ही मंजिल है। कहीं पहुंचना नहीं, बहना ही पहुंचना है--बहाव।
यह बुद्ध की एक बहुत गहरी अंतरानुभूति पर निर्भर बात है। क्योंकि बुद्ध ने कहा, जगत में वस्तुएं नहीं हैं, प्रक्रियाएं हैं। तुम भी व्यक्ति नहीं हो, एक प्रक्रिया हो। आमतौर से भाषा के कारण हम सब चीजों को वस्तुओं में बदल देते हैं। हम कहते हैं, नदी है। बुद्ध से पूछो। बुद्ध कहते हैं, है जैसा कुछ भी नहीं, नदी हो रही है। है में तो स्थिरता मालूम पड़ती है, लेकिन नदी कभी भी है की अवस्था में नहीं होती, हमेशा होती रहती है। हम कहते हैं, वृक्ष है। तो ऐसा लगता है, सब ठहरा हुआ है, भाषा के कारण। वृक्ष प्रतिपल हो रहा है। कोई पुराना पत्ता गिरा होगा, जब मैंने कहा, वृक्ष है, कोई नया पत्ता जन्मा होगा। कोई फूल हवा में झड़ गया होगा, कोई कली फूल बन रही होगी। तो वृक्ष कोई ठहरी हुई चीज नहीं है, एक प्रवाह है, एक प्रोसेस है।
तुम भी एक प्रवाह हो। इसलिए बुद्ध कहते हैं, आदमी में कोई आत्मा नहीं। क्योंकि आत्मा कहते ही से ऐसा लगता है, कोई चीज, कोई ठहरी हुई चीज। बुद्ध कहते हैं, आदमी एक प्रवाह है, एक सतत धारा है। जैसे हम दीए को जलाते हैं, तो ज्योति दिखाई पड़ती है। लेकिन ज्योति ठहरी हुई नहीं है, प्रतिपल बदल रही है, बदलती ही जा रही है। परिवर्तन के अतिरिक्त और कुछ भी शाश्वत नहीं है, बुद्ध कहते हैं। बस एक ही चीज सदा है और वह परिवर्तन है। और प्रत्येक वस्तु वस्तु नहीं है, प्रक्रिया है।
तो यह जो होतेई ने कहा वाक ऑन, बस यही सार है ध्यान का कि बढ़ते जाओ। मन सदा रुकना चाहता है। इसलिए मन हमेशा मंजिल की तलाश करता है और कहीं भी मंजिल को मानकर ठहर जाता है। कोई मन धन पर रुक जाता है, कोई मन यश पर रुक जाता है, कोई मन कहीं और, लेकिन रुकना मन चाहता है कि बस रुको। जिस दिन तुम रुकने की आकांक्षा से मुक्त हो जाओगे, जिस दिन तुम मंजिल मांगोगे ही नहीं, उस दिन तुम्हारी मंजिल आ गई। उस दिन तुम्हारे चित्त में कोई भी तनाव न रह जाएगा। क्योंकि कहीं पहुंचना नहीं, तो तनाव क्या है?
कभी तुमने ख्याल किया, सुबह तुम घूमने निकले हो, तब कोई तनाव नहीं होता। रास्ता वही है, दिशा वही है; दोपहर उसी रास्ते पर फिर तुम दफ्तर की तरफ या दुकान की तरफ जाते हो, तब तनाव होता है। रास्ता वही है, तुम भी वही हो, दिशा भी वही है, लेकिन अब तुम कहीं जा रहे हो, कहीं पहुंचना है। अगर न पहुंचे, देर हो गई, तो अड़चन है, तो तनाव है। लेकिन सुबह तुम वहीं घूमने निकले थे। वही रास्ता था। लेकिन तुम्हारी चाल में जो मस्ती थी, वह अब नहीं है। और तुम्हारा हृदय हल्का-फुल्का था। क्योंकि न कहीं पहुंचना था, न कोई जल्दी थी। न पहुंचे तो चलेगा, पहुंचे तो चलेगा, पहुंचना कहीं था नहीं, कहीं से भी वापस लौट आए तो चलेगा। इसलिए घूमने में जो आनंद आता है, वह कहीं जाने में नहीं आता।
तुम खेल खेलते हो, तब एक सुख की प्रतीति होती है। लेकिन वही खेल तुम एक प्रोफेशनल की तरह खेलो, तब सुख की प्रतीति नहीं होती। तुम ताश खेल रहे हो

या कि शतरंज खेल रहे हो, सिर्फ खेल रहे हो। हारे तो ठीक, जीते तो ठीक। जीत में रस नहीं है, खेल में ही रस है। तब एक बात है। लेकिन किसी ने तुमको नौकरी पर रखा है शतरंज खेलने के लिए, तब बिल्कुल बात दूसरी है। तब खेल खेल न रहा, व्यवसाय हो गया।
जहां साध्य आया, वहां व्यवसाय आया। जहां मंजिल आई, वहां धंधा आया। अब
यह जरा कठिन होगा समझना। क्योंकि हम सोचते हैं, एक आदमी ने दुकान छोड़ दी है, हिमालय चला गया, सब व्यवसाय छोड़ दिया। वह वहां भी व्यवसाय कर रहा है, अगर साध्य उसके मन में है। अगर वह सोच रहा है, हिमालय पर बैठकर मैं परमात्मा को पा लूंगा, तो धंधा जारी है। दि एंड, वह जो पीछे अंत-फल है, अगर उस पर नजर लगी है, तो धंधा जारी है।
अगर वह हिमालय पर बैठकर आनंदित है--परमात्मा मिले तो, न मिले तो, मिल गया तो ठीक, न मिला तो उतना ही ठीक--तो उसका हिमालय पर बैठना धार्मिक कृत्य हो गया। जहां साधन ही साध्य है। यहीं होना जहां मंजिल पर होना है। इसको ही अगर हम दूसरी भाषा में कहें तो परमतृप्ति कहते हैं, संतोष। संतोष का अर्थ है, जहां साधन ही साध्य है। असंतोष का अर्थ है, साधन अलग, साध्य अलग। और साधन को हम इसीलिए चला रहे हैं कि किसी तरह साध्य मिल जाए। और हमारा मन साध्य में जीता है। तो जब तक तुम्हारे जीवन में कोई भी साध्य है--मोक्ष, परमात्मा, शांति, आनंद--कुछ भी साध्य है, तब तक तुम दुकानदार ही रहोगे। तब तक तुम्हारे जीवन में वह हल्कापन नहीं हो सकता, जो ध्यानी के जीवन में आता है।
होतेई कहता है कि ध्यान का अर्थ है, वाक ऑन। कहीं रुको मत, बढ़ते ही जाओ। किसी दिशा में भी बढ़ने का सवाल नहीं है, सिर्फ रुको मत, बहते ही जाओ। तुम्हारा बहाव कहीं ठहरे न, तुम गंदे न हो जाओ।
सरोवर गंदा होता है, सरिता कभी गंदी नहीं होती। और कितनी ही गंदगी हम सरिता में फेंक दें, वह गंदगी भी निखर जाती है, सरिता स्वच्छ बनी रहती है।
और सरोवर में गंदगी न भी फेंको, तो भी गंदा हो जाएगा। क्योंकि बंद है, बहाव नहीं है, सड़ेगा, सूखेगा। सरिता सड़ नहीं सकती।
तुम्हारा जीवन जब धंधे का जीवन होता है, तो एक सरोवर की तरह, एक डबरे
की तरह। जब तुम्हारा जीवन ध्यान का जीवन होता है, तो एक सरिता की भांति। यह होतेई किसी गांव रुकता नहीं था--किसी नियम के कारण नहीं। यही मजा
है समझने का। महावीर ने अपने संन्यासियों को कहा है कि तीन दिन से ज्यादा एक गांव में न रुकें। ठीक है। बहुत सोचकर कहा है। क्योंकि तीन दिन हमारे मन की सीमा है। चौथे दिन से लगाव शुरू होता है। अगर आप मकान बदलें और नए मकान में जाएं, तो तीन दिन तक अजनबीपन लगेगा। चौथे दिन से मकान अपना लगेगा।
इसलिए हिंदू, जब कोई मर जाता है, तो तीसरा मनाते हैं। असल में चौथे दिन से, वह जो आदमी जा चुका, सच में जा चुका। तीन दिन तक वह खलता है उसका अभाव, चौथे दिन स्वीकृत होने लगता है।
मनोवैज्ञानिक बहुत अध्ययन करके कहे हैं कि तीन दिन मन की सीमा है। कोई भी चीज के साथ लगाव बनाना हो, तो कम से कम तीन दिन साथ चाहिए। महावीर ने कहा कि तीन दिन से ज्यादा साधु किसी गांव में न रुके। सिर्फ इसलिए, ताकि गांव ठहराव न बन जाए, सरिता रुकने न लगे। तीन दिन के बाद मोह पैदा होंगे। किसी से प्रीति बन जाएगी, किसी से दुश्मनी बन जाएगी, कोई अच्छा लगेगा, कोई बुरा लगेगा। मन होगा कि कोई पास रहे, मन होगा कि कोई पास न रहे। बस, गृहस्थी बननी शुरू हो गई।
लेकिन इसको नियम की तरह जो मानेगा, वह सार से वंचित रह जाएगा। यह कोई नियम नहीं है। क्योंकि तुम तीन क्षण में लगाव बना सकते हो, लगाव ही बनाना है तो। और लगाव न बनाना हो, तो तुम तीन जन्मों तक भी लगाव से मुक्त रह सकते हो। नियम तो ऊपर-ऊपर हैं, कामचलाऊ हैं, नासमझों के लिए हैं। समझदार तो सार को पकड़ेगा।
यह होतेई किसी गांव में रुकता नहीं था, सिर्फ गुजरता था। एक झोला अपने कंधे पर टांगे रखता था। न तो बुद्ध, न कृष्ण, न क्राइस्ट, कोई झोला टांगे हुए दिखाई नहीं पड़े। यह सदा एक झोला अपने कंधे पर टांगे रखता था। और झोले

में होती थीं मिठाइयां, खिलौने, फुलझड़ी, पटाखे, बच्चों के सामान। यह आदमी बड़ा अदभुत रहा होगा।
संतों के सामने हम सब बच्चों से ज्यादा नहीं हैं। और हमारी सारी जीवन-व्यवस्था बचकानी है। खिलौनों से ही हम खेलते हैं बूढ़े होकर भी। खिलौनों का थोड़ा रंग-रोगन बदल जाता है। छोटे बच्चे गुड्डा-गुड्डी की शादी करते हैं। हम गुड्डा-गुड्डी की शादी नहीं करते, जीवित गुड्डा-गुड्डी की शादी करते हैं, बेटा-बेटी। लेकिन कभी छोटे बच्चों को शादी करते देखा हो, तो जैसी उत्तेजना और एक्साइटमेंट और जैसा आनंद और अहोभाव उन्हें मालूम पड़ता है, उससे कम हमें नहीं मालूम पड़ता। वही सब, जो छोटे बच्चे करते हैं, हम बड़े होकर करते हैं। विस्तार बड़ा हो जाता है, लेकिन बीज वही रहता है। और न केवल लड़के-लड़कियों की शादियां हम करते हैं, सीता-राम की भी शादी करते हैं। सीता बना लेते हैं, राम बना लेते हैं, जुलूस निकालते हैं, रामलीला करते हैं। उसमें बड़े-बूढ़े भी वैसे ही सम्मिलित होते हैं। बारात जाती है। और उसमें वैसे ही हम रस लेते हैं, जैसा छोटे बच्चे ले रहे हैं। बच्चे का खिलौना टूट जाए तो उसे पीड़ा होती है, तुम्हारे मंदिर की मूर्ति फूट जाए तो तुम्हें पीड़ा होती है। बच्चे को हम कहते हैं, तू बचकाना है, नासमझ है, खिलौना ही टूटा है, किसी की जान तो नहीं निकल गई! लेकिन तुम्हारी मूर्ति खिलौने से ज्यादा कहां है?
तुम कहोगे, लेकिन हमने इस मूर्ति में प्रतिष्ठा की है भगवान की। उस बच्चे ने भी अपने खिलौने में किसी की प्रतिष्ठा की है। अगर प्रतिष्ठा का ही सवाल हो तो बच्चे की प्रतिष्ठा तुमसे ज्यादा गहरी होगी, क्योंकि वह भोला है। तुम तो चालाक हो। तुम मूर्ति को खरीदकर ले आए हो और तुमने पंडित-पुजारियों को बिठाकर, बैंड-बाजा बजाकर घोषणा कर दी कि भगवान की प्रतिष्ठा हो गई। बाकी तुम गहरे में जानते हो कि भगवान अपने ही खरीदे हुए हैं, बेहतर भी खरीदे जा सकते थे, जरा पैसे की कमी थी। सस्ता तुम खरीद लाए हो, खरीदते वक्त तुमने पूरा मोल-भाव किया है। और तुम यह भी जानते हो कि जिन पंडे- पुजारियों ने यह शोरगुल मचाया हुआ है, वे भी खरीदे हुए नौकर थे। न उनका भाव था, न तुम्हारा भाव था, सब धन का खेल था। भगवान खड़े हो गए हैं। अब तुम उन्हीं के सामने सिर झुकाए खड़े हो, प्रार्थना कर रहे हो कि हे पतितपावन! बचपन अदभुत है। छोटे बच्चे की बात में तो था.ेडी सरलता भी है, क्योंकि उसका भाव गहरा है, खिलौना उसे जीवित हो गया है। लेकिन तुम्हारा परमात्मा तुम्हें जीवित नहीं हुआ है। फिर भी उसका हाथ टूट जाए, पैर टूट जाए, कोई दुश्मन आकर मूर्ति को तोड़ जाए, तो हत्याएं हो जाएंगी। कोई मुसलमान मूर्ति को तोड़ दे कि कोई हिंदू मस्जिद में आग लगा दे, कि सैकड़ों की हत्याएं हो जाएंगी, खून-खराबा हो जाएगा, छुरे निकल आएंगे।
आदमी बचकाना है। होतेई के झोले में पड़े हुए खिलौने तुम्हारे बच्चे होने की खबर है। होतेई यह कह रहा है कि तुम्हें और देने को है भी क्या, तुम कुछ और लेने को राजी भी नहीं हो। या तो खिलौने, फुलझड़ी, पटाखे या मिठाइयां-- बस यही तुम्हारा रस है।
होतेई तुम्हें परमात्मा भी दे सकता है। उसके झोले में वह भी है। पर तुम उसे मांगोगे नहीं, तुम उसे चाहते भी नहीं हो। और जो तुमने मांगा ही नहीं, चाहा नहीं, वह तुम्हें दिया भी नहीं जा सकता। तुम चीजें ही अजीब मांगते हो। होतेई का झोला तुम्हारे मन की खबर है। अन्यथा होतेई उस बोझ को न ढोता।
मेरे पास लोग आते हैं, मैं कभी हैरान होता हूं उनकी बातें सुनकर। कोई
आ जाता है कि उसे नौकरी नहीं मिल रही, कोई आ जाता है कि बीमारी दूर नहीं हो रही, कोई आ जाता है कि पति-पत्नी में बन नहीं रही।
कब पति-पत्नी में बनी है? कब कौन पूरा स्वस्थ हुआ है कि संतुष्ट हो जाए? और कब कौन-सी नौकरी ऐसी लगी है कि मिल गई जो चाहिए थी?
तुम जो मांगते हो, उसका उत्तर है होतेई के झोले में। होतेई गुजरता है
एक गांव से दूसरे गांव, और बांटता जाता है चीजें लोगों को। छोटे बच्चे उसे घेर लेते हैं, वह मिठाइयां बांट देता है, खिलौने बांट देता है।
चलते ही रहना और बांटते ही जाना, संतत्व का आधार है।

इसमें थोड़ा समझ लें। जो रुकेगा, वह बांटने से डरेगा। जो चलता ही रहेगा, वही बांट सकता है। क्योंकि रुकने वाले को अपने चारों तरफ परिग्रह जमाना पड़ता है। जमाना ही पड़ेगा, नहीं तो रुकेगा कहां? घर बनाना हो, घर बसाना हो, तो चीजें आप बांट नहीं सकते, बचानी पड़ेंगी। सिर्फ खानाबदोश ही बांट सकता है।
इसलिए आप देखते हैं, खानाबदोश कौमें हैं, कबीले हैं, हब्शी हैं, बलूची हैं, कभी धनी नहीं हो सकते। कोई हब्शी धनी नहीं हो सकता, कोई उपाय नहीं है। कोई बलूची लाख कोशिश करे, तो भी फोर्ड नहीं हो सकता। कैसे होगा? फोर्ड होने के लिए रुकना जरूरी है। बलूची चलता ही रहता है। जो चलता ही रहता है, वह उतना ही ले चल सकता है, जितना अपने कंधे पर ढो सके, उससे ज्यादा नहीं। यह जो उर्दू का शब्द है खानाबदोश, यह बड़ा प्यारा शब्द है। इसका मतलब है, जिसका घर अपने कंधे पर है। खाना का मतलब घर और बदोश का मतलब कंधे पर-- जिसका घर अपने कंधे पर है। अब घर कंधे पर बनाना हो, तो कोई बहुत बड़ा महल नहीं बना सकते। होतेई का झोला रह जाएगा। और उस झोले में भी चीजें दूसरों के लिए होंगी, बांटने के लिए होंगी।
जो बहेगा, वह बांटेगा भी, यह दोनों का जोड़ है। जो रुकेगा, वह संगृहीत करेगा।
जैनों और बौद्धों ने संन्यासियों को आश्रम में रहने की इसीलिए मनाही
कर दी। जैनों और बौद्धों ने आश्रम नहीं बनाए। क्योंकि हिंदू आश्रम जिस हालत में पहुंच गया उससे साफ हो गई बात कि अगर आश्रम बनता है, तो परिग्रह इकट्ठा हो जाएगा। इसलिए जैन और बौद्ध दोनों ने संन्यासियों को कह दिया कि वे चलते ही रहें, परिव्राजक हों।
दोनों के फायदे और हानियां हैं। यह बात तो समझ में आती है कि साधु चलता ही रहे। चलता रहे, तो उसके पास इकट्ठा नहीं होगा, संग्रह नहीं होगा। लेकिन इसका नुकसान था, वह जैनों और बौद्धों को समझ लेना पड़ा। नुकसान यह था कि अगर साधु चलता ही रहे साधना के क्षण में... । होतेई तो सिद्ध है, तो सिद्ध रुके कि चलता रहे, चलता ही रहता है, कोई फर्क नहीं पड़ता। सिद्ध रुके तो भी रुकता नहीं, क्योंकि उसके भीतर तो बहाव होता ही रहता है, चलता भी रहे, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन साधक अगर चलता ही रहे तो सिद्ध कभी हो ही नहीं पाता। क्योंकि चलते रहने का उपद्रव इतना ज्यादा है कि बैठने की उसे सुविधा नहीं मिल पाती। और ध्यान के लिए बैठना उतना ही जरूरी है, जितना चलते रहना। और सिद्ध का अर्थ है, जो चलते हुए भी बैठा हुआ है, जो बैठे हुए भी चल रहा है, जिसने विपरीत को जोड़ लिया।
तो जैनों और बौद्धों से ध्यान बिल्कुल खो गया, योग बिल्कुल खो गया। आश्रम तो नहीं बने, परिग्रह भी नहीं बना, लेकिन आश्रम की छाया में जो ध्यान गहरा हो सकता था, कहीं बैठकर निश्चिंत भाव से जो अपने में डूब सकते थे, वह मौका नहीं मिला। इसलिए जैन साधु की जीवनचर्या जो है, सुबह से शाम तक बड़ी व्यवसायगत है। सुबह से शाम तक काम ही काम है, उसमें विश्राम का उपाय नहीं है। उसमें बैठने की सुविधा नहीं है। और विश्राम का मौका आए, इसके पहले गांव छोड़ देना है, फिर चल पड़ना है। तो एक फायदा हुआ कि जैन और बौद्ध साधु परिग्रही नहीं हुआ, लेकिन एक नुकसान हुआ कि ध्यानी नहीं हो पाया। हिंदुओं ने इसीलिए आश्रम बनाए थे ताकि लोग ध्यान को उपलब्ध हो जाएं।
और जब ध्यान उपलब्ध हो जाए, तो सिद्ध को फिर कोई सवाल नहीं है, वह चले कि रुके, जैसा उसको सहज हो।
होतेई चलता ही रहता है और बांटता ही जाता है, जो भी उसके झोले में है। लेकिन बच्चे ही उसके आसपास इकट्ठे होते हैं। इसका आप यह मतलब मत समझना कि छोटे बच्चे ही इकट्ठे होते हैं, बच्चे ही हैं--दो तरह की उम्र के, छोटे और बड़े। कोई पांच साल के बच्चे हैं, कोई पचास साल के बच्चे हैं। होतेई जहां भी जाता है, गांव में बच्चे उसे घेर लेते हैं। वह अपने झोले से मिठाइयां उन्हें बांट देता है। वह परमात्मा भी झोले में लाया है, लेकिन कोई मांगने वाला आता नहीं। और जो भी उसके पास आता है, वह कहता है, एक पैसा दे दो।
एक पैसा छोटी से छोटी इकाई है। उससे ज्यादा वह किसी से मांगता नहीं है। कभी जीवनभर उसने इससे ज्यादा नहीं मांगा। एक पैसा वह मांगता है, छोटी

से छोटी इकाई, कई कारणों से। एक पैसा भी देना तुम्हें बहुत कष्टपूर्ण है। देना ही कष्टपूर्ण है। लेने में सुख मालूम पड़ता है, देने में कष्ट मालूम पड़ता है। जब कि सचाई बिल्कुल उलटी है। देने में जैसा सुख है, वैसा लेने में कभी भी नहीं है। और जब भी तुमने दिया है, तो तुमने सुख पाया है। और जब भी तुमने लिया है, तभी तुम सुख से वंचित रह गए हो।
यहां समझ लेने जैसा है कि होतेई तुमसे एक पैसा मांगता है, शायद तुमको लगता होगा, इसे एक पैसे की जरूरत है, तुम गलत समझे। यह एक पैसा तुमसे मांगता है, ताकि तुम्हें थोड़ा सुख उपलब्ध हो सके, जो कि देने से ही उपलब्ध होता है।
एक बार ऐसा हुआ, एक फकीर के पास एक धनपति आया। वह पांच हजार स्वर्ण-मुद्राएं भेंट करने लाया। उसने स्वर्ण-मुद्राओं का झोला फकीर के द्वार पर जोर से पटका, झन-झन के साथ स्वर्ण-मुद्राएं बजीं। वह आकस्मिक नहीं था पटकना, हालांकि उसने ऐसा ही समझा कि आकस्मिक आवाज हुई है।
मन हमारा बड़ा चालाक है। पत्नी सोचती है कि आकस्मिक रूप से उसके हाथ से बर्तन गिर गया है। आकस्मिक नहीं गिर गया है। आज पति से नाराज है। वह भी समझती है कि यह आकस्मिक गिर रहा है, पति भी समझता है। लेकिन यह आकस्मिक नहीं गिर रहा है। जिस दिन पति और पत्नी में नहीं बनती, उस दिन छह गुने ज्यादा बर्तन गिरते हैं, छह गुनी ज्यादा चीजें टूटती हैं, घर में छह गुनी ज्यादा आवाज होती है। हर बार दरवाजा बंद होता है तो आवाज आती है, हर चीज रखी जाती है तो आवाज आती है। पत्नी, शायद आप पूछें, तो वह यही कहेगी कि दरवाजा जोर से लगा क्योंकि हवा तेज थी। हवा कल भी तेज थी, परसों भी तेज थी, हवा आगे भी तेज रहेगी, हवा की तेजी से दरवाजे में आवाज नहीं आती। भीतर कहीं क्रोध है, वह सब तरफ से निकल रहा है।
उस धनपति ने रुपए पटके तो उसने नहीं सोचा होगा कि मैं जानकर पटक रहा हूं। लेकिन जब भी कोई देता है, तो घोषणा करता है।
हमें मजा देने में नहीं है, दिया, इस अहंकार के अर्जित करने में है।
लेकिन फकीर ने कुछ गौर न किया। उस धनपति ने कहा कि पांच हजार स्वर्ण-मुद्राएं लाया हूं भेंट करने। फकीर ने कहा कि ठीक है, रख जाओ। कोई ज्यादा रस न लिया। धनपति ने सोचा कि शायद फकीर समझा नहीं। पांच हजार स्वर्ण-मुद्राएं! कभी गिनी भी न होंगी, देखी भी न होंगी--मन में सोचा।
उसने कहा कि पांच हजार, सुना आपने ठीक से? फकीर ने कहा कि दुबारा दोहराने की जरूरत नहीं, मेरे कान अभी बिल्कुल ठीक हैं, सुन लिया। धनपति बड़ा बेचैनी में पड़ा कि धन्यवाद तक नहीं। तो धनपति ने कहा कि भला मैं कितना ही अमीर हूं, पांच हजार स्वर्ण-मुद्राएं मेरे लिए भी ज्यादा हैं। उस फकीर ने कहा कि मतलब की बात कहो, धन्यवाद चाहते हो? लंबी चर्चा क्यों बढ़ाते हो? क्या तुम्हारी इच्छा है कि मैं धन्यवाद दूं? अगर देने में ही तुम्हें आनंद नहीं आया, तो मेरे धन्यवाद से कैसे आएगा? तुम चूक ही गए आनंद का क्षण तो। वह देने में था।
होतेई तुमसे एक पैसा मांगता, अगर तुम उसे रास्ते पर मिल जाते। तुम भी यही सोचते कि एक पैसा लेने के लिए, इसे एक पैसे की जरूरत है, इसलिए मांग रहा है। होतेई तुम्हें सिर्फ सुख की थोड़ी-सी सुगंध देना चाहता था।
अगर बुद्धों ने भिक्षा मांगी है तुम्हारे द्वार पर, तो तुम्हें देने
का थोड़ा-सा रस लेने के लिए।
उस फकीर ने उस धनपति से कहा, अगर बात ही तू मतलब की समझना चाहता हो, तो धन्यवाद तू मुझे दे। क्योंकि मैंने तुझे मौका दिया है कि तू देने का आनंद ले सके। धन्यवाद तू मुझे दे, अगर बात ही तुझे ढंग की करनी है तो। मुझसे धन्यवाद मांगने का तो कोई सवाल ही नहीं है।
तो होतेई एक पैसा मांगता। और अगर कोई पूछता, कभी कोई साधु, संन्यासी, कोई खोजी मिल जाता और पूछता कि झेन क्या है? ध्यान क्या है? धर्म का रहस्य क्या है? तो भी वह कहता, एक पैसा दे दो। वह कहता कि देना ही ध्यान का रहस्य है। और तुम देने में समर्थ हो जाओ, तो तुम ध्यान में समर्थ हो जाओगे। जितना ही हम लेना और लेने में रस लेते हैं, उतना ही चित्त विचारों से भरता जाता है। इसलिए धनपति रात सो नहीं पाता, सो नहीं सकता। क्योंकि जितना

ही लेने की वासना बढ़ती है, उतना ही विचारों का चक्र भीतर चलने लगता है। थोड़ा सोचो। विचार की आकांक्षा लेने की आकांक्षा है, सब मिल जाए। कैसे सब मिल जाए, इसकी योजना करता है।
एक मनोवैज्ञानिक ने एक रुग्णचित्त व्यक्ति को कहा, नींद नहीं आती है
तो तू ऐसा कर कि रात को भेड़ें गिन। कोई भी चीज गिनने से मन ऊब जाता है, नींद आ जाती है। तो मनोवैज्ञानिक कहते हैं, एक से सौ तक गिनती करो, फिर सौ से वापस लौटो, निन्यानबे, अट्ठानबे, सत्तानबे, फिर एक तक। ऐसा करते रहो, करते रहो, चढ़ो सीढ़ी, उतरो, थोड़ी-बहुत देर में सो जाओगे। तो उस आदमी से कहा, तू ऐसा कर एक से गिनती करना शुरू कर, एक भ.ेड, दो भेड़... । वह भेड़ का धंधा करता था, ऊन का धंधा करता था, तो वह आसान पड़ेगा।
सात दिन बाद वह आदमी आया, उसकी हालत तो बड़ी खराब हो गई थी। पहले आया था,
तब से शरीर से न मालूम कितना वजन कम हो गया था, आंखें बिल्कुल गड्ढों में समा गई थीं, जैसे सात दिन सोया ही न हो।
मनोवैज्ञानिक ने कहा, यह क्या हुआ? तरकीब काम नहीं की? उसने कहा, तरकीब जरूरत से ज्यादा काम कर रही है, मैं मुसीबत में पड़ गया हूं। गिनती मैंने शुरू की, तो पूरी रात गिनता ही रहा, कोई तीन लाख भेड़ें, रुके ही न मन, कि थोड़ा और गिन लो। और फिर इतना रस आ गया। फिर उन भेड़ों का ऊन काटना, फिर उसे बाजार में ले जाकर बेचना, फिर इतने धन की उपलब्धि। इन सात दिन से सो नहीं पाया, अच्छी मुसीबत खड़ी कर दी। पहले मैं थोड़ा सो भी जाता था।
वह जो हमारा मन है, मिलता हो तो बिल्कुल पागल हो जाता है। तत्क्षण हिसाब बांधने लगता है। जो नहीं मिला है, वह मिलने पर क्या करेंगे, क्या न करेंगे। लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, मन की शांति चाहिए। मन की शांति तब तक नहीं हो सकती, जब तक लेने में रस कम न हो जाए।
अगर ठीक से समझो, तो लोभ मन है और अलोभ ध्यान है। जितना बड़ा लोभ, उतना
मन हिसाब लगाता है, उतनी विचारों की तरंगें इकट्ठी होती जाती हैं, उतना ही तुम भीतर विक्षिप्त होने लगते हो। जितना अलोभ, उतना मन को काम नहीं रह जाता करने को। मन को काम तुम देते हो और फिर कहते हो, शांत रहो। मन तो कंप्यूटर है, वह काम में लग जाता है। तुम कहते हो करा.ेड कमाने हैं, वह करोड़ के काम में लग जाता है। तुम उसे कहो कमाना ही नहीं है, सब बांट देना है, मन का काम खतम हुआ, वह विश्राम को चला जाता है। इसलिए शास्त्रों ने लोभ से बड़ा पाप नहीं कहा है और दान से बड़ा पुण्य नहीं कहा है। मतलब ठीक से समझ लें, क्योंकि दानी चित्त ध्यानी हो जाएगा।
इसलिए जो कोई पूछता है, ध्यान का क्या अर्थ? होतेई कहता है, एक पैसा दे दो! देना ध्यान का अर्थ है। और जिस दिन तुम सब देने को तैयार हो जाओगे, उस दिन तुम्हें पाने को कुछ भी न बचेगा, सब मिल जाएगा।
एक युवक एक अंधेरी रात में जीसस के पास आया। उस युवक का नाम था निकोडेमस। वह उस इलाके का--जहां जीसस थे उस रात--सबसे बड़ा धनपति था। रात अंधेरे में उसने जीसस को जगाया और कहा कि दिन में मैं जरा आने से डरता हूं, क्योंकि मेरी प्रतिष्ठा है। और तुम्हारे नाम के साथ मेरा नाम जुड़े, इससे नुकसान हो सकता है।
क्योंकि जीसस तो एक आवारा संन्यासी थे। कभी शराबियों के साथ भी रुक जाते, कभी वेश्याओं के घर में भी ठहर जाते। तो कोई प्रतिष्ठा तो थी नहीं, रिस्पेक्टिबिलिटी तो जीसस की थी नहीं। तो कोई भी आदमी जो प्रतिष्ठित है, डरता था। इसलिए रात आया।
जीसस ने कहा, क्या चाहते हो मुझसे?
निकोडेमस ने कहा, बस इतना ही पूछने आया हूं कि शांति कैसे हो? आनंद कैसे मिले? और देखो मैं चरित्रवान हूं, अपनी पत्नी के सिवाय किसी और स्त्री पर नजर नहीं डालता। जो भी धर्म में कहा है, नियम से पूरा करता हूं। जिस दिन मंदिर जाना है, मंदिर जाता हूं। जो भी परंपरागत धर्म है, वह मैं पूरा करता हूं। दान, जितना धर्म में कहा है, उतना नियम से देता हूं। उपवास जब करने हैं, तब उपवास करता हूं। धर्मग्रंथ जब पढ़ना है, तब धर्मग्रंथ पढ़ता हूं। मेरे शील में, चरित्र में, कोई भी कमी नहीं है। न शराब पीता हूं, न धूम्रपान करता हूं, न जुआ खेलता हूं, रात भी जल्दी बिस्तर पर जाता हूं,

सुबह ब्रह्म-मुहूर्त में बिस्तर से उठता हूं। कोई कमी नहीं है। फिर भी आनंद नहीं है।
जीसस ने कहा, इस सबसे कुछ भी न होगा, तू एक काम कर--जो भी तेरे पास है, तू दान कर आ और लौट आ।
निकोडेमस ने कहा, यह जरा मुश्किल है।
चरित्रवान है, लेकिन यह जरा मुश्किल है। शराब नहीं पीता है, सिगरेट नहीं पीता है, लेकिन यह जरा मुश्किल है।
तो जीसस ने कहा, इस चरित्र का कोई भी मूल्य नहीं। तेरे पास इतना है कि
तू दो-चार कौड़ी दान करके सोचता है, दानी हो गया! और तेरे पास इतना है समय कि तू या तो ताश खेलने में बिताता है या शतरंज खेलने में बिताता है। तो तू मंदिर हो आता है, तो तू समझता है, धार्मिक हो गया! समय तेरे पास बहुत, धन तेरे पास बहुत, सुविधा तेरे पास बहुत, तो तेरा धर्म सिर्फ सुविधा है, और कुछ भी नहीं। तू सब छोड़कर आ।
निकोडेमस ने कहा कि तो फिर मैं जाऊं, यह मुझसे न हो सकेगा।
छोड़नाभर चित्त से नहीं हो सकता। पकड़ना हो सकता है। चित्त पकड़ने की प्रक्रिया है, क्लिंगिंग।
होतेई का कहना कि एक पैसा दे दो, ध्यान का सार है। सवाल एक पैसे का नहीं है, सवाल साम्राज्य का नहीं है। सवाल देने में आनंद और उत्सव अनुभव करने का है, देने में अहोभाग अनुभव करने का है। कुछ भी देने को पास न हो, तो भी देने की भावदशा!
कुछ मिलने को न हो, तो भी लेने की भावदशा बनी रहती है, इसका थोड़ा स्मरण रखो, तो होतेई का सार समझ में आ जाएगा।
होतेई निश्चित ही सिद्ध पुरुष है--सदा बहता चलता, सदा बांटता, सदा दूसरों को देने के सुख की सुगंध का अवसर देता।
और फिर जब किसी संत ने उससे पूछा कि पूरा रहस्य, पूरा राज उस सिद्धि का, जो धर्म से मिलती है? तो उसने अपना झोला नीचे पटक दिया। पूछा पूछने वाले ने, बस इतना ही या और कुछ? तो उसने अपना झोला वापस अपने कंधे पर उठा लिया और चल प.ड़ा।
इसे थोड़ा समझ लें। यह बहुत इंगित महत्वपूर्ण है।
एक झेन वचन हैः साधना के पहले नदियां नदियां हैं, पहाड़ पहाड़ हैं। साधना के मध्य में, न तो नदियां नदियां रह जाती हैं, न पहाड़ पहाड़। साधना के अंत में, फिर नदियां नदियां हो जाती हैं, पहाड़ पहाड़।
अजीब है। एकदम से ख्याल में न आए कि क्या मतलब है। साधना के पहले और साधना के अंत में एक-सी स्थिति आ जाती है। तुम बदल जाते हो, लेकिन स्थिति एक-सी आ जाती है। साधना के मध्य में सब डांवाडोल हो जाता है। अभी तुम संसार में खड़े हो, तब तुम परमात्मा में खड़े हो जाओगे। लेकिन मध्य में, जब तुम दोनों के बीच में रहोगे, तब सब अस्तव्यस्त हो जाएगा। नदियां नदियां हैं अभी, फिर जब तुम परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जाओगे, नदियां नदियां हो जाएंगी; पहाड़ पहाड़। लेकिन मध्य में सब खो जाएगा, नदियां नदियां न रहेंगी, पहाड़ पहाड़ न रहेंगे, सब अस्तव्यस्त हो जाएगा।
संसारी एक तरह से बसा हुआ है। संन्यासी भी पहुंच गया। साधक बड़ी मुश्किल में है। साधक की कठिनाई है, क्योंकि साधक पार कर रहा है बीच में मार्ग को। संसार से एक कदम उठा लिया, एक कदम संसार में रखा है, एक कदम परमात्मा की तलाश कर रहा है, वह मध्य में त्रिशंकु की भांति अटका हुआ है। यह होटेई का झोले को पटक देना, इस बात की खबर है कि साधक का पहला चरण है संसार को गिरा देना। साधक का पहला चरण है सारे बोझ को गिरा देना, सारे मन को गिरा देना। वह जो झोला है, उतना ही था अकेला उसके पास, और कुछ बताने को था भी नहीं बेचारे को। तो उसने अपना पूरा झोला गिरा दिया है कि साधक का पहला काम पूरा गिरा देना है।
और सिद्ध का पूरा काम कि फिर झोले को वापस ले लेना है। लेकिन अब बोझ नहीं है। पहले बोझ था। साधक संसार के बाहर चला जाता है, सिद्ध वापस आ जाता है। सिद्ध फिर संसारी हो जाता है। लेकिन अब संसार में तो होता है, लेकिन संसार उसमें नहीं होता। पहले वह भी संसार में था और संसार भी उसमें था।

महावीर चले गए वन, बारह वर्ष मौन, भाषा छोड़ दी, क्योंकि भाषा समाज है। बोलते हैं, तो हम सदा दूसरे से बोलते हैं। अगर अकेले में भी आप बोलेंगे, तो दूसरे की कल्पना से बोलेंगे।
इसलिए जो भाषा बोलता रहेगा, वह समाज में रहेगा। इसलिए मौन, समाज के बाहर जाने की छलांग है। अगर आप बाजार में बैठे भी मौन हो जाएं, समाज मिट गया, क्योंकि समाज का अर्थ है भाषा। इसलिए जानवरों का कोई समाज नहीं है, क्योंकि भाषा नहीं है। कोई राज्य नहीं, कोई समाज नहीं, पुलिस, पुरोहित कोई भी नहीं, क्योंकि भाषा नहीं। आदमी का समाज है, क्योंकि भाषा है। वैज्ञानिक कहते हैं कि भाषा न हो, तो समाज खो जाए।
थोड़ी देर सोचें, चौबीस घंटे को भाषा न रहे दुनिया में। सब खो जाए। सब! कुछ भी बचाना असंभव है। चौबीस घंटे के लिए भाषा न हो, सब सभ्यता खो जाए, सब संस्कृति खो जाए, आप निकट जंगली जानवर हो जाएं। इसलिए सारी सभ्यता- संस्कृति भाषा में भरी है।
महावीर चले गए जंगल और पहला काम उन्होंने किया, मौन ले लिया। क्योंकि
जब तक भाषा न कटे, तब तक समाज से बाहर जाना संभव नहीं। जंगल में जाना आसान है, लेकिन समाज पीछा करेगा, भाषा के साथ समाज चलता रहेगा।
आदमी अकेला भी हो जाता है, तो अपने से बात करने लगता है। खुद से ही चर्चा करता है, खुद को दो हिस्सों में बांट लेता है, समाज बना लेता है वहां भी। और जारी हो जाती है बात।
महावीर मौन हो गए एकांत में, बारह वर्ष मौन रहे। और जब परम मौन उपलब्ध हुआ, जब जान लिया, जैसे होतेई ने झोला गिरा दिया, ऐसा जब समाज बिल्कुल गिर गया, महावीर वापस लौट आए। अब समाज से कोई भी डर नहीं है। होतेई ने झोला फिर अपने कंधे पर वापस रख लिया और आगे चल पड़ा।
साधक को छोड़ना पड़ेगा समाज, सिद्ध वापस लौट आता है। साधक को हटाना पड़ता
है बोझ, सिद्ध फिर बोझ को ले लेता है। साधक अगर बोझ को ढोता रहे, तो कभी सिद्ध न हो पाएगा। और सिद्ध अगर बोझ लेने से डरे, तो जानना कि अभी सिद्ध ही नहीं हुआ है। साधक की तकलीफ है बोझ में, क्योंकि बोझ उसे मिटाता है। सिद्ध की कोई तकलीफ नहीं है, क्योंकि बोझ उसे कोई बोझ नहीं है। सभी संत संसार में वापस लौट आते हैं। एक दिन बाहर जाते हैं, एक दिन वापस लौट आते हैं। सिद्धत्व के दो चरण हुए, झोले को गिराना और झोले को वापस उठा लेना।
यह होतेई बड़े सूक्ष्म संकेतों में सारी बात कह रहा है। लेकिन होतेई आपको रास्ते पर मिल जाए, तो आप पहचान न सकेंगे। क्योंकि खिलौनों में उलझा है, आपको लगेगा। हालांकि वह खिलौनों में आपकी वजह से उलझा है। और उलझा नहीं है, उसका इंगित है कि तुम सब बच्चे हो, मिठाइयां चाहते हो, खेल-खिलौने चाहते हो, फुलझड़ी-पटाखे चाहते हो। आपको लगेगा, एक-एक पैसा मांगता है, अभी भी भीख जारी है इसकी, मांगना जारी है। गलती हो जाएगी, वह तुम्हें देना सिखाता है।
बुद्ध ने भीख मांगी और इस पृथ्वी के हिस्से पर, भारत में, एक अनूठी घटना घटी, जो दुनिया में कहीं भी नहीं घटी। भिखारी को इतना बड़ा सम्मान जितना हमने दिया है, संसार में कभी किसी ने नहीं दिया। भिखारी सब जगह निंदित है। तुम भी, रास्ते पर अगर भिखारी मांगता है, तो निंदा करते हो। तुम भी बड़े रेशनालाइजेशंस खोजते हो कि भिखमंगे बढ़ रहे हैं, इससे तो सब समाज नष्ट हो जाएगा; और भिखमंगे को देना भिखमंगेपन को बढ़ाना है। हालांकि यह सच नहीं है। यह तुम्हारी दलील सिर्फ तुम्हें देने से रोकने की दलील है। तुम्हें प्रयोजन भिखारी के बढ़ने से नहीं है। और अगर तुम देते भी हो कभी, तो मजबूरी में देते हो, भिखारी को टालने को देते हो, या अहंकारवश देते हो, ताकि चार लोग देख लें कि तुमने दिया।
भिखारी भी बड़े कुशल हैं, अकेले आप जा रहे हो, तो पीछा न करेंगे; चार आदमियों के साथ जा रहे हो, पैर पकड़ लेंगे। भिखारी भी जानते हैं कि उनको कोई नहीं देता, वह जो चार आदमी देख रहे हैं, उनको देखकर लोग देते हैं कि अब दे ही दो दो पैसे। ये चार आदमी क्या सोचेंगे कि कैसा कृपण है, दो पैसे न दे पाया! भिखारी को तुम टालते हो, इसलिए नहीं कि तुम चाहते हो कि भिखारी भिखारी न रहे, क्योंकि तुम्हारी पूरी जीवन-व्यवस्था हजारों को भिखारी बना

रही है। भिखारी तो तुम पैदा कर रहे हो। लेकिन देने से मन कतराता है, डरता है, भयभीत होता है। एक पैसा देने से भी घबराता है। देने का नाम सुनते ही भीतर कोई मृत्यु जैसी घटने लगती है।
लेकिन भारत ने एक अनूठा प्रयोग किया। बुद्ध ने तो अपने संन्यासियों
को भिक्षु का नाम ही दिया। हिंदू अपने संन्यासी को स्वामी कहते हैं। जैन अपने संन्यासी को मुनि कहते हैं। उनके अपने प्रयोजन हैं। मुनि, जो मौन हो गया है या जिसने मौन की प्रतिज्ञा ली या मौन होने की तैयारी की। स्वामी, जो अपना मालिक हो गया और जिसने इंद्रियों की गुलामी छोड़ दी। लेकिन बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को, अपने संन्यासियों को भिक्षु कहा, भिखारी कहा।
सोचने जैसा है। बुद्ध का विचार भी बड़ा कीमती है। बुद्ध ने कहा कि तुम मांगने वाले हो जाओ, ताकि तुम्हारे द्वारा प्रत्येक व्यक्ति देना सीख सके। और जब बुद्ध खुद भीख मांगते थे, तो तुम सोच सकते हो, द्वार पर तुम्हारे बुद्ध आकर खड़े हुए हों और भीख मांग रहे हों, अगर तुम्हारे पास थोड़ी भी समझ होती, तो वही क्षण तुम्हारे लिए महान ध्यान का क्षण हो जाए। बुद्ध को देते वक्त भी अगर तुम्हारा हृदय देने से न भरा; तब भी तुम बचाते रहे, सोचते रहे, कैसे टालो इस आदमी को, कुछ दे-दिवाकर निपटारा करो, अब आ ही गया है द्वार पर; अगर तुम बुद्ध को भी सामने पाकर देने से बच गए, तो कब तुम्हारे जीवन में दान का और ध्यान का क्षण आएगा? भिक्षु को हमने परमपद दिया।
एक गांव में बुद्ध का आना हुआ, और उस गांव के सम्राट ने अपने महामंत्री को पूछा कि क्या यह उचित होगा कि मैं स्वागत करने जाऊं गांव के बाहर? उस मंत्री ने सम्राट की तरफ देखा और कहा कि मेरा इस्तीफा स्वीकार कर लें।
वह बूढ़ा आदमी था, अनुभवी था, जरूरी था राज्य के लिए, वही राज्य चला रहा था। सम्राट ने कहा, यह क्या बात है? मैं सिर्फ पूछ रहा हूं कि क्या मेरा जाना उचित होगा?
उस महामंत्री ने कहा, यह पूछना ही पर्याप्त है कि आपके पास बैठना उचित नहीं अब। बुद्ध गांव आते हों--माना कि वे भिखारी हैं--और सम्राट सोचता हो कि उनके स्वागत को जाऊं या न जाऊं, तो वह सम्राट धार्मिक नहीं है, वह सम्राट अज्ञानी है। बुद्ध भिक्षु हैं, कभी सम्राट थे; वही सब, जो तुम्हारे पास है, उसे वे छोड़ चुके हैं। और मूल्य उसका है, जो छोड़ा गया; मूल्य उसका नहीं है, जो पकड़ा गया। क्योंकि मूल्य उस चित्त का है, जो छोड़ता है। मूल्य उस चित्त का नहीं है, जो पकड़ता है। पकड़ने वाला चित्त तो जगत में सर्वाधिक साधारण चित्त है, सभी के पास है। छोड़ने वाला चित्त असाधारण चित्त है। होतेई मांगता है; आपसे मांगता, तो आप सोचते कि भिखारी है। और भिखारी में तो भगवान को देखना बहुत कठिन है। और भिखारी में सिद्ध को देखना बहुत कठिन है। सम्राट में आपको सिद्ध दिखाई भी पड़ जाए, लेकिन भिखारी में सिद्ध को देखना बहुत कठिन है। और फिर होतेई का झोले को गिरा देना और वापस उठाकर रख लेना तो आपके संन्यास की पूरी धारणा को तोड़ देता है। हमने संन्यास की धारणा का अर्थ समझा है, संसार को छोड़ देना, बस इतना। होतेई कह रहा है, यह आधा है। संन्यास संसार का छोड़ना है, जरूर, और फिर संन्यास संसार में वापस लौट आना है, उतना ही जरूर।
सिद्धत्व उस दिन पूरा है, जिस दिन छोड़ा, छोड़े हुए में वापस रहने की कला
भी आ गई। दूर हट गए और फिर पास भी आ गए, लेकिन अब संसार स्पर्श नहीं करता है।

प्रश्नः ओशो, ध्यान से संवेदनशीलता बढ़ती है। लेकिन संवेदनशीलता बढ़ने
पर जीना और मुश्किल हो जाता है।
क्योंकि मन की प्रतिक्रियाएं तीव्र तथा उत्कट होती हैं। और बात-बात में जैसे पूरे प्राण दांव पर लग जाते हैं। तो ऐसी स्थिति में संतुलन का मध्यबिंदु कैसे साधा जाए?

निश्चय ही, जैसे-जैसे ध्यान बढ़ेगा, संवेदनशीलता भी बढ़ेगी। संवेदनशीलता बढ़ने से समस्याएं भी बढ़ेंगी। क्योंकि संवेदनशीलता का अर्थ है, हर चीज, हर घटना उसकी पूरी त्वरा में, तीव्रता में अनुभव होगी। अगर कोई गाली देगा, तो उसकी चोट ध्यानी के भीतर जिस भांति गूंजेगी, वैसी गैर-ध्यानी के बीच नहीं गूंजेगी। अगर कांटा चुभेगा, तो उसकी चुभन का जैसा स्पष्ट बोध ध्यानी को होगा, वैसा गैर-ध्यानी को नहीं होगा। क्योंकि गैर-ध्यानी जीता है मूर्च्छा में, उसका होश धुंधला-धुंधला है। जितना होश धुंधला है, उतनी ही पीड़ा भी कम अनुभव होती है।
शायद पीड़ा कम अनुभव हो, इसीलिए हम होश को कम करके जीते हैं। अगर मनोवैज्ञानिक से पूछें, तो वह कहेगा कि हर बच्चे ने अपने बचपन में होश को कम करना सीख लिया।
सब बच्चे संवेदनशील पैदा होते हैं। फिर अपनी संवेदना को मारना शुरू करते हैं। क्योंकि संवेदना के साथ जीना अति कठिन है। संवेदना का बोथला हो जाना जरूरी है। बच्चे इसलिए, अगर छोटा-सा उनको क्रोध आ जाए, बिल्कुल पागल हो जाते हैं। उछलेंगे, कूदेंगे, पैर पटकेंगे, आग जलने लगेगी उनके पूरे व्यक्तित्व में। बात जरा-सी होगी। और हम टाल देते हैं कहकर कि बच्चे हैं, कोई बात नहीं। और हम समझाते हैं उनको कि थोड़ा संयम रखो, थोड़ा नियंत्रण रखो, ऐसा कर देना ठीक नहीं है।
मैं एक मित्र के घर मेहमान था। उनकी गाड़ी में किसी को मिलने गया। उनका छोटा बच्चा भी उनके साथ था। वह ड्राइव कर रहे थे, उनका बच्चा उनके बगल में ही बैठा था। जिनके घर मिलने हम गए थे, उतरकर मिलने चले गए, वह बच्चा गाड़ी में बैठा रहा। लौटकर हम आए, तो बच्चा अपनी गाड़ी में बैठा हुआ था। पर मुझे लगा कि कुछ अड़चन है, जैसे बच्चा कुछ सम्हाल रहा है! जैसे कुछ चीज फूट न पड़े, तो वह उसको रोक रहा है। उसके चेहरे पर, उसके हाथ, उसके पैर में।
जैसे ही घर लौटे, गाड़ी से उतरकर वह इतने जोर से चीखा और रोया, तो मैंने पूछा कि मामला क्या है? तो उसने कहा, जब आप सब लोग भीतर चले गए थे, तब मुझे झपकी आ गई और मेरा सिर स्टीयरिंग-व्हील से लग गया जोर से, बहुत मुझे दर्द हो रहा है। लेकिन पिताजी ने कहा है कि घर के बाहर कोई आवाज या रोना अगर किया, तो दोबारा कभी साथ नहीं ले जाएंगे। तो इसलिए मैं सम्हाले रहा।
वह कोई घंटेभर पहले की बात है। घर आते ही से उसने रोना-धोना और चीखना- चिल्लाना शुरू किया। चोट घंटेभर पहले लगी है, पर उसने सम्हाल ली।
बच्चों को हम सिखा रहे हैं कि सम्हालो, जरूरी है। जितना हम चोटों को सम्हालते हैं, उतनी हमारी संवेदनशीलता बोथली होती जाती है। फिर हम तरकीबें सीख लेते हैं, जिससे पीड़ा का ज्यादा अनुभव न हो। क्योंकि पीड़ा बहुत है, अगर उसका अनुभव हो, तो जी न सकेंगे।
एक युवक खेल रहा है हाकी के मैदान में, पैर में चोट लग जाती है। खेलते वक्त तो पता नहीं चलता; खेल बंद हुआ, तब चलता है। क्योंकि खेलते वक्त उसका पूरा मन खेल की तरफ जा रहा था, पैर की तरफ नहीं जा रहा था, तो चोट पता नहीं चलती।
आपको भी जीवन में चौबीस घंटे चोटें लगती हैं, लेकिन आपका मन कहीं लगा रखते हैं आप--धंधे में, व्यवसाय में, काम में--व्यस्त हैं, कुछ पता नहीं चलता। धीरे-धीरे आपका व्यक्तित्व चारों तरफ से खोल में छिप जाता है। फिर जब आप ध्यान शुरू करेंगे, तो बचपन फिर से वापस लौटेगा, फिर संवेदनशीलता ताजी होगी। फिर प्रतीतियां गहरी होंगी। जो भी होगा, वह बहुत गहरे से होगा। इससे अड़चन खड़ी होती है।
इसलिए ध्यानी को बड़ी मुसीबत होती है और घर के लोगों को, उसके मित्र-परिजनों को और भी अड़चन होती है। क्योंकि उनकी समझ के बाहर होता है। वे तो सोचते हैं, ध्यान करने वाला ज्यादा शांत होगा। और ध्यान करने के पहले यह आदमी इतना क्रोधी नहीं था और अब ध्यान करके ज्यादा क्रोधी मालूम पड़ता है। वे तो सोचते हैं, ध्यान करने वाला आदमी बिल्कुल मुर्दे की भांति हो जाएगा, चोट भी मारो उसको, तो वह बैठा हुआ देखता रहेगा।
यह सच है। यह घड़ी भी आती है, लेकिन यह ध्यान के शुरुआत में नहीं आती।
यह तो ध्यान की परम निष्पत्ति है। ध्यान के शुरू में तो सब बांध टूट

जाएंगे। ज्यादा क्रोध आएगा, ज्यादा लोभ मालूम पड़ेगा, हर चीज ज्यादा मालूम पड़ेगी। क्योंकि जो-जो चीज तुमने बचपन से रोक रखी है, उस सब की सीमा टूटेगी, वह सब बहना शुरू होगा। ज्यादा अशांति होगी। बीमारी होगी, तो ज्यादा बेचैनी मालूम पड़ेगी। खुशी होगी, तो बहुत उत्तेजना आ जाएगी। जरा-सी बात प्रसन्न कर देगी और नाचने की हालत मालूम होने लगेगी। और जरा सी बात उदास कर देगी, लगेगा मर जाएं। ध्यान की शुरुआत में ऐसा होगा।
साधक क्या करे? जब ऐसा हो, तो इसे अगर रोका, तो ध्यान के बढ़ने में बाधा पड़ेगी। क्योंकि यह ध्यान के बढ़ने का अनिवार्य हिस्सा है कि तुम प्रत्येक चीज को उसकी परिपूर्णता में अनुभव कर सको। दुख तो दुख, क्योंकि तभी तुम आनंद को भी उसकी परिपूर्णता में अनुभव कर पाओगे। और अगर तुम संसार को ही उसकी परिपूर्णता में अनुभव नहीं करते, तुम परमात्मा को उसकी परिपूर्णता में कैसे अनुभव करोगे? और अभी तो संसार चारों तरफ है, तो इसकी ही चोट पहले पड़ेगी।
तो पहली तो बात ध्यान रखें, संवेदनशीलता को मारना नहीं है। उसे गहन करना है, बढ़ाना है। लेकिन तब अड़चन होगी, उस अड़चन के कारण अपनी खोल को मजबूत मत करना। और अड़चन इतनी ज्यादा हो सकती है, उस हालत में क्या करना?
उस हालत में प्राथमिक चरण एक, कि जब भी ऐसा लगे कि कोई संवेदना बहुत तीव्र हो रही है, तब अपने कमरे को बंद करके अलग, चुपचाप, उस संवेदना को पूरी तरह निकल जाने देना। उसे दूसरों पर मत निकालना। क्योंकि दूसरों पर निकालने का अर्थ, एक लंबीशृंखला का पैदा करना है। अगर क्रोध आ गया है, तो बजाए उसे दूसरे पर निकालने के कमरे में एक तकिए को लेकर उस पर निकाल देना। पहले तो बहुत अजीब लगेगा कि तकिए पर कैसे क्रोध निकालें। लेकिन यह मैं सैकड़ों प्रयोग के अनुभव से कहता हूं कि तकिए पर क्रोध उतने ही मजे से निकल जाता है, जितना पत्नी पर या पति पर। और तकिया प्रतिकार नहीं करता। और तकिए के साथ कर्म की कोईशृंखला नहीं बनती कि अगले जन्म में तकिया सताएगा, कि आज तकिए पर क्रोध किया तो वह शाम को बदला लेगा। तकिया परम सिद्ध है। और महत्व इस बात का है कि क्रोध को रोकना मत, तकिए पर पूरी तरह टूट पड़ना। पहले दो-तीन हमले तो ऐसे लगेंगे, क्या मजाक कर रहा हूं! लेकिन दो-तीन बार तकिए पर चोट करके चौथी चोट आप पाएंगे सजीव हो गई। और भीतर से पूरा जोश आ गया। तकिए को मारना, बोलना, कूटना-पीटना, जो भी करना हो, कुछ भी रोकना मत। कुछ ही दिन में तुम कुशल हो जाओगे। और तुम हैरान हो जाओगे... । पश्चिम में मनोवैज्ञानिक इसका उपयोग कर रहे हैं।
जापान में एक बहुत बड़े अमीर उद्योगपति ने अपने कारखाने के बाहर अपनी प्रतिमा लगवा दी है। बहुत होशियार आदमी है, और उसको मनोवैज्ञानिकों ने सलाह दी कि अपने आफिस के सामने एक प्रतिमा बना दो। जिसको भी क्रोध आए... नौकरों को क्रोध स्वभावतः आता है, कोई कारण भी होना जरूरी नहीं, नौकर होना ही काफी क्रोध का कारण है। किसी की गुलामी करना, किसी की सेवा करना, किसी का नौकर होना, दुख का कारण है। कोई दस हजार लोग उसकी फैक्टरी में काम करते हैं। तो उसने मूर्ति सामने लगवा दी है और आज्ञा दे रखी है कि जिसको भी उस मूर्ति के साथ दुर्व्यवहार करना हो वह कर सकता है। अक्सर मजदूर, कभी मैनेजर, कभी कोई आकर मूर्ति की पिटाई करके वापस फैक्टरी में चले जाते हैं। इसके परिणाम बड़े महत्वपूर्ण हुए हैं। मालिक और नौकरों के बीच एक सौमनस्य पैदा हुआ है
ऐसा हम आमतौर से करते हैं। अभी भी हम करते हैं। रावण को हम अभी भी जला रहे हैं। रावण को जलाकर हमको जरूर कुछ न कुछ हल्कापन आता है। और जब पहली दफा रावण को जलाया होगा, तब तो बहुत हल्कापन आया होगा। अभी भी जब हम क्रोध से भर जाते हैं, तो किसी का पुतला, इंदिरा का या भुट्टो का या किसी का पुतला लेकर जुलूस निकालकर, जूते मारकर जला देते हैं। हल्कापन आता है। मन हल्का हो जाता है, तृप्ति हो जाती है।
जिसको तुम सामूहिक रूप से करते हो, उसे व्यक्तिगत रूप से करना। अपने
ही कमरे में, जिसको तुम ध्यान का कमरा बना लेना, वहां एक तकिया रख छोड़ो। अगर पति पर क्रोध है तो तकिए पर पहले पति को प्रतिष्ठापित कर लो, जैसे भक्त

मूर्ति में भगवान को प्रतिष्ठापित करता है, फिर पूरे क्रोध को निकाल डालो। और जब तक क्रोध समाप्त न हो जाए, कमरे के बाहर मत आओ।
और तुम चकित होओगे कि अगर क्रोध पूरा निकल गया, बाहर आकर जब पत्नी पति
को देखेगी, तो उसे बड़ी दया और बड़ी ममता और बड़ा प्रेम मालूम होगा, जैसे तूफान के बाद एक हल्की शांति आ जाती है।
अगर पैर में चोट लग जाए और पीड़ा हो, तो कमरे में चले जाओ और रो लो। छोटे बच्चे की तरह हल्के हो लो। पैर में कांटा गड़ा है, तो यह मत कहो कि मेरे जैसा मर्द कहीं रो सकता है! ऐसा कोई मर्द ही नहीं है दुनिया में, जो रो न सकता हो। और जो मर्द रो नहीं सकता, वह मर चुका है।
लेकिन समझाया गया है बचपन से हमें कि मर्द हो, रोना मत। इसलिए बड़ी हैरानी की बात है, सिर्फ स्त्रियां दुनिया में रोने में स्वतंत्र हैं, पुरुष नहीं। हालांकि दोनों की आंखों में आंसू की गं्रथियां बराबर हैं। इसलिए प्रकृति ने कोई भेद नहीं किया आंसुओं में। नहीं तो पुरुष की आंखों में गं्रथियां कम होतीं या बिल्कुल न होतीं; प्रकृति भी चाहती है कि तुम भी रोओ। तुम्हारे मर्द होने से कोई फर्क नहीं पड़ता।
रोना एक अनूठा प्रयोग है। क्योंकि रोना तुम्हारे भीतर से न मालूम तुम्हारे कितने उभार और ज्वर को बाहर ले जाता है, निष्कासित कर देता है। इसलिए स्त्रियां हत्याएं नहीं करतीं, पुरुष करते हैं। क्योंकि स्त्रियां रोज रोकर अपने दुख को निकाल लेती हैं, पुरुष इकट्ठा करते चले जाते हैं। जब बहुत दुख इकट्ठा हो जाता है, तो उसका विस्फोट खतरनाक है। स्त्रियां कम पागल होती हैं। जो पुरुष रो सकता है, वह भी पागल नहीं होगा। जब तुम रो ही नहीं पाते, तो सब भीतर कुंद, इकट्ठा हो जाता है। और हजार आंसू जब इकट्ठे हो जाते हैं, तो जहर पैदा होता है।
तो मत सोचना कि मर्द हो, कि उम्र तुम्हारी बड़ी है, कि अब तो घर में नाती-पोते हैं, तुम कैसे रो सकते हो! इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। नाती-पोते हैं तो तुम और भी आनंद से रो सकते हो। और जीवन के अनुभव ने अगर तुम्हें कुछ भी सिखाया हो, तो एक बात जरूर सीख लेना कि कुछ भीतर दबाना मत, उसे निकाल देना। और दूसरी बात उसे किसी व्यक्ति पर मत निकालना। क्योंकि उसे कष्ट देने का कोई भी कारण नहीं है। यह तो एकांत में ही निकाला जा सकता है। इसे मैं रेचन कहता हूं, कैथार्सिस कहता हूं। प्रत्येक ध्यानी को रेचन से गुजरना होगा। सिर्फ शांत हो जाना काफी नहीं है; अशांति के क्षण तुम्हारे भीतर दबे हैं, उनको भी निकालना है।
और जब एक घड़ी ऐसी आएगी कि तुम्हारे भीतर न क्रोध बचेगा निकलने को, न अशांति बचेगी निकलने को, तब तुम्हारा ध्यान सहज होगा। तब तुम्हें इस तकिए को जाकर गंगा में विसर्जित कर देना है। इसने बड़ा साथ दिया, इसको धन्यवाद देकर, इसका जुलूस निकालकर, इसको तिरोहित कर देना है। लेकिन तब तक इसकी जरूरत है।
संवेदना बढ़ेगी, अनुभव गहरे होंगे, दुख-सुख सभी बहुत गहरी चोट पहुंचाएंगे, हृदय तक तीर चला जाएगा। रोकोगे, ध्यान नहीं बढ़ेगा; दूसरों पर निकालोगे, अड़चन, उपद्रव, जाल पैदा होगा। एकांत में जाना और संवेदनाओं को उलीच डालना।
ध्यान के साथ रेचन अनिवार्य प्रक्रिया है। और जब रेचन पूर्ण हो चुका होगा, तभी तुम्हारा ध्यान शुद्धतम होगा। शुद्ध ध्यान समाधि है। ध्यान के साथ रेचन चलेगा। जब ध्यान समाधि बनेगी, तभी रेचन बंद हो सकता है।
सिद्ध का कोई रेचन नहीं है, क्योंकि वह कुछ इकट्ठा नहीं करता, लेकिन साधक के जीवन में रेचन अनिवार्य है।
आज इतना ही।

नहिं राम बिन ठांव
बारहवां प्रवचन

शिवलिंगः परमभोग का आस्वाद

प्रश्नः ओशो, कल आपने कहा कि क्रोध-घृणा आदि भावों को दूसरे पर न निकालें। लेकिन ध्यान में जाने पर जब दमित काम-ऊर्जा बाहर कूद पड़ेगी, तो उसके रेचन के लिए तो दूसरा आवश्यक ही है। और यह काम-ऊर्जा जब भयंकर झंझावात की तरह अपने आदिम रूप में प्रकट होती है, तो न तो नियंत्रण काम देता है और न साक्षीभाव। वह तो अभिव्यक्ति ही मांगती है। लेकिन काम के साथ हमारे सारे नैतिक मूल्य जुड़े हुए हैं। तो इस काम-ऊर्जा की अभिव्यक्ति के लिए यदि विद्यमान पति या पत्नी में पर्याप्त गहराई न हो, तो क्या साधक अनुकूल साथी की खोज करे? और क्या इससे बहुत-सी उलझनें पैदा नहीं होंगी?

चाहे क्रोध हो, चाहे काम, या अन्य कोई संवेग, दूसरे की जरूरत अनिवार्य नहीं है। और दूसरे से बंधकर जो भी वेग निकलेगा, उससेशृंखला निर्मित होती है। क्रोध आया और किसी पर आपने क्रोध प्रकट किया, तो दूसरा भी क्रोध का प्रत्युत्तर देगा; तब और क्रोध आएगा। तब इसका अंत कहां है?
इसलिए जब भी दूसरे के साथ हम किसी भाव से जुड़ते हैं, तो हम एक अंतहीन उपद्रव में पड़ रहे हैं।
संन्यास का अर्थ ही यही है कि अब से मेरे भाव और मेरे संवेग दूसरे से मैं नहीं जोडूंगा। अब मेरे भाव और मेरे संवेग एकांत में ही प्रकट होंगे और विसर्जित होंगे। यह अनंत आकाश ही अब उन्हें लेने वाला होगा, अब मैं व्यक्तियों को उन्हें नहीं दूंगा।
व्यक्तियों को देने का अर्थ ही यह होता है कि मैं संबंध निर्मित कर रहा हूं, एकशृंखला बना रहा हूं। दूसरा भी मनुष्य है, मेरे ही जैसा कमजोर है, उसमें प्रतिक्रियाएं पैदा होंगी। दूसरा आकाश जैसा तो नहीं है कि तुम्हें आत्मलीन कर लेगा, आत्मसात कर लेगा और प्रत्युत्तर न देगा। दूसरे में तो प्रतिगूंज होगी। फिर तुममें प्रतिगूंज की प्रतिगूंज होगी। और फिर यह सिलसिला जारी रहेगा।
जन्मों-जन्मों से यही तुमने किया है। न मालूम कितने जाल तुमने अपने चारों तरफ खड़े कर लिए हैं। न मालूम कितने लोगों पर क्रोध किया है। न मालूम कितने लोगों से लोभ किया है। न मालूम कितने लोगों से मोह और काम के संबंध निर्मित किए हैं। उन सबका बोझ तुम ढो रहे हो।
इस बोझ के बाहर जाने का केवल एक ही उपाय है कि तुम दूसरे से अपने संवेगों को जोड़ना छोड़ दो। एकांत में तुम्हारे संवेग प्रकट हों।
इसे समझना पड़े, क्योंकि बड़ा कठिन है। क्रोध तुम्हें समझ में भी आ जाए
कि एकांत में निकाल लेंगे, लेकिन काम कैसे निकालेंगे?
क्रोध भी कठिन है एकांत में निकालना प्रथम चरणों में, क्योंकि क्रोध
भी दूसरे की मांग करता है। इसलिए मैंने तुम्हें तकिया दिया। वह सिर्फ सहारा है। जल्दी ही उसे भी छोड़ देना है, क्योंकि वह भी दूसरा बन जाता है। पर प्राथमिक रूप से उचित है, उपयोगी है।
अगर तुम तकिए पर क्रोध वास्तविक रूप से कर सकते हो, तो कोई भी कारण नहीं है कि तकिए पर तुम प्रेम क्यों वास्तविक रूप से नहीं कर सकते? अगर तकिए पर तुम नाराज हो सकते हो, तो तकिए को तुम आलिंगन क्यों नहीं कर सकते? और जब तुम दूसरे व्यक्ति के साथ क्रोध या प्रेम के संबंध बनाते हो, तब
भी खेल तो सब मन का ही है। दूसरा करेगा क्या? जब तुम किसी को आलिंगन में लेते हो, तब दूसरे का हड्डी-मांस-मज्जा ही तुम्हारे हाथ में आती है। वह कुछ तकिए से ज्यादा मूल्यवान नहीं है। आखिर हड्डी या मांस या चमड़ी तकिए से कैसे ज्यादा मूल्यवान हो सकती है? बस तुम्हारा ख्याल है कि दूसरा मौजूद है। इसलिए तुम अपने प्रेम को विस्तीर्ण कर पाते हो।
जब तुम किसी आदमी के सिर पर चोट करते हो, तो उस चोट में और एक तकिए पर लकड़ी से चोट करने में क्या फर्क है? फर्क तुम्हें दिखाई पड़ता है, क्योंकि तुम मानते हो, दूसरा वहां है और तकिया तो कोई भी नहीं। फर्क दिखाई पड़ता है,

क्योंकि दूसरे से प्रत्युत्तर मिलेगा और तकिए से प्रत्युत्तर नहीं मिलेगा, इतना ही फर्क है।
दूसरा जवाब देगा। जब तुम प्रेम से किसी व्यक्ति को आलिंगन में लोगे,
तो वह भी तुम्हें आलिंगन में लेगा। उससे तुम्हें प्रेम करने में सुविधा पड़ेगी, क्योंकि प्रत्युत्तर जगाएगा, प्रत्युत्तर उत्तेजित करेगा औरशृंखला निर्मित हो जाएगी।
तकिए के साथ कठिनाई यह है कि तुम अकेले हो। तकिया कोई उत्तर न देगा।
सब कुछ तुम्हें ही निर्मित करना पड़ेगा।
लेकिन यह प्राथमिक कठिनाई सभी वेगों में होगी--काम हो, क्रोध हो या कोई भी वेग हों। थोड़े ही क्षणों में, थोड़े ही दिनों में, तुम समर्थ हो जाओगे। और तब तुम्हें बड़ी हंसी आएगी कि तुमने अब तक जितने लोगों को आलिंगन किया था, वे भी तकिए से ज्यादा नहीं थे, वे भी निमित्त थे।
प्रेम भी तुम्हारा एकांत ध्यान बने, इसमें कई अड़चनें हैं। अड़चनें संस्कार की हैं। अड़चनें ऐसी हैं कि बचपन से कुछ बातें सिखाई गई हैं, और वे बाधा डालेंगी।
जैसे पुरुष है, अगर कामवासना तकिए पर प्रकट करे, तो यह भी हो सकता है
कि उसका वीर्य स्खलित हो जाए। तो भय है। वह भय बचपन से सिखाया गया है कि वीर्य की एक बूंद भी स्खलित हो जाए, तो महागर्त में गिर रहे हो, बड़ी जीवन-ऊर्जा नष्ट हो रही है। हिंदू मानते हैं कि चालीस दिन में भोजन करने से एक बूंद वीर्य बनता है। सरासर असत्य है, झूठ बात है, इसमें रत्तीभर भी सच्चाई नहीं। लेकिन बच्चों को डराने के लिए ईजाद की गई है। और बच्चे डरते हैं, वह तो ठीक है, बूढ़े भी डरते हैं।
एक साधारण पुरुष सत्तर वर्ष के जीवन में आसानी से कोई चार हजार बार संभोग कर सकता है। प्रत्येक संभोग में कोई एक करोड़ से लेकर दस करा.ेड़ तक वीर्याणु स्खलित होते हैं। एक शरीर के भीतर इतने वीर्याणु हैं कि अगर प्रत्येक वीर्याणु गर्भस्थ हो जाए, तो इस पृथ्वी पर जितनी जनसंख्या है, वह एक जोड़े से पैदा हो सकती है। चार अरब व्यक्ति एक स्त्री और एक पुरुष से पैदा हो सकते हैं।
और यह जो वीर्य है, यह कोई आपके भीतर संचित संपदा नहीं है कि रखा हुआ है, इसमें से कुछ निकल गया, तो कुछ कम हो जाएगा। यह वीर्य प्रतिपल पैदा हो रहा है। शरीर श्वास ले रहा है, भोजन कर रहा है, व्यायाम कर रहा है--यह वीर्य पैदा हो रहा है। और आप हैरान होंगे कि जो आधुनिक खोजें हैं चिकित्साशास्त्र की, वे बड़ी भिन्न हैं, विपरीत हैं।
वे कहती हैं, जो व्यक्ति जितना वीर्य का उपयोग करेगा, उतने ज्यादा दिन
तक पुंसत्व उसमें शेष रहेगा। जो जितनी जल्दी भय से बंद कर देगा वीर्य का उपयोग या संभोग, उतने जल्दी उसका वीर्य खो जाएगा। क्योंकि जब तुम वीर्य का उपयोग करते हो, तो तुम्हारे पूरे शरीर को फिर वीर्य पैदा करने की क्रिया में संलग्न होना पड़ता है। जब तुम वीर्य का उपयोग नहीं करते, तो शरीर को संलग्न नहीं होना पड़ता। धीरे-धीरे शरीर की क्षमता वीर्य को पैदा करने की कम हो जाती है। यह बहुत उलटा दिखाई पड़ेगा। जो लोग जितना ज्यादा संभोग करेंगे, उतनी लंबी उम्र तक संभोग करने में समर्थ रहेंगे। जो लोग जितना कम संभोग करेंगे, उतनी जल्दी रिक्त हो जाएंगे और चुक जाएंगे।
तो पश्चिम में चिकित्सक समझाते हैं कि बुढ़ापे तक, सत्तर और अस्सी वर्ष और नब्बे वर्ष तक भी अगर संभोग जारी रखा जा सके, तो तुम्हारे ज्यादा जीने की संभावना है। क्योंकि शरीर तुम्हारा ताजा रहेगा। वीर्य बाहर जाता है, तो नया वीर्य शरीर पैदा करता है। और नए वीर्य में शक्ति होती है, ताजगी होती है। पुराना वीर्य धीरे-धीरे बासा हो जाता है, जड़ हो जाता है। और वीर्य की जड़ता के साथ तुम्हारे पूरे शरीर में जड़ता व्याप्त हो जाती है।
हमें यहां हैरानी होती है--पश्चिम में हम सुनते हैं, कोई नब्बे वर्ष
का व्यक्ति शादी कर रहा है। हमें बहुत हैरानी होती है कि शादी का क्या प्रयोजन है अब? लेकिन पश्चिम में नब्बे वर्ष का बूढ़ा भी संभोग कर सकता है।
और करने का कारण सिर्फ यह है कि वीर्य के संबंध में सारी धारणा बदल गई है।
और वैज्ञानिक धारणा सच्चाई के ज्यादा करीब है।

जीवन के सभी अंगों में यह बात सच है कि उनका तुम उपयोग करो, तो वे सक्षम रहते हैं। एक आदमी चलता रहे, बुढ़ापे तक चलता रहे, तो पैर मजबूत रहते हैं। चलना बंद कर दे, पैर कमजोर हो जाते हैं। एक आदमी मस्तिष्क का उपयोग करता रहे आखिरी क्षण तक, तो मस्तिष्क ताजा रहता है। उपयोग बंद कर दे, मस्तिष्क जड़ हो जाता है।
सारी इंद्रियों का जीवन उपयोग पर निर्भर है, क्रियात्मकता पर निर्भर है। तुम जिन इंद्रियों का उपयोग करते हो, वे उतने ही ज्यादा दिन तक ताजी रहेंगी। और वीर्य भी एक इंद्रिय है। उसके लिए कोई अपवाद नहीं है। वह भी शरीर का ही अंग है। शरीर का नियम यह है कि तुम जितना ज्यादा उपयोग लोगे, उतना ज्यादा जीवंत रहेगा। तुम भयभीत हुए, डरे, उपयोग बंद किया, उतनी ही जल्दी शरीर क्षीण हो जाएगा।
और यह एक दुष्टचक्र है। क्योंकि जो व्यक्ति डरता है, कम उपयोग करता है, शरीर क्षीण होता है। क्षीण होने से और डरता है। और डरने से अपने को और रोकता है। और रोकने से और क्षीण होता है। फिर कोई उपाय नहीं। फिर उसने एक रास्ता पकड़ लिया, जिस पर वह जल्दी ही मिट जाएगा।
भय रोकता है, रोकने से हम मरते हैं। निर्भय होकर जीवन को ऐसा उपयोग करो--रोजा लक्जेंबर्ग ने, एक जर्मन महिला ने कहा है--जैसे कोई मशाल दोनों तरफ से जले, ऐसे जलो।
घबड़ाओ मत, तुम ज्यादा जलोगे, जीवन बड़ा विराट है। तुम्हारे दीए में बहुत तेल है। लेकिन तुम जलाओ ही नहीं बाती को, भयभीत हो जाओ, तो तुम डूब जाओगे।
सारी दुनिया में पुरानी संस्कृति और सभ्यताओं ने वीर्य के संबंध में बड़ा भयभीत किया है लोगों को। इसके कारण हैं। क्योंकि जैसे ही कोई व्यक्ति वीर्य के संबंध में भयभीत हो जाता है, उसे गुलाम बनाना आसान है। आपने उसकी जड़ पकड़ ली। वीर्य जड़ है। अगर किसी व्यक्ति को कामवासना के संबंध में बहुत अपराध से भर दिया, तो यह व्यक्ति न तो विद्रोही रह जाएगा, न शक्तिशाली रह जाएगा। और सदा अपराध की भावना इसको दबाएगी। अपराधी को दबाना बहुत आसान है।
तो राज्य भी चाहता है कि आप अपराध अनुभव करें, समाज भी चाहता है। सभी-- जिनके हाथ में सत्ता है--चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति, जो पैदा हो, वह भयभीत रहे। भयभीत रहे, तो उसकी मालकियत की जा सकती है, उसका मालिक हुआ जा सकता है। निर्भय हो जाए, तो वह सब बंधन तोड़ देगा, सब रास्ते; वह स्वतंत्रता से जीएगा। विद्रोही हो जाएगा।
तो बचपन से हम बच्चों को सिखाते हैं कि वीर्य का स्खलन न हो जाए, सम्हालना। वीर्य के संबंध में हम कंजूसी सिखाते हैं। और इसको हम ब्रह्मचर्य कहते हैं।
यह ब्रह्मचर्य नहीं है। कृपणता ब्रह्मचर्य नहीं है। और न वीर्य को जबर्दस्ती रोक लेने से ब्रह्मचर्य का कोई संबंध है। ब्रह्मचर्य तो एक ऐसे आनंद की घटना है, जब आपका अस्तित्व के साथ संभोग शुरू हो गया; और इसलिए व्यक्ति के साथ संभोग की कोई जरूरत नहीं रह जाती।
यह जरा कठिन है समझना। और अगर मैं कहूं, तो बहुत बेचैनी होगी। संत वैसा व्यक्ति है, जिसका अस्तित्व के साथ संभोग शुरू हो गया। वहां कोयल कूकती है, तो उसका पूरा शरीर संभोग के आनंद को अनुभव करता है। वहां वृक्ष में फूल खिलते हैं, तो उसके पूरे शरीर पर, जैसी संभोग में आपको थिरक अनुभव होती है, उसका रोआं-रोआं वैसा थिरकता है और नाचता है। सुबह सूरज उगता है, रात चांद आकाश में होता है, तो हर घड़ी संभोग की समाधि उसे उपलब्ध होती रहती है। उसका रोआं-रोआं संभोग में समर्थ हो गया है; आपकी केवल जननेंद्रिय संभोग में समर्थ है।
इस संबंध में एक बात समझ लेनी जरूरी है। कभी ख्याल भी नहीं आया होगा! हमने शिव की प्रतिमा, शिवलिंग निर्मित की है। शिव जैसे पूरे के पूरे लिंग हैं, इसका मतलब यह होता है। इसका मतलब होता है, शिव के पास न आंखें हैं, न हाथ हैं, न पैर हैं, मात्र लिंग है, सिर्फ जननेंद्रिय है।

यह संतत्व की आखिरी दशा है, जब व्यक्ति का पूरा शरीर जननेंद्रिय हो गया। इसका प्रतीक अर्थ यह हुआ कि अब वह पूरे शरीर के साथ जगत के साथ संभोग में रत है। अब यह संभोग लोकल नहीं है। यह जननेंद्रिय और जननेंद्रिय का मिलना नहीं है, अब यह अस्तित्व और अस्तित्व का मिलना है।
शिव का शिवलिंग हमने निर्मित करके जगत को एक ऐसी धारणा दी है, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है।
लेकिन हिंदू भी यह अर्थ नहीं करेगा। अर्थ बिल्कुल साफ है। अंधे हम हैं। हम इतने भयभीत हैं कि हम यह अर्थ ही नहीं करेंगे। हम तो छिपाने की कोशिश करते हैं।
पश्चिम में बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक हुआ कार्ल गुस्ताव जुंग। वह भारत आया यात्रा पर। तो वह पुरी, कोणार्क, खजुराहो के मंदिर देखने गया। जब वह कोणार्क के मंदिर को देखने गया, तो जो पंडित उसे मंदिर दिखा रहा था, वह बड़ा बेचैन, परेशान था--क्योंकि जगह-जगह नग्न-मैथुन की प्रतिमाएं थीं--और बहुत गिल्टी, अपराधी अनुभव कर रहा था। और जुंग बहुत प्रभावित था। क्योंकि जुंग इस सदी के उन थोड़े से लोगों में से है, जिन्होंने मनुष्य की चेतना में बड़ा गहरा प्रवेश किया है।
और जितनी गहराई में प्रवेश होगा, उतना ही मैथुन अर्थपूर्ण होगा। क्योंकि मैथुन से ज्यादा गहरा आपके भीतर कुछ भी नहीं जाता। शायद मैथुन के क्षण में आप जिस अवस्था में होते हैं, उससे ज्यादा गहरी अवस्था में साधारणतः आप कभी नहीं होते। जिस दिन समाधि उपलब्ध होगी, उस दिन ही मैथुन के पार आप जाएंगे, उससे गहरी अवस्था उपलब्ध होगी।
तो जुंग तो बहुत आनंद से देख रहा था। वह पंडित बहुत परेशान था। उसको
लग रहा था कि क्या गलत चीजें हम दिखा रहे हैं। और यह आदमी पश्चिम में खबर ले जाएगा, तो हमारी संस्कृति के बाबत क्या सोचेंगे?
और ऐसा वह पंडित ही सोचता था, ऐसा नहीं है। गांधीजी तक सोचते थे कि कोणार्क और खजुराहो को मिट्टी के ढेर में दबा देना चाहिए, ताकि हमारी बदनामी न हो।
एक लोग थे इस मुल्क में, जिन्होंने खजुराहो बनाया, कोणार्क बनाया। और बनाया था संतों के निर्देशन में, क्योंकि ये मंदिर हैं। फिर महात्मा हमारे मुल्क में होने लगे, जो उन्हें मिटा देना चाहते हैं या दबा देना चाहते हैं।
गांधी को मैं कभी भी हिंदू नहीं मान पाता। वह ईसाई हैं। उनकी शिक्षा- दीक्षा, उनकी पकड़ ईसाई की है। ईसाई बहुत डरा हुआ है इस तरह की चीजों से। ईसाई सोच ही नहीं सकता कि चर्च में और मैथुन की प्रतिमा हो सकती है, या शिवलिंग हो सकता है।
जैसे ही मंदिर से विदा होने लगे जुंग, तो उस आदमी ने, पंडित ने, कान में कहा कि क्षमा करें, यह विकृति अतीत में कुछ लोगों के मन की प्रतिछवि है; यह कोई हमारा राष्ट्रीय प्रतीक नहीं है। और ऐसा मत सोचना आप कि यह हमारा धर्म या हमारा दर्शन है। यह तो कुछ विकृत मस्तिष्कों का उपद्रव है।
जुंग ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं हैरान हुआ कि इतनी महत्वपूर्ण प्रतिमाएं हैं, और इतने गहरे गई प्रतिमाएं हैं। लेकिन आज के हिंदू की यह दृष्टि है! हिंदू भी कमजोर हो गया है।
शिवलिंग का अर्थ हैः एक ऐसी दशा, जब तुम्हारा पूरा शरीर रोएं-रोएं से संभोग अनुभव कर सकता है। तभी तुम्हें जननेंद्रिय के संभोग से छुटकारा मिलेगा और ब्रह्मचर्य उपलब्ध होगा।
तो ब्रह्मचर्य भोग से मुक्ति नहीं है, परमभोग का आस्वाद है। लेकिन भोग इतना परम हो जाता है कि तुम्हें उसे करने की अलग से जरूरत नहीं होती। हवा का झोंका आता है, तो तुम्हारा रोआं-रोआं उस पुलक को अनुभव करता है, जो प्रेमी अपनी प्रेयसी के स्पर्श से अनुभव करेगा।
लेकिन हमने बच्चों को डराया हुआ है। उनको इतना डरा दिया है कि कभी काम में ठीक संभोग उपलब्ध ही नहीं हो पाता। वह भय बना ही रहता है। कंजूसी- कृपणता बनी ही रहती है। डर बना ही रहता है कि कहीं शक्ति खो न जाए। एक-एक

दर्जन बच्चों के मां-बाप हो जाने के बाद भी लोगों को यह डर बना रहता है कि शक्ति कहीं खो न जाए।
शक्ति खोने का डर नास्तिक को हो सकता है, आस्तिक को नहीं होना चाहिए।
आस्तिक की धारणा ही यही है कि हम शक्ति के अनंत स्रोत से जुड़े हैं।
नास्तिक को डर होना चाहिए। इसलिए नास्तिक अगर कृपण हो जाए वीर्य के संबंध में, समझ में आता है; आस्तिक कृपण हो जाए, बिल्कुल समझ में नहीं आता।
उस भय के कारण तुम्हें एकांत में प्रेम बड़ा मुश्किल मालूम पड़ेगा।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, भय छोड़ो। और जैसा तुमने क्रोध तकिए पर प्रकट किया है, वैसा ही तुम प्रेम तकिए पर प्रकट करो। जो भी परिणाम हों, परिणामों की फिक्र जल्दी मत करो। यह भी हो सकता है कि प्राथमिक चरणों में तुम इतने उत्तेजित हो जाओ कि वीर्य-स्खलन हो जाए। उस स्खलन को तुम परमात्मा के चरणों में समर्पण ही समझना। जिससे ऊर्जा आती है, उसी में वापस चली गई। तुम उससे भयभीत मत होना।
जल्दी ही वह क्षण आ जाएगा, जब इस प्रेम के ध्यान में वीर्य का स्खलन नहीं होगा। और जब यह ध्यान गहन होगा और वीर्य का स्खलन न होगा, तब तुम एक नए स्वाद को उपलब्ध होओगे। वह स्वाद है बिना शक्ति को खोए आनंद के अनुभव का। शक्ति जब तुम्हारे भीतर दौड़ती है प्रगाढ़ता से, तुम एक तूफान बन जाते हो शक्ति के, तुममें एक ज्वार आता है, लेकिन यह ज्वार तुम उलीचकर फेंक नहीं देते, यह ज्वार एक नृत्य बनकर तुममें ही लीन हो जाता है।
इस फर्क को ठीक से समझ लें।
एक तो साधारण जीवन का ढंग है, जिसको हम भोग कहते हैं। वह ढंग यह है कि तुममें एक ज्वार आता है, वह ज्वार भी जैसे चाय की प्याली में आया तूफान, क्योंकि लोकल है, जननेंद्रिय से संबंधित है। तो सारे शरीर में जो भी तरंगें उठती हैं, वे जननेंद्रिय पर जाकर केंद्रित हो जाती हैं। एक दो क्षण में चुक जाता है ज्वार। एक हवा आई, तुम आंदोलित हुए, जननेंद्रिय ने सारी ऊर्जा को लेकर निष्कासित कर दिया। जैसे फुग्गे से हवा निकल गई, तुम मुर्दा पड़ गए, सो गए। यह जो क्षणभर के लिए ज्वार आना और खो जाना है, इसको तुमने भोग समझा है। यह तो भोग का अ, ब, स, भी नहीं है।
भोग की तंत्र की जो व्याख्या है, वह हैः तुम्हारा पूरा शरीर ज्वार से
भर जाए। रोआं-रोआं तरंगित हो, तुम अपने को इस तरंगायित स्थिति में बिल्कुल विस्मृत ही कर जाओ, तुम्हें याद भी न रहे कि मैं हूं। नृत्य रह जाए, नर्तक न बचे। गीत रह जाए, गायक न बचे। तुम्हारा पूरा अस्तित्व एक्सटेटिक हो, समाधिस्थ हो, तो तुम एक ऊंचाई पर पहुंचोगे--ऊंचाई पर--रोज ऊंचाई बढ़ती जाएगी।
और ध्यान रहेः यह जो ऊंचाई के बढ़ने की प्रतीति है, यह तुम्हारे पूरे शरीर को होगी, जैसे तुम्हारा पूरा शरीर स्पंदित हो रहा है, सजग हो रहा है। अभी जननेंद्रिय में तुम स्पंदन अनुभव करते हो, सजगता अनुभव करते हो। तब पूरा शरीर शिवलिंग हो जाएगा और तुम अनुभव करोगे कि तुम्हारे शरीर की जो रूपरेखा है, वह खो गई है।
शिवलिंग कविता नहीं है, एक अनुभव है। और जब पूरे ज्वार से जीवन भर जाता है और तुम्हारा सारा शरीर रोमांचित होता है, तब तुम अपने आसपास ठीक शिवलिंग की आकृति में प्रकाश का एक वर्तुल देखोगे। तुम पाओगे कि तुम्हारे पूरे शरीर की रूपरेखा खो गई और शिवलिंग बन गया। एक प्रकाश का अंडाकार रूप, जिसमें तुम्हारी आंखें नहीं होंगी, नाक नहीं होगी, कान नहीं होंगे, हाथ नहीं होंगे, सिर्फ एक अंडाकार रूप रह जाएगा।
यह ज्योतिर्मय जो रूप है, यह जो अंडाकार रूप है, यही तुम्हारी आत्मा
का रूप है। जिस दिन तुम मां के गर्भ में प्रवेश हुए, ठीक शिवलिंग की आकृति का एक प्रकाश-बिंदु मां के गर्भ में प्रविष्ट हुआ। शरीर तो तुम्हें गर्भ के भीतर मिला। जब तुम शरीर को छोड़ोगे, मृत्यु घटित होगी--पहले भी घटित हुई है--तब तुम्हारा शरीर, आकार पड़ा रह जाएगा; शिवलिंग, ज्योतिर्मय पिंड तुमसे उठेगा और दूसरी यात्रा पर निकल जाएगा।
जिस दिन तुम संभोग की परम अवस्था में आओगे और पूरा शरीर रोमांचित होगा, उस दिन तुम जैसे जन्म के समय में घटना घटी थी, मृत्यु के समय में घटी

थी, लेकिन जन्म के समय तुम मूर्च्छित थे, मृत्यु के समय फिर तुम मूर्च्छित हो जाओगे, इस संभोग के क्षण में--इस संभोग का कोई संबंध दूसरे से नहीं है, इस संभोग का संबंध तुम्हारे भीतर शरीर के सब बांध को तोड़कर तुम्हारी चेतना का शिवलिंग बन जाने से है--तुम्हें पहली दफा अपने स्वरूप का अनुभव होगा। और यह स्वरूप अस्तित्व के साथ जो आनंद का अनुभव करता है, उसको तंत्र ने संभोग कहा है।
यह एकांत में भी घट सकता है, किसी के साथ भी घट सकता है।
लेकिन मैं तुमसे कहता हूं, एकांत की ही तुम चिंता करना, क्योंकि दूसरे
के साथ उपद्रव खड़े होने ही वाले हैं। एकांत में घट जाए, तो तुम मुक्त हो गए। फिर दूसरे के साथ भी घटेगा, तो भी तुम जानोगे कि इसका दूसरे से कुछ लेना-देना नहीं है। यह घटना स्वतंत्र है। रोएं-रोएं से प्रकाश निकलता है, तुम्हारे भीतर एक ज्वार उठता है।
और जो फर्क है... जब तुम्हारे भीतर पूर्ण ज्वार होता है, तो उस पूर्ण ज्वार का कोई भी स्खलन नहीं है। वह स्खलित होगा भी कैसे? और जो अंडाकार आकृति है, वह स्खलन को रोकती है। उसमें कहीं छिद्र भी नहीं है, जहां से स्खलन हो सके। ऊर्जा वर्तुल में घूमने लगती है, स्खलित नहीं होती। एक अंतर-वर्तुल निर्मित हो जाता है और ऊर्जा वर्तुल में घूमने लगती है। और धीरे-धीरे, धीरे-धीरे तुममें फिर लीन हो जाती है, तुमसे बाहर नहीं जाती। तुममें उठती है, तुममें लीन हो जाती है। जैसे सागर में ज्वार आता है, फिर लीन हो जाता है। कहीं कुछ खोता नहीं।
और जब पहली दफा तुम्हें अनुभव होता है कि भोग की परम क्षमता शिखर को छूकर फिर मुझमें लीन हो जाती है, तब तुम्हारा भोग स्थिर हो जाता है। तब तुम प्रतिपल ऐसे आनंदित होते हो जैसे संभोगी व्यक्ति क्षणभर को होता है। संतत्व का यही आनंद है। संत संभोग को छोड़ सके, इसलिए नहीं कि उन्होंने वीर्य पर नियंत्रण पा लिया। संत संभोग को छोड़ सके, क्योंकि उन्होंने परमसंभोग की कला खोज ली। उन्हें विराट राज्य मिल गया, वे तुम्हारे क्षुद्र उपद्रव में उत्सुक न रहे। यह बड़े की उपलब्धि है, छोटा अपने आप छूट जाता है।
जो छोटे को छोड़ने में लगता है, बड़े को बिना पाए, वह मुश्किल में पड़ जाता है। बड़ा तो मिलता नहीं और छोटे को छोड़ने में दुखी हो जाता है।
इसलिए तुम्हारे तथाकथित संत दुखी, उदास, परेशान, पीड़ित, हारे हुए, पिटे-पिटाए, बस किसी तरह जी रहे हैं। उनकी आंखों से, उनके व्यक्तित्व से, उस परम का नाद उठता हुआ मालूम नहीं पड़ता और ऐसा नहीं लगता कि उनके हृदय की वीणा बज रही है। उनके पास जाकर तुम भी उदास हो सकते हो, उनके पास जाकर तुम अपराध अनुभव कर सकते हो, उनके पास जाकर तुम्हें लग सकता है कि तुम निपट पापी हो, उनके पास जाकर तुम कुछ कसमें और व्रत और नियम ले सकते हो, लेकिन उनके पास जाकर तुम अहोभाव से नहीं भर सकते। उनके पास से तुम्हें रोग मिल सकते हैं, परम स्वास्थ्य नहीं मिल सकता।
मैं उस घड़ी को परम स्वास्थ्य कहता हूं, जब तुम अपनी ऊर्जा के शिखर को वर्तुल बनाने में समर्थ हो जाते हो। यह एकांत में ही घटेगा।
और जो मैं कह रहा हूं, वह खतरे से भरा है। सभी महत्वपूर्ण चीजें खतरे
से भरी हैं। जिन चीजों से कोई हानि नहीं होती, उनसे कभी कोई लाभ नहीं होता; जिनसे हानि हो सकती है, उनसे लाभ हो सकता है। हमेशा हानि और लाभ का द्वार बराबर खुलता है।
तो मैं जो कह रहा हूं, वह खतरे से भरा है, चूंकि उसमें परम आनंद का द्वार भी छिपा है। यह भी हो सकता है कि तुम्हारा यह एकांत में प्रेम और काम की वृत्ति में भरना सिर्फ हस्तमैथुन जैसी चीज बन जाए, मास्टरबेशन बन जाए। तब तुम खतरे में पड़ गए।
वह खतरा है। उसी खतरे से समाज ने डरा-डराकर तुम्हें इस हालत में ला दिया है कि तुम्हारे जीवन से काम और प्रेम की सुगंध चली गई है। उस खतरे से मैं आगाह करता हूं। लेकिन वह खतरा तभी है, जब तुम होशपूर्वक इस प्रयोग में न उतरो और तुम अपने को धोखा देने लग जाओ।

अगर तुम अपने को धोखा नहीं दे रहे हो, तो एकांत में जो आत्म-रमण है-- अपने ही भीतर प्रेम की प्रक्रिया को पूरा उठा लेना है--वह परम उपलब्धि बन सकती है।
चरण उसके होंगे। पहले चरण में खतरा है, वीर्य-स्खलन हो सकता है। स्त्रियों के लिए पहले चरण में हस्तमैथुन जैसी स्थिति आ सकती है। लेकिन उससे भयभीत नहीं होना। उसको ज्यादा ध्यान भी नहीं देना। ध्यान तो भीतर जो घट रही है घटना, उस पर लगाना। और ध्यान इस बात पर देना कि तुम्हारा पूरा शरीर उत्तेजित हो--स्थानीय उत्तेजना न हो--पूरा शरीर आंदोलित हो। सारा शरीर कंपे, पुलकित हो, कोई भी शरीर का हिस्सा वंचित न रह जाए इस ज्वार से। तो तुम नाचना, तुम कूदना, तुम प्रफुल्लित होना। और तुम रोएं-रोएं को मौका देना कि वह भागीदार हो जाए। अगर तुमने पूरे शरीर को भागीदार होने का मौका दिया, तो जननेंद्रिय पर जो केंद्रीकरण है, वह विघटित हो जाएगा। मनोवैज्ञानिक इस स्थिति को पोलीमार्फस कहते हैं। पूरा शरीर! मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चा जब पैदा होता है, तो उसका पूरा शरीर काम के रस को अनुभव करता है। लेकिन फिर हम उसको धीरे-धीरे स्थानीय में बदल देते हैं। पूरा शरीर इरोटिक है, इसलिए छोटा बच्चा अपने अंगूठे को भी पीकर इतना आनंदित मालूम पड़ता है। अगर छोटे बच्चे का आप अध्ययन करें, वह अपने अंगूठे को पी रहा है, तो ऐसा लगता है जैसे किसी संभोग में लीन है। देखें, आपने गौर से देखा नहीं होगा, क्योंकि हम कुछ चीजों के प्रति अपने को अंधा रखते हैं; एक छोटे बच्चे को अपना अंगूठा पीते देखें। और आप पाएंगे, वह पूरा शरीर उसका पुलक रहा है। एक किलकारी उसके पूरे शरीर पर फैल रही है। वह रसमग्न है।
मगर आपसे नहीं देखा जाता, आप फौरन अंगूठा उसका मुंह के बाहर कर देंगे, आपकी बर्दाश्त के बाहर है। आप समझते हैं, आप कुछ सिखा रहे हैं। आप एक चीज सिखा रहे हैं कि उसका पूरा शरीर इरोटिक, कामुक न रह जाए। और बच्चे का पूरा शरीर कामुक है। अभी बच्चे की जो कामेंद्रिय है, वह अलग नहीं है, वह पूरा शरीर ही उसका कामेंद्रिय की हालत में है। इसलिए वह शरीर के किसी भी कोने से रस लेता है। बच्चा पड़ा-पड़ा सिर्फ करवट लेता रहता है या पड़ा-पड़ा सिर्फ हिलता रहता है और रस लेता है। उसका पूरा शरीर अभी सुख अनुभव करता है। जल्दी ही हम उसके सुख की धारा को एक नहर बना देंगे। फिर वह पूरे शरीर में नहीं डोलेगी। वह सिर्फ कामेंद्रिय में प्रवेश कर जाएगी। फिर उसके जीवन में जो भी सुख होंगे काम के, वे एक छोटी-सी इंद्रिय पर सीमित हो जाएंगे क्षणभर को। और सारे शरीर की ऊर्जा उस इंद्रिय से निष्कासित होकर, शरीर हल्का हो जाएगा।
कामवासना से हमें जो सुख मिलता है, वह सुख कम है, केवल बोझ का हल्का हो जाना है--एक रिलीफ। एक तनाव पैदा हो जाता है शक्ति के होने के कारण, वह शक्ति निकल जाती है, आप हल्के हो जाते हैं।
इसलिए अक्सर लोग कामवासना को नींद की एक दवा की तरह उपयोग करते हैं।
शरीर ऊर्जा से भरा हो तो नींद नहीं आती, रेस्टलेसनेस मालूम होती है। ऊर्जा शरीर से निकल जाए, तो आप हल्के हो गए, सो जाते हैं। थक गए, सो जाते हैं। अन्यथा कोई और बड़ा सुख कामवासना से आपको मिल नहीं रहा है।
इसलिए जब साधु-संत आपको समझाते हैं कि कामवासना में कोई सुख नहीं, तो
आप राजी हो जाते हैं। क्योंकि आपको कोई सुख मिल ही नहीं रहा है, वे ठीक आपका ही अनुभव कह रहे हैं। या जब वे कहते हैं, क्या क्षुद्र सुख में प.ड़े हो, तो आप राजी हो जाते हैं। क्योंकि क्षुद्र तो मालूम होता है, कोई सुख तो मिलता दिखता नहीं, सिर्फ एक आदत बन गई है।
और आदतों की एक खूबी है। जैसे किसी को सिगरेट पीने की आदत है। वह पीता
है, तो कुछ भी नहीं पाता; नहीं पीता है, तो बेचैनी और तलफ लगती है। आदतों का यह स्वभाव है कि अगर उनको करें, तो कुछ मिलता नहीं; न करें, तो ऐसा लगता है, कुछ खो रहा है। करें, तो मिलता कुछ भी नहीं; न करें, तो लगता है, कुछ खो रहा है।

बस कामवासना भी एक आदत हो गई है। उसको आप करते चले जाते हैं। इसलिए जब साधु-संत कहते हैं, इसमें कुछ भी सार नहीं, आप भी राजी होते हैं, क्योंकि आपका भी अनुभव है कि सार कुछ भी नहीं।
पर मैं आपसे कहता हूं कि कामवासना अगर पूरे शरीर पर फैल जाए और आप शिवलिंग बन जाएं... । अच्छा होगा एक छोटा-सा शिवलिंग वहां रखें, जहां आप ध्यान करने बैठते हैं। शिवलिंग से ज्यादा महत्वपूर्ण प्रतिमा पृथ्वी पर कभी नहीं खोजी गई। उसमें आपकी आत्मा का पूरा आकार छिपा है। और आपकी आत्मा की ऊर्जा एक वर्तुल में घूम सकती है, यह भी छिपा है। और जिस दिन आपकी ऊर्जा आपके ही भीतर घूमती है और आपमें ही लीन हो जाती है, उस दिन शक्ति भी नहीं खोती और आनंद भी उपलब्ध होता है। फिर जितनी ज्यादा शक्ति संगृहीत होती जाती है, उतना आनंद बढ़ता जाता है। और जल्दी ही एक घड़ी आ जाती है, जब आप बिना कुछ खोए, बिना कुछ दिए, बिना कुछ लगाए दांव पर, आनंद को पाते हैं।
अकारण आनंद जिस दिन मिलने लगता है--और यह जो अकारण आनंद की दशा है, इसको सच्चिदानंद कहा है--पूरे अस्तित्व के साथ संभोग शुरू हो जाता है। होना ही संभोग का रूप हो जाता है। आपका होना, श्वास लेना भी संभोग का स्वरूप हो जाता है। भीतर श्वास गई और आनंद से भर जाता है। बाहर श्वास गई और आनंद से भर जाता है। फिर आनंद के लिए कुछ विशेष आयोजन नहीं करने होते। जो भी हो रहा है, वही आनंद हो जाता है। धूप में बैठे हैं और सूरज की किरणें चेहरे पर पड़ रही हैं, तो वहां भी आनंद हो जाता है। और आनंद संभोग जैसा हो जाता है।
सभी आनंद का स्वभाव संभोग जैसा है।
हमने शंकर की प्रतिमा को, शिव की प्रतिमा को अर्धनारीश्वर बनाया है। शंकर की आधी प्रतिमा पुरुष की और आधी स्त्री की--यह अनूठी घटना है।
और जो लोग भी जीवन के परम रहस्य में जाना चाहते हैं, उन्हें शिव के व्यक्तित्व को ठीक से समझना ही पड़ेगा। और सब देवताओं को हमने देवता कहा है, शिव को महादेव कहा है। उनसे ऊंचाई पर हमने किसी को रखा नहीं। उसके कुछ कारण हैं। क्योंकि उनकी कल्पना में हमने सारा जीवन का सार और कुंजियां छिपा दी हैं।
अर्धनारीश्वर का अर्थ यह हुआ कि जिस दिन परमसंभोग घटना शुरू होता है, आपका ही आधा व्यक्तित्व आपकी पत्नी और आपका ही आधा व्यक्तित्व आपका पति हो जाता है। आपकी ही आधी ऊर्जा स्त्रैण और आधी पुरुष हो जाती है। है ही वैसा। और इन दोनों के भीतर जो रस और जो लीनता पैदा होती है, फिर शक्ति का कहीं कोई विसर्जन नहीं होता।
अगर आप बायोलाजिस्ट से पूछें आज, तो वह राजी है। वे कहते हैं, हर व्यक्ति दोनों है, बाई-सेक्सुअल है। वह आधा पुरुष है, आधा स्त्री है। होना भी चाहिए, क्योंकि आप पैदा एक स्त्री और एक पुरुष के मिलन से हुए हैं। तो आधे-आधे आप होना ही चाहिए। अगर आप सिर्फ मां से पैदा हुए होते, तो स्त्री होते; सिर्फ पिता से पैदा हुए होते, तो पुरुष होते। लेकिन आपमें पचास प्रतिशत आपके पिता और पचास प्रतिशत आपकी मां मौजूद है। तो आप आधे-आधे होंगे ही। आप न तो पुरुष हो सकते हैं, न स्त्री हो सकते हैं--अर्धनारीश्वर हैं।
बायोलाजी ने तो अब खोजा है इधर पचास वर्षों में, लेकिन हमने अर्धनारीश्वर की प्रतिमा में, आज से कम से कम पचास हजार साल पहले, इस धारणा को स्थापित कर दिया। और यह धारणा हमने कोई बायोलाजी, जीव-शास्त्र के आधार पर नहीं खोजी, यह हमने खोजी योगी के अनुभव के आधार पर। क्योंकि जब योगी भीतर लीन होता है, तब वह पाता है कि मैं दोनों हूं, प्रकृति भी और पुरुष भी; मुझमें दोनों मिल रहे हैं; मेरा पुरुष मेरी प्रकृति में लीन हो रहा है; मेरी प्रकृति मेरे पुरुष से मिल रही है; उनका आलिंगन अबाध चल रहा है; वर्तुल पूरा हो गया है।
मनोवैज्ञानिक भी कहते हैं कि आप आधे पुरुष हैं और आधे स्त्री हैं। आपका चेतन पुरुष है, आपका अचेतन स्त्री है। अगर आपका चेतन स्त्री का है, तो आपका अचेतन पुरुष है। और उन दोनों में एक मिलन चल रहा है।

जगत द्वंद्व से निर्मित है, इसलिए आप दो होंगे ही। आप बाहर खोज रहे हैं स्त्री को, क्योंकि आपको भीतर की स्त्री का पता नहीं। आप बाहर खोज रहे हैं पुरुष को, क्योंकि आपको भीतर के पुरुष का पता नहीं।
और इसीलिए, कोई भी पुरुष मिल जाए, तृप्ति न होगी, कोई भी स्त्री मिल जाए, तृप्ति न होगी। क्योंकि भीतर जैसी सुंदर स्त्री बाहर पाई नहीं जा सकती।
और आपके पास, सबके पास, एक ब्लू-प्रिंट है। वह आप जन्म से लेकर घूम रहे हैं। इसलिए आपको कितनी ही सुंदर स्त्री मिल जाए, कितना ही सुंदर पुरुष मिल जाए, थोड़े दिन में बेचैनी शुरू हो जाती है, लगता है कि बात बन नहीं रही। सभी प्रेमी असफल होते हैं। क्योंकि बात बननी करीब-करीब असंभव है।
वह जो प्रतिमा आप भीतर लिए हैं, वैसी प्रतिमा जैसी स्त्री आपको अगर कभी मिले, तो शायद तृप्ति हो सकती है। लेकिन वैसी स्त्री आपको कहीं मिलेगी नहीं। उसके मिलने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि जो भी स्त्री आपको मिलेगी, वह किन्हीं पिता और मां से पैदा हुई और उन पिता और मां की प्रतिछवि उसमें घूम रही है। आप अपनी प्रतिछवि लिए हुए हैं हृदय के भीतर।
जब आपको अचानक किसी को देखकर प्रेम हो जाता है, तो उसका कुल मतलब इतना होता है कि आपके भीतर जो प्रतिछवि है, उसकी ध्वनि किसी में दिखाई पड़ गई, बस। इसलिए पहली नजर में भी प्रेम हो सकता है, अगर किसी में आपको वह बात दिखाई पड़ गई, जो आपकी चाह है--चाह का मतलब, जो आपके भीतर छिपी स्त्री या पुरुष है--किसी में वह रूप दिखाई पड़ गया, जो आप भीतर लिए घूम रहे हैं, जिसकी तलाश है।
चीन में एक पुरानी कथा है कि जब पहली दफा पृथ्वी पर परमात्मा ने स्त्री और पुरुष को बनाया, तो उन दोनों को इकट्ठा पैदा किया। वे जुड़े थे-- ठीक जुड़वां तभी अर्थ होता है--वे जुड़े थे। अर्धनारीश्वर थे। लेकिन इससे बड़ी अड़चन होती थी। काम-धाम, दोनों को साथ जाना पड़ता, दो शरीर साथ ढोने पड़ते। तो उन्होंने प्रार्थना की कि हमें अलग-अलग कर दें, सुविधा रहेगी। सुविधा की दृष्टि से परमात्मा ने उन्हें अलग-अलग कर दिया। अलग-अलग होकर इतनी बड़ी पृथ्वी पर अनंत-अनंत जन्मों में वे खो गए।
प्रेम अपने उस जुड़वां हिस्से की तलाश है, चीन में वे कहते हैं, जो खो गया; जब मिल जाएगा, तो तृप्ति होगी।
और इतनी बड़ी पृथ्वी है, कोई चार अरब स्त्री-पुरुष हैं। आप खोज रहे हैं अपनी स्त्री को। कोई खोज रहा है अपने पुरुष को। खोज चल रही है जन्मों- जन्मों में। जो भी मिलता है, उससे ही तृप्ति नहीं होती। मिलना करीब-करीब असंभव मालूम पड़ता है। चार अरब में संयोग की ही बात है, कभी उससे मिलना हो जाए, जिससे आपकी तृप्ति हो जाए।
यह कथा प्रीतिकर है। कथा ही है, पर प्रीतिकर है, अर्थपूर्ण है। मेरे हिसाब से वह मिलना कभी भी नहीं होगा, जब तक आपकी आंख भीतर न जाए। भीतर वह स्त्री मौजूद है। उस स्त्री और आपके भीतर के पुरुष के मिलने की कला ही योग है। और जिस दिन यह मिलन घट जाता है, उस दिन आपकी शक्ति खोती नहीं, ब्रह्मचर्य उत्पन्न होता है।
इसलिए मेरी ब्रह्मचर्य की धारणा निषेध की धारणा नहीं है, त्याग की धारणा नहीं है, परमभोग की धारणा है। और मेरी बात को गलत समझना बिल्कुल आसान है। और मैं जो कह रहा हूं, उसमें योग को देखना बहुत कठिन है, भोग देखना बिल्कुल सरल है। इसलिए मुझे रोज गालियां पड़ती रहती हैं कि मैं लोगों को भोग सिखा रहा हूं।
एक अर्थ में गालियां सही हैं। भोग मैं सिखा रहा हूं--लेकिन परमभोग। सारा योग, सारा तंत्र, सारा धर्म वही सिखाता है। परमात्मा को मैं परमभोग कहता हूं--वह परमसंभोग का अनुभव है। अपने ही भीतर द्वंद्व खो गया, द्वैत खो गया; अद्वैत पैदा हो गया। आलिंगन अद्वैत है; जहां दो मिट जाते हैं और एक बचता है।
बाहर की स्त्री से ऐसा अद्वैत कभी भी नहीं सधेगा, दो बने ही रहेंगे। क्षणभर को भूलेंगे भी दूसरे को, तो क्षणभर बाद फिर याद आ जाएगी। संभोग के क्षण में भी आप आप हैं; पत्नी पत्नी है। मिलते हैं, कहीं छूते हैं, लेकिन

मिल नहीं पाते। इसलिए सभी संभोग के पीछे एक तिक्त स्वाद मुंह में छूट जाता है कि जैसे कोई चीज असफल हो गई। बस करीब-करीब पहुंच गए थे, फिर खो गया। इसलिए फिर संभोग की आकांक्षा जगती है। लेकिन कोई संभोग तृप्त नहीं करता, क्योंकि कोई संभोग समाधि नहीं बन सकता। तड़पाता है।
लेकिन जिस दिन भीतर के स्त्री-पुरुष का मिलन हो जाता है, उस दिन बात समाप्त हो गई। उस दिन बाहर अब कोई खोज नहीं है। अब कोई दूसरा न बचा, द्वंद्व मिटा, निर्द्वंद्व हुए। द्वैत मिटा, अद्वैत घटा। अद्वैत यानी परम आलिंगन। और ऐसा जो व्यक्ति है, शिवलिंग जैसा हो गया। अपने भीतर वर्तुलाकार पूर्ण हो गया, अपने ही भीतर रस, आत्म-रमण होने लगा जिसका, जिसका स्व-संभोग शुरू हुआ। ऐसा व्यक्ति कोई भी ऊर्जा नहीं खोता।
आपको पता है कि ऊर्जा खोने के लिए नुकीले बिंदु चाहिए। आपके शरीर की विद्युत अंगुलियों से खो सकती है, सिर से नहीं खो सकती। क्योंकि कोई भी चीज जो गोलाकार है, वहां से ऊर्जा को खोने का उपाय नहीं मिलता। जगह नहीं मिलती, जहां से वह खो जाए। जननेंद्रिय से ऊर्जा खो सकती है। जननेंद्रिय विशेष आयोजन है, ऊर्जा को खोने का।
यह आपको समझ ही लेना चाहिए कि शरीर के दो हिस्से हैं। एक हिस्सा है, जहां से शरीर ऊर्जा लेता है। और एक हिस्सा है, जहां से शरीर ऊर्जा खोता है। लेने वाले सब हिस्से आपके सिर में हैं, वह आपका एक छोर है। और इसीलिए सिर गोलाकार है, क्योंकि वहां से खोना नहीं है, वहां से इकट्ठा करना है। भोजन आप मुंह से लेते हैं, श्वास नाक से लेते हैं, किरणें आंख से लेते हैं, ध्वनि कान से लेते हैं। वहां से खोना नहीं है, वहां से पकड़ना है। वे रिसीविंग, ग्राहक अंग हैं। वहां दरवाजे हैं, जिनसे चीजें भीतर जा सकती हैं, लेकिन वहां से लौट नहीं सकतीं।
फिर मल-मूत्र का त्याग है। वह सब शरीर के नीचे के हिस्से पर, वह दूसरा छोर है। जननेंद्रिय भी वहीं है, वह खोने की जगह है। इसलिए जानकारों ने वीर्य को मल-मूत्र से ज्यादा नहीं कहा है। वह है भी मल-मूत्र। वहां से आप ऊर्जा को खोते हैं। वहां से शरीर, जो इकट्ठा किया, उसे निकालता है, उससे मुक्त होता है। वह मल-विसर्जन है।
सिर गोल है, वहां संगृहीत करना है। जननेंद्रिय विसर्जन है, वह नुकीला अंग है। और इसीलिए जननेंद्रिय में प्रकृति ने एक व्यवस्था की है, कि जब आप कामवासना से भर जाएं, तब जननेंद्रिय उभार में आ जाए और पूरी तरह नुकीली हो जाए। क्योंकि उस क्षण में जितनी नुकीली हो जननेंद्रिय, उतनी शीघ्रता से ऊर्जा का विसर्जन हो जाएगा।
यह जो वर्तुलाकार शिवलिंग है, यहां से कहीं से भी ऊर्जा के निकलने का उपाय नहीं है। इस शिवलिंग की परिधि पर ऊर्जा घूम सकती है, घूमती रह सकती है, लेकिन बाहर नहीं जा सकती।
हमने मंदिरों के ऊपर गोलाकार गुंबद बनाए थे, वह सिर्फ इसीलिए कि मंदिर के भीतर जो मंत्रोच्चार किया जाए, जो प्रार्थना की जाए, वह वापस गूंजकर गिर जाए मंदिर में, बाहर न जाए। वह गिरती रहे, वह प्रार्थना करने वाले पर वापस बरसती रहे। गूंज उसकी लौटती रहे, एक वर्तुल निर्मित हो जाए। इस अर्थ में मंदिर की जो खूबी है, वह खूबी मस्जिद की नहीं, चर्च की भी नहीं। मंदिर ठीक सिर की भांति हमने निर्मित किया है। वहां ऊर्जा बरसती रहे, उसके नीचे जाकर कोई ऊर्जावान हो, शक्तिशाली हो, संगृहीत करे।
और आपका सिर मंदिर की भांति बन जाता है, अगर आपके भीतर के स्त्री- पुरुष का मिलन होता है।
अगर ठीक से मंदिर के आर्किटेक्ट को आप समझें, तो वह ठीक आदमी के शरीर में निर्मित किया गया है। आपका शरीर चौकोन है, तो मंदिर चौकोन है। ऊपर सिर की भांति मंदिर का गुंबद है। और जब योगी बैठता है पद्मासन में, तो जो उसके शरीर की आकृति है, वही मंदिर की आकृति है। ठीक योगी पद्मासन में बैठा है, वही मंदिर की स्थापत्यकला का सूत्र है। वैसे ही हमने मंदिर बनाया है, वह सिर्फ प्रतीक है।
ऐसे ही भीतर के मिलन के क्षण में आप मंदिर बन जाएंगे।

तो एकांत में डरें मत। पहले संभावना है, स्खलन हो जाए। भयभीत न हों। उसको भी--परमात्मा का है--परमात्मा को दिया। कंजूस मत बनें। और बीच में रुकावट मत डालें। और घबड़ाएं भी मत। मेरा है क्या? आज नहीं कल, यह शरीर तो छूट ही जाएगा। इस शरीर के साथ इसका वीर्य भी छूट जाएगा। उसको कहां ले जाइएगा?
यह बड़े मजे की बात है कि तथाकथित साधु-संन्यासी समझाते हैं, धन इकट्ठा
मत करो, क्योंकि यहीं छूट जाएगा। लेकिन वीर्य इकट्ठा करो! वीर्य कहां ले जाओगे? वह भी यहीं छूट जाएगा। वह शरीर का अंग है, तुम उसे ढो नहीं सकते। तुम उसे ले जा नहीं सकते।
तो अगर स्खलन भी हो जाए, तो घबड़ाना मत, अपराध से मत भरना। क्योंकि अपराध से भरे कि ध्यान वहीं रुक जाएगा। उसको परमात्मा ने दिया, परमात्मा ने लिया। धन्यवाद देना और अपने ध्यान में लीन हो जाना।
जल्दी ही स्खलन रुक जाएगा। क्योंकि स्खलन होता ही इसलिए है कि तुमने जबर्दस्ती रोका है। जब तुम रोकोगे ही नहीं, स्खलन बंद हो जाएगा। और शीघ्र ही वह घड़ी आएगी, जब तुम्हारा प्रेमी, तुम्हारा प्रेमपात्र भीतर मिलेगा। तो चाहे काम हो, चाहे क्रोध हो, चाहे कोई भी वेग हो, ध्यानी को उसे दूसरे से नहीं जोड़ना है। संसार का यही अर्थ है--मेरे भावावेगों के लिए दूसरा जरूरी है। संन्यास का यही अर्थ है--मेरे भावावेगों के लिए मैं अकेला काफी हूं।
यह अकेले होने का नाम ही संन्यास है। और अगर तुम्हारे भावावेगों के लिए तुम्हें दूसरे की जरूरत पड़ती है, तो फिर तुम संन्यास में कैसे प्रवेश करोगे?
न तो घर छोड़कर जंगल जाना है, न पत्नी छोड़कर भाग जाना है। लेकिन वेगों की, भावावेगों की निर्भरता को छोड़ देना है। तुम अकेले अपने मालिक हो जाओ। तुम स्वयं हो सको, दूसरा आवश्यक नहीं है होने के लिए।
इसका यह मतलब भी नहीं है कि फिर तुम पत्नी को प्रेम न कर सकोगे। तुम कर सकोगे, लेकिन वह स्वतंत्र व्यक्तित्व का दान होगा। उसकी गरिमा अनूठी है, अलग है। अभी तुम मजबूरी में करते हो। अभी तुम निर्भर, परतंत्र अनुभव करते हो। इसलिए पति-पत्नी एक-दूसरे पर सदा क्रोध में होते हैं।
सैकड़ों पति-पत्नियों को मैं जानता हूं, लेकिन ऐसे पति-पत्नी को मैंने नहीं देखा, जो एक-दूसरे पर क्रोध में न हों। उसका कारण है। होना स्वाभाविक है। क्योंकि जिस पर भी हम निर्भर होते हैं, उस पर क्रोध आता है। जिस पर भी हम निर्भर होते हैं, वह मालिक मालूम पड़ता है, हम गुलाम हो गए। और दोनों की यह प्रतीति है, क्योंकि दोनों ही निर्भर हैं। मालिक कोई भी नहीं, दोनों गुलाम हैं। और गुलाम की गुलामी, उस पर निर्भर रहना पड़ता है। और निर्भरता का एक-दूसरे पर वे शोषण करते हैं।
अक्सर अगर घर में विवाद हो, पत्नी जीत जाती है--चाहे गलत हो, चाहे सही हो--क्योंकि पति उस पर निर्भर है कामवासना के लिए। वह डरता है, व्यर्थ का विवाद खड़ा करो, वह कामवासना से इंकार कर देगी। झंझट करो, तो प्रेम मिलना मुश्किल हो जाएगा। और प्रेम चाहिए तो इतना सौदा करना पड़ता है। इसलिए अक्सर पति हार जाता है। और पत्नी जानती है। इसलिए दो ही मौके पर पत्नियां उपद्रव खड़ा करती हैं--या तो पति भोजन कर रहा हो, या प्रेम करने की तैयारी कर रहा हो। क्योंकि वही दो बातों पर वह निर्भर है। उन्हीं दो बातों पर वह गुलाम है। इसलिए पति भोजन की थाली पर बैठा कि पत्नी की शिकायतें शुरू हो जाती हैं। उपद्रव शुरू हुआ! और पति डरता है कि किसी तरह भोजन... तो हां-हूं भरता है।
और ध्यान रहे, भोजन और कामवासना दोनों जुड़े हैं। भोजन तुम्हारे अस्तित्व के लिए जरूरी है, व्यक्ति के; और कामवासना समाज के अस्तित्व के लिए जरूरी है। कामवासना एक तरह का भोजन है, समाज का भोजन। और वह व्यक्ति का भोजन है। दोनों बातों पर पति निर्भर है।
इसलिए बड़े से बड़ा पति, चाहे वह नेपोलियन क्यों न हो, घर लौटकर दब्बू हो जाता है। नेपोलियन भी जोसेफीन से ऐसा डरता है जैसे कोई भी पति अपनी पत्नी

से डरता है। वह सब बहादुरी, युद्ध का मैदान, वह सब खो जाता है। क्योंकि यहां किसी पर निर्भर है। कुछ जोसेफीन से चाहिए, जो कि वह इंकार कर सकती है। वेश्याएं ही अपने शरीर का सौदा करती हैं, ऐसा आप मत सोचना; पत्नियां
भी करती हैं। क्योंकि यह सौदा हुआ कि इतनी बातों के लिए राजी हो जाओ, तो शरीर मिल सकता है; नहीं तो नहीं मिल सकता। शरीर चाहिए, तो इतनी बातों के लिए राजी हो जाओ।
इसलिए क्रोध पति का पत्नी पर बना रहता है। पत्नी का क्रोध पति पर बना रहता है। क्योंकि वह भी निर्भर है इस पर। जहां भी निर्भरता है, वहां क्रोध होगा, वहां प्रेम नहीं हो सकता।
प्रेम तुम उसी दिन कर पाओगे, जिस दिन तुम निर्भर नहीं हो। जिस दिन तुम स्वावलंबी हुए, प्रेम की दिशा में स्वावलंबी हुए। तुम अकेले भी हो सकते हो, और तुम्हारे आनंद में रत्तीभर फर्क नहीं पड़ेगा। बस, उस दिन ही तुम प्रेम कर सकोगे और उसी दिन पत्नी तुम्हारी तुम्हें सताना बंद करेगी। क्योंकि अब वह जानती है कि अब सताने का कोई अर्थ नहीं रहा, अब झुकाने का कोई उपाय नहीं रहा, निर्भरता समाप्त हो गई है।
घर बड़ी कलह है, क्योंकि जिस पर हम निर्भर होंगे, उससे कलह होती ही रहेगी। वह एक कशमकश है। वह एक सतत संघर्ष है।
संन्यस्त का अर्थ यह नहीं है कि तुम प्रेम न करोगे। संन्यस्त का अर्थ
है कि प्रेम तुम्हारा दान होगा, तुम्हारी निर्भरता नहीं। तुम दे सकते हो। तुम बांटोगे, तुम शेयर करोगे। लेकिन यह एक मुक्त व्यक्ति का दान है। और तुम इसके बदले में भी कुछ न मांगोगे। तुम दोगे, क्योंकि देना तुम्हारी खुशी है।
और जिस दिन कभी दो व्यक्ति एक-दूसरे को प्रेम दे पाते हैं, जब देना सिर्फ खुशी होती है, किसी तरह की कोई निर्भरता और सौदा नहीं, उस दिन ही इस जगत में पति-पत्नी की घटना घटती है। बाकी सब औपचारिक संस्थाएं हैं। तब कभी कोई राम और सीता जैसा व्यक्तित्व, कोई राधाकृष्ण, कोई गौरीशंकर जैसा... । इसलिए हम इन राधाकृष्ण, गौरीशंकर या सीताराम को अलग-अलग याद नहीं करते हैं। इनको अलग-अलग याद करना ठीक भी नहीं है। ये अलग-अलग रहे ही नहीं। इनमें कलह जरा भी नहीं थी। इसलिए अलग-अलग नहीं हो सकते।
ध्यान रहे, कलह अलग-अलग करती है। प्रेम जोड़ता है, कलह तोड़ती है। तो सीताराम के बीच हाईफन भी नहीं है, वह भी लगाना ठीक नहीं है। उतनी भी कलह नहीं है। तो गौरीशंकर, राधाकृष्ण करीब-करीब एक नाम हो गए। उनको दो नाम कहना भी ठीक नहीं है। भीतर ऐसी एकता जन्मी है।
अगर भय न खाया और एकांत में तुम प्रेम, क्रोध, काम में सफल हो गए, तुम
एक मुक्त व्यक्ति हो जाओगे। और इस जीवन का सारा सुख उसके लिए है, जो मुक्त है। और यह जीवन अपनी सारी संपदा उसके लिए लुटा देता है, जो मुक्त है। तुम्हारे हाथ में है कि तुम उसके मालिक हो सकते हो।

प्रश्नः ओशो, आखिर हम पूछ ही क्या सकते हैं, फिर भी आपने हमसे प्रश्न पुछवाए हैं! क्यों?

पूछ तुम भला न सको, पूछना भला कठिन मालूम पड़ता हो, लेकिन मन तुम्हारे पास जो है, उसमें सिवाय प्रश्नों के और कुछ लग नहीं सकता। यह रेचन है तुम्हारा। तुमसे कहता हूंः पूछो, ताकि तुम्हारा रेचन हो जाए। मन तो पूछता ही है। भला तुम हिम्मत न जुटा पाओ, भला तुम साहस न कर पाओ प्रश्न को रखने का, संकोच करो, डर लगे, लेकिन मन निरंतर पूछता है, मन में प्रश्न ही लगते हैं, उत्तर तो कभी लगते ही नहीं। मन प्रश्नों को पैदा करने का ही क्रम है। हर चीज पर मन प्रश्न उठाता है। तो यह भी हो सकता है, संकोच-शिष्टाचारवश तुम मुझसे न पूछो। या इस भयवश कि लोग क्या कहेंगे; कि प्रश्न छोटा-सा है, पूछने जैसा नहीं; कि प्रश्न बेतुका है, असंगत है, शोभा नहीं देता; कि प्रश्न पूछने से ऐसा लगता है कि तुम इतने अज्ञानी हो कि अभी यह प्रश्न भी तुम्हारा हल नहीं हुआ--इन सब भय के कारण तुम पूछते नहीं। लेकिन

तुम प्रश्नों को दबाए बैठे रहोगे। वे दबे हुए प्रश्न तुम्हारे चित्त को सदा उद्विग्न करेंगे।
और मैं दमन के हर स्थिति में विरोध में हूं। तुम्हारे प्रश्न का भी दमन नहीं होना चाहिए। क्योंकि दबा हुआ प्रश्न तुम्हें सताता रहेगा, जन्मों-जन्मों तक तुम्हारा पीछा करेगा। जो भी दबाया है, वह मौजूद रहेगा।
तुम पूछ लो, ताकि उसका रेचन हो जाए। यह मत सोचना कि तुम्हारे पूछने से मैं जो उत्तर दूंगा, वह उत्तर तुम्हें तृप्त करेगा। वह नहीं होने वाला। मेरे उत्तर से तुम्हारा प्रश्न समाप्त हो जाएगा, यह भी नहीं होने वाला। मेरा उत्तर तुममें और हजार प्रश्न पैदा करेगा।
इसलिए उत्तर देकर फिर मैं तुम्हारी तरफ देखता हूं, क्योंकि उसने और प्रश्न पैदा कर दिए होंगे। जितनी देर मैंने उत्तर दिए, उतनी देर में तुमने हजार प्रश्न तैयार कर लिए होंगे। तो मेरा उत्तर, तुम्हारा उत्तर कभी बनने वाला नहीं है। मेरे उत्तर से और प्रश्न पैदा होंगे।
फिर मैं क्यों उत्तर दे रहा हूं?
कुछ बातों के प्रति तुम्हें सचेत करने को। हर उत्तर और प्रश्न पैदा करेगा, तुम धीरे-धीरे सचेत होते जाओगे। कुछ बातें तुम्हारे अनुभव में आएंगी। यह पहली बात अनुभव में आएगी कि उत्तर से उत्तर नहीं मिलता। उत्तर कहीं और खोजना पड़ेगा। कोई दूसरा उत्तर दे, इससे भी उत्तर नहीं मिलता। उत्तर स्वयं ही खोजना पड़ेगा। प्रश्न हल भी हो जाए, बौद्धिक तल पर, तो भी समाधान नहीं होता। तो यह प्रश्न-उत्तर की दौड़, जो बुद्धि की दौड़ है, कहीं ले जाएगी नहीं। तुम्हें किसी हृदय की दौड़ पर निकलना पड़ेगा।
और इतना तुम पूछोगे, इतना मैं जवाब दूंगा, और आखिर में तुम पाओगे, तुम्हारा कन्फ्यूजन, तुम्हारा भ्रम, पहले से भी ज्यादा हो गया, बजाय कम होने के। प्रश्न बढ़ गए, बजाय कम होने के। तभी तुम शायद चेतो और तुम्हें ख्याल आए कि प्रश्नों का उत्तर उत्तर में नहीं है। प्रश्नों का उत्तर ध्यान में है। उत्तर तो बाहर से दिया जा सकता है। ध्यान भीतर से पैदा करना होगा।
प्रश्नों के उत्तर शास्त्रों में नहीं हैं। क्योंकि मन का स्वभाव प्रश्न पैदा करना है, इसलिए शास्त्र पढ़कर और प्रश्न पैदा हो जाएंगे। उत्तर मन से मुक्त होने में है। जब तक मन न गिर जाए, तब तक प्रश्न जारी रहेंगे।
तुम्हारा मन है, इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, पूछो। इससे कुछ सीधा हल हो जाने वाला नहीं है। लेकिन परोक्ष हल हो सकता है। धीरे-धीरे तुम सचेत होने लगोगे कि यह पूछना और यह जवाब, यह खेल है। इससे कुछ होने वाला नहीं है। और कब तक तुम ये शतरंज के नकली हाथी-घोड़े चलते रहोगे! एक दिन तुम उठाकर यह पूरा शतरंज फेंक दोगे।
जापान में एक परंपरा हैः जब कोई झेन गुरु के पास आता है, तो अपनी चटाई अपने साथ लाता है। चटाई बिछाकर बैठ जाता है और प्रश्न पूछता है। फिर चटाई उसे वहीं छोड़ देनी पड़ती है। फिर वह आता है रोज, जब भी उसके पास प्रश्न होते हैं, अपनी चटाई पर बैठकर प्रश्न पूछता है। ऐसा कभी वर्षों लग जाते हैं। फिर जिस दिन वह थक जाता है इस पूछने और इस उत्तर पाने से, और जिस दिन उसे साफ दिख जाता है कि यह सब व्यर्थ है, वह अपनी चटाई को गोल करके दबाकर निकल जाता है।
वह जिस दिन चटाई गोल करता है, उस दिन गुरु कहता है, आशीर्वाद! कर ली चटाई गोल?
वह चटाई गोल करना प्रतीक है, अब थक गया पूछ-पूछकर, सुन-सुनकर। अब यह पूछना-सुनना बंद करता हूं।
उस दिन से ध्यान शुरू होता है।
तो जिस दिन तुम चटाई गोल करोगे, एकदम अपनी चटाई लेकर भागने लगोगे, और मैं तुम्हें रोकूंगा कि पूछ लो और तुम कहोगे कि नहीं, उस दिन मेरा आशीर्वाद!
तुम पूछना चाहते हो, पूछने की हिम्मत नहीं जुटाते, इसलिए मैं तुम्हें कहता हूं, पूछ लो। उत्तर देता हूं, ताकि तुम और पूछो। तुम्हें थकाना है,

तुम्हें भलीभांति थकाना है। तुम्हें इतना थका देना है कि तुम एकदम गिर पड़ो और कहो कि बस, नहीं कोई प्रश्न, नहीं कोई उत्तर।
उस क्षण में तुम्हारे ध्यान की पहली किरण उतरेगी। उस क्षण मन से तुम थकोगे। उस क्षण तुम मन को डाल सकोगे एक कोने पर और कहोगे कि अब अनुभव चाहता हूं, उत्तर नहीं; अब समाधान चाहता हूं, उत्तर नहीं।
समाधान तो समाधि में है।
आज इतना ही।

नहिं राम बिन ठांव
तेरहवां प्रवचन

शरीर--एक मंदिर

प्रश्नः ओशो! आपका ही वचन है, किसी भी दिशा में प्रकृति के प्रतिकूल होने का कोई उपाय नहीं है। फिर प्रकृति के सागर में हम बहें या तैरें, उसके साथ मैत्री में जीएं या शत्रुता में, प्रकृति का उल्लंघन कहां होता है! लेकिन आप यह भी समझाते हैं कि प्रकृति के अनुकूल चलो, उसकी नदी में तैरो मत, बहो। ओशो, इस संदर्भ में, नहिं राम बिन ठांव की कीमिया क्या होगी, कृपया हमें समझाएं।

प्रकृति के प्रतिकूल होने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि प्रकृति के प्रतिकूल कुछ है ही नहीं। जो भी है प्रकृति है। प्रकृति से लड़ने का कोई मार्ग नहीं, क्योंकि लड़ेगा कौन? प्रकृति से अन्य कोई भी नहीं है। लेकिन प्रकृति से लड़ रहा हूं, ऐसा भाव, ऐसा विचार, ऐसी दृष्टि बना ली, बनाई जा सकती है।
जब तुम तैरते हो नदी में, तब भी तुम प्रकृति के प्रतिकूल नहीं हो, क्योंकि तैरना भी प्राकृतिक है। नदी से जब तुम लड़ते हो, तब भी नदी तुमसे नहीं लड़ रही है। इसलिए प्रकृति से दुश्मनी का कोई उपाय नहीं है। लेकिन तुम्हारे मन में यह धारणा बन सकती है कि मैं लड़ रहा हूं और तुम हारने और जीतने के पागलपन में पड़ सकते हो। उससे तुम कष्ट पाओगे। उससे भी प्रकृति कोई कष्ट नहीं पा रही है। और प्रकृति कोई बाधा भी नहीं डालेगी कि तुम बदलो। प्रकृति अनंत तक ऐसी ही चलती रहेगी। एक क्षण को रुककर भी तुमसे न कहेगी कि यह तुम क्या कर रहे हो? तुम्हारी लड़ाई का, तुम्हारे संघर्ष का प्रकृति को कोई पता भी नहीं है। तुम कभी लड़े भी, यह भी उसे पता नहीं है। लेकिन तुम्हारे मन में यह धारणा बन जाए कि मैं लड़ रहा हूं, जीतना है, हार न जाऊं, तो तुम अकारण परेशान होओगे। यह परेशानी भी प्राकृतिक है। यह भी तुम्हारा स्वभाव है कि तुम लड़ोगे, हारोगे, जीतोगे, सोचोगे, दुखी होओगे, यह भी स्वभाव है।
इस जगत में सभी कुछ स्वभाव है--दुख भी, सुख भी और परम आनंद भी। तुम्हारे हाथ में है कि अगर तुम भ्रांत धारणाएं पकड़ लो, तो तुम दुखी हो जाओगे। अगर तुम सीधी, सहज धारणाएं पकड़ लो, तो तुम सुखी हो जाओगे। अगर तुम सभी धारणाएं छोड़ दो, तो तुम आनंदित हो जाओगे। यह सब तुम्हारे भीतर घट रहा है।
ध्यान रहे, जब पैर में कांटा चुभता है और पीड़ा होती है, तो पीड़ा भी प्राकृतिक है, कांटा भी प्राकृतिक है, तुम्हारा शरीर भी प्राकृतिक है। फिर तुम जब हाथ से खींचकर कांटे को निकाल देते हो, तो जो हाथ निकाल रहा है, वह भी प्राकृतिक है। कांटे के निकल जाने पर जो सुख की प्रतीति होती है, दुख मिट गया, वह भी प्राकृतिक है। अप्राकृतिक तो कुछ है ही नहीं। हो ही नहीं सकता। प्राकृतिक का मतलब है, जो हो सकता है, जो हो रहा है। मनुष्य का भटकना भी प्राकृतिक है, अज्ञान में पड़ना भी प्राकृतिक है।
इसलिए सवाल अप्राकृतिक और प्राकृतिक के बीच में चुनने का नहीं है, सभी कुछ प्राकृतिक है। लेकिन प्रकृति में दुख भी है, सुख भी है, आनंद भी है। तुम दुखी हो, इसलिए तुमसे कहता हूं कि सुखी होने का उपाय है--तैरो मत, बहो। और आनंदित होने का भी उपाय है--न तैरो, न बहो, नदी के साथ एक हो जाओ। और तीनों प्राकृतिक हैं।
इसे ऐसा समझो कि जब तुम स्वस्थ होते हो, तब प्राकृतिक होते हो; और जब तुम बीमार होते हो, तब? तुम सोचते हो, बीमारी प्राकृतिक नहीं है? अन्यथा बीमारी आएगी कहां से? बीमारी प्रकृति का हिस्सा है, वैसे ही जैसे स्वास्थ्य। लेकिन बीमारी में तुम दुख पाते हो; स्वास्थ्य में सुख पाते हो।
तो अब निर्णय तुम्हें करना है कि किस प्रकृति की यात्रा में तुम चलो-- दुख की, सुख की या आनंद की। और तीनों द्वार सदा खुले हैं। और प्रकृति की

तरफ से न कोई तुम पर बोझ है, न कोई वजन है, न कोई आग्रह है, न तुम्हें दंड दिया जाएगा, न तुम पुरस्कृत किए जाओगे। प्रकृति इस संबंध में बिल्कुल निरपेक्ष है, तटस्थ है। वह तुम्हें धकाती नहीं। तुम्हारी जैसी मर्जी। इसलिए मैं कहता हूं, जब तुम दुख पाते हो तो अपनी ही मर्जी से पाते हो।
और अगर दुख पाने में तुम्हें रस आ रहा हो, तो कोई तुमसे नहीं कह रहा है कि दुख मत पाओ। खूब मजे से पाओ, जितना ज्यादा पा सको, उतना पाओ। कठिनाई यह है कि दुख पाने में तुम्हें दुख भी हो रहा है और तुम सजग भी नहीं हो कि यह तुम अपने ही कारण पा रहे हो।
तो पहली बात तो समझ लें कि प्रकृति एक निरपेक्ष प्रवाह है, उसका कोई पक्षपात नहीं है। लेकिन अगर तुम दुख पाना चाहो, तो तुम्हें एक ढंग का जीवन जीना पड़ेगा। वह जीवन है संघर्ष का, लड़ने का, जीतने की आकांक्षा का। और जो भी जीतने की आकांक्षा करेगा, वह हारेगा। क्योंकि अंग, एक छोटा-सा अंश, पूर्ण से कैसे विजय पा सकता है? एक बूंद सागर से लड़ेगी, तो जीत की कोई भी तो संभावना नहीं है। उसके बूंद होने में ही हार लिख गई। क्या उपाय हो सकता है कि बूंद सागर से जीत जाए? तुम्हारा हाथ तुम्हारे खिलाफ लड़े, कोई रास्ता है जीतने का? तुम्हारा हाथ तुम्हारे खिलाफ लड़ेगा, तो भी तुम्हारी ही शक्ति की उसको जरूरत पड़ेगी।
यह ऐसे ही है, जैसे बाप अपने छोटे बच्चे से कुश्ती लड़ रहा हो। और बाप
की मौज है, तो जिता दे, कि गिर पड़े, सीधा लेट जाए, बेटे को छाती पर बिठा ले। लेकिन यह भी बाप को ही करना पड़ेगा। और बेटे को भ्रांति हो सकती है कि मैं जीत रहा हूं, लेकिन बाप भलीभांति जानता है, उसके जीतने का कोई उपाय नहीं है।
जब तुम जीतते हो, तब परमात्मा तुम्हारे साथ खेल रहा है, जैसे बाप बेटे
के साथ खेल रहा हो। तुम्हारी जीत हो नहीं सकती। यह जीत असंभव है। असंभव इसलिए है कि अंश कैसे अंशी से जीतेगा? हिस्सा कैसे पूर्ण से जीतेगा? नहीं कोई उपाय है।
लेकिन कभी-कभी जीत तुम्हें लगती है कि हो रही है, वह बाप बेटे से हार रहा है। यह उसका खेल है। और इस खेल में तुम उलझ गए, तो बड़े दुखी होओगे, क्योंकि यह खेल सदा नहीं चलेगा। अनेक बार तुम्हें हारना पड़ेगा। और जिस दिन तुम यह जान लोगे कि हार तो अनिवार्य है, उसी दिन तुम जीतने का उपाय छोड़ दोगे।
जीतने की आकांक्षा का त्याग संन्यास है। और जीतने की आकांक्षा का जिसने त्याग कर दिया, वही जानता है, नहिं राम बिन ठांव। उसी ने पहचाना कि राम ही आखिरी विश्राम है। उससे लड़कर जाने का कहीं कोई मार्ग नहीं है। वह जैसा रावण राम से हार जाता है। बीच में कई जीतें हैं। बीच के पड़ाव पर कई बार रावण जीतता हुआ मालूम पड़ता है। रावण को भी लगता है कि मैं जीत रहा हूं कई बार। और उससे आशा बंधती है कि अंतिम जीत भी मेरी हो जाएगी। लेकिन अंतिम जीत कभी भी नहीं हो सकती। यह खेल कितना ही लंबा चले, अंतिम जीत राम की होगी। रावण बहुत बार जीतेगा, राम एक ही बार जीतेंगे, लेकिन वह अंतिम होगा। अंश बहुत बार जीत सकता है छोटे-मोटे खेलों में, लेकिन आखिरी निर्णायक खेल में हार हो जाएगी। जिसने ऐसा समझ लिया, जान लिया, पहचान लिया, अपने को अंश की भांति देख लिया, वह लड़ना छोड़ देता है। और मजा यह है कि लड़ना छोड़ते ही जीत घटित हो जाती है। क्योंकि जैसे ही तुमने लड़ना छोड़ा, तुम न रहे, राम ही बचा। लड़-लड़कर ही तो तुम अपने अहंकार को बचाते हो। जब तुम लड़ते ही नहीं और मान लेते हो कि हार स्वीकार है, तुम गए। बूंद खो गई, सागर हो गया। अब राम की जीत तुम्हारी ही जीत है। अब तुम हार नहीं सकते, अब तुम्हें कोई हरा नहीं सकता। पहले तुम जीत नहीं सकते थे, जीतना असंभव था, अब हारना असंभव है। क्योंकि अब तुम अंशी के साथ एक हो, पूर्ण के साथ एक हो। अब तुम लहर नहीं हो, अब तुम सागर हो। अब तुम्हें कौन हराएगा?
लाओत्से ने कहा है कि जो जीतने चला है, वह हारेगा; और जो हार गया, उसके हारने का कोई उपाय नहीं। लाओत्से बार-बार कहता है कि मुझे तुम हरा न सकोगे, क्योंकि मैं पहले से हारा हुआ हूं। लड़ने का ही उपाय नहीं है, तो हराओगे कैसे? मैं हारा ही हुआ हूं।

जो हारा ही हुआ है, वही संन्यासी है। और इस हारे हुए संन्यासी को हमने विजेता कहा है। महावीर और बुद्ध के नामों में एक नाम जिन है। जिन का अर्थ हैः जो जीत गया। जिन के ही आधार पर महावीर के मानने वाले जैन कहलाते हैं-- जो जीत गया।
लेकिन कब महावीर जीतते हैं? किस घड़ी में जीत घटित होती है? जिस घड़ी में महावीर नहीं होते, उसी घड़ी में जीत घटित होती है। जब तक तुम हो, हार होगी। तुम हार का आधार और सूत्र हो। जब तुम नहीं हो, जीत हो गई। तुम्हारे साथ ही हार जा चुकी। अब जो बचा है, वह सदा जीता हुआ है।
इसलिए महावीर का नाम हमने बदल दिया। नाम तो उनका वर्द्धमान था। यह नाम भी बड़ी प्रीतिकर है, विचारणीय है। वर्द्धमान का अर्थ है, जो सदा बढ़ता ही जाए, जीतता ही जाए। लेकिन जब तक वे वर्द्धमान थे, तब तक हारे। वर्द्धमान हमारी आकांक्षाओं का नाम है--बढ़ती ही जाएं, जिनका कोई अंत नहीं है। कहीं भी पहुंच जाओ, तो और आगे, और आगे। और वासना बढ़ती जाती है, क्षितिज की तरह फैलती चली जाती है।
तो वर्द्धमान तो नाम था उनका जन्म से, बाप ने दिया। और बाप बेटे को महत्वाकांक्षा ही देता है। यही आकांक्षा होती है कि सब बढ़े, फले, फूले। तो वर्द्धमान नाम रखा था। जब तक वर्द्धमान रहे तब तक हार होती रही। फिर जिस दिन वर्द्धमान मिटा, भीतर का अहंकार गया, उस दिन महावीर हुए। महावीर का अर्थ है कि अब इनको कोई हरा नहीं सकता। अब वीरता उस अंतिम चोटी पर पहुंच गई, जहां कोई हरा नहीं सकता। लेकिन इस वीर का जन्म तब हुआ, जब वर्द्धमान हट गया, बीच से चला गया।
वर्द्धमान जब मिटते हैं तो महावीर का जन्म होता है। इस वक्तव्य के साथ में एक बार बहुत मजा हुआ। कई वर्ष पहले, एक महावीर के मंदिर में पहुंचा। एक जैन मुनि के बोलने के बाद जब मैंने कहा, वर्द्धमान और महावीर दो अलग-अलग व्यक्ति हैं, और जब मैंने कहा कि वर्द्धमान की मृत्यु पर महावीर का जन्म हुआ, और जब मैंने कहा कि जब तक वर्द्धमान है, तब तक महावीर के होने का कोई उपाय नहीं, और जिनका नाम वर्द्धमान है, वह महावीर नहीं और वर्द्धमान के जीवन को जिसने महावीर का जीवन समझ रखा है, वह बड़ी भ्रांति में है--वह जैन-मुनि बड़े व्यथित और परेशान हो गए। उन्होंने समझा कि कोई जो जैन-शास्त्र को जानता नहीं, बोलने आ गया है।
वह इतने बेचैन हो गए कि बीच में खड़े हो गए। और उन्होंने कहा कि यह, जो
आप कह रहे हैं, सरासर गलत है। वर्द्धमान और महावीर एक ही व्यक्ति के नाम हैं। और आपको जैन-शास्त्रों का कुछ पता नहीं, ऐसा मालूम होता है। मैंने यह कहा कि जैन-शास्त्र का पता मुझे हो न हो, जिनत्व का मुझे पता है। और जहां तक जिनत्व का संबंध है महावीर और वर्द्धमान दो व्यक्ति हैं। किताब में क्या लिखा है, वह आप समझ लें। और वर्द्धमान का जीवन महावीर का जीवन नहीं है। वर्द्धमान को मिटाने के लिए ही तो महावीर जंगल में गए। और जिस दिन वर्द्धमान गिर जाता है, जिस दिन बीच की खोल झड़ जाती है, उस दिन महावीर के पौधे का जन्म होता है।
उनकी समझ में फिर भी नहीं आ सका! धारणाओं से भरी समझ समझने में असमर्थ
हो जाती है। फिर वह इतने क्रोधित हो आए कि मैं ऐसी उलटी-सीधी बात कह रहा हूं कि उन्हें होश भी न रहा। समझने के लिए थोड़ा होश तो चाहिए ही। फिर शास्त्र का जिन्हें बहुत ज्ञान हो... अक्सर शास्त्र आंखों पर धूल की तरह जम जाता है और जीवन को देखना कठिन हो जाता है।
यह तो मैं भी जानता हूं कि महावीर और वर्द्धमान एक ही व्यक्ति के नाम हैं। लेकिन यह एक ही व्यक्ति का नाम तो बहुत ऊपर की बात है, भीतर से एक डिसकंटीन्यूटी है। ऊपर से तो यह आदमी वही है। जो वर्द्धमान की तरह पैदा हुआ था, वही महावीर की तरह मरेगा। ऊपर से तो एक सातत्य है। लेकिन भीतर? भीतर एकशृंखला समाप्त हो गई और दूसरीशृंखला का जन्म हो गया। भीतर जो पैदा हुआ था, वह समाप्त हो गया; और जो कभी न पैदा होता है और न कभी समाप्त होगा, उसकी स्मृति, उसका अनुभव आ गया, वही महावीर है।
इसे समझ लें। जब तक आप हैं, तब तक पराजय आपका भाग्य होगा, क्योंकि लड़ने
का ख्याल ही मूढ़तापूर्ण है। जैसे कोई अपने से ही लड़ रहा हो, हारेगा ही।

जैसे कोई छाया से लड़ रहा हो, हारेगा ही। जिस दिन यह स्मृति आती है कि लड़ना किससे है, मेरे अतिरिक्त कोई और है नहीं, मैं ही हूं फैला हुआ! और तू में मैं ही है समाया हुआ! मैं और तू कहीं कटते और अलग नहीं होते--उसी दिन पराजय समाप्त हो गई, लेकिन उसी दिन आप भी समाप्त हो गए।
चिकित्सकों के संबंध में एक बात अक्सर कही जाती है उनके खिलाफ, किसी चिकित्सक के खिलाफ लोग होते हैं तो वे कहते हैं कि मरीज भला मर जाए, यह बीमारी उससे खत्म होने वाली नहीं है। लेकिन धर्म के संबंध में यही स्थिति सत्य है। यहां बीमार जब तक नहीं मरेगा, तब तक बीमारी समाप्त होने वाली नहीं है। क्योंकि यहां बीमार और बीमारी एक ही घटना के दो नाम हैं। तुम मिटोगे तो ही बीमारी मिटेगी, क्योंकि तुम ही बीमारी हो।
सारे धर्म की खोज, समस्त धर्मों की खोज, कितनी ही विस्तार में भिन्न-भिन्न हो, लेकिन सार एक है। और वह यह है कि कैसे व्यक्ति मिट जाए और समष्टि आ जाए। फिर परम आनंद है। जब तुम ही नहीं हो, तो दुख हो कैसे सकेगा? जितने मजबूत तुम होते हो, उतना ही गहरा तुम्हारा दुख होता है।
इसे ठीक से ख्याल में ले लेंः सभी कुछ प्रकृति है, दुख, सुख, आनंद। यदि तुम लड़ते हो तो दुख प्रकृति से मिलता है। प्रकृति तुम्हें दुख देती है, ऐसा नहीं है। तुम लड़ते हो, इसलिए दुख पाते हो। वह तुम्हारे लड़ने की छाया है। जैसे जमीन में गुरुत्वाकर्षण है, ग्रेवीटेशन है। तुम चलते हो, तुम्हें पता भी नहीं चलता कि ग्रेवीटेशन है। तुम आड़े-तिरछे चलो, शराब पीकर चलो, तुम गिर पड़ोगे, पैर टूट जाएगा। वह पैर भी पृथ्वी के ग्रेवीटेशन की वजह से टूट रहा है। जमीन खींच रही है। तुम आड़े हो गए, तब भी खींच रही है। तुम सीधे खड़े हो, तब भी खींच रही है। जमीन का खींचना तो चल ही रहा है, तुमसे कोई प्रयोजन नहीं। तुम आड़े हुए तो पैर तोड़ लोगे। पैर टूटा तो तुम दुख पाओगे। तुम ऐसा नहीं कह सकते कि ग्रेवीटेशन ने तुम्हारा पैर तोड़ दिया। ग्रेवीटेशन को तुम्हारा कुछ पता ही नहीं है। ग्रेवीटेशन तो एक नियम है। ऐसे ही जैसे दीवार से तुमने निकलने की कोशिश की और सिर में चोट लगी, तो क्या तुम यह कहोगे कि दीवार ने सिर फोड़ दिया? अक्सर लोग कहते हैं। तुमने सिर फोड़ लिया! और दीवाल तो खड़ी थी, तुम बचकर निकलते तो दीवाल हटकर तुम्हारा सिर तोड़ने नहीं आती। दरवाजे से निकले, सिर नहीं टूटा। दीवार से निकले, सिर टूटा।
प्रकृति से लड़ने का जो ख्याल लेगा, वह सिर तोड़ लेगा और दुख पाएगा। प्रकृति से जो नहीं लड़ेगा, समर्पित हो जाएगा, वह दरवाजे से निकल रहा है, उसका सिर नहीं टूटेगा। और वह यह बात ही भूल जाएगा कि मैं हूं। संघर्ष भी नहीं, समर्पण भी नहीं, क्योंकि समर्पण में भी लगता है, मैं हूं। न संकल्प, न समर्पण। न मैं लड़ता हूं, न संघर्ष करता हूं, न छोड़ता हूं। क्योंकि छोड़ने वाला कौन? जब मैं हूं ही नहीं, तब कैसा संघर्ष? कैसा समर्पण?
इससे परम आनंद घटित होता है। वह अभी भी बरस रहा है। दरवाजा अभी भी खुला है, लेकिन तुम दीवार से टकरा रहे हो। और लोग करीब-करीब इसी नियम को मानकर चलते हैं।
कभी तुमने देखा है कि खिड़की से कोई पक्षी तुम्हारे कमरे में घुस आता है। फिर वह सब तरह की कोशिश करता है, सब दीवालों से जाकर टकराता है, लेकिन उस खिड़की पर नहीं जाता जिससे भीतर आया है। यह बड़े मजे का मामला है कि क्या तर्क होगा इस पक्षी का?
एक बात तो पक्की है कि यह भीतर आया तो बाहर जाने का रास्ता वही है, जिससे भीतर आया है। और कोई रास्ता होने वाला नहीं है। एक बात पक्की है कि भीतर आ गए हो, तो बाहर भी जा सकोगे। नहीं तो भीतर ही कैसे आते? लेकिन यह इस खिड़की को छोड़कर सब जगह फड़फड़ाता है, चोंच मारता है, पंख मारता है। और जितना मारता है दीवालों में टक्कर, उतना घबड़ाता है। उस घबड़ाहट में फिर खिड़की दिखाई पड़नी बंद ही हो जाती है। और अगर तुमने इसकी सहायता करने की कोशिश की, तो जान ले लोगे। अक्सर ऐसा मन होता है कि सहायता करो और खिड़की से निकाल दो। तुमने अगर कोशिश की खिड़की से निकालने की, तो यह खिड़की पर जाएगा ही नहीं।

अनेक गुरुओं के हाथ शिष्यों की यही गति हो जाती है। गुरु उनको धक्का देता है कि खिड़की से निकल जाओ। धक्का देने के कारण वे दीवाल से और बुरी तरह टकराते हैं।
परम गुरु तुम्हें धक्के नहीं देगा। परम गुरु का काम यही है कि वह कमरे में ऐसे हो जाएगा, जैसे है नहीं। उसकी गैर-मौजूदगी में ही तुम हल्के हो पाओगे।
दूसरे की मौजूदगी से और घबड़ाहट बढ़ती है। और नहीं निकल पा रहे हैं, मूढ़तापूर्ण कृत्य कर रहे हैं, इससे और चिंता बड़ी होती है। उस चिंता में आंखें और धुंधली हो जाती हैं। उस बुखार में, तेजी में, फिर कुछ भी नहीं सूझता। आदमी अंधे की तरह हो जाता है।
फिर यह पक्षी जिस खिड़की से अंदर आया, उसी से बाहर क्यों नहीं चला जाता, तर्क सीधा-साफ है। लेकिन हम भी वही कर रहे हैं। जरूर कहीं बुनियाद में हममें और पक्षी में तर्क एक ही है।
वह तर्क यह है कि जहां से भीतर आए, वहां से बाहर कैसे जाएंगे? क्योंकि भीतर और बाहर विपरीत बातें मालूम पड़ती हैं। यह भीतर कहां और बाहर? उलटा है बिल्कुल। इसलिए जिस जगह से भीतर आए, वहां से बाहर कैसे जाना होगा? बाहर जाने का रास्ता कोई और होगा।
भीतर और बाहर दो चीजें नहीं हैं। भीतर और बाहर एक ही अस्तित्व के दो छोर हैं। जो समझेगा वह पाएगा कि जहां से तुम भीतर आए हो, वहीं से बाहर जाओगे। और कोई रास्ता हो ही नहीं सकता। जिस रास्ते से आप यहां तक आए हैं, अपने घर को छोड़कर मेरे पास, उसी रास्ते से आप वापस जाएंगे, वही रास्ता है। हालांकि बुद्धि कह सकती है कि जिस रास्ते से तुम घर से दूर गए हो, उसी रास्ते से तुम घर के पास कैसे आओगे?
थोड़ा-सा फर्क ख्याल में ले लेना जरूरी है। मेरी तरफ आते समय तुम्हारा चेहरा मेरी तरफ था, पीठ घर की तरफ। जाते समय पीठ मेरी तरफ होगी, चेहरा घर की तरफ। इतना ही फर्क होगा। तुम वही, घर वही, रास्ता वही। जहां से मनुष्य प्रवेश करता है अस्तित्व में, वहीं से वापस जाता है।
कल तुमने पूछा था कामवासना के संबंध में। इस संबंध में उसे भी समझ लेना उपयोगी है। बच्चा जब मां के पेट में होता है, तो रति शून्य होता है, कामवासना शून्य होता है। अ-रति की अवस्था होता है, नो-सेक्स की अवस्था होती है। उसे कुछ पता ही नहीं होता। अपना ही पता नहीं होता, तो भोग का ख्याल कैसे होगा? अहंकार हो, तो भोग चाहता है। अहंकार हो, भोग न मिले, तो दुखी होता है। अभी भोग का कोई सवाल नहीं है, क्योंकि बच्चा अभी अलग नहीं है। अभी मां के गर्भ में बच्चा मां के साथ एक है।
गर्भ की जो दशा है, वही मोक्ष की दशा है। गर्भ छोटा-सा आनंद-रूप है मोक्ष का।
बच्चा मां के साथ एक है, अपने मूल-स्रोत के साथ एक है। मां श्वास लेती है, तो वही बच्चे की श्वास है। मां का खून चलता है, तो वही बच्चे के खून की गति है। मां का हृदय धड़कता है, तो वही बच्चे की धड़कन है। मां अभी मर जाए, तो बच्चा मरेगा। अभी मां का जीवन बच्चे का जीवन है। अभी पृथकता पैदा नहीं हुई। अभी अहंकार नहीं जन्मा। यह मोक्ष का आनंद-रूप है।
फिर परम संतत्व की अवस्था में भी यही घटना घटती है। तब यह पूरा अस्तित्व मां का गर्भ हो जाता है। इसलिए जहां हम मंदिर में परमात्मा की मूर्ति रखते हैं, उसको कहते हैं गर्भगृह। जिस दिन यह सारा जगत मंदिर की तरह हो जाता है, उस दिन गर्भगृह में तुम पुनः प्रवेश कर जाते हो। फिर तुम्हारा अस्तित्व नहीं रह जाता, फिर सर्व है, तुम नहीं हो।
इसलिए जिन लोगों ने परमात्मा की कल्पना पुरुष की जगह स्त्री के रूप में की है, उन लोगों ने ज्यादा कुशलता दिखाई है। परमात्मा की धारणा पुरुष के रूप में ठीक नहीं है। क्योंकि वह गर्भ कैसे बनेगा? इसलिए परमात्मा की धारणा स्त्री के रूप में ज्यादा योग्य है। लेकिन पुरुष के अहंकार के कारण हम आमतौर से परमात्मा को पुरुष बनाए हुए हैं। अहंकार को छोड़कर अगर तथ्य को समझने की कोशिश करें, तो परमात्मा स्त्रैण ही होना चाहिए, क्योंकि उसमें

जगह चाहिए। मोक्ष, उसमें जगह है, गर्भ की संभावना। हम उसमें वापस लौट सकें।
तो काली, जगदंबा की जो धारणा है, वह ज्यादा सत्य के निकट है। पुरुष में
तो जगह ही नहीं है, उसमें जाइएगा कहां? पुरुष में कोई स्थान नहीं है। परमात्मा गर्भ बन जाता है पुनः संत को।
बच्चा जब पैदा होता है तो पहली अवस्था है अ-रति, नो-सेक्स। इसके विकास
को ठीक से समझें, क्योंकि यही वापसी में संत की यात्रा होगी। दूसरा चरण है आत्म-रति, आटो-इरोटिक। बच्चा खुद ही को प्रेम करता है। अपने ही हाथ-पैर से खेलता है। ऐसे ही प्रसन्न होता है अकारण। कोई साथी-संगी नहीं, खुद ही पड़ा- पड़ा मजा लेता है। मुस्कुराता है। माताएं समझती हैं शायद पिछले जन्म की याद वगैरह करके प्रसन्न हो रहा है। वह आत्म-रति में लीन है, अभी आटो-इरोटिक है। खुद ही प्रेमी है, खुद ही प्रेम-पात्र है।
फिर तीसरा चरण आता है, तब बच्चा होमो-सेक्सुअल हो जाता है। समलिंगीय-यौन पैदा होती है। इसलिए लड़कों की उत्सुकता लड़कों में, लड़कियों की लड़कियों में होती है।
एक उम्र है बच्चों की जब लड़के लड़कों के साथ मेल करते हैं, लड़कियां लड़कियों के साथ। लड़के लड़कों के प्रेम में पड़ जाते हैं, लड़कियां लड़कियों के।
इसलिए बचपन में जैसी दोस्ती बनती है, फिर कभी नहीं बनती। फिर जिंदगीभर वैसी दोस्ती का स्वाद नहीं आता। बच्चे जैसी दोस्ती एक-दूसरे से कर लेते हैं, वह प्रेमियों जैसी दोस्ती है, वह जीवनभर टिकती है। फिर बहुत लोगों से मिलना होगा, अच्छे लोगों से मिलना होगा, संबंध बनेंगे, लेकिन परिचय रहेगा, दोस्ती नहीं हो पाएगी। क्योंकि वह जो होमो-सेक्सुअल, समलिंगीय-प्रेम की अवस्था थी, फिर दुबारा नहीं आएगी। अनेक लोग होमो- सेक्सुअल रह जाते हैं, उसका अर्थ है, उनका ठीक विकास नहीं हुआ।
पश्चिम में इस समय बहुत बड़ा रोग है। अनेक पुरुष पुरुषों से ही प्रेम
कर पाते हैं और अनेक स्त्रियां स्त्रियों से ही। उनके बड़े संगठन हैं, पत्रिकाएं हैं, पुस्तकें हैं, सरकारों से उनका संघर्ष चल रहा है कि हमको भी वैधानिक हक होना चाहिए। और कुछ मुल्कों ने--डेनमार्क ने, स्वीडन ने-- विवाह की भी आज्ञा दे दी है। एक पुरुष एक पुरुष से विवाह करना चाहे, कर सकता है।
यह जो अवस्था है, बचपन में तो स्वाभाविक है। लेकिन यह टिक जाए, रह जाए,
तो इसका अर्थ हुआ, रिटार्डेशन हो गया। कोई विकास की सीढ़ी पर आप रुक गए, आगे नहीं जा पाए।
तीसरा चरण होमो-सेक्सुएलिटी है। चौथा चरण हेट्रो-सेक्सुएलिटी है, विभिन्न लिंग से प्रेम। स्त्री का पुरुष से, पुरुष का स्त्री से। ये चार चरण।
अब इसमें दो उपाय हैंः एक उपाय यह है कि सारी यौन की यात्रा से संघर्ष करके कोई व्यक्ति जंगल में भाग जाए, लड़े, अपने को रोक ले, जिसको हम संयमी कहते हैं, तपस्वी कहते हैं। तो वह वापस नहीं लौट रहा, वर्तुल पूरा नहीं हो रहा। तो फिर एक तरह की विरति पैदा होगी, जिसको हम आमतौर से साधु-संन्यासी में देखते हैं। लेकिन इस विरति को मैं पंगु कहता हूं, पैरालाइज्ड कहता हूं, यह वास्तविक विरति नहीं है। क्योंकि यात्रा में तुम आगे ही आए हो, लौटे नहीं। वर्तुल पूरा नहीं हुआ। और जब तक वर्तुल पूरा न हो, तब तक यात्रा पूरी नहीं हुई।
जगत में सभी चीजें वर्तुलाकार घूम रही हैं--चांद, तारे, सूरज, पृथ्वी, जीवन, सब चीजें वर्तुलाकार हैं। अस्तित्व सीधी रेखा को मानता ही नहीं, अस्तित्व तो वर्तुल को मानता है। सब चीजें वापस उसी बिंदु पर आ जानी चाहिए, जहां से शुरू हुई थीं।
यहीं तंत्र की अनूठी खोज और महिमा है। तंत्र कहता है, विरति तो पानी है, लेकिन वह विरति वापस लौटकर पानी है।
तो चौथी अवस्था है, हेट्रो-सेक्सुअल, अपने से भिन्न लिंग के साथ प्रेम-काम की दशा। पुरुष का स्त्री, स्त्री से पुरुष--विपरीत से प्रेम।

इससे वापस लौटना है। तो इसके पीछे का चरण है होमो-सेक्सुअल।
इसलिए दुनिया में सभी धर्मों ने, जिनको भी मनोवैज्ञानिक सूझ है, इस चरण का उपाय किया है। बौद्धों का संघ है बौद्ध भिक्षुओं का, तो भिक्षुणियों का संघ अलग है, भिक्षुओं का अलग है। ताकि विपरीत सेक्स से संबंध क्षीण हो जाए। भिक्षु इकट्ठे रहेंगे, भिक्षुणियां इकट्ठी रहेंगी। ईसाइयों की कैथालिक मोनेस्ट्रीज हैं, जहां पुरुष अलग, स्त्रियां अलग-- मांक्स, नन्स अलग।
कुछ तो मोनेस्ट्रीज ऐसी हैं कैथालिक ईसाइयों की कि जिनमें एक व्यक्ति प्रवेश करता है तो फिर कभी बाहर नहीं आता। वह द्वार सिर्फ भीतर जाने के लिए खुलता है, फिर बाहर आने के लिए नहीं खुलता। तो उसने विपरीत सेक्स का जगत छोड़ दिया। अब वह पुरुषों के साथ ही रहेगा। उसकी मैत्री होगी वैसी ही, जैसी एक बार बचपन में हुई थी। यह वापस लौट रहा है।
फिर इससे भी पीछे लौटना है और उस छोटे बच्चे की भांति हो जाना है, जब
आप अपने को ही प्रेम करते हैं। पुरुष भी खो गया, स्त्री भी खो गई। संन्यासी अपनी गुहा में बैठा हुआ अपने में ही रत है। ध्यान की यह दशा आत्म-रति है। यह ठीक वैसे ही है, जैसा बच्चा अपने झूले में पड़ा है और आनंदित हो रहा है। किसी दूसरे की जरूरत नहीं है आनंद के लिए। उसका खुद का होना ही काफी आनंद है। ध्यान की यह अवस्था है।
फिर इससे भी पीछे लौटना है--अपना भी ख्याल न रह जाए। वह गर्भ में वापस लौट गया। इस अवस्था का नाम समाधि है। तब बच्चा, जैसे पूरा अस्तित्व गर्भ हो गया और अब उसे अपना बोध ही न रहा, वह अबोध हो गया। इस सारे अस्तित्व के साथ एक हो गया। यह वर्तुल पूरा हुआ। फिर अ-रति पैदा हुई। इस अंतिम अवस्था को मैं ब्रह्मचर्य कहता हूं।
और अगर आप सीधे ही चलते गए और चौथे चरण के बाद ब्रह्मचारी हो गए पांचवें चरण में, तो वह ब्रह्मचर्य दमन होगा। और विकृत होगा और उसमें सौंदर्य नहीं हो सकता। उसमें वह महिमा प्रगट नहीं होगी, जो एक बच्चे में प्रगट होगी मां के गर्भ में वापस लौटकर।
अ-रति, फिर आत्म-रति, फिर स्वलिंगीय-रति, फिर पर-रति, और फिर वापस है यात्रा। और जिस दिन आपका वर्तुल पूरा होगा, उस दिन परम शांति आप पर प्रगट होगी। आशीर्वाद सब तरफ से बरसने लगेंगे। यह आदमी घर आ गया। झेन फकीर कहते हैं, कमिंग बैक टू होम। जहां से चला था, वहीं वापस आ गया। मूल-स्रोत को उपलब्ध हो गया।
प्रकृति से लड़ेंगे, तो भी प्राकृतिक; समर्पण करेंगे, तो भी प्राकृतिक। छोड़ देंगे अपने को, बिल्कुल भूल जाएंगे, न संघर्ष, न समर्पण, तो भी प्राकृतिक है। सभी कुछ प्राकृतिक है, क्योंकि अप्राकृतिक हो ही कैसे सकता है? इसलिए सवाल प्रकृति और अप्रकृति के बीच चुनने का नहीं है, सवाल सुख, दुख और आनंद के बीच चुनने का है। तीनों द्वार खुले हैं। जिस तरफ भी जाना हो, होशपूर्वक जाना।
अगर दुख पाना हो, तो होशपूर्वक पाना। कोई रोक नहीं रहा है। परतंत्रता बिल्कुल नहीं है। जिसको दुख पाना है, उसे पूरे उपाय हैं, वह दुख पाए। लेकिन ध्यान रखना, तुम्हीं अपने ही हाथों आयोजन कर रहे हो, किसी और को दोष मत देना। सुख पाना हो, सुख पाना। और आनंद की तैयारी हो गई हो, तो आनंद पाना। लेकिन न तो यहां कोई दोषी है तुम्हारे सुख-दुख के लिए, और न किसी के प्रति धन्यवाद का कोई उपाय है। तुम अकेले ही जी रहे हो।
इस धारणा को ही हमने कर्म का सिद्धांत कहा है। कर्म के सिद्धांत का कुल इतना ही अर्थ है कि जो तुम पाते हो, वह तुम्हारा किया हुआ है। न तो प्रकृति कुछ देती है, न परमात्मा कुछ देता है। तुम ही अपना जीवन अर्जित करते हो। और जो बीज तुम बोते हो, उन्हीं की तुम फसल काट लेते हो। यही तुम करते रहे हो।
देख लेने की बात कुल इतनी ही है कि तुम्हारा करना तुम्हारी हड्डी- पसली तोड़ देता है, तो उसका अर्थ है कि तुम प्रकृति के विपरीत चल रहे हो। तुम्हारा करना तुम्हें सुख-स्वास्थ्य से भरता है, तो उसका अर्थ है कि तुम

अनुकूल चल रहे हो। प्रतिकूल दुख है, अनुकूल सुख है। लेकिन अगर तुम आनंदित हो उठते हो, तो न तुम प्रतिकूल हो, न अनुकूल, तुम एक हो गए।
एकात्म आनंद है।

प्रश्नः ओशो, जब तक शरीर से तादात्म्य होता है, तब तक तो हम शरीर की कोई फिक्र नहीं करते। उसे अपना अहंकार तुष्ट करने का साधन ही बनाते हैं। लेकिन यह तादात्म्य जैसे-जैसे कम होता जाता है, वैसे-वैसे शरीर के प्रति एक नई पहचान, एक नए मैत्री-भाव का उदय होता है। ऐसा विरोधाभास क्यों है?

जैसे-जैसे कोई व्यक्ति शांत होगा, वैसे-वैसे शत्रुता का भाव गिरने लगता है। यह सवाल नहीं है, किसके प्रति? शत्रुता का भाव भीतर से गिरना शुरू हो जाता है। आनंदित व्यक्ति केवल मैत्री का ही भाव कर सकता है। जैसे तुम्हारा ध्यान गहरा होगा, वैसे ही तुम्हें लगेगा, सबसे तुम्हारी मैत्री हो गई। जो अपने थे, वे अपने रहे; जो पराए थे, वे भी अपने हो गए।
शरीर, अज्ञानी कितना ही तादात्म्य रखता हो, उसे पराया मानता है। और अज्ञानी कितना ही शरीर में जीता हो, शरीर की शत्रुता से जीता है। तुम भला कितना ही शरीर को सजाते हो, लेकिन भीतर तुम्हारे शरीर के साथ एक दुश्मनी बनी है। वह तुम्हें पहचान में न आती हो, लेकिन तुम शरीर के शत्रु हो। और शत्रुता दो तरह से पूरी की जा सकती है।
एक तो शत्रुता पूरा करने का उपाय है कि तुम शरीर को भोग का एक माध्यम बना लो। तब तुम शरीर को नष्ट ही करोगे। और शरीर में अनेक तरह के दुख और व्याधियों का जन्म होगा।
तो शरीर के साथ दुश्मनी भंजाने का एक रास्ता भोगी का है। वह भी सड़ता है। एक दूसरा रास्ता त्यागी का है। वह भोगकर शरीर को नहीं सड़ाता, वह शरीर को सताता है। कांटों पर सुलाता है, भूखा रखता है, कोड़े मारता है, वह शरीर को सीधा सताता है। भोगी परोक्ष रास्ते से सताता है। लेकिन दोनों शरीर को सताते हैं और दोनों दुश्मन हैं। मित्र उनमें से कोई भी नहीं।
बुद्ध का एक संन्यासी हुआ, श्रोण। वह राजकुमार था। उसने घर छोड़ दिया, महल त्याग कर दिया। परम भोगी था। उसने अपने महल में सारे भोग के आयोजन कर रखे थे। कभी जमीन पर पैदल नहीं चला था। सीढ़ियां भी अपने महल की चढ़ता था, तो नग्न स्त्रियां उसने किनारे पर खड़ी कर रखी थीं, जिनके कंधे पर हाथ रखकर वह ऊपर जाता था। साज, संगीत, नाच, नृत्य, बस यही जीवन था। दिनभर सोता, रातभर शराब पीता, नाच-गान में व्यतीत करता।
अचानक बुद्ध गांव में आए और श्रोण संन्यासी हो गया। बुद्ध के साथी- संगी चकित हुए। और उन्होंने पूछा कि हम सोच भी नहीं सकते कल्पना में कि श्रोण कभी संन्यासी होगा। यह तो आपने चमत्कार कर दिया। बुद्ध ने कहा, इसमें मेरा चमत्कार जरा भी नहीं है। श्रोण को संन्यासी होना ही पड़ेगा। क्योंकि मन एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। और अब तुम देखना इस श्रोण का व्यवहार, तुम कुछ भी नहीं हो।
और लोगों ने जल्दी ही देखा कि श्रोण तपश्चर्या में सबसे आगे है। भिक्षु दिन में एक बार भोजन करते थे बुद्ध के, तो श्रोण दो दिन में एक बार भोजन करता। भिक्षु रास्ते से चलते, तो श्रोण जंगल कंटीले मार्गों से चलता। भिक्षु एक चीवर रखते थे अपने पास, श्रोण नंगा रहता। भिक्षु दोपहर में छाया में विश्राम करते, श्रोण धूप में खड़ा रहता।
बुद्ध ने कहा, देखो, पहले भी सता रहा था शरीर को, और अब भी सता रहा है। पहले सता रहा था भोग की तरह, अब सता रहा है योग की तरह, लेकिन सताना जारी है। दुश्मनी कायम है।
छः महीने में श्रोण की सुंदर काया सूख गई, काला पड़ गया, पैर में घाव और छाले आ गए। आंखें अंदर धंस गईं। कोई पहचान भी नहीं सकता था कि यह वही राजकुमार श्रोण है।
बुद्ध एक रात उसका झोपड़े पर गए और उससे कहा कि मैंने सुना है श्रोण कि
जब तू राजकुमार था, तो तू वीणा बजाने में कुशल था। एक बात पूछने आया हूं। अगर वीणा के तार बहुत कसे हों, तो संगीत पैदा होगा कि नहीं? श्रोण ने कहा,

होगा, लेकिन कर्कश होगा। और अगर बहुत ही ज्यादा कसे हों, तो तार टूट जाएंगे, संगीत पैदा नहीं होगा। और बुद्ध ने कहा, तार अगर बिल्कुल ढीले हों, तो? तो श्रोण ने कहा, तब भी संगीत पैदा नहीं होगा, या पैदा होगा, तो मरा-मरा पैदा होगा, उसमें कोई प्राण न होंगे, उसमें कोई गति न होगी। एक, अगर तार बहुत ढीले हुए, तो पैदा ही नहीं होगा। तो बुद्ध ने कहा कि फिर संगीत पैदा होने का नियम क्या है? श्रोण ने कहा, तार मध्य में हों। न तो बहुत कसे, न बहुत ढीले।
तारों की एक ऐसी भी दशा है जब न तो आप कह सकते हैं कि वे कसे हैं और न कह सकते हैं, ढीले हैं। वही मध्य-बिंदु खोजना संगीतज्ञ की कुशलता है। वीणा तो कई लोग बजा लेते हैं, लेकिन मध्य-बिंदु खोजना बड़े संगीतज्ञ की कुशलता है। जब संगीतज्ञ अपनी वीणा पर काम शुरू करता है, तो घंटों तो उसे संवारने में लग जाते हैं, बिठाने में--ठोंकता है, पीटता है, बिठाता है। वह मध्य में ला रहा है। तारों को उस जगह ला रहा है, जहां श्रोण ने कहा, न तो कसे, न ढीले, तब संगीत का जन्म होता है।
बुद्ध उठ खड़े हुए और बुद्ध ने कहा, श्रोण, यही कहने आया था कि जो संगीत
का नियम है, वही जीवन का नियम भी है। जीवन में भी तभी समाधि का संगीत पैदा होगा, जब ठीक मध्य में तार होंगे। अतियों से बच! भोग से त्याग पर चला जाना आसान है। भोग और त्याग के मध्य में रुक जा, वहीं संतुलन है।
तो जैसे-जैसे ध्यान बढ़ेगा, तो मन मध्य में आना शुरू होगा। सब शत्रुताएं गिरेंगी, दोनों तरफ की शत्रुताएं गिरेंगी और एक मैत्री-भाव पैदा होगा। और यह मैत्री-भाव किसी के प्रति नहीं है, यह तुम्हारे भीतर आविर्भूत होगा। इसलिए जहां भी तुम देखोगे, मैत्री मालूम पड़ेगी। वृक्षों को देखोगे, पक्षियों को देखोगे, मित्रों को देखोगे, सब तरफ एक मैत्री दिखाई पड़ेगी, जैसे सब तुम्हारे साथी हैं; जैसे तुम्हारे विरोध में कोई भी नहीं। है भी नहीं।
तुम थे विरोध में, तो सब तुम्हारे विरोध में थे। अगर कोई तुम्हारा विरोध भी करेगा, तो तुम्हारे ध्यान के कारण तुम देख पाओगे कि यह विरोध भी तुम्हारे सहयोग के लिए है।
तो कबीर कहते हैं, निंदक नियरे राखिए आंगन कुटी छवाय। वह जो तुम्हारी निंदा करता हो, उसको बुलाकर अपने बगल में ही ठहरा लो। आंगन बनाकर, कुटी छवाकर उसको वहीं अतिथि बना लो। क्योंकि उसकी निंदा से तुम्हें सहारा मिलेगा। अब वह निंदक में भी मित्रता दिखाई पड़ती है।
इस शरीर में भी तुम्हें मैत्री दिखाई पड़ेगी और तब तुम शरीर के प्रति
भी धन्यवाद कर पाओगे। और वही है संन्यासी, जो अपने शरीर को भी धन्यवाद दे सके। क्योंकि शरीर ने तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ा नहीं, सिवाय साथ देने के। तुम अगर वेश्या के घर जाना चाहते थे, तो वहां ले गया--तुम जाना चाहते थे। लेकिन हम बड़े अदभुत लोग हैं। हम कहते हैं, यह शरीर शत्रु है, यह वेश्या
के घर ले गया। तुम मंदिर जाने लगे, तो शरीर मंदिर ले गया। शरीर ने सदा छाया की तरह तुम्हारा पीछा किया। तुमने जो चाहा, शरीर ने पूरा किया, फिर भी तुम गाली उसे देते हो। अगर तुम पाप करते हो, तो कहते हो, शरीर पाप करवा रहा है। अगर तुम क्रोध करते हो, तो कहते हो, शरीर क्रोध करवा रहा है। अगर कामवासना तुम्हें झकझोरती है, तो तुम कहते हो, यह शरीर कामवासना में ले जा रहा है। यह दूसरे को दोष देने की हमारी आदत इतनी पुरानी है कि जब कहीं कुछ और उपाय नहीं मिलता दोष देने का, तो हम शरीर पर ही थोप देते हैं। इसलिए जो संन्यासी-साधु शरीर की निंदा कर रहा हो, समझना उसे अभी संन्यास की सुगंध नहीं मिली।
नहीं तो शरीर तो मंदिर है, शरीर तो एक अनूठी अनुकंपा है प्रकृति की। इतना कुछ शरीर में तुम्हें दिया है प्रकृति ने। काश, तुम उसका उपयोग कर सको! वहां कोई कामवासना ही नहीं छिपी है, वहां कामवासना से ऊपर के चक्र हैं, जिनमें और आयाम छिपे हैं। तुम्हारे शरीर में वह परम सहस्रार भी है, जहां से द्वार समाधि का खुलेगा।
तुम्हारा निम्नतम चक्र संभोग का है, जहां से द्वार प्रकृति का खुलता है। तुम्हारा सातवां चक्र ध्यान का है, जहां से द्वार परमात्मा का खुलता

है। शरीर में सब छिपा है। इसलिए शरीर को दोष मत देना। तुम जिस द्वार को खटखटाते हो, शरीर उसी द्वार को खोल देता है।
लेकिन हमारी आदतें हैं कि दोष कभी हम अपने को नहीं देना चाहते। कोई न कोई चाहिए, जो दोषी है। जब कोई भी नहीं मिलता है, तो निरीह शरीर तुम्हें मिल जाता है। और तथाकथित धर्मों ने बहुत दुष्टता सिखाई है और शरीर का तुम्हें दुश्मन बनाया है और तुम्हें यह ख्याल दिया है कि शरीर को सताओ, तो ही तुम आत्मवान हो सकोगे।
इससे ज्यादा मूढ़ता की और कोई बात नहीं हो सकती। आत्मवान पुरुष तो किसी को भी नहीं सताएगा, शरीर को सताने का सवाल ही नहीं है। और सताने वाला कैसे आत्मवान बनेगा? सताना तो हिंसा है, दुष्टता है, कठोरता है। और सताना तो रुग्ण चित्त का स्वभाव है।
सताओ मत। इस शरीर को पहचानो।
इसलिए जैसे तुम्हारा ध्यान आएगा, वैसे ही इस शरीर की नई प्रत्यभिज्ञा, नई पहचान होगी। तुम पहली दफा देखोगे कि शरीर तो अनूठा है, बड़ा रहस्यपूर्ण है। इसके कितने द्वार हैं! इसमें कितने अनूठे रहस्य का जगत छिपा है! तुमने खोजा ही नहीं खजाना। तुमने जो खोजा, वह तुम्हें मिल गया है।
तुम उस पागल की तरह हो, जिसे महल किसी ने भेंट किया हो और वह बाहर सीढ़ियों पर बैठा जीवन गुजार रहा है। और गाली दे रहा है कि धूप आती है, वर्षा आती है और किस तरह का मकान है यह, कि बस यहां बैठे रहो सीढ़ियों पर, कष्ट पाओ। सड़क से निकलती धूल उड़ती है, लोग गाली देते हुए जाते हैं।
अब वह दरवाजे पर सीढ़ियों पर बैठा है। उसने दरवाजा भी नहीं खोला है। उसने भीतर के कक्ष नहीं देखे, उसने महल का विश्राम नहीं जाना, उसने महल के खजाने नहीं खोजे। बस, वह दरवाजे पर बैठा गालियां दे रहा है। वह पीठ किए है महल की तरफ। और जितनी गालियां देगा, उतना ही मुंह करना मुश्किल हो जाएगा।
क्योंकि जिसको हम गाली देते हैं, उसकी तरफ हमारी पीठ मजबूत हो जाती है।
तुम्हारा दुश्मन आ जाए, तो तुम उसको देख नहीं सकते, तुम आंख बचा लोगे। तुम पीठ करके बैठ जाओगे। दुश्मन की तरफ पीठ के सिवाय और कुछ होगा भी नहीं। शरीर दुश्मन है, तो तुम पीठ किए महल की तरफ बैठे रहोगे।
माना, इसी शरीर से लोग नर्क जाते हैं। मगर इसी शरीर से लोग स्वर्ग भी जाते हैं। एक ही सीढ़ी को तुम नर्क की तरफ लगा सकते हो, उसी सीढ़ी को स्वर्ग की तरफ लगा सकते हो। सीढ़ी कुछ भी नहीं कहती कि नीचे की तरफ जाओ कि ऊपर की तरफ जाओ। वह जाने वाले पर निर्भर है।
ध्यान की थोड़ी सी भी झलक आनी शुरू हो, तो तुम्हें बड़ा मैत्री-भाव शरीर
के प्रति पैदा होगा, क्योंकि तुम पाओगे कि यह ध्यान भी शरीर के कारण ही संभव हो पा रहा है। और जिस दिन समाधि घटेगी उस दिन भी तुम पाओगे कि यह समाधि भी शरीर के कारण ही संभव हो पाई है। मुक्त व्यक्ति मरते क्षण में शरीर के प्रति बड़े अनुग्रह और धन्यवाद के भाव से मरता है।
संत फ्रांसिस की मृत्यु हुई, तो आखिरी क्षण में उसने आंख खोलीं और कहा, बहुत-बहुत धन्यवाद। तूने मेरा बड़ा साथ दिया। कोई मेरा इस तरह साथ न देता। तू सदा मेरा साथी रहा। चाहे मैं नर्कों में गया और चाहे मैं स्वर्गों में, चाहे मैंने अच्छा किया और चाहे बुरा, लेकिन तू सदा मेरे साथ था, तेरी अनुकंपा बड़ी है। और अब सदा के लिए तुझे छोड़ रहा हूं, तो मेरे आखिरी धन्यवाद!
पास जो शिष्य थे, वे समझे नहीं कि यह बात किससे हो रही है। उनमें से एक
ने पूछा कि आपका मस्तिष्क कुछ डांवाडोल तो नहीं हो गया है मृत्यु के कारण? आप किससे बात कर रहे हैं? क्योंकि हममें से किसी की तरफ आपकी आंख नहीं है। और आपने हममें से किसी को संबोधित नहीं किया। और हममें से कोई भी सदा आपके साथ भी नहीं रहा, इसलिए संबोधन का कोई अर्थ भी नहीं है। आप किससे बात कर रहे हैं? शून्य में बोल रहे हैं?
संत फ्रांसिस ने कहा, मैं अपने शरीर से बोल रहा हूं। कई बार मैंने इसकी निंदा की और इसे गालियां दीं, वह मेरा अज्ञान था। आज मैं इसे धन्यवाद दे रहा हूं, क्योंकि फिर दुबारा मुझे कोई मौका भी नहीं मिलेगा। धन्यवाद

देने की यह आखिरी घड़ी है, फिर मैं सदा के लिए छूट जाऊंगा। इस शरीर ने मेरे लिए बहुत कष्ट उठाए।
यही ध्यानी का भाव होगा। शत्रुता गिरेगी, मित्रता घनी होगी, और हर तरफ
से अनुग्रह प्रतीत होने लगेगा। उसका ही प्रसाद सब रूपों में है। इसलिए ज्ञानियों ने कहा है, शरीर मंदिर है। अज्ञानियों ने कहा है कि शरीर दुश्मन है। चाहे अज्ञानियों ने शास्त्र लिखे हों, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ज्ञानियों ने सदा कहा है, शरीर परमात्मा का प्रसाद है, उसकी भेंट है। अज्ञानियों ने सदा शरीर और परमात्मा को विरोध में खड़ा किया है, कि जैसे जब तक तुम शरीर को नष्ट न करोगे, तब तक परमात्मा को न पा सकोगे।
अगर परमात्मा को शरीर ही नष्ट करना होता, तो शरीर की जरूरत ही न थी। और परमात्मा भी बिना शरीर के नहीं है। यह सारी प्रकृति उसका शरीर है।
यह सारी प्रकृति उसका शरीर है। इसलिए तुम्हारे शरीर में भी प्रकृति
के पांच तत्व सूक्ष्म रूप में इकट्ठे हैं। तुम्हारा शरीर प्रकृति का एक मिनिएचर रूप, एक छोटा सा रूप है। इस छोटे से रूप में तुम्हारी आत्मा, परमात्मा का छोटा सा रूप है। उधर एक सूरज जल रहा है विराट, पृथ्वी से कोई साठ हजार गुना बड़ा और उसमें विराट ज्वाला है। तुम्हारे घर में एक छोटा सा दीया जल रहा है, बड़ा क्षुद्र, सूरज से तुलना भी न की जा सके, पर उसमें भी एक ज्योति जल रही है। उस ज्योति में भी वही सूरज है, वही किरण है, वही प्रकाश है।
तुम एक दीया हो--दीए का आकार तुम्हारा शरीर है। तुम एक ज्योति हो-- परमात्मा परम-ज्योति है। यह प्रकृति उसका दीया है। इसलिए जब तुम मरोगे, तुम्हारी ज्योति परम-ज्योति में लीन होगी, तुम्हारा दीया परम-प्रकृति में लीन हो जाएगा।
यह खेल अनूठा है। और यह लीला बड़ी रसपूर्ण है। इसमें दुश्मनी के भाव से
मत चलो। इसमें जो दुश्मन बना, वह भटकेगा। इसमें जो मित्र बना, जल्दी ही प्रकृति अपने सब रहस्य उसके सामने लुटा देती है। मित्र की तरह ही तुम जान पाओगे, पहचान पाओगे कि क्या तुम्हारे पास है। तुम्हारी आंखें दरवाजे की तरफ होंगी, तुम दरवाजा खोलोगे, भीतर महल में तुम प्रवेश कर जाओगे।

प्रश्नः ओशो, भगवान बुद्ध निरंतर चालीस वर्ष तक प्रवचन और उपदेश करते रहे, और कहा गया कि वे एक शब्द भी नहीं बोले। वैसे ही आप भी बीस वर्षों से निरंतर बोल रहे हैं, उपदेश कर रहे हैं, और कहा जा सकता है कि आप एक शब्द भी नहीं बोलते। क्या यह सच है?

विरोधाभासी दिखता है, फिर भी सच है। और शब्द सदा विरोधाभासी होते हैं, इसे स्मरण रखना। बोलना बहुत प्रकार का हो सकता है। बोलने का एक प्रकार तो वह है, जिसमें सुनने वाले से कोई संबंध ही नहीं होता। बोलना तुम्हारी बीमारी होती है, क्योंकि तुम बिना बोले नहीं रह सकते। क्योंकि तुम्हारे भीतर खोपड़ी में बहुत जाल और उपद्रव चल रहा है। बोलकर तुम हल्के हो जाते हो। तो बोलना रेचन है, कैथार्सिस है।
हम सभी इसी तरह बोल रहे हैं, क्योंकि बिना बोले बेचैनी मालूम पड़ती है। बोलने में बेचैनी निकल जाती है। इसलिए जब तुम काफी गप-शप कर लेते हो, तो हल्के हो जाते हो, घर जाकर शांति से सो जाते हो। जिस दिन तुम्हें बोलने न मिले, उस दिन तुम सो न पाओगे ठीक से। क्योंकि जिस दिन तुम दूसरे से न बोल पाओगे, उस दिन तुम्हें अपने से ही बोलना पड़ेगा। तो रात बिस्तर पर पड़े तुम खुद से ही बात करोगे। बात करना तुम्हारे लिए एक रोग है, एक बीमारी है।
फिर इस बोलने में तुम्हें कोई भी प्रयोजन नहीं है कि तुम क्या बोल रहे हो। उस बोलने से किसी का हित होगा, अहित होगा, यह भी कोई सवाल नहीं है। तुम बोलने से नहीं रुक सकते हो, इसलिए बोल रहे हो। कभी लोगों की बातचीत सुनो, चुपचाप दूर खड़े होकर। वे क्या बात कर रहे हैं? इस बात करने का क्या सार है? नहीं, बात करने के सार का सवाल भी नहीं है। वे बात में से बात, बात में
से बात निकालते चले जाते हैं। इससे भीतर हल्कापन आता है। बेचैनी है भीतर,

वह बेचैनी बोलकर निकल रही है। अगर न निकलेगी, तो फिर विचारों में घूमेगी, सपने बन जाएगी। और अगर बिल्कुल न निकलने दी जाए, तो तुम पागल हो जाओगे। मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि तीन महीने एक आदमी को बिल्कुल ही सब तरह के बोलने से रोक दिया जाए, वह विक्षिप्त हो जाएगा।
विक्षिप्त कर क्या रहा है? विक्षिप्त में, तुममें फर्क क्या है? बहुत ज्यादा फर्क नहीं है। जरा-सा मात्रा का ही फर्क है--इंच इधर, इंच उधर, सब गड़बड़ हो सकता है। विक्षिप्त में और तुममें फर्क क्या है? कभी पागलखाने में जाकर देखो। अकेला बैठा बातें कर रहा है। तुम अकेले बात नहीं करते, बस इतना ही फर्क है। मगर सच में तुम अकेले बात नहीं करते हो? जोर से नहीं करते, धीरे-धीरे करते हो, उतना ही फर्क है। अकेले तो तुम भी बातचीत करते हो। रास्ते पर चलते, हाथ हिलाते हो, मुद्रा बनाते हो, ओंठ भी चलते हैं। कभी कोई मौजूद न हो, तो जोर से भी बोल लेते हो। बाथरूम में, स्नानगृह में, कोई नहीं सुनने वाला है, तुम आईने के सामने खड़े होकर बात भी कर लेते हो, मुंह भी बिचका लेते हो। इसलिए तुम्हें स्नानागार में जैसी स्वतंत्रता अनुभव होती है, कहीं भी अनुभव नहीं होती।
पागल में और तुममें फर्क क्या है? तुम्हें अभी दूसरों का ख्याल है कि लोग क्या कहेंगे! पागल ने यह ख्याल भी छोड़ दिया। अब वह चिंता ही नहीं करता। वह दोनों तरफ से जवाब देता है। वह जो मौजूद नहीं है आदमी, वह भी उसके बगल में बैठा है, वह बात कर रहा है उससे, जवाब भी दे रहा है। तुम्हारे भीतर भी तुम दो में अपने को बांट लेते हो और जवाब-सवाल करते हो।
तुम्हारे लिए बातचीत, बोलना, एक तरह का रेचन है, जिसमें तुम्हारी विक्षिप्तता निकल जाती है। जैसे केतली का ढक्कन हम उठा लेते हैं और भाप निकल जाती है, वैसा तुम बोलकर अपना ढक्कन उठा लेते हो मन का और भाप निकल जाती है। तुम हल्के हो जाते हो।
बुद्ध इस भांति नहीं बोल रहे हैं। बुद्ध के लिए बोलना कोई रेचन नहीं है। इसलिए अगर तुम्हारा बोलना बोलना है, तो बुद्ध का बोलना बोलना नहीं है। क्योंकि दोनों की प्रकृति अलग है। बुद्ध इसलिए नहीं बोल रहे हैं कि बिना बोले न रह सकेंगे। बुद्ध के लिए बिना बोले रहना ही सुगम है, बोलना बड़ा कष्टपूर्ण है। तुम्हारे लिए मौन रहना कठिन है और बोलना एकदम आसान है। बुद्ध के लिए मौन रहना स्वभाव है और बोलना अति कठिन है। बुद्ध को बोलना चेष्टा करके करना पड़ रहा है। और जब तुम नहीं होते, तो बुद्ध अकेले में अपने से नहीं बोल रहे हैं। वह चुप हैं, वहां पूर्ण सन्नाटा है, वहां कोई भी नहीं है।
तो एक तो इस अर्थ में बुद्ध चालीस वर्ष बोले, फिर भी नहीं बोले, क्योंकि बुद्ध का बोलना तुम्हारे बोलने जैसा रोग नहीं है। दोनों में फर्क करना जरूरी है।
दूसरी बात, जो बोलना शून्य से निकलता हो और जो बोलना भीतर की भीड़-उपद्रव से निकलता हो, इनका गुण-धर्म अलग है। शून्य से जब शब्द निकलते हैं, तो उनका स्वभाव निःशब्द का होता है। शून्य से जब शब्द निकलता है, तो उस शब्द में जो धुन, जो संगीत है, वह निःशब्द का और मौन का होता है।
इसलिए बुद्ध को अगर तुम गौर से सुनो, तो तुम मौन हो जाओगे। अगर तुम बुद्ध को गौर से सुनते रहो, तो तुम ध्यान में चले जाओगे। क्योंकि बुद्ध क्या कह रहे हैं, वह सवाल नहीं है; उस कहने का जो गुण-धर्म है, वह शून्य है। उस शब्द के साथ वह शून्य भी तुम्हारे हृदय में जा रहा है। इसलिए बुद्ध को सुनते-सुनते तुम्हें ध्यान लग जाएगा।
लेकिन साधारण आदमी को सुनो, तो तुम बेचैन हो जाओगे। जितना तुम सुनोगे, उतनी बेचैनी बढ़ेगी। और साधारण आदमी बोलता ही चला जाएगा, तो तुम उससे बचना चाहोगे, भागना चाहोगे। तुम कहोगे कि यह आदमी बोर कर रहा है, उबा रहा है। कैसे इससे छूटें!
तुम जानते हो कि किस तरह तुम लोगों से छूटकर भागते हो, कि बताते हो कि जरा बाजार जरूरी काम है, अभी क्षमा करें। और ध्यान रखना, तुमसे भी लोग इसी तरह छूटते हैं। और जब भी तुम कहते हो कि फलां आदमी बहुत बोर करता है, उबाता है, तो उसका कुल मतलब इतना ही है कि वह तुमसे मजबूत है, तुम उसे नहीं उबा

पाते और वह कब्जा कर लेता है। तुमसे भी कमजोर लोग हैं, तुम उनको सता रहे हो।
अगर तुम लोगों की साधारणतः बातचीत को सुनोगे, तो उनके शब्दों के साथ उनकी दुर्गंध भी तुममें आएगी। आना जरूरी है, क्योंकि शब्द पार्थिव हैं। शब्द उस व्यक्ति की तरंगें, उसकी गंध, दुर्गंध, उसका स्वभाव अपने चारों तरफ लपेटे हुए तुम्हारे पास आते हैं।
इसलिए अगर तुम समझदार हो, तो तुम गलत लोगों को सुनने नहीं जाओगे। अगर तुम समझदार हो, तो तुम उन पागलों का सत्संग न करोगे। क्योंकि यह खतरनाक दोस्ती है। वे पागल खुद पागल नहीं हैं, वे अपना पागलपन तुम्हारे भीतर फेंक रहे हैं।
ऐसा हुआ है एक बार। अरब में एक सम्राट विक्षिप्त हो गया। शतरंज का शौकीन था और चौबीस घंटे शतरंज उसके सिर पर सवार रहती। और उसी शतरंज-शतरंज में पागल हुआ। घोड़े-हाथी, घोड़े-हाथी, वह बिल्कुल गड़बड़ हो गया। चिकित्सक बुलाए गए। चिकित्सकों ने कहा, इसको ठीक करने का एक ही उपाय है कि कोई इससे भी बड़ा शतरंज का खिलाड़ी इसके साथ शतरंज सालभर तक खेले।
सम्राट था, कोई पैसे की तो कमी न थी। दुनिया का सबसे बड़ा शतरंज का खिलाड़ी, उस समय का जो बाबी फिशर होगा, उसको बुला लिया। उसको लगा दिया गया। अब वह तो राजा का मामला था, उसमें मना भी नहीं कर सकता। और पागल के साथ शतरंज खेलो भी क्या! क्योंकि पागल पागल है, उसमें न चालों का हिसाब है, वह न नियम माने, न कुछ। कभी भी उलटा दे तख्ता, आधी रात बैठ जाए फैलाकर।
सालभर बाद राजा ठीक हो गया, शतरंज का खिलाड़ी पागल हो गया। होने ही वाला था।
कभी तुम जाओ पागलखाने में, तो पागलखाने का डाक्टर तुम्हें ज्यादा पागल मालूम पड़ेगा, बजाय पागलखाने के लोगों के। क्योंकि वे तो निश्चिंत पागल हैं, यह बेचारा न मालूम कितने लोगों का पागलपन झेल रहा है। मनोवैज्ञानिक चिकित्सा करते-करते पागलों की, खुद मरीज की अवस्था में पहुंच जाते हैं।
गुण-धर्म शब्दों से भी यात्रा करते हैं। इसलिए जो बुद्धिमत्तापूर्ण व्यक्ति है, वह उन्हीं शब्दों को सुनेगा, जो शून्य से आते हों, जो शांति से आते हों, जिनका जन्म अंतर की गहराई से होता हो। जो भीतर के रोग से आते हों, तुम कान बंद कर लेना। बहरा होना अच्छा है। उससे बचाव होगा। गलत को देखना मत, क्योंकि देखकर वह तुम्हारे भीतर जा रहा है। व्यर्थ को छूना मत, क्योंकि छूने से उसके स्पर्श तुम्हें प्रभावित करेंगे। पर यह हमें होश नहीं है।
बुद्ध के वचन निर्वचन जैसे हैं, क्योंकि वे शून्य से आते हैं। इसलिए ठीक कहते हैं लोग कि चालीस वर्ष बोलकर भी बुद्ध बोले नहीं।
और एक आखिरी बात और ख्याल ले लेनी चाहिए कि बुद्ध बोल-बोलकर भी निरंतर यही कहते हैं कि जो बोलना चाहता हूं, वह बोल नहीं पाता हूं। इसीलिए तो चालीस साल बोलना पड़ा। यह सतत चेष्टा है। जैसे कोई चित्रकार एक चित्र बनाना चाहता हो, वह न बनता हो। फिर बनाता हो, फिर चूक जाता हो, फिर बनाता हो। और बनाता रहे आखिरी क्षण तक, और आखिरी क्षण तक तृप्त न हो। क्योंकि लगे कि जो बनाना चाहता था, वह नहीं बन पाया। वह रूप अंकित नहीं होता। या वह अरूप है और पकड़ में नहीं आता। या वह निराकार है और आकार देते ही खो जाता है। आकाश की तरह है, मुट्ठी बांधते हैं और मुट्ठी के बाहर हो जाता है।
तो बुद्ध कहते हैं, बोलता हूं, फिर भी उसे बोल नहीं पाता। जो कहना चाहता था, वह तो कह ही नहीं पाया। और जो भी मैंने कहा है, उसे तुम पकड़ मत लेना, क्योंकि वह सत्य नहीं है। सत्य कहा नहीं जा सकता है। इस अर्थ में भी बुद्ध का बोलना, न बोलने जैसा है। यह जितनी रेखाएं उन्होंने कागज पर खींचीं, सब फाड़कर फेंक दीं खुद ही।
पश्चिम में एक बहुत बड़ा ईसाई चिंतक-दार्शनिक हुआ, थामस एक्वेनस। उसने ईसाइयों का अनूठा ग्रंथ लिखा, सम्मा थियोलाजिया। बड़ा ग्रंथ है, विश्वकोश है। ईसाइयों के पास ऐसी दूसरी किताब नहीं है, जिसमें ईसाई-चिंतन-साधना का सब समझा दिया है। मर रहा था एक्वेनस तो उसने अपने शिष्यों को कहा कि आखिरी

बात कि यह जो सम्मा थियोलाजिया के ग्रंथ हैं, कोई पचास वाल्यूम, ये सब बेकार हैं। क्योंकि जो मैं कहना चाहता था, वह मैं कह नहीं पाया। इसलिए इनका तुम भरोसा मत करना। नहीं तो तुम इनको पकड़कर बैठ जाओ। और सत्य इनमें आ नहीं पाया है। सत्य तो मेरे साथ जा रहा है। शब्द पीछे रह गए हैं।
एक्वेनस के शब्द बड़े कीमती हैं, एक-एक शब्द कीमती है, एक-एक शब्द हीरा है। लेकिन एक्वेनस खुद मरते वक्त कह गया है कि सब कचरा है।
बुद्ध रोज कहते हैं कि जो भी मैं कह रहा हूं, बेकार है। चूंकि सत्य कहा नहीं जा सकता, निर्गुण प्रगट नहीं किया जा सकता, आकाश को मुट्ठी में बांधने का कोई उपाय नहीं है। स्वतंत्रता, शब्द में समाते ही, परतंत्रता जैसी हो जाती है। शब्द कारागृह बन जाते हैं।
फिर भी बुद्ध बोल रहे हैं। और बोल रहे हैं इसलिए, ताकि तुम्हारा बोलने वाला मन तृप्त हो सके। और तुम्हारा बोलने वाला मन सुन-सुनकर शांत हो जाए। सत्य नहीं मिलेगा, लेकिन बुद्ध की सन्निधि मिलेगी, सत्संग मिलेगा। बुद्ध के बोलने से सत्य तो तुम्हारे पास नहीं आएगा, लेकिन बुद्ध अगर मौन बैठे हों, तो तुम बुद्ध के पास ही नहीं जाओगे। बुद्ध बोलते हैं, इसलिए तुम जाते हो।
तो बोलना तुम्हारे लिए सिर्फ एक निमंत्रण है। क्योंकि वह तुम्हारी समझ में आता है। लेकिन बुद्ध एक ऐसा निमंत्रण दे रहे हैं, जिसमें तुम्हारा कारण उनके पास जाने का अलग, और बुद्ध का कारण तुम्हें बुलाने का अलग है। बुद्ध बोलकर तुम्हें आकर्षित कर लेते हैं, लेकिन प्रयोजन बिल्कुल अलग है। फूल देखे हैं, फूल सुगंध फैलाते हैं। लेकिन सुगंध फैलाने का कारण तुम्हें पता है? वनस्पतिशास्त्री कहते हैं कि फूल सुगंध फैलाते हैं तितलियों को आकर्षित करने को। तितलियां सुगंध के आकर्षण में चली आती हैं, फूल पर बैठ जाती हैं। और तब तितलियों के पैरों में और पंखों में फूल के जो जीवाणु हैं, वे लग जाते हैं। और उन जीवाणुओं को वे लेकर उड़ जाती हैं, दूसरे फूल पर जाकर बैठती हैं। पौधे में भी नर और मादा हैं। तो नर बुलाता है सुगंध से। फिर उस गंध के वश में बंधी हुई, वीर्याणुओं को लेकर तितलियां मादाओं पर बैठ जाती हैं। और तब बीज का जन्म हो जाता है।
फूल की सुगंध भेजने में कोई तुम्हें सुगंध देने का प्रयोजन नहीं है।
वे जो वीर्याणु हैं, वे भेजना हैं। बुद्ध तुम्हें बोलकर अपने पास बुलाते हैं। वह बोलना सिर्फ सुगंध है फूल की। लेकिन तुम उनके पास जाओगे, तो तुम्हारे पैरों में, पंखों में बुद्धत्व लग जाएगा। उससे तुम न बच सकोगे। और एक बार तुम्हें स्वाद लग गया बुद्धत्व का, तब तुम सब शब्दों को फेंक दोगे। तुम खुद ही एक दिन कहोगे, बुद्ध बिल्कुल नहीं बोले, बड़ा धोखा था।
और ठीक यही हालत मेरी है। तुमसे मैं बोल रहा हूं, और बिल्कुल नहीं बोल रहा हूं। शब्द का उपयोग कर रहा हूं, फिर भी शब्द से कोई मेरा संबंध नहीं है। पर तुम आ फंसे हो, तो तुम्हारे पैरों में, पंखों में बुद्धत्व लग जाएगा। तुम्हारे अनजाने। तुम किसी और कारण से आए हो। शायद तुम सुनने आए हो, शायद तुम्हें मेरे शब्द मनोरंजन देते होंगे, शायद तुम्हारी बुद्धि को तृप्ति होती होगी, शायद तुम्हारा तर्क राजी होता होगा, शायद तुम्हारा संग्रह सूचनाओं का बढ़ जाता है, तुम्हारे अहंकार को मजा आता होगा। शायद तुम और बड़े पंडित बनने मेरे पास आए हो।
वह तुम्हारा प्रयोजन हो, मेरा उससे कुछ लेना-देना नहीं। मेरा शड्यंत्र दूसरा है, मेरा प्रयोजन अलग है। तुम किसलिए आए हो, वह तुम जानो। मुझसे पूछना चाहो, तो मैं तुम्हें कुछ ऐसे जीवन का स्वाद लगा देना चाहता हूं, जिसे वाणी में कहने का तो कोई उपाय ही नहीं, लेकिन साथ होने के क्षण में कभी-कभी उसकी गंध पकड़ में आ जाती है।
इसलिए यह कोई प्रवचन नहीं है, यह सत्संग है। यहां मैं बोल नहीं रहा हूं, यहां मैं हूं। और मेरे होने से तुम जुड़ जाओ--थोड़ी देर को, एक क्षण को भी--फिर तुम दुबारा वही नहीं हो सकोगे, जो तुम पहले थे। तुम्हारा जीवन फिर पीछे नहीं लौट सकता। फिर एक नए जगत का जन्म हुआ और एक नए मनुष्य की शुरुआत हुई।

वर्द्धमान मर सकता है, महावीर पैदा हो सकते हैं--मैं तुम्हें इसीलिए बुलाया हूं। यह बोलने का जाल इसलिए है कि तुम इसके बिना नहीं आ सकोगे। लेकिन यह प्रयोजन नहीं है। और यही बात सबके संबंध में सच है--चाहे जीसस, चाहे क्राइस्ट, चाहे बुद्ध, चाहे महावीर।
महावीर के संबंध में बड़ी मीठी कथा है। जैन तो जड़ता से पकड़ लिए, इसलिए उसका सार नहीं निकाल पाए। कथा यह है कि महावीर बोले ही नहीं, फिर भी लोगों ने सुना। अब यह बड़ा मुश्किल मामला है। महावीर बोले नहीं, लोगों ने सुना। महावीर ऐसी किसी वाणी से नहीं बोले, जो कान सुन लें। तो महावीर की जो वाणी है, जैन कहते हैं, निःशब्द है। उसमें कोई शब्द नहीं है। फिर भी लोगों ने सुना--जो सुन सकते थे। अगर वे भी निःशब्द हो गए, महावीर के पास जाकर बैठ गए, तो उन्होंने सुना।
इसलिए महावीर के जीवन में एक और कथा है, जो महत्वपूर्ण है, और वह यह कि महावीर को जंगली जानवरों ने भी सुना, आकाश के देवता भी सुनने आए, पशु-पक्षी भी सुनने आए, भूत-प्रेत भी मौजूद हुए।
जैनों को बड़ी मुश्किल होती है समझाने में कि पशु-पक्षी कैसे सुनेंगे। निश्चित ही, अगर महावीर भाषा बोलते हों, तो पशु-पक्षी तो दूर, सारे मनुष्य भी नहीं समझ सकते। अब अगर मैं हिंदी बोल रहा हूं, तो जो हिंदी समझता है, वही समझ सकता है। जमीन पर हजारों भाषाएं हैं, वे लोग नहीं समझ सकते। पशु-पक्षी तो समझेंगे कैसे, उनकी कोई भाषा ही नहीं है।
लेकिन अगर महावीर मौन में बोले, तो बात समझ में आ गई। फिर क्या फर्क है? फिर तुम हो कि पौधा है, कि तुम हो कि एक प्रेत खड़ा है, कि तुम हो कि आकाश का देवता, कि एक कुत्ता आकर बैठ गया है, कोई फर्क नहीं पड़ता। मौन तो सारे जगत की भाषा है।
फिर भी मैं मानता हूं, महावीर बोले। नहीं तो तुम उनके पास जाकर चुप भी बैठने को राजी नहीं होते।
तुम्हें ऐसा नशा लगा है शब्दों का कि जहां भी शब्द तुम्हें सुनाई पड़ते हैं, तुम भागे पहुंच जाते हो। और निश्चित ही, महावीर जैसे व्यक्ति के शब्द होते हैं, तो उनमें बड़ा माधुर्य होता है। उनसे लगता है जैसे तुम भोजन कर रहे हो, तृप्त हो रहे हो। कोई खाली जगह तुम्हारे भीतर भर रही है। बस, तुम उस आकर्षण में पहुंच जाते हो।
लेकिन उनके पास जाकर तुम्हारे कान, तुम्हारा मन तो उनके शब्दों में उलझ जाएगा, तुम्हारी आत्मा उनके सत्संग में लग जाएगी। और तुम्हारे पैरों, पंखों में जिनत्व लग जाए, बुद्धत्व लग जाए, तो क्रांति घटित हो गई। वही क्रांति प्रयोजन है।
आज इतना ही।

नहिं राम बिन ठांव
चौदहवां प्रवचन

कबीर की उलटबांसी

प्रश्नः ओशो, कबीर शब्दों को असमर्थ जानकर उनको उलटबांसियों में ढालते हैं। जैसे--अंबर बरसै धरती भीजै यह जानै सब कोई। धरती बरसै अंबर भीजै बूझै बिरला कोई। क्या है इसका मतलब?

संतों की वाणी उलटबांसी ही है। उलटबांसी का अर्थ पहले समझ लें। यह बड़ा प्यारा शब्द है, बड़ा रहस्यपूर्ण भी। जब कोई बांसुरी बजाता है, तो बजाने वाला होता है, बांसुरी बजती है। उलटबांसी का अर्थ है, बांसुरी बजा रही है और बजाने वाला बज रहा है, उलटा हो रहा है। वह जो बजाने वाला है, वह बज रहा है; वह जो बजने वाली बांसुरी है, वह बजा रही है। उलटी प्रक्रिया है। ऐसी घड़ी आती है। अगर बांसुरी बजाना आप जानते हैं, तो यह समझना कठिन न होगा। ऐसी घड़ी आती है, जब बजाने वाला इतना लीन हो जाता है कि ऐसी प्रतीति नहीं होती कि मैं बजा रहा हूं। लीनता इतनी सघन हो जाती है, बजाने वाला इतना डूब जाता है कि ऐसा प्रतीत होने लगता है कि बांसुरी अपने से बज रही है। कर्ता खो जाता है। और जब लीनता परम ऊंचाई पर पहुंचती है या गहराई पर, जब लीनता इतनी हो जाती है कि उसके पार जाने का कोई उपाय नहीं, तो न केवल इतना लगता है कि मैं नहीं बजा रहा, बांसुरी बज रही है, बल्कि ऐसा भी लगता है कि बांसुरी मुझे बजा रही है। साधन साध्य हो जाते हैं। जो प्रथम है, वह अंतिम हो जाता है; जो कार्य है, वह कारण हो जाता है; जो कारण है, वह कार्य हो जाता है। सब उलटा हो जाता है।
बांसुरी में ही ऐसा नहीं घटता, जीवन के किसी भी आयाम में जहां तल्लीनता के बढ़ने का उपाय है, ऐसी घटना घटती है। नर्तक एक दिन जानता है कि मैं नहीं नाच रहा, नृत्य अपने से हो रहा है। और एक घड़ी फिर ऐसी भी आती है कि नर्तक जानता है कि नृत्य ही मुझे नचा रहा है।
कर्तृत्व का ख्याल कि मैं कर रहा हूं, मैं कर्ता हूं, भ्रांति है। इसलिए संतों का तो पूरा जीवन ही उलटी बांसुरी का अनुभव है।
और कबीर के वचन अनूठे हैं। कबीर जैसा संत खोजना मुश्किल है पूरे पृथ्वी के इतिहास में। क्योंकि कबीर हैं बिल्कुल बेपढ़े-लिखे। जो भी वे कहते हैं, वह शास्त्रों से आने का उपाय नहीं है। शास्त्र से वे अपरिचित हैं। शब्द पर उनकी कोई संपदा नहीं है। जो शब्द वे उपयोग करते हैं, वे सामान्य जीवन के हैं, रोजमर्रा के उपयोग के हैं। पर उन रोजमर्रा के शब्दों में उन्होंने वह सब डाल दिया है, जो उपनिषदों के ऋषियों को भी शुद्धतम शब्दों में डालना कठिन हुआ है। और यह उनका अनुभव है कि समाधिस्थ अवस्था में, जैसा हमने संसार जाना था, उससे ठीक उलटा हो जाता है।
ऐसा समझो कि जैसे तुम एक सागर के, सरोवर के किनारे खड़े हो और पानी में झांककर अपनी प्रतिछवि देख रहे हो। और अगर तुमने सिर्फ अपनी प्रतिछवि ही देखी है, तो तुम्हें अनुभव होगा कि तुम्हारा सिर नीचे है, पैर ऊपर हैं। अगर तुम्हारे जानने के सब द्वार बंद कर दिए गए हैं और इस प्रतिछवि को ही देखने का उपाय है, तो तुम्हें यह प्रतीत होगा कि सिर नीचे, पैर ऊपर हैं। फिर एक दिन अचानक तुम जागो, प्रतिछवि से तुम्हारी आंखें मुक्त हो जाएं और तुम अपने को देखो, तो तुम बड़ी मुश्किल में पड़ोगे, तुम्हें लगेगा, यह तो सब उलटा हो गया। यहां मेरा सिर ऊपर और पैर नीचे हैं।
कार्ल गुस्ताव जुंग की सेक्रेटरी महिला ने कुछ संस्मरण लिखे हैं। उसने लिखा है कि जुंग कभी-कभी किन्हीं बातों पर बहुत नाराज हो जाते थे। कभी बहुत छोटी बातों पर नाराजगी अति हो जाती थी। एक दिन ऐसा ही हुआ। सेक्रेटरी से कुछ भूल हो गई, तो जुंग बहुत नाराज हुए। उस दिन सेक्रेटरी के मन को भी बड़ी चोट लगी, क्योंकि बात छोटी थी। बात इतनी छोटी थी कि नाराज होने जैसी थी ही नहीं। बात इतनी व्यर्थ थी कि उस संबंध में इतना गर्मा- गर्मी का कोई कारण नहीं था। तो वह दुखी और उदास और उसके मन में ख्याल है कि

यह काम छोड़ देना चाहिए। सांझ को जब वह विदा होने लगी, तो जुंग ने उसे कहा कि मेरे साथ बगीचे में आ।
जुंग वहां बगीचे में जाकर सिर के बल शीर्षासन करके खड़ा हो गया और उससे कहा कि तू भी शीर्षासन तो जानती है, सिर के बल खड़ी हो। उसकी कुछ समझ में न आया कि यह क्या बेतुकापन है, और इसका क्या अर्थ? लेकिन जुंग जैसा महत्वपूर्ण व्यक्ति कहता है तो कुछ अर्थ होगा, तो वह सिर के बल खड़ी हो गई। और सिर के बल खड़े होकर उसे हंसी आने लगी, क्योंकि दुनिया ठीक उलटी दिखाई पड़ने लगी। जुंग हंसा और उसे विदा कर दिया।
बाद में उसे ख्याल आया कि वह जो बात मुझे छोटी दिखाई पड़ती थी, जुंग को छोटी नहीं दिखाई पड़ती। और सिर के बल खड़े होकर चीजें जैसे उलटी हो जाती हैं, ऐसे ही जुंग की दृष्टि से चीज बड़ी होगी, मेरी दृष्टि से छोटी थी।
संत शीर्षासन करता हुआ व्यक्ति है। तुम जैसे खड़े हो, वह उससे उलटा खड़ा
हो गया है। तुम्हारी सब धारणाएं, तुम्हारी सारी मान्यताएं उसने उलटी कर ली हैं। तुम्हारे लिए पदार्थ का मूल्य है, उसके लिए पदार्थ में कोई मूल्य नहीं। तुम्हारे लिए देह सब कुछ है, उसके लिए देह कुछ भी नहीं। तुम्हारे लिए धन में सर्वस्व छिपा है, उसके लिए धन मिट्टी है। तुम बाहर देखते हो, वह भीतर देखता है। तुम जीवन के सार और रस को दूसरों में खोजते हो, वह अपने में खोजता है। वह शीर्षासन कर रहा है, वह उलटा खड़ा हो गया है।
इसलिए तुम्हारा जगत उसे उलटा दिखाई पड़ेगा, तुम्हें उसका जगत उलटा दिखाई पड़ेगा। उलटबांसी हो गई। और इस उलटे खड़े होकर जगत को जब देखा है किसी ने, तो उसे जो दिखाई पड़ा है, वह तुम्हारे लिए बड़ा विरोधाभासी, पैराडाक्सिकल मालूम पड़ेगा।
कबीर की यह उलटबांसी कि आकाश से तो बरसते हुए अमृत को सबने देखा है, लेकिन किसने देखा पृथ्वी से बरसते अमृत को? हमें दिखाई पड़ता है कि आकाश से बरस रहा है अमृत, ऊपर से कुछ नीचे आता दिखाई पड़ता है। पृथ्वी से भी कुछ दान होता है आकाश को, यह हमें दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन होना तो चाहिए, क्योंकि जीवन में सभी प्रक्रियाएं लेन-देन की हैं। यहां सिर्फ लिया नहीं जा सकता, देना भी पड़ेगा। क्योंकि अकेले लेने से तो जीवन का विनिमय रुक जाएगा। श्वास तुम लेते हो तो छोड़नी पड़ती है। तुम लेते ही रहो, यह असंभव है। और अगर तुम श्वास न छोड़ोगे, तो तुम ले भी न पाओगे। तो लेने का नियम देने में छिपा है; देते हो, इसलिए लोगे।
और मजा यह है कि काश, तुम्हें यह समझ में आ जाए, तो जितना तुम दोगे, उतना ही तुम ले पाओगे; जितना कम दोगे, उतना कम ले पाओगे। तो जो जितनी गहरी श्वास छोड़ता है, वह उतनी ही गहरी सांस लेने में समर्थ हो जाता है। एक्झेलेशन जितना गहरा होगा, इन्हेलेशन उतना ही गहरा हो जाएगा। तो दानी ही भोगता है।
इसलिए उपनिषदों ने कहा है कि त्याग भोग है। तेन त्यक्तेन भुंजीथः। जिन्होंने त्यागा, उन्होंने भोगा। और जिन्होंने पकड़ा, वे चूक गए। डर से कि कहीं श्वास बाहर गई और फिर भीतर न आई, तुमने भीतर की श्वास भीतर ही पकड़ ली, तो तुम मर गए। तुम अपने हाथ मरे। भय तो है कि गई श्वास वापस लौटेगी या नहीं! भरोसा क्या है? और गई श्वास पर तुम्हारी ताकत क्या? इस भय से तुम श्वास को भीतर ही रोक लो कि कहीं मैं मर न जाऊं, श्वास बाहर जाए और फिर न लौटे, तो तुम मर ही जाओगे।
जीवन में हम यही कर रहे हैं, पकड़ लेते हैं, छोड़ते नहीं। न छोड़ने के कारण मृत हो जाते हैं। तो सौभाग्य है कि श्वास के संबंध में हमने अपनी कृपणता अभी लगाई नहीं, नहीं तो वहां भी हम मर जाएंगे। पर जीवन में हम मरे हैं, क्योंकि यहां हमने भोग को, पकड़ने को सब कुछ समझ लिया है।
लेकिन जीवन एक संतुलन है। उसमें तुम लोगे, तो तुम्हें देना होगा। तुम दोगे, तो ही तुम ले सकोगे। कबीर ने कहा है, दोनों हाथ उलीचिए। जितना उलीच सकोगे, उतने तुम भर जाओगे। इसलिए जो परम सूत्र है इन उलटबांसियों का, वह यह है कि जिस दिन तुम होगे शून्य, उस दिन पूर्ण तुममें उतर आएगा।
तो देना है राज लेने का। त्याग है सूत्र भोग का। मिट जाना है प्रक्रिया पूर्ण हो जाने की।

पर दोनों में संतुलन है। और हर चीज संतुलित है। आकाश से तो बरसात को होते हम देखते हैं, जब अमृत बरसता है। पृथ्वी सिर्फ लेती ही नहीं, देती भी होगी। बिना दिए आकाश जल्दी ही खाली हो जाएगा, वर्षा असंभव हो जाएगी।
असल में आकाश में उठते बादल प्रकृति का दिया हुआ दान है। हर वृक्ष की पत्ती से वापस लौट रहा है जल। वह तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता। लेकिन सांझ को जब सूरज ढंक जाता है, उतर जाता है, तब तुम वृक्ष के पास बैठकर देखना। हर पत्ती वापस लौटा रही है, हर पत्ती से भाप उठ रही है। जो पृथ्वी लेती है, वह लौटा देती है। तो पृथ्वी केवल ग्राहक नहीं है। और अगर आकाश से जब जल बरसता है, पृथ्वी आनंदित होती है, तो इससे उलटा भी होता है, जब पृथ्वी वापस लौटाती है, तो आकाश भी आनंदित होता है।
पृथ्वी और आकाश के बीच एक प्रेम, एक गहन आलिंगन का खेल चल रहा है। इसलिए पुराने शास्त्रों ने पृथ्वी को कहा स्त्री, आकाश को कहा पुरुष, और एक आलिंगन है दोनों के बीच, एक विराट संभोग चल रहा है। उसमें लेन-देन है, क्योंकि प्रेम अकेले देने से नहीं हो सकता, अकेले लेने से नहीं हो सकता। दोनों कदम चाहिए चलने को, दोनों हाथ चाहिए तैरने को। दोनों पंख चाहिए उड़ने को।
तो हम देखते हैं वर्षा को होते। और जब वर्षा होती है तो प्रकृति बड़ी प्रफुल्लित होती है। सूखे पत्ते विदा हो जाते हैं, सब तरफ हरापन आ जाता है। अभी-अभी ऐसा चारों तरफ हो रहा है। वर्षा आने के करीब है। आकाश का दान शुरू हुआ, वृक्ष हरे हो गए हैं स्वागत में, फूल खिल रहे हैं, पक्षी मदमस्त हैं, गीत गा रहे हैं, मोर नाचेंगे, सारी पृथ्वी स्वागत कर रही है। और प्रतीक्षा थी। सब उत्तप्त था। प्राण सूखे-सूखे थे। पृथ्वी की गर्दन जैसे घुटी-घुटी थी, जगह-जगह दरारें पड़ गई थीं। सब तरफ से प्यास थी। और अब आकाश बरसेगा, तो सब तरफ तृप्ति हो जाएगी।
लेकिन यह तो एक बात हुई कि आकाश बरसता है और पृथ्वी प्रसन्न होती है। उसका दूसरा पहलू भी है, वह चाहे तुम्हें दिखाई न पड़ता हो। जिसकी आंखें खुल जाती हैं, उसे वह दूसरा पहलू भी दिखाई पड़ता है। और संत का अर्थ है, खुली आंख का आदमी। वह देखता है कि आकाश भी उदास हो जाता है। वह देखता है, आकाश भी खाली हो जाती है, जब पृथ्वी नहीं देती। जब पृथ्वी सिकोड़ लेती है अपने को और नहीं देती, तो आकाश भी वैसे ही पीड़ा और व्यथा का अनुभव करता है, जैसे पृथ्वी करती है।
पृथ्वी भी लौटाती है। गंगा भाग रही है सागर की तरफ, सारी गंगाएं भाग रही हैं सागर की तरफ। सागर क्या करेगा? गंगाओं को उलीच देगा आकाश में, वापस लौटा देगा। फिर बनेंगे बादल, फिर आकाश में घने होंगे, फिर पृथ्वी पुकारेगी, फिर वर्षा होगी, फिर गंगाएं बहेंगी सागर की तरफ। एक वर्तुल है, लेन-देन का एक वर्तुल है। इस लेन-देन के वर्तुल में कहीं भी क्षणभर को विच्छेद नहीं होता। इस वर्तुल का नाम ही आनंद है। और जहां भी विच्छेद होता है, वहीं दुख हो जाता है।
लेकिन कबीर यह क्यों कह रहे हैं? यह कबीर कोई पृथ्वी और आकाश के संबंध में खोज करके, पृथ्वी और आकाश के संबंध में कोई सत्य घोषित नहीं कर रहे हैं। यह तुम्हारे संबंध में कुछ कह रहे हैं।
तुम्हारे भीतर भी पृथ्वी है और तुम्हारे भीतर भी आकाश है। तुम्हारी पृथ्वी तुम्हारा शरीर है, तुम्हारी आत्मा तुम्हारा आकाश है। उसको हमने अंतर-आकाश कहा है। उन दोनों के बीच भी विराट लेन-देन चल रहा है।
लेकिन अक्सर ऐसा होता है कि तुम्हारे भीतर की आत्मा तुम्हारे शरीर की पृथ्वी को तो बहुत कुछ देती है, भीतर का आकाश शरीर को बहुत कुछ देता है, लेकिन तुम शरीर से उसे पीछे वापस नहीं लौटा पाते हो, वह कहीं जगत के मरुस्थल में खो जाता है। वह नदी सागर तक नहीं पहुंच पाती, मरुस्थल में विलीन हो जाती है, सूख जाती है। तुम्हारे भीतर लेन-देन टूट गया है--जिसको वैज्ञानिक इकोलाजी कहते हैं--वर्तुल टूट गया है, इसलिए तुम दुखी हो।
अगर तुम्हारा शरीर और तुम्हारी आत्मा भी लेन-देन में समतुल हो जाएं,
तो तुम्हारे भीतर भी वह सुर गूंज उठेगा, जिसको हम समाधि कहते हैं। जिस दिन लेन-देन बराबर होता है, जैसे तराजू के दोनों पलवे बराबर हो गए और तराजू का

इंगित करने वाला कांटा बीच में ठहर गया, मध्य में आ गया, न वजन इस तरफ ज्यादा रहा, न उस तरफ ज्यादा रहा, उसी क्षण ब्रह्म का स्वाद उपलब्ध होना शुरू हो जाता है।
लेकिन तुम इकतरफा झुके हो। शरीर की तरफ बहुत ज्यादा झुके हो, आकाश की तरफ न के बराबर झुके हो। तो आकाश से तुम ले तो बहुत लेते हो, लेकिन लौटा नहीं पाते। यही तुम्हारा संसार है कि तुम आकाश से लेते चले जाते हो और लौटाते नहीं। इससे तुम्हारे पास चीजें तो बढ़ जाती हैं, लेकिन आत्मा खो जाती है। तुम अपनी आत्मा को बेच-बेचकर वस्तुएं इकट्ठी कर लेते हो और सोचते हो शायद इससे आनंद होगा। तो तुम्हारा महल बड़ा हो जाए, राज्य बड़ा हो जाए, धन का अंबार लग जाए, लेकिन यह बड़ी कीमत तुमने चुकाई है, तुम्हें पता नहीं। तुमने कचरा इकट्ठा कर लिया है स्वयं को बेचकर। भीतर का आकाश खाली होता जाता है। भीतर के आकाश के बादल बरसते जाते हैं, प्रकृति लौटाती नहीं। अमृत इकतरफा बह रहा है और लौटता नहीं। और जब लौटता नहीं है, तो वर्तुल टूटता है। उस वर्तुल के टूटने का नाम दुख है। अगर यह वर्तुल पूरी तरह टूट जाए, इसके कोई संबंध न रह जाएं, तो उस अवस्था को हम नर्क कहते हैं। अगर यह वर्तुल सधा हुआ चलता रहे, तो उस अवस्था को हम स्वर्ग कहते हैं। और यह वर्तुल इतना पूर्ण हो जाए कि तराजू का कांटा बिल्कुल मध्य में ठहर जाए, उस अवस्था को हम मोक्ष कहते हैं। नर्क है वर्तुल का अनेक खंडों में टूट जाना, स्वर्ग है वर्तुल का संभल जाना, मोक्ष है वर्तुल का पूर्ण, इतनी पूर्णता को पहुंच जाना कि उससे ज्यादा पूर्णता का और कोई उपाय न रहे।
तो कबीर जो कहते हैं कि आकाश से बरसते अमृत को सबने देखा, लेकिन किसने देखा उस अमृत को जो पृथ्वी आकाश पर बरसाती है!
प्रतिक्षण पृथ्वी भी बरसा रही है। ये हरे हो गए पौधे, खिल गए फूल, ये पक्षियों के गीत--प्रत्युत्तर है, यह प्रति-संवेदन है, यह जवाब है। यह आकस्मिक नहीं हो रहा है। यह धन्यवाद है, जो मिला है। जो श्वास भीतर आई है, वह वापस जा रही है। ऐसा ही स्वर तुम्हारे भीतर भी निर्मित हो जाए, तुम्हारा शरीर भी लौटाता हो।
भोगी-त्यागी, संसारी-संन्यासी का यही अर्थ है। भोगी लौटाता नहीं, त्यागी लौटाता है। संसारी सिर्फ इकट्ठा करता है, दान उसके जीवन से खो जाता है। सौदा ही सौदा करता है, देता बिल्कुल नहीं, इकट्ठा करता है।
संन्यासी का अर्थ है, जितना लेता है, उतना देता है, हिसाब सदा बराबर है। संसारी का जो जीवन-ढंग है, वह शोषक का है, चूसने का है। वह सब तरफ से लेता है और देना बिल्कुल नहीं चाहता। शायद सोचता है, इस भांति बहुत कुछ उसके पास हो जाएगा। परिणाम उलटा घटित होता है। कुछ भी उसके हाथ में नहीं होता। मरते वक्त उसके हाथ खाली होते हैं। संन्यासी का जीवन-ढंग संतुलन का है। वह जितना लेता है, उतना लौटा देता है। उस पर ऋण कभी भी नहीं है। वह जब मरता है, उऋण होकर मरता है, इसलिए उसे वापस नहीं लौटना पड़ता।
अगर तुम्हारा ऋण है, तो तुम्हें बार-बार वापस लौटना पड़ेगा। जितना बड़ा तुम्हारा संसार है, उतनी ही लंबी तुम्हारे जीवनों की यात्रा और कष्ट कीशृंखला होगी। क्योंकि तुम्हें वापस लौटना पड़ेगा। जब तक तुम दे न दोगे, जो तुमने लिया है, तब तक तुम्हें वापस लौटना होगा। तब तक तुम अदालत से मुक्त नहीं किए जा सकते। तब तक तुम एक बोझ ढो रहे हो जिससे तुम्हें हल्का होना ही पड़ेगा।
संन्यासी मुक्त हो जाता है, क्योंकि उसने जो लिया था, वह दे दिया, हिसाब-किताब पूरा हुआ, उसकी खाते-बही में अब कुछ भी न लेना है, न देना है। ऐसी चित्त की दशा पैदा हो, उसकी तरफ इंगित है कबीर का!
उलटबांसी का एक और अर्थ भी होता है। उलटबांसी का अर्थ होता है अतार्किक, असंगत, रहस्यपूर्ण। एक तो तर्क का जगत है, जहां सदा दो और दो चार होते हैं। वहां कभी दो और दो पांच नहीं होते, कभी दो और दो तीन नहीं होते। लेकिन तर्क का यह जो जगत है, यह केवल मनुष्य के मन में है। जीवन में ऐसा नहीं है। जीवन बड़ा अतर्क्य है, इल्लाजिकल है। वहां कभी दो और दो पांच भी हो जाते हैं, कभी दो और दो तीन भी हो जाते हैं। यही रहस्य है।

रहस्य का अर्थ यह है कि जीवन में भविष्यवाणी करनी असंभव है। रहस्य का अर्थ यह है कि हम कितना ही जान लें, फिर भी कुछ जानने को शेष रह जाता है, जानना पूरा नहीं हो पाता। रहस्य का अर्थ यह भी है कि जानना कितना ही हो जाए, तो भी हम अंश को ही छू पाते हैं, अंशी को नहीं छू पाते, पूर्ण हमारी पकड़ के बाहर रह जाता है।
विज्ञान और धर्म में यहीं विरोध है। विज्ञान मानता है, सब दो और दो चार ही होता है और जीवन किसी तर्क कीशृंखला से चलता है। लेकिन अब तो विज्ञान की भी यह धारणा टूट रही है। क्योंकि विज्ञान की भी आंखें इधर पचास वर्षों में गहरी हुई हैं। और उसके सामने भी ऐसे तथ्यों का उदघाटन हुआ है, जिनमें दो और दो चार सदा नहीं होते।
तो जो नया भौतिकशास्त्री है, वह बड़ी बेचैनी में है। आइंस्टीन के बाद नया भौतिकशास्त्र अध्यात्म जैसा हो गया है। क्योंकि बड़ी कठिनाई खड़ी हो गई है। वह जो पुरानी निश्चयता थी, सर्टेन्टी थी, वह समाप्त हो गई है। क्योंकि अणु के विभाजन के बाद कुछ रहस्य हाथ लगे, उनमें एक रहस्य यह था कि जो अणु का विभाजित अंग है--इलेक्ट्रॉॅन, प्रोटॉन और न्यूट्रॉन--उसका व्यवहार बड़ा तर्कातीत है। वह कभी तो तरंग की तरह व्यवहार करता है और कभी बिंदु की तरह। यह असंभव है। यह उलटबांसी है। क्योंकि आप अपनी किताब पर एक बिंदु रखें, तो ज्यामिति के हिसाब से बिंदु का अर्थ होता है, जो रेखा नहीं है। लेकिन जो बिंदु आप अपनी किताब पर बनाएं, वह कभी रेखा हो जाए, एक बार आप आंख डालें और देखें कि रेखा हो गई। रेखा का अर्थ है, बहुत से बिंदु एक दिशा में। तो एक बिंदु अनेक बिंदु हो, तब रेखा हो सकता है। और फिर आप देखें कि थोड़ी देर बाद वह रेखा बिंदु हो गई। बिंदु का अर्थ है एक बिंदु, रेखा का अर्थ है अनेक बिंदु। तो एक अनेक हो जाए, फिर अनेक एक हो जाए, तो यह तो उपनिषद और कबीर और इकहार्ट जैसे पागलों की दुनिया हो गई, आइंस्टीन और मैक्स प्लान्क जैसे गणितज्ञों की नहीं।
लेकिन वह जो अणु का अंतिम हिस्सा है, उसका व्यवहार बड़ा संदिग्ध है। उसका व्यवहार संतों जैसा है। वह कभी बिंदु की तरह प्रगट होता है, कभी लकीर की तरह प्रगट होता है, कभी तरंग बन जाता है और कभी कण रह जाता है। तो एक नया भौतिकशास्त्र पैदा हुआ है, जो निश्चय को छोड़ दिया है, उसने अनिश्चय को स्वीकार कर लिया है। इसका मतलब यह हुआ कि गणित हमारा ऊपर-ऊपर काम करता है; जैसे हम गहरे जाते हैं, वैसे ही गणित मुश्किल में पड़ जाता है।
कबीर की उलटबांसियां यही कह रही हैं कि तुमने जो गणित का एक जगत बनाया है, तुमने जो तर्क का एक विस्तार किया है, वह ऊपर-ऊपर बिल्कुल ठीक है, दुकान-बाजार में चलता है, लेकिन तुम उसी को जीवन की गहराई में मत ले जाना, परमात्मा पर वह लागू नहीं है।
इसलिए कबीर कहते हैं कि मैं देखकर बड़ा अचंभे से भर गया, कि मैंने देखा, सागर में आग लगी है। अब सागर में कहीं आग लगती है? और पानी में अगर आग लग जाए, तो फिर इस जगत में कोई विज्ञान जैसी चीज नहीं हो सकती। पानी आग बुझाता है, पानी में आग कैसे लगेगी?
और कबीर कहते हैं, एक अचंभा मैंने देखा कि एक मछली निकली सागर से और झाड़ पर चढ़ गई।
मछलियां झाड़ पर नहीं चढ़तीं। पहले तो सागर से निकलना ही मछली का मुश्किल, फिर झाड़ पर चढ़ने का तो उपाय ही नहीं है। क्योंकि मछली पानी का जंतु, उसके पास न पैर हैं, न पकड़ है। न वह उड़ सकती है, न झाड़ पर चढ़ सकती है, वह पानी ही उसका माध्यम है।
ये सारे वक्तव्य गणित को तो.ड़ने वाले वक्तव्य हैं। ये यह कह रहे हैं
कि तुम्हारा जो हिसाब-किताब है, वह ऊपर-ऊपर ठीक, भीतर बड़े अचंभे भरे हैं। और कबीर ने ऐसे अचंभे देखे, तब ये उलटबांसियां लिखीं। कबीर अगर आइंस्टीन की प्रयोगशाला में होते, तो वह जैसा आधुनिक भौतिकशास्त्र बोलता है, वैसा बोलते। लेकिन वह गांव के गंवार थे, सीधे-सादे आदमी थे, उन्हें कोई क्वांटम फिजिक्स का उपाय नहीं था। पर जीवन की सीधी-सीधी बातें उन्हें पता थीं कि मछली झाड़ पर नहीं चढ़ सकती। और जिस दिन मछली झाड़ पर चढ़ जाए, और जिस दिन पानी में आग लग जाए, और जिस दिन वर्षा आकाश से पृथ्वी की तरफ न हो,

पृथ्वी से आकाश की तरफ हो--उस दिन समझना कि तो हम पागल हो गए या पूरा अस्तित्व पागल हो गया। और या फिर यह समझना कि हमने जो नियम-धारणाएं बनाई थीं, वे हमारी नासमझी पर खड़ी थीं, समझदारी पर नहीं।
संत अक्सर पागल मालूम पड़े हैं। उनके पागल मालूम पड़ने का कारण यही है
कि जो अचंभे उन्होंने देखे हैं, वे आपने नहीं देखे। और उनके सामने पुरानी व्यवस्था बिल्कुल खो गई है और अराजकता उत्पन्न हो गई है। और उन्होंने जीवन के ऐसे पहलू देखे हैं, जिन पहलुओं को आप भी देखेंगे, तो आपकी व्यवस्था भी खो जाएगी।
उलटबांसी का अर्थ है कि जीवन को गणित से हल करने का उपाय नहीं है। उलटबांसी का अर्थ है कि तुम जो भी व्यवस्था बना रहे हो, उससे विपरीत की भी जगह रखना, क्योंकि विपरीत भी मौजूद है। और तुमने अगर विपरीत को बिल्कुल भुला दिया, तो तुम मुश्किल में पड़ोगे। और हमेशा ऐसा होता है कि विपरीत को मन भुला देता है। हम हमेशा एक को पकड़ते हैं। मन बड़ी व्यवस्था का प्रेम करने वाला है। इसलिए जो चीज भी विपरीत है, उसको हम हटा ही देते हैं। हम अस्वीकार ही कर देते हैं कि यह भी है। हम एक व्यवस्था बना लेते हैं।
जैसे समझो कि तुम किसी के प्रेम में पड़े। तो तुम्हारा मन कहेगा, बस, प्रेम के अतिरिक्त तुम्हारे मन में इस व्यक्ति के लिए कुछ भी नहीं, सिर्फ प्रेम। अब यह मन एक व्यवस्था बना रहा है, जो झूठी है। क्योंकि जहां-जहां प्रेम है, वहां-वहां छिपी घृणा है।
लेकिन मन गणित को मानता है। मन कहता है, अगर प्रेम है, तो घृणा कैसे होगी? अगर श्रद्धा है, तो अश्रद्धा कैसे होगी? अगर दिन है, तो रात कैसे होगी? और अगर जन्म है, तो मृत्यु कैसे होगी? मन गणित से चलता है, वह विपरीत को इनकार करता है। विपरीत को हटाने का नाम गणित है।
मगर तुम्हारे हटाने से विपरीत नहीं हटता। जहां जन्म है, वहां मृत्यु छिपी खड़ी है, चाहे तुम कितना ही समझाओ। तो बच्चा घर में पैदा होता है, तो हम बिल्कुल याद नहीं करते कि मरेगा। और अगर कोई कह दे बच्चे के पैदा होते से ही कि यह मरेगा, इतना ढोल-बाजा मत बजाओ, इतना शोरगुल मत मचाओ, तो हम उससे लड़ने को खड़े हो जाएंगे, कैसी अपशगुन की बात कही!
अपशगुन की बात वह कह नहीं रहा है, पर हमारा गणित तोड़ रहा है। हमारा गणित मानता है कि जन्म हुआ, मृत्यु कैसी? जन्म और मृत्यु विपरीत हैं। तो विपरीत को हम छिपाते हैं। मरघट को हम गांव के बाहर बनाते हैं। कोई लाश निकलती हो, तो मां अपने बेटे को भीतर बुला लेती है कि भीतर आ जा। मौत दिखाई न पड़े, हमारे गणित को गड़बड़ करती है। क्योंकि बच्चा पूछेगा कि यह मर गया, इसका क्या मतलब है? और बच्चे नासमझ हैं। इतने समझदार नहीं, जितने आप हैं। अभी उन्होंने विपरीत को बिल्कुल इनकार नहीं किया है, वह उनमें मौजूद है। तो वह बच्चा जरूर पूछेगा कि क्या मैं भी मरूंगा? बच्चे को रोकना मुश्किल है। अगर उसने किसी को मरा हुआ देखा, तो वह पूछेगा कि यह कैसे मरा? क्या सब मरते हैं? क्या मैं भी मरूंगा? और मां के गणित में यह बात नहीं बैठती कि उसका बेटा मरेगा। कहीं बेटा मर सकता है? जो पैदा हुआ, वह कहीं मर सकता है? जीवन का कोई अंत नहीं। और सब मरेंगे, मेरा बेटा नहीं मरेगा। बुद्ध के जीवन में उल्लेख है कि कृषा गौतमी नाम की एक महिला का एकमात्र बेटा मरा। उस बेटे से उसका बड़ा लगाव था। पति पहले चल बसा था, बेटा ही उसके जीवन का सार था, सब था। फिर वह भी मर गया। तो वह करीब-करीब विक्षिप्त और पागल हो गई। वह अपने बेटे की लाश को लेकर गांव में घूमने लगी कि कोई मेरे बेटे को जिला दो। फिर किसी ने सांत्वना देने के लिए कहा कि हमारी तो सामर्थ्य नहीं, लेकिन बुद्ध आए हैं। तो उचित हो कि तू बुद्ध के पास चली जा, और वहां तो कोई भी चमत्कार हो सकता है। वह भगवान हैं।
तो कृषा गौतमी अपने बेटे की लाश को लेकर बुद्ध के चरणों में पहुंची। लाश उसने उनके चरणों में रखी और कहा इसे जिला दो, मुझे कुछ और नहीं चाहिए। और जब भगवान गांव में मौजूद हैं, तो मैं क्यों रोऊं? और इतना भी तुम न कर सको तो फिर कैसे भगवान?
बुद्ध के शिष्य बड़ी मुश्किल में पड़े कि अब क्या होगा? बड़ी भीड़ इकट्ठी
हो गई, सारा गांव इकट्ठा हो गया। चमत्कार की प्रतीक्षा होने लगी।

बुद्ध ने कहा, गौतमी, तू एक काम कर! बेटे की लाश तू यहीं छोड़ जा, इसे मैं जरूर जिला दूंगा। तू गांव में जा और ऐसे घर की तलाश कर, जिसमें कोई कभी न मरा हो। उस घर से थोड़े-से मेथी के बीज ले आ।
डूबता क्या न करता, डूबते को तिनका भी सहारा हो जाता है। कृषा गौतमी
को ख्याल भी न आया कि ऐसा घर वह कहां खोजेगी, जिसमें कोई कभी न मरा हो? अंधी हो जाती हैं आंखें मोह में। वह भागी। वह एक-एक घर पर उसने गांव के दस्तक मारी और कहा कि मुझे थोड़ी-सी मेथी चाहिए, एक ही शर्त है कि तुम्हारे घर में कोई कभी मरा न हो। पर लोगों ने कहा, गौतमी, तू पागल हो गई है! ऐसा घर तू कहां पाएगी, जहां कोई मरा न हो! क्योंकि जहां भी कोई पैदा होता है, वहां कोई न कोई मरता है। मरना और पैदा होना एक ही प्रक्रिया के अंग हैं। लेकिन उसको सुनने की फुरसत न थी। वह दूसरे घर गई, वह तीसरे घर गई। सांझ तक वह सारे घरों में हो आई।
सांझ को अंतिम घर से जब विदा हुई, तो उसके आंसू सूख गए थे। उसके व्यक्तित्व में एक क्रांति आ गई थी। वह बुद्ध के पास गई, अपने बेटे की लाश को उठाकर मरघट पहुंची, बेटे को समाप्त करके वापस आई, बुद्ध से कहा, मुझे दीक्षा दें, मैं संन्यस्त होती हूं। बुद्ध ने कहा, तू कुछ पूछती नहीं, क्या हुआ मेथी का, क्या हुआ बेटे का? उसने कहा, वह बात ही मत उठाएं। वह भ्रांति मेरी थी कि मुझे स्मरण न था कि जन्म के साथ मृत्यु जुड़ी है। तो मुझे स्मरण आ गया। इसलिए अब बेटे का सवाल नहीं, अब सवाल इस गौतमी का है। इसके पहले कि मैं मरूं, यह क्या है सारा जाल, यह रहस्य क्या है, वह मैं जान लेना चाहती हूं।
मौत निश्चित है, बचने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन हम मौत को गांव के बाहर रखते हैं। पश्चिम में तो बहुत पागलपन बढ़ा है, क्योंकि मौत का भय वहां हमसे ज्यादा है, पुनर्जन्म का सिद्धांत न होने के कारण। हमें तो थोड़ा आसरा है कि मरेंगे तो कोई बात नहीं, आत्मा तो मरेगी नहीं। हालांकि आत्मा का हमें कोई पता नहीं, लेकिन फिर भी आसरा है, कोई चिंता नहीं। हमारे भीतर कोई है--नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि--उसे कोई शस्त्र छेद नहीं सकते, उसे कोई अग्नि जला नहीं सकती। कम से कम गीता तो हमने पढ़ी है, उससे सांत्वना है। मरेंगे तो शरीर ही मरेगा, हम तो रहेंगे। और फिर जन्म-जन्म हैं, लंबी यात्रा है, जल्दी कुछ नहीं, समय का बहुत बड़ा विस्तार है। पश्चिम में घबड़ाहट ज्यादा है, क्योंकि एक ही जन्म का सिद्धांत है ईसाइयत के पास।
तो पश्चिम में मृत्यु को छिपाने के बहुत उपाय किए जा रहे हैं। आदमी मर जाता है, स्त्री मर जाती है, तो पश्चिम में इस मृत्यु के ऊपर भी बड़ा धंधा चलता है। बड़े-बड़े व्यवसाय इस पर चलते हैं। वे मरे हुए आदमी के चेहरे को रंग-रोगन लगाते हैं, सुंदर बनाते हैं, अच्छे कपड़े पहनाते हैं। जब उसे ताबूत में रखते हैं तो वह इतना सुंदर लगता है, जैसा कि वह जिंदा में भी कभी नहीं लगा था। स्त्रियों के ओंठों पर लिपस्टिक लगाया जाता है, आंखों में काजल भर दिया जाता है, चेहरे को इतना सुंदर कर दिया जाता है कि जैसी वह स्त्री जिंदा में भी कभी सुंदर न थी। फूलमालाएं, खूबसूरत कीमती ताबूत और यह यात्रा मरघट तक की--यह ऐसा लगता है कि जैसे कोई मरा नहीं, बल्कि कोई उत्सव हो रहा है।
यह धोखा है, उसको नहीं जो मर गया, उसको तो अब धोखा देने का उपाय नहीं;
वे जो जिंदा हैं, वे मौत को छिपा रहे हैं। लिपस्टिक की दीवार के पीछे, रंग-रोगन के पीछे वे मौत को ढांक रहे हैं।
मरघट गांव के बीच में होना चाहिए। और जब कोई मरे तो छोटे से छोटे बच्चे को, जो पहले दिन पैदा हुआ हो, उस बच्चे को भी लाश का दर्शन करवा देना चाहिए।
पर जीवन का गणित इकतरफा है। जब आप प्रेम करते हैं, तो आप मानते हैं, घृणा कर ही कैसे सकते हैं? और यहीं कठिनाई शुरू हो जाती है। तो आप घृणा को अस्वीकार कर देते हैं। वह आपके भीतर दबी पड़ी है। दुनिया में जितनी हत्याएं होती हैं, उनमें अधिक हत्याएं प्रेमी एक-दूसरे की करते हैं।
और ध्यान रहे, जब दो भाई लड़ते हैं, तो उस तरह की लड़ाई और कहीं नहीं हो सकती, जिस दुश्मनी से वे लड़ते हैं। और जिसको तुम श्रद्धा करते हो, जब भी

तुम उसके विपरीत हो जाओगे, तो तुमसे बड़ा दुश्मन खोजना, अश्रद्धालु खोजना कठिन है। जिसके तुम पीछे चलते हो, किसी भी दिन तुम उसके विपरीत चलोगे। बचने का एक ही उपाय है कि तुमने विपरीत को अस्वीकार न किया हो। अगर अस्वीकृत किया, तो कठिनाई खड़ी होगी, क्योंकि जीवन तुम्हारे तर्क की फिक्र नहीं करता। तुमने जिसको प्रेम किया, अगर तुमने यह भी समझ लिया कि उससे मेरे मन में घृणा भी है, तो शायद यह प्रेम लंबा चले। तो डर नहीं है। तब तुम जीवन को स्वीकार कर रहे हो। तब तुम्हारा प्रेमी भी जानता है कि घृणा भी होगी। जिससे हमने प्रेम किया है, उससे चुंबन ही नहीं मिलेंगे, आलिंगन ही नहीं मिलेगा, उससे उपद्रव भी होगा, कलह भी होगी, झगड़ा भी होगा। उससे मार-पीट भी होगी। और ये दोनों बातें एक साथ हैं। अगर प्रेमी इन दोनों को स्वीकार कर ले, तो जीवन को उसने स्वीकार किया। ऐसा प्रेम शाश्वत भी हो सकता है।
लेकिन प्रेमी गणित से चलते हैं। एक को छोड़ देते हैं, घृणा तो है ही नहीं। तुम्हारी पत्नी सोच भी सकती है कि तुम्हारे प्रति उसके मन में घृणा है? चौबीस घंटे प्रगट भला करे, मगर मान नहीं सकती कि घृणा है। अगर तुम कहोगे तो इनकार करेगी कि ऐसा हो ही कैसे सकता है? पति परमात्मा है।
जिस पति को तुमने परमात्मा माना है, उसमें तुम्हें शैतान भी दिखाई पड़ेगा। लेकिन तुम कितना ही छिपाने की कोशिश करो, वह शैतान मिटेगा नहीं।
हां, अगर तुम उसे स्वीकार कर लो, तो तुम द्वंद्व के पार हो सकते हो।
हमने सारे जीवन में ऐसा ही किया है, विपरीत को अस्वीकार कर दिया है।
जीवन द्वंद्व है, विपरीत से बना है, तुम्हारे अस्वीकार करने से मिटेगा नहीं, तुम्हारे अस्वीकार करने से तुम ही कठिनाई में पड़ोगे।
ये उलटबांसियां जीवन के द्वंद्व की खबर देती हैं। एक पहलू का तुम्हें पता है, दूसरे पहलू को ये प्रगट करती हैं। वह दूसरा पहलू यह है कि जीवन अतर्क्य है। वहां विपरीत सदा छिपा है। जैसा तुम देखते हो, उससे उलटा भी वहां है। और जिस दिन तुम दोनों को देख पाओगे, उसी दिन तुम दोनों के पार जा पाओगे। अगर तुम एक को देखे और एक को नहीं देखे, अंधे रहे, तो वह दूसरा आज नहीं कल प्रगट होगा। तब तुम उसको देखोगे और पहले को भूल जाओगे। जो आज मित्र है, वह कल शत्रु हो जाता है। आज प्रेम देखता था, कल घृणा देखता है। आज घृणा नहीं देखता था, कल प्रेम नहीं देखेगा। एक पोलेरिटी, एक ध्रुव से तुम दूसरे ध्रुव पर चले गए। लेकिन जो दोनों को साथ देखता है, वह दोनों का अतिक्रमण कर जाता है। उलटबांसियां जीवन के रहस्य की खबर देती हैं।
रहस्य का अर्थ है कि हम इसे कितना ही खोलें, हम खोल न पाएंगे। अब यह रहस्य की बात है कि मछली चढ़ जाए वृक्ष पर। लेकिन ऐसा होता नहीं, दिखाई नहीं पड़ता। किसी सपने में चढ़ सकती है, किसी कल्पना में चढ़ सकती है, किसी कवि के लिए सत्य हो सकती है, लेकिन वैज्ञानिक इसको मानेगा नहीं।
लेकिन अगर हम वैज्ञानिक को भी पूछें कि तू थोड़ी गहरी खोज कर, तो बड़ी हैरानी होगी। वैज्ञानिक कहता है कि जीवन पहली बार मछली की तरह ही पैदा हुआ। तो जो भी वृक्षों पर चढ़ गईं, वे सब कभी मछलियां थीं। आप भी कभी मछली थे।
हिंदुओं को यह खबर बड़ी पुरानी है। इसलिए उन्होंने अपने अवतार को मत्स्य अवतार स्वीकार किया। हिंदू अकेली जाति है, उसकी अगर हम अवतारों की व्यवस्था देखें, तो डार्विन के विकासवाद से बिल्कुल तालमेल खाती है। डार्विन कहता है कि जीवन शुरू हुआ सागर में, हिंदुओं का भी पहला अवतार सागर में है। जीवन शुरू हुआ मछली से, तो हिंदुओं का अवतार मत्स्य है। फिर डार्विन कहता है कि एक ऐसी घड़ी आई बढ़ते-बढ़ते कि जानवरों से ही मनुष्य हुआ। और अभी तक वैज्ञानिक खोज में लगे हैं कि वह बीच की कड़ी, जब आदमी... लाखों वर्ष लगे होंगे जानवर से मनुष्य होने में, तो बीच में एक कड़ी रही होगी, अर्ध मानव, अर्ध पशु की। हिंदुओं के पास एक अवतार है नरसिंह, वह बीच की कड़ी मालूम होता है।
अभी तक वैज्ञानिक बीच की कड़ी खोज नहीं पाए। बड़ी खोज चलती है पृथ्वी के अलग-अलग कोनों में कि एक भी अस्थिपंजर मिल जाए, जो खबर देता हो कि आधा मनुष्य और आधा पशु, तो सिद्धांत साफ हो जाए। गणित के हिसाब से तो सिद्धांत

साफ है कि अगर मनुष्य पशुओं से मनुष्य हुआ है, तो बीच में एक कड़ी जरूर रही होगी, जब हजारों-लाखों साल तक एक मध्य की घड़ी रही होगी। हिंदुओं के पास एक अवतार है नरसिंह, जो आधा पुरुष, आधा पशु। और नरसिंह के बाद जो अवतार हैं, वे फिर पूरे मनुष्य हैं। मछली से लेकर परम पुरुष बुद्ध तक हिंदुओं के अवतारों का विस्तार है।
अगर इस लंबी प्रक्रिया को हम देख पाएं, जो कि हम देख नहीं पाते, हमारे पास आंखें छोटी हैं, तो मछलियां वृक्षों पर चढ़ गईं। मछलियां वृक्षों पर ही नहीं चढ़ गईं, मछलियां बुद्ध हो गईं। इसका अर्थ यही हुआ कि जो क्षुद्रतम है, उसमें भी विराटतम छिपा है। इसका अर्थ हुआ कि छोटे को छोटा मत मानना, उसमें बड़ा छिपा है। इसलिए क्षुद्र को भी प्रणाम करना, क्योंकि उसमें भी परमात्मा छिपा है। वह जो पत्थर रास्ते पर पड़ा है, वह किसी भी दिन प्रतिमा बन सकता है। उस पर से तुम गुजरो भी, पैर भी रखना पड़े, तो भी क्षमा-याचना के भाव से रखना। क्योंकि किसी भी दिन वह पत्थर प्रतिमा बन जाए, तो तुम्हें पूजा करनी पड़े।
यहां जिसको हम पापी कहते हैं, वही पुण्यात्मा हो जाएगा, मछलियां झाड़ों पर चढ़ जाएंगी। यहां जिसको हमने निकृष्ट कहा है, क्षुद्र कहा है, तुच्छ कहा है, वही परम विभूति का धारक हो जाएगा। यहां पापी संत हो जाते हैं। यहां पत्थर पूजा-गृह में परमात्मा बन जाता है। तो क्षुद्र और विराट में, छोटे में और बड़े में, ना-कुछ में और सब कुछ में, बुनियादी भेद नहीं है। मछलियां वृक्षों पर चढ़ जाती हैं, पानी में आग लग जाती है, यहां उलटा भी होता है। और जो दोनों को स्वीकार कर लेता है, वह दोनों के पार हो जाता है। जिन्होंने भी जाना है, उनके सभी वचन उलटबांसियां हैं। इसलिए संतों के
और दार्शनिकों के वचनों में भेद है। दार्शनिक के वचन में उलटबांसी कभी नहीं होती, एकशृंखला, एक तर्कबद्ध व्यवस्था होती है। दार्शनिक का अर्थ है, सिस्टेमेटाइजर। वह एक सिस्टम बनाता है। कांट है, हीगल है, ये एक व्यवस्था बनाते हैं, इनकी व्यवस्था का एक महल है। ये जंगल के बीच थोड़ी-सी जगह साफ करके एक बगीचा बनाते हैं, एक उपवन बनाते हैं। जंगल को बिल्कुल छोड़ देते हैं दीवाल के बाहर।
जंगल में तो कोई हिसाब नहीं, कोई सिमिट्री नहीं, कोई अनुपात नहीं, कहीं भी कोई वृक्ष उगा है, कैसा भी उगा है, इरछा-तिरछा गया है। लेकिन उसके बीच एक जमीन को साफ करके दार्शनिक एक बगीचा बनाता है। उसमें सिमिट्री है, अनुपात है, उसमें सब चीजों में व्यवस्था है, रास्ते ज्यामिति के ढंग से बनाए गए हैं, वृक्ष बराबर फासलों पर लगाए गए हैं।
जापान में झेन मोनेस्ट्री होती है, बौद्ध-भिक्षुओं का आश्रम होता है,
तो वहां वे सिमिट्री का उपयोग नहीं करते। अगर रास्ते बनाते हैं, तो वे ऐसे होते हैं, जैसे जंगली हों, ज्यामिति का उपयोग नहीं करते। वृक्ष लगाते हैं, तो ऐसा लगाते हैं, जैसे वे जंगली हों, बगीचा न मालूम पड़े।
एक बहुत प्रसिद्ध झेन फकीर हुआ, जो कि बगीचे की कला में बड़ा कुशल था।
तो सम्राट ने अपने बेटे के लिए नियुक्त किया कि वह उसे बागवानी सिखाए। तो सम्राट का बेटा रोज सीखने जाता था। और जो भी फकीर सिखाता था, सम्राट के पास हजारों माली थे, वह जैसा बेटा कहता था, वैसा बगीचा लगा देते थे। फकीर ने कहा था कि तीन साल पूरे होने पर एक दिन तेरे बगीचे को देखने आऊंगा, उसी दिन परीक्षा हो जाएगी। और कोई परीक्षा है भी नहीं।
तीन वर्ष तक सम्राट का बेटा सुंदर बगीचा निर्मित करता रहा, ऐसा बगीचा जैसा कि जापान में फिर दूसरा नहीं हो सकता था। हजारों माली काम में लगे रहे। तीन साल में इतनी सुंदर कृति बनकर खड़ी हुई कि सम्राट भी चकित हुआ। सम्राट ने कहा, इसमें तो कोई उपाय ही नहीं असफल होने का तेरा अब, ऐसा बगीचा कभी देखा भी नहीं गया है। पर उसके बेटे ने कहा कि वह फकीर जरा उलटा ही आदमी है, मुझे भरोसा नहीं है, क्या करेगा।
फकीर आया, सम्राट खुद भी मौजूद था, राज-दरबारी मौजूद थे, बेटे की परीक्षा का दिन था, बेटा मौजूद था। बगीचा ऐसा चमक रहा था, जैसे कि स्वर्ग का हो, लेकिन फकीर का चेहरा गंभीर बना रहा, उस पर मुस्कुराहट न आई। सम्राट भी भयभीत हुआ। राजकुमार तो बहुत कंपने लगा। पूरा बगीचा देख डाला, लेकिन उस

फकीर के चेहरे पर जरा-सा भी प्रशंसा का भाव न आया। देखने के बाद उसने कहा कि एक टोकरी ले आओ। एक टोकरी लाई गई। फकीर भागा हुआ बगीचे के बाहर गया, बगीचे के बाहर से सूखे पत्ते टोकरी में भरकर लाया, रास्ते पर बगीचे के फेंक दिए, हवा ने पत्तों को बिखेर दिया।
उस फकीर ने कहा कि तुम्हारा यह बगीचा इतना ज्यादा आदमी की खबर देता है
कि सच्चा नहीं हो सकता। इसमें एक सूखा पत्ता नहीं है। यह कृत्रिम है, झूठा है, असत्य है। तीन साल और लगेंगे! क्योंकि जहां हरा पत्ता है, वहां सूखा पत्ता भी होगा ही। जहां जन्म है, वहां मृत्यु है। जहां प्रकाश है, वहां अंधेरा है। नहीं, यह मुझे स्वीकार नहीं, तीन साल में तुम कोशिश करो कि फिर जंगल हो जाए। इसमें आदमी के चरण-चिह्न नहीं दिखाई पड़ने चाहिए, क्योंकि आदमी के चरण-चिह्न का मतलब होता है तर्क, गणित, हिसाब। इसमें परमात्मा की छाप होनी चाहिए--जहां न तर्क है, न गणित, न हिसाब। जहां चीजें बेबूझ हैं। उलटबांसी का अर्थ है, एक बेबूझपन। तो दार्शनिक तो बनाता है एक बगीचा, जहां से सूखे पत्ते हटा देता है। संत प्रवेश करता है जंगल में, जहां कोई हिसाब-किताब नहीं है, जहां भटकने का पूरा उपाय है, जहां कोई नक्शा भी नहीं, जिसको लेकर हम रास्ता खोज सकें। नक्शारहित, बेबूझ, रहस्य का जो जगत है, उसकी खबर उलटबांसियों में है। उलटबांसियां, जैसा झेन फकीरों के कोआन होते हैं, वैसी हैं।
भारत में हमने वैसा उपयोग नहीं किया। काश, हम करते, तो बड़ा कीमती होता! जापान में झेन फकीरों ने कोआन का उपयोग किया है। कोआन का ठीक वही अर्थ है जो उलटबांसी का है। लेकिन कोआन का उपयोग उन्होंने किया है ध्यान के लिए, हम नहीं कर पाए।
जब कोई झेन गुरु के पास जाता है सत्य की खोज में, तो वह उसे एक उलटबांसी देता है, जिसको जापान में कोआन कहते हैं। कोआन का अर्थ है, एक पहेली जो हल हो न सके। जो हल हो जाए, वह कोआन नहीं। पहेलियां हल हो जाएं, तो पहेलियां हैं। जो पहेली हल न हो सके, जिसके हल होने का उपाय ही नहीं, उसका नाम कोआन है। जैसे कि झेन फकीर कहेगा कि देख, अब तू ध्यान कर इस बात पर, ताली दो हाथों से बजती है, अगर कोई एक ही हाथ से ताली बजाए, तो कैसी होगी उसकी ध्वनि, इस पर ध्यान कर।
अब एक ही हाथ से न तो ताली बजाई जा सकती है और जो बजाई ही नहीं जा सकती, उसकी ध्वनि कहां होगी? तो पहले तो सीधा ही मन आपका कहेगा, तर्क वाला मन, कि यह बात ही व्यर्थ है, इसमें समय क्यों खराब करना, यह आदमी एक फिजूल का काम पकड़ा रहा है, इसमें से कुछ निकलने वाला नहीं, यह तो रेत से तेल निकालने जैसा धंधा है। एक हाथ की ताली!
तो अगर आप बहुत तर्कयुक्त हैं, तो आप वापस ही चले जाएंगे। और झेन फकीर कहते हैं, जो बहुत तर्कयुक्त है, वह प्रभु के मंदिर में प्रवेश ही नहीं कर सकता। इसलिए जो कोआन में ही वापस लौट गया, अच्छा है। और आगे जाने की उसे यात्रा भी न थी। लेकिन अगर आप इतने तर्कयुक्त नहीं हैं और जीवन के छिद्रों से विपरीत भी आपको झांका है, दिखाई पड़ा है; और आप बगीचे में ही नहीं घूमे हैं, जंगलों में भी गए हैं; और आपने आदमी के ही शब्दों को नहीं सुना है, पक्षियों के गीत भी सुने हैं; और आपने जीवन को देखा है उसकी अराजकता में, उसके पूरे नियम-शून्य मुक्तता में, तो आप कोआन के लिए राजी हो जाएंगे। राजी होना आपका पहला चरण है। बैठेंगे ध्यान करने, तो भी आपका मन बार-बार कहेगा कि क्या व्यर्थ के काम में लगे हो, कहीं एक हाथ की ताली बजती है? अगर आप न माने, जिद्द किए, तो मन आपको नए-नए सुझाव देगा कि ऐसा करो, एक हाथ दीवाल पर मारो, तो आवाज होती है। तो लौटकर आप गुरु को आकर कहोगे कि एक हाथ दीवाल पर मारने से जो आवाज होती है। गुरु कहेगा, दीवाल दूसरा हाथ बन गई। नहीं, दूसरे का तो उपयोग करना ही नहीं है, द्वंद्व को तो बीच में लाना ही नहीं है, निर्द्वंद्व में ही आवाज हो, अकेले हाथ से ही आवाज हो।
हिंदू उसी नाद को अनाहत कहते हैं। अगर मेरे दो हाथ टकराएं, तो जो नाद होता है, वह है आहत, चोट से पैदा हुआ; अगर एक ही हाथ शून्य में ध्वनि पैदा करे, तो वही है अनाहत।

अनाहत नाद! तुम उस नाद को खोजो, दीवाल पर टकराने से नहीं चलेगा। हवा में जोर से घुमाने से नहीं चलेगा, दूसरे की मौजूदगी नहीं चाहिए।
यह साधक खोजता रहेगा, ध्यान करता रहेगा, करता रहेगा। अनेक बार मन अनेक सुझाव देगा, उनको लेकर आएगा, गुरु फौरन इनकार कर देगा। क्योंकि मन का कोई भी सुझाव काम पड़ने वाला नहीं है। संघर्ष करते, करते, करते, करते, करते, इसका बोध जगेगा। यह मन की सुनना बंद कर देगा। क्योंकि मन से तो जो भी पैदा होगा, वह आहत होगा। मन का नाम है द्वंद्व, मन तो कांफ्लिक्ट है। उसकी सब स्थितियां दो हाथों से पैदा हुई चोट की आवाज है, मन तो द्वंद्व का सार है, वही तो द्वैत है। इसलिए मन की सुनी, तो वह द्वंद्व में डालेगा। और गुरु जब सब इनकार कर देगा, सब समाधान व्यर्थ हो जाएंगे, तो साधक मन की सुनना बंद कर देगा। मन फिर भी सुझाएगा कि ऐसा करो।
एक बार ऐसा हुआ कि एक साधक वर्षों तक ध्यान करता रहा, लेकिन मन की मानता ही चला गया। आखिर एक दिन गुरु ने कहा कि तू कब तक इस उपद्रव में पड़ा रहेगा? अगर हल न होता हो, तो इससे तो बेहतर है मर ही जा। दूसरे दिन साधक आया, मन ने कहा, यह बात बिल्कुल ठीक है, जब हल होता ही नहीं तो मर ही जाना बेहतर है। तो जैसे ही गुरु के पास पहुंचा, गुरु ने कहा, उत्तर लाया? वह वहीं गिर पड़ा। आंख बंद कर ली। गुरु ने कहा, बिल्कुल ठीक, उत्तर न मिलता हो, उससे तो मर ही जाना ठीक। लेकिन मरकर उत्तर मिला या नहीं? तो उसने एक आंख खोली, उसने कहा, उत्तर तो मुझे नहीं मिला। गुरु ने कहा, तू उठ, मुर्दे बोलते नहीं। और न मुर्दे आंख खोलते हैं। तू बाहर निकल, तू मरा भी मन की ही मानकर। और मन तो सब जगह धोखा देगा, अगर उसकी मानकर मरे, तो मौत भी झूठी होगी।
मन धोखे का सूत्र है, वहां से सारा प्रपंच निकलता है, उसकी जो भी माने
वह झूठ मनवाएगा। मन माया है। उसका जीवन भी झूठ है, उसकी मृत्यु भी झूठ है।
उसके सब उत्तर व्यर्थ हैं।
लेकिन साधक अगर लगा ही रहा, हारा नहीं, भागा नहीं, टिका ही रहा, तो एक न
एक दिन मन थक जाएगा और गिर जाएगा। और जिस दिन मन गिर जाता है, उस दिन अनाहत सुनाई पड़ता है। क्योंकि वह भीतर बज ही रहा है; हमने उसे ओंकार कहा है।
तो ओम तुम्हारा कोई मंत्र नहीं है कि तुम बैठे और ओम्, ओम करते रहो, तो उससे कुछ हो जाने वाला है। वह तो आहत नाद है, दो ओंठों के टकराने से, कंठ के संघर्ष से पैदा होता है। उस ओम को हमने ओंकार नहीं कहा है। तो जो ओम जपना पड़े, वह व्यर्थ है। जपकर जिस ओम की साधना चले, वह मन की ही साधना है। लेकिन जब मन गिर जाता है, अचानक तुम्हें ओंकार सुनाई पड़ता है। तुम ओम कहते नहीं, तुम सुनते हो। तुम कर्ता नहीं होते, तुम केवल श्रावक होते हो। तुम सुनते हो कि भीतर ओम गूंज रहा है।
वह गूंज तुम्हारी नहीं है। वह गूंज तुम पैदा नहीं कर रहे हो। वह गूंज
ही तुम्हें पैदा कर रही है। उलटी बांसुरी हो गई। अब तुम बजा नहीं रहे बांसुरी को। मंत्र तुमसे पैदा नहीं हो रहा है, तुम मंत्र से पैदा हो रहे हो। ओंकार तुम्हारा प्रयास नहीं, बल्कि ओंकार के ही तुम सघन रूप हो। वह जो ओम की ध्वनि तुम्हारे भीतर पैदा हो रही है, वही ध्वनि तुम्हें निर्मित कर रही है। तुम उस ध्वनि को पैदा नहीं कर रहे, ओम तुम्हें पैदा कर रहा है।
तो ओम कोई मंत्र नहीं है, तुम्हारा जीवन है। ओम कोई बात नहीं है, जो तुम कर लो; ओम तुम्हारा स्रोत है, अस्तित्व है। ओम ध्वनि है अस्तित्व की, अनाहत नाद है। जिस दिन मन गिर जाता है, उसी दिन अनाहत नाद सुनाई पड़ जाता है।
और उस दिन गुरु को जाकर उत्तर नहीं देना पड़ता। तुम पहुंचे कि गुरु जान जाता है कि उत्तर आ गया। तुम्हारा चेहरा कहता है, तुम्हारी आंखें कहती हैं, तुम्हारी चाल कहती है। इतनी बड़ी घटना घटे, उसे तुम छुपाओगे? साधारण सा गर्भ एक स्त्री को हो जाता है, छिपाना मुश्किल। उसकी चाल बदल जाती है, उसका ढंग बदल जाता है, उसके चेहरे की, उसकी आंखें बदल जाती हैं। और जिस दिन परमात्मा तुम्हारे गर्भ में आता है, अनाहत नाद होता है, उस दिन तुम कैसे छिपाओगे? जैसे कोई सूरज को पी गया हो, तो रोशनी सब तरफ निकलेगी, अग्नि की लपटें उठेंगी, रोआं-रोआं प्रकाशित हो जाएगा। ऐसे ही जब तुम अनाहत का नाद

सुनते हो, तब गुरु को जाकर कहना नहीं पड़ता। इसलिए जब तक शिष्य उत्तर लाता है, तब तक सभी उत्तर गलत हैं।
इसलिए अगर झेन फकीरों का जीवन पढ़ोगे, तुम बहुत मुश्किल में पड़ोगे। झेन फकीर कहते हैं, अगर तुमने उत्तर दिया तो गलत, अगर न दिया तो गलत। उत्तर दिया, तो भी तुम पिटोगे, फकीर कहता है--वह डंडा रखे रहता है--कहता है, अगर तुमने उत्तर दिया, तो भी मारूंगा; अगर उत्तर न दिया, तो भी मारूंगा। क्योंकि देने का मतलब है, तुम उत्तर बनाकर लाए; न देने का मतलब है, तुम तय करके आए कि नहीं दूंगा। लेकिन एक तीसरी अवस्था है जब तुम्हें उत्तर का पता ही नहीं होता, देने नहीं देने का पता नहीं होता, तुम सिर्फ आते हो, न तुम तय करके आते हो कि उत्तर देना है, न तुम तय करके आते हो कि नहीं देना है, तुम उत्तर होते हो। वह तुम्हारे होने में ही समाया होता है, उस दिन गुरु का डंडा... ।
नानइन अपने गुरु के पास से जा रहा था एक एकांत साधना के लिए। तो गुरु
ने उसे बुलाया और कहा कि एक बार डंडा मार लेने दे। तो नानहन ने कहा, मतलब क्या? ऐसे ही तुम बहुत डंडे मुझे मारे हो, जगह-जगह मेरी हड्डी-पसली दुखती है और अभी तो कोई कारण भी नहीं है। अभी मैंने कुछ कहा भी नहीं है, कुछ गलती होने का सवाल ही नहीं। उसके गुरु ने कहा, तू समझा नहीं। क्योंकि जब तू लौटेगा, तो फिर मैं तुझे डंडा नहीं मार सकूंगा। क्योंकि घड़ी बिल्कुल करीब आ रही है, यह आखिरी डंडा है। और इस बार तुझे बिना डंडा मारे छोड़ दिया, दुबारा कोई उपाय नहीं, तू जब आएगा फिर नहीं मार पाऊंगा। तो कारण नहीं है... ।
एक घड़ी आती भीतर जब अनाहत गूंजता है, बांसुरी उलटी बजने लगती है। इसके पहले तक तुमने समझा था कि मैं कर्ता हूं; अब तुम समझते हो कि मैं उपकरण हूं। अब तक तुमने समझा था कि गीत मैंने गाए; अब तुम समझते हो, गीत मुझसे गाए गए। अब तक तुम समझते थे, मैं हूं; अब तुम समझते हो, मैं नहीं हूं, वही है, तू ही है, परमात्मा ही है। सब उलटा हो जाता है।
कबीर की उलटबांसियां कोआन की तरह उपयोग हो सकती थीं; हिंदू चूक गए, उनका उपयोग नहीं कर पाए। कबीर जापान में हुए होते, तो झेन फकीरों की परंपरा में परम सिद्ध होते। इस मुल्क में पैदा होने का परिणाम यह हुआ कि विश्वविद्यालयों में नासमझ उन पर पीएचड़ी. लिखते हैं बस, और कुछ किसी काम के नहीं! कबीर पर जितनी डाक्टरेट मिलती हैं लोगों को, उतनी किसी पर नहीं। क्योंकि कबीर के एक-एक वचन पर डाक्टरेट मिल सकती है। और यह आदमी बिल्कुल गैर पढ़ा-लिखा है।
इसलिए सोच लें कि पढ़े-लिखों की बुद्धि कहां तक जाती है, गैर पढ़े-लिखे
पर लिखकर पीएचड़ी. मिलती है। तब वे बड़े पंडित हो जाते हैं। कबीर को नहीं मिल सकती थी। कबीर को तो विश्वविद्यालय में कोई घुसने ही नहीं देता; कि तुम बाहर, उलटबांसी बाहर रखो। कबीर को कोई विश्वविद्यालय नहीं घुसने देता भीतर। लेकिन कोई भी नहीं सोचता कि नहीं तो कम से कम भारत में सैकड़ों डाक्टर हैं, जो कबीर की वजह से डाक्टर हैं। वे बड़े ज्ञाता हैं।
यह बड़े मजे की बात है, जिससे जीवन बदल सकता था, उससे उपाधि उपलब्ध होती है। जिससे तुम कबीर हो सकते थे, उससे तुम सिर्फ विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हो जाते हो, एक डाक्टर हो जाते हो; एक किताब छप जाती है। तुम्हारे नाम के साथ थोड़ी चमक लग जाती है। उलटबांसियों पर पीएचड़ी. ले लेने वाले लोगों को भी उलटबांसी का जरा-सा स्वाद नहीं आता।
कबीर इस मुल्क की परम धन्यताओं में एक हैं। और कई अर्थों में अनूठे हैं। बुद्ध, महावीर सब राजपुत्र हैं, सुसंस्कृत हैं, उन्हें जो जानने को मिला, वे जो हो सके, उसके लिए उनके पास बड़ी व्यवस्था भी थी। श्रेष्ठतम शिक्षक उन्हें मिले, श्रेष्ठतम भोजन मिला, श्रेष्ठतम वातावरण मिला, अनुकूलता मिली। कबीर बिल्कुल गांव के गंवार हैं। राज्य का तो सवाल ही नहीं, मां-बाप का भी पक्का पता नहीं है। यह भी साफ नहीं कि हिंदू हैं कि मुसलमान हैं। अनाथ हैं, सड़क के भिखारी! सड़क के किनारे छोटा बच्चा पड़ा हुआ मिला है, वही बाद में कबीर हो गया। कोई जानता नहीं, कौन मां-बाप हैं, कौन-सा घर-ठिकाना है, निपट भिखमंगे हैं। कोई सुविधा नहीं है, कोई अनुकूलता नहीं

है, संसार से ऊबने का भी कोई उपाय नहीं है। क्योंकि बुद्ध को तो उपाय है। जब बहुत कुछ होता है, तो ऊब आ जाती है। सुंदरतम स्त्रियां होती हैं, तो वैराग्य आ जाता है। इसलिए बुद्ध में विशेषता नहीं है, कोई भी ऊब जाता।
सच तो यह है कि जिसको भी बुद्ध के जैसी व्यवस्था मिल जाए, वह ऊबेगा नहीं तो करेगा क्या? सारी सुंदर स्त्रियां बाप ने इकट्ठी कर दीं, तो सुंदर स्त्रियां बेकार हो गईं। क्योंकि जिसको भी हम भोग लें, जिसका भी साथ-संग मिल जाए, वह बेकार हो जाए। सुंदर स्त्री का रस तो उस कारण है कि सुंदर स्त्री अलभ्य है, मिल नहीं पाती। बुद्ध को सब अप्सराएं उपलब्ध हो गईं, बात व्यर्थ हो गई। सब धन हाथ पर था, धन में कोई सार न रहा। राज्य था, पाने को कुछ और बचा नहीं।
तो अगर बुद्ध मुड़ पड़े संसार से, तो यह बिल्कुल स्वाभाविक है, तर्कयुक्त है। कबीर के पास तो कुछ भी नहीं। फिर भी कबीर मुड़ पड़े, यह अतर्क्य है। इसके लिए बड़ी महिमाशाली प्रतिभा चाहिए। जब कोई उपाय न हो ऊबने का, तब जो ऊब गया, इसके पास बड़ी गहरी आंखें चाहिए, धन हाथ में न हो और धन मिट्टी दिख जाए, इसके लिए बड़ी अंतर्दृष्टि चाहिए। भिखमंगा छोड़ दे संसार को, इसका अर्थ इतना ही होता है कि इसके पास ऐसी गहरी आंखें हैं कि जो राज्य इसके पास नहीं था, उसको भी इसने पहचान लिया। जो इसे नहीं मिला था, उसके भी आर-पार देख लिया। और कबीर आते हैं बिल्कुल आखिरी वर्ग से, जहां से क्रांति उठती नहीं, इसलिए कबीर अद्वितीय हैं।
तो कबीर की तुलना न तो बुद्ध, न महावीर से की जा सकती है। कबीर की तुलना तो सिर्फ क्राइस्ट से की जा सकती है। और वैसा ही क्रांतिकारी व्यक्तित्व है।
लेकिन भारत उनको पी गया। क्योंकि भारत के पास पंडितों की इतनी पुरानी परंपरा है कि यहां सत्य पैदा नहीं हो पाता कि पंडित उस पर कब्जा कर लेते हैं। और जिस सत्य पर पंडित ने कब्जा किया, वह उसको भ्रष्ट कर देता है। वह उसमें से कुछ और ही बातें निकाल लेता है, जिनका कि कोई संबंध ही न था। कबीर फंस गए, पंडितों ने पकड़ लिया, पंडित उनकी उलटबांसियों के अर्थ करने में लग गए। और कबीर के पीछे साधक की परंपरा नहीं बन पाई, पंडित की परंपरा बन गई। चूक गई घटना। अन्यथा कबीर से उतनी ही बड़ी क्रांति पैदा हो सकती थी जितनी क्राइस्ट से। क्योंकि दोनों--कबीर जुलाहा हैं, क्राइस्ट बढ़ई--दोनों गैर पढ़े-लिखे हैं और दोनों के वचन में उलटबांसियां हैं। क्राइस्ट कहते हैंः धन्य हैं वे जो हारे हुए हैं, क्योंकि विजय उनकी ही होगी; धन्य हैं गरीब, क्योंकि साम्राज्य उन्हीं का होगा; धन्य हैं वे, जो पीछे खड़े हैं, क्योंकि वे ही प्रथम खड़े होंगे। ये जीसस के बिएटिट्यूड्स हैं, ये उलटबांसियां हैं। कहने का ढंग अलग है, लेकिन जब भी किसी संत ने कुछ अनुभव किया है, तो उससे जो वचन निकले हैं, वे हमेशा उलटे हैं।
जहां भी तुम्हें पैराडाक्स, उलटबांसी दिखाई पड़े, वहां रुक जाना, वहां
से जल्दी मत करना जाने की, वहीं किसी सत्य की किरण तुम्हें मिल सकती है। जहां सब साफ-सुथरा बगीचा मालूम पड़े, जहां सूखा पत्ता भी नहीं है, वहां से जितने जल्दी भाग सको, भाग खड़े होना। वहां पंडित रहता है, वहां ज्ञानी नहीं है।

प्रश्नः ओशो, संस्कृत में एक सूत्र हैः अति परिचयात अवज्ञो। इस जगह
की सभी चीजों से, व्यक्तियों से और घटनाओं से अति परिचय होने पर मन ऊब जाता है। लेकिन आपके साथ अति परिचय से अवज्ञा तो होती ही नहीं, परिचय भी नहीं हो पाता। उलटे अपरिचय ही बढ़ता चला जाता है। यह कैसा रहस्य है?

उलटबांसी है! परिचय बढ़े, ऊब पैदा होती है, यह संसार का नियम है। जितना बढ़ेगा परिचय, उतनी ही ऊब हो जाएगी। क्योंकि परिचय का अर्थ है, जिज्ञासा खो गई अब, जान लिया जो जानने को था। परिचय का अर्थ है, अब कुछ खोजने को न बचा, पहचान हो गई। तो मन की जो दौड़ थी खोजने की, जिज्ञासा की, उत्सुकता की, वह नष्ट हो गई। ऊब का यही अर्थ होता है कि अब मन को कोई क्रिया बाकी न रही।

संसार का यही नियम है। और जहां भी इससे उलटा हो, उसे समझ लेना कि संसार के बाहर की कोई घटना है।
अगर किसी से परिचय बढ़ते-बढ़ते जिज्ञासा बढ़ती जाए, किसी से जितना परिचय
हो उतना ही आकर्षण बढ़ता जाए, और जितना तुम जानो, उतना ही जानने को और खुलता जाए, ऐसे ही व्यक्ति को हमने बुद्धत्व, निर्वाण, मुक्ति को उपलब्ध व्यक्ति कहा है। उसे तुम कभी चुका न पाओगे; अगर चुका दो, तो वह संसार का हिस्सा था। उसके पास जाकर तुम कभी इतने पास न पहुंच पाओगे कि और आगे जाने का उपाय न रहे। उसके तुम जितने पास पहुंचोगे, उतने ही और द्वार खुलते जाएंगे। उन द्वारों का कोई अंत नहीं है। और जितने तुम निकट जाओगे, उतना ही तुम पाओगे और भी कुछ बुला रहा है, और भी कोई चीज जानने को आ गई सामने, यह कभी भी चुकेगी नहीं।
इसलिए बुद्ध तुम्हें अगर अनंतकाल के लिए भी मिल जाएं, तो भी तुम ऊब न सकोगे। बुद्ध के पास ऊबने का उपाय नहीं है। क्योंकि बुद्ध की कोई सीमा नहीं है, जिसको तुम छू लो। अगर तुम दूर रहो, तो शायद तुम्हें सीमा दिखाई भी पड़े। जैसे-जैसे तुम पास आओगे, वैसे-वैसे सीमा तिरोहित होगी और असीम प्रकट होगा। एक घड़ी आएगी, जिसमें तुम खो तो सकते हो, जिसमें तुम बुद्ध के असीम के हिस्से हो सकते हो, लेकिन ऊब नहीं सकते।
इसे चाहे प्रेम कहो, चाहे इसे ध्यान कहो, प्रार्थना कहो, जहां तुम ऊबते नहीं हो और तुम्हारा कितना ही परिचय अति परिचय नहीं बन पाता, जहां अति होती ही नहीं।
एक सूत्र है बौद्ध-ग्रंथ में कि ध्यान की कोई अति नहीं है। ऐसा तुम नहीं कर सकते कि तुमने ज्यादा ध्यान कर लिया, ऐसी कोई स्थिति नहीं ज्यादा ध्यान की। ध्यान सदा कम है, तुम कितना ही करो, कम है। अति तो हो ही नहीं सकती।
मेरे पास तुम हो, अगर मैं एक संसार अपने आस-पास खड़ा कर रहा हूं, तो तुम
आज नहीं कल ऊब जाओगे। जो मैं तुम्हें दे रहा हूं, अगर वह इस जगत का ही है, तो तुम आज नहीं कल ऊब जाओगे। जो मैं दे रहा हूं, अगर वह पार से आता है, तो तुम नहीं ऊब पाओगे। चाहे मैं तुमसे रोज ही बोलता रहूं, जो मैं बोल रहा हूं, अगर वह शून्य से आ रहा है, तो वह तुम्हारे भीतर भी शून्य को ही पैदा करेगा। जो मैं बोल रहा हूं, अगर वह असीम से आ रहा है, तो तुम्हारे भीतर भी असीम को ही जन्माएगा। मेरे पास धीरे-धीरे तुम मेरे जैसे होते जाओगे।
ऊब का कोई उपाय नहीं है, सत्संग की कोई अति नहीं है, जितना भी तुम करो
वह थोड़ा है। अमृत को कितना ही पीयो, प्यास का अंत नहीं आएगा, तुम ऊबोगे नहीं, तुम छकोगे नहीं। और अमृत को कितना ही पीयो, जरूरत से ज्यादा पी लिया, ऐसी कोई स्थिति नहीं है; सदा ही कम रहेगा।
इसीलिए हम परमात्मा को अनंत कहते हैं, असीम कहते हैं। उससे मिलकर भी तुम पाओगे कि मिल न पाए, उसके पास होकर भी तुम पाओगे कि पूरे पास न हो पाए, एक फासला पार करने को सदा बाकी रहेगा।
इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि अध्यात्म का शुरू तो होता है, अंत नहीं होता। इस यात्रा का पहला चरण तो है, अंतिम चरण नहीं है। मंजिल कभी नहीं आती। यात्रा अनंत है, यात्रा ही मंजिल है।
आज इतना ही।

नहिं राम बिन ठांव
पंद्रहवां प्रवचन

मंदिर के द्वार खुले हैं

प्रश्नः ओशो, आपने एक पत्र में लिखा हैः असमंजस में न रहो, पीछे मत देखो। मंदिर के द्वार पूरे खुले हैं। हजारों साल के बाद ऐसा अवसर पृथ्वी पर उतरता है। और जान लो कि ये द्वार सदा खुले नहीं रहेंगे। आसानी से यह अवसर खो भी सकता है। इसलिए मैं बार-बार पुकार रहा हूं, आओ और प्रवेश करो! मैं दरवाजे पर खड़ा दस्तक पर दस्तक दे रहा हूं। और दस्तक इसलिए देता हूं कि किसी अन्य जन्म में और अन्य युग में मैंने वचन दिया था।

बहुत सी बातें समझनी जरूरी हैं। पहली बात, बुद्धत्व अति दुर्लभ है। जागना करीब-करीब असंभव की उपलब्धि है। पूर्ण जाग जाना ऐसी घटना है, जो रोज-रोज नहीं घटती और घट नहीं सकती। क्योंकि निद्रा में बड़ा रस है और निद्रा में बड़ा विश्राम है। निद्रा में न तो कोई दायित्व है, पीड़ा कितनी ही हो, दुख कितना ही हो। लेकिन मूर्च्छा के कारण वह पीड़ा और दुख भी मालूम नहीं पड़ते।
सर्जन भलीभांति जानते हैं, अनेस्थेसिया, मार्फिया या कोई भी बेहोश करने वाली दवा शरीर को दे दी जाए, तो फिर आप कितना भी दुख झेलने में समर्थ हो जाते हैं। हड्डी काटी जाए, पैर तोड़ा जाए, शरीर के भीतर के अंग बाहर निकाले जाएं, बदले जाएं, कष्ट फिर अहसास नहीं होता।
दुख को झेलने का एक उपाय, गहरे से गहरा उपाय, मूर्च्छा है। दुख बहुत हैं और उसे झेलने का हमने एक उपाय खोज रखा है, वह है मूर्च्छित रहना। जैसे होश बढ़ेगा, दुख की प्रगाढ़ता बढ़ेगी। जैसे होश बढ़ेगा, वैसे कांटा और चुभता हुआ मालूम पड़ेगा। कांटा तो चुभा ही है, हजार कांटे चुभे हैं।
बुद्धत्व का अर्थ हैः जीवन के दुख को उसकी समग्रता में जानने की क्षमता; जितनी पीड़ा है, उससे बिना भागे, उसे झेलने का साहस; उससे बिना मुंह छिपाए, बिना पीठ फेरे, जो भी जीवन में कितना भी बड़ा नर्क हो, उसका साक्षात्कार।
नर्क के साक्षात्कार से ही स्वर्ग का द्वार खुलता है। और जो नर्क से गुजरने को राजी नहीं हैं, वे स्वर्ग से वंचित रह जाएंगे। स्वर्ग तो हम सभी जाना चाहते हैं, लेकिन स्वर्ग का मार्ग नर्क से गुजरता है, वह मार्ग हम पूरा नहीं करना चाहते। इसलिए हमने एक तरकीब निकाली है, वह तरकीब यह है कि हम नर्क में ही रहते हैं, नर्क के द्वार पर ही रहते हैं, स्वर्ग के सपने देखते रहते हैं। उन सपनों के कारण नर्क छिपा रहता है। सपना देखना हो, तो नींद जरूरी है।
तो नींद के दो उपयोग हैं, एक तो नींद दुख को अनुभव नहीं होने देती उसकी पूरी पीड़ा में; और दूसरा, नींद सपने देखने की सुविधा देती है। इसलिए बुद्धत्व अति दुर्लभ है। नींद तोड़ना पड़ेगी, नींद के टूटते ही सपने टूटते हैं। सपनों में हमने बहुत कुछ इनवेस्ट किया है, बहुत कुछ दांव पर लगाया है। सपने ही हमारे जीवन का माधुर्य हैं। सत्य में तो हमने कोई सुख जाना नहीं, सपने में ही आशा बांधी है, सपने में ही हमारे सारे सुख की संपदा है। इसलिए जब कोई सपना तोड़ने की बात करे, तो प्रीतिकर नहीं लगती। हम तो बुद्धों के पास भी जाते हैं कि कैसे हमारे सपने चरितार्थ हो जाएं। हम अगर मुक्ति भी चाहते हैं, तो वह भी हमारा अंतिम सपना है, वह हमारी आखिरी आनंद की आशा है। तो नींद में सपना संभव है; नींद में दुख प्रतीत नहीं होते, इसलिए हम नींद खोजते हैं।
कभी-कभी हजार वर्षों में कोई व्यक्ति जाग पाता है। और जब एक व्यक्ति जागता है, तो जो द्वार साधारणतः बंद है वह खुलता है, उनके लिए भी जो सोए हैं। यहां हम इतने लोग हैं, हम सब सो जाएं, हम सब सोए हों, तो जगाएगा कौन? हम सबमें से एक व्यक्ति भी जाग जाए, तो सबके जागने का द्वार खुलता है। क्योंकि जागा हुआ सोए हुए को जगा सकता है, झकझोर सकता है। तुम चाहे न भी

जागो; तुम चाहे फिर करवट लेकर सो जाओ, तुम चाहे सुनी-अनसुनी कर दो, उसकी पुकार तुम्हारे स्वप्न में खो जाए और तुम्हारे स्वप्न का अंग बन जाए... । हम इतने कुशल हो गए हैं कि हम बाहर के अस्तित्व को भी स्वप्न में लीन
कर लेते हैं।
तुम रात सोते हो अलार्म भरकर, सुबह उठना बड़ा जरूरी है। अलार्म बजता है, तुम एक सपना देखते हो कि मंदिर की घंटियां बज रही हैं, मंदिर में पूजा हो रही है। अलार्म बाहर से आ रहा है, तुम उसे सपने का अंग बना लेते हो। फिर अलार्म व्यर्थ हो गया। फिर तुम उठोगे नहीं, उठने की कोई जरूरत न रही, तुम घड़ी को भी भूल गए, अलार्म को भी भूल गए। तुमने, बाहर से जो आ रहा था, उसको भीतर के सपने में जोड़ लिया। मन बड़ा अदभुत है और बड़ा कुशल है। तुम एक सपना निर्मित करोगे, जिसमें घंटियां बज रही हैं, घंटियां तुम्हारे भीतर आ गईं, अब जागने का कोई कारण न रहा।
मैंने सुना है कि मिलिटरी का एक कर्नल रिटायर हुआ, तो उसने अपने अर्दली को कहा कि राम--राम उस अर्दली का नाम था--तू मेरे साथ ही रहेगा। पत्नी-बच्चे नहीं थे, कर्नल अकेला ही था। और तेरी ड्यूटी एक ही है कि जैसे अब तक तू सुबह चार बजे मुझे उठाता था, वैसे ही तुझे मुझे चार बजे उठाना है। जैसा तू अब तक आकर रोज मुझे कहता था कि उठिए महानुभाव, परेड का वक्त हुआ; ऐसा ही तुझे मुझे रोज चार बजे आकर उठाना है और कहना है कि उठिए महानुभाव, परेड का वक्त हुआ; और मैं तुझसे कहूंगा, ऐसी की तैसी में जाए परेड, और करवट लेकर सो जाऊंगा। यह जिंदगीभर से मेरी कामना रही है, जो मैं अब तक कर नहीं पाया। जिंदगीभर से यह सोचता रहा हूं कि मारो लात परेड को, मगर कर नहीं सकता, अब रिटायर हो रहा हूं।
ऐसा हमारा मन है। सोना चाहता है। और जब जागने का मौका आता है, तब हमें सोने में और मजा आता है, तब अगर हम को सोने का मौका मिल जाए... । अब यह कर्नल बिल्कुल पागल है, लेकिन ठीक आदमी की तस्वीर है। अब यह मजे से सो सकता है, अर्दली को रखने की जरूरत नहीं है कि वह चार बजे उठाए। लेकिन जो रस उठाए जाने पर और करवट लेकर सो जाने में है, वह सतत सोने में नहीं है।
तो जब बुद्धत्व कहीं घटित होता है और कोई बुद्ध तुम्हें झकझोरता है,
तब तुम्हें नींद का मजा और भी बढ़ जाता है। तब तुम करवट लेकर सो जाते हो। तब तुम उस बुद्ध को भी अपने सपने का हिस्सा बना लेते हो। तुम उसके बाबत भी सपना देखते हो, उसे तुम जागृति की तरफ ले जाने का मार्ग नहीं बनने देते। तुम उसे भी अपनी नींद की गहराई के लिए सहारा बनाते हो।
पर मौका खुलता है। गुरजिएफ कहता था, जब तक कोई दूसरा तुम्हें न जगाए, तुम जागोगे कैसे? तुम्हारी नींद इतनी गहरी है कि जब तक कोई तुम्हें दूसरा न झकझोरे, तुम्हारी नींद में बाहर का कोई तत्व प्रवेश कैसे करेगा? कुशल तो तुम इतने हो कि तुम जगाने वाले को भी, हो सकता है, नींद में ही डुबा लो अपनी। मगर फिर भी एक उपाय है। इसलिए गुरजिएफ कहता था एक कहानी, जो समझने जैसी है।
वह कहता था कि जंगल है घना, दस लोग यात्रा कर रहे हैं, जंगली जानवरों
का खतरा है, दस ही नहीं सो जाते, एक जागता है। और जब तक एक दूसरे को नहीं जगा देता, तब तक नहीं सोता। पर एक जागता रहता है, वह नौ की रक्षा करता है। और जब सोने की हालत आती है, तो एक को उठा देता है। इसको गुरजिएफ कहता था, यह स्कूल-वर्क है।
आश्रम का यही उपयोग है। वहां सौ लोग तय करते हैं कि हम सब जागने की कोशिश करेंगे। नींद गहरी है। अकेला आदमी शायद भूल ही जाए कि उसने जागने का तय किया था। और हमारी भूलने की क्षमता बड़ी है।
मैंने सुना है, एक आदमी भूल-भूल जाता था, जो भी तय करता भूल जाता। तो किसी मनोवैज्ञानिक से उसने सलाह ली। उस मनोवैज्ञानिक ने कहा कि कुछ गांठ बांध लिया कर, हाथ पर रस्सी का टुकड़ा बांध लिया, कान में रस्सी बांध ली, कपड़े में गांठ बांध ली, तो जब भी गांठ दिखाई पड़े, याद आ जाए।
तो एक दिन कोई बात उसे याद रखनी थी, तो उसने रास्ते में अपने हाथ पर अंगुली में एक धागा बांध लिया। धागा बांधने का मनोवैज्ञानिक ने कहा था

ताकि याद रहे। इस आदमी ने धागा बांधा और बांधकर वह निश्चिंत हो गया कि अब तो याद रहेगा ही। इससे और भूलना आसान हो गया।
घर आया, भोजन किया, अखबार रात अपना पढ़ा। जब अखबार पढ़ रहा था, तब हाथ में बंधा हुआ धागा दिखाई पड़ा। बड़ा सोचा, लेकिन कुछ ख्याल न आए कि किसलिए बांधा था। भूलना ही है, तो आप कुछ भी भूल सकते हैं। गांठ किसलिए बांधी, वह भूल गया। मगर उसने कहा, चाहे कुछ भी हो जाए याद करके रहूंगा, चाहे पूरी रात क्यों न जागना पड़े, बैठूंगा, ध्यान करूंगा, लेकिन याद करके रहूंगा। यह कब तक चलेगा! तो बैठा है अपनी कुर्सी पर, रात दो बजे याद आ गई। याद यह आई कि आज दोपहर में तय किया था कि आज जल्दी ही सोने चले जाएंगे। उसके लिए धागा बांधा था।
भूलने की क्षमता हमारी अपार है। सत्य को सपने बना लेने की कीमिया हमारी बड़ी कुशल है।
जब कोई जागता है, तो एक संभावना का द्वार खुलता है। वह हमें हिला सकता है। जागा हुआ हमारे सपनों को तोड़ सकता है, जागा हुआ हमें करवट लेने से रोक सकता है, जागा हुआ हमारी तंद्रा में बाधा उपस्थित कर सकता है।
इसलिए गुरजिएफ कहता है कि जागरण एक स्कूल, एक आश्रम, मित्रों के एक समूह की प्रक्रिया है, अकेले जागना बहुत मुश्किल है। इसलिए बुद्ध ने महासंघ को जन्म दिया, जहां हजारों भिक्षु इकट्ठे रहें। उनमें से कोई एक भी थोड़ा-सा जाग जाए, तो वह दूसरे के लिए जागने का द्वार बन जाए। इसलिए महावीर ने मुनियों, साधु और साध्वियों की एक संगठित परंपरा पैदा की। इसलिए हिंदुओं ने बड़े व्यवस्थित आश्रम बनाए, ईसाइयों ने बड़ी कीमती मोनेस्ट्रीज निर्मित कीं। उनमें कभी कोई एक आदमी जाग जाए, तो वह दूसरों को जगाने के काम आ जाएगा। वह एक किरण बहुतों का अंधेरा तोड़ने की कोशिश करेगी। फिर भी पक्का नहीं है कि अंधेरा टूटे।
इसलिए मैं कहता हूं कि बुद्धत्व कभी-कभी फलित होता है। दरवाजा तब खुलता है थोड़ी देर के लिए। तब तुम अगर करवट लेने से अपने को बचा सको, तब तुम सत्य को सपना बना लेने की पुरानी आदत से अपने को रोक सको, तब तुम थोड़ी स्मृति रख पाओ, तब तुम, नींद में तुमने जो-जो लाभ सोच रखे हैं, उनको देख पाओ, समझ पाओ कि वे लाभ नहीं हैं, हानियां हैं, और मूर्च्छा से दुख मिटता नहीं, केवल भूलता है और बढ़ता है... जागना ही पड़ेगा। नर्क है जीवन, तो नर्क को भी देखना ही पड़ेगा। उसी देखने और दर्शन से स्वर्ग की तरफ यात्रा शुरू होगी। भागकर कोई कहीं नहीं पहुंचा है। आंखें बंद करके कोई सत्य को झुठला नहीं सका है। शुतुरमुर्ग का तर्क कोई तर्क नहीं है। रेत में सिर गपाकर खड़े हो जाने से दुश्मन मिटता नहीं है। भगोड़ों ने कभी भी कोई जीवन-सिद्धि नहीं पाई है। जागना पड़ेगा। संघर्ष है, तो देखना पड़ेगा। दुख है, तो झेलना पड़ेगा। इस झेलने, जागने और होश की प्रक्रिया से ही तुम उस जगह आओगे, जहां दुख का अतिक्रमण हो जाता है।
कोई बुद्ध उपलब्ध हो जाए, यह सौभाग्य है। यह सौभाग्य भी जन्मों- जन्मों की तुम्हारी चेष्टा के फल से उपलब्ध होता है। जन्मों-जन्मों तक तुमने भला सपना ही देखा हो, लेकिन जागने का सपना देखा है। जन्मों-जन्मों तक तुमने भी कामना की है मुक्त हो जाने की। नहीं मुक्त हुए, दूसरी बात है; नहीं छोड़ सके संसार, वह दूसरी बात है, लेकिन संन्यास का बीज तुम्हारे भीतर रहा है। व्यर्थ तुम्हें पकड़े हुए है, लेकिन व्यर्थ की तुम्हें व्यर्थता कभी-कभी दिखाई पड़ी है। कभी जैसे अंधेरी रातों में बिजली कौंध गई है और एक झलक में तुमने सब देखा है, ऐसा तुम्हारे जीवन की किन्हीं-किन्हीं यात्रा- पड़ावों पर कभी बिजली कौंधी है और तुमने देखा है कि सब असार है। सार ने तुम्हें भी पुकारा है। इसीलिए तुम इतना सौभाग्य अर्जित कर पाए हो कि किसी बुद्ध के पास कभी पहुंच जाओ। वह पास पहुंचना भी सभी के लिए नहीं हो सकता। मैंने सुना है, एक बड़ी पुरानी बौद्ध कथा है। बुद्ध जिस गांव में पैदा हुए, जिस दिन पैदा हुए, उसी दिन एक युवती भी उस गांव में पैदा हुई, एक छोटी बालिका भी पैदा हुई, बुद्ध के ही जन्मदिन पर। बुद्ध के साथ ही बड़ी हुई, उतनी ही उम्र, उतना ही जीवन का अनुभव। लेकिन उस युवती को बुद्ध से बड़ा डर था। तो जिस रास्ते से बुद्ध निकलते, वह उस रास्ते से न निकलती। और कभी बीच

रास्ते पर अड़चन आ जाए, बुद्ध आ जाएं अचानक, तो वह बगल की गलियों से भाग जाती। फिर बुद्ध संन्यस्त हो गए, फिर उन्होंने सब छोड़ दिया। उसका भय और भी बढ़ गया। यह आदमी वैसे ही डर पैदा करता था, फिर बुद्ध भिक्षु हुए, तो उस युवती का भय और भी गहन हो गया।
पर एक दिन ऐसा हुआ कि बाजार से वह लौटती थी, और कोई संभावना न थी बुद्ध
के आने की उस मार्ग से, कि अचानक बुद्ध सामने आ गए। कभी उसने ठीक से उनकी तरफ देखा भी नहीं था--भय इतना था, देखना संभव नहीं है जब भय हो--तो वह ठीक से पहचान भी न पाई। सांझ का धुंधलका था, चलती ही गई और अचानक बुद्ध के सामने पड़ गई। पहली दफा उसने बुद्ध को देखा, सारा भय विसर्जित हो गया। वह स्त्री रूपांतरित हो गई।
झेन फकीर पूछते रहे हैं कि वह स्त्री कौन थी?
वह स्त्री तुम्हारी छाया है। वह बुद्ध के साथ ही पैदा नहीं होती, तुम्हारे साथ भी पैदा होती है। उसे ही हिंदू माया कहते हैं। तुम और तुम्हारी माया कभी आमने-सामने नहीं होते। न तुम्हारी माया तुम्हें कभी भरपूर देखती है, न तुम कभी माया को भरपूर देखते हो। एक खेल चलता रहता है। उस खेल में कभी आमने-सामने तुम पड़ जाओ, तो तुम नहीं मिटोगे, माया ही मिटेगी। तुम अपनी छाया को सामने देख लो, तो छाया ही मिटेगी, तुम नहीं मिटोगे। इसलिए छाया डरती है। इसलिए तुम जहां जाते हो, वहां से भाग खड़ी होती है। अगर तुम्हारा पीछा भी करती है, तो तुम्हारी पीठ की तरफ से करती है, कभी तुम्हारे सामने नहीं आती।
जिसको अभी हम जीवन कह रहे हैं, वह एक छाया से ज्यादा नहीं है। उसमें सत्य तो बिल्कुल नहीं है। लेकिन बुद्ध, बुद्धत्व को प्राप्त व्यक्ति के करीब, तुम्हें अपनी छाया के आमने-सामने पड़ना पड़ेगा। तुम्हें अपनी माया को आंख भरकर देखना पड़ेगा, तुम्हें अपने सपनों का साक्षात्कार करना पड़ेगा। और जिस दिन भी तुम अपने सपनों को ठीक से देख लोगे, उसी दिन नींद टूट जाएगी। तुम बचोगे। सौभाग्य से भी तुम बचोगे। हमारी आदतें दुख की इतनी हो गई हैं कि अहोभाग मिलता भी हो, तो हम उसे झेल नहीं पाते।
बड़ी पुरानी सूफी कहानी है। एक आदमी था एक सम्राट के साम्राज्य में, राजधानी में, वह कुछ भी करता, गलत हो जाता। कुछ भी करता, हानि हो जाती। दुर्भाग्य उसका पीछा करता। सम्राट ने एक फकीर को पूछा कि इस आदमी का मैं निरंतर अध्ययन करता रहा हूं, इसके हाथ में कभी सौभाग्य की घड़ी आती ही नहीं। क्या इसके माथे पर बिल्कुल लिखा है कि यह दुख ही भोगेगा? उस फकीर ने कहा, पुरानी आदत है इसकी दुख भोगने की, जन्मों-जन्मों में यही इसने अर्जित किया है। सम्राट ने कहा, मेरा मन मानने का नहीं होता। मेरा तो मानने का मन यही होता है, ठीक परिस्थिति नहीं मिली, ठीक संग-साथ नहीं मिला, ठीक शिक्षण नहीं मिला, इसलिए यह आदमी भटक रहा है। उस फकीर ने कहा, तो प्रयोग करके देख लें।
तो एक दिन रास्ते पर सम्राट ने एक बहुत बड़े बर्तन में, स्वर्ण-पात्र में अशर्फियां, बहुमूल्य हीरे-जवाहरात भरकर रास्ते के किनारे रख दिए, जहां से वह आदमी रोज सांझ को निकलता था। वह एक पुल था नदी के ऊपर, उस पुल पर वह पात्र रख दिया गया। सब तरफ लोग सचेत कर दिए गए, पुलिस का पहरा कर दिया गया कि कोई दूसरा आदमी इस पात्र को उठा न पाए। लेकिन अगर यह आदमी, जो अभागा है, यह अगर पात्र को उठाए, तो इस पर कोई रुकावट न डाली जाए, इसको पात्र उठा लेने दिया जाए। यह ले जाए पात्र को, यही इसका मालिक समझा जाए।
बड़ी अनूठी घटना घटी। फकीर और सम्राट दोनों पुल के दूसरी तरफ खड़े हुए प्रतीक्षा कर रहे हैं। वह आदमी पुल पर चला, सम्राट का हृदय जोर से धड़कने लगा, क्योंकि एक सिद्धांत का सवाल है। सम्राट सोचता है कि मनुष्य के पुरुषार्थ में सब कुछ है। और अब तो पुरुषार्थ के लिए भी करने को कुछ नहीं है, सिर्फ घड़ा रखा हुआ है भरा हुआ, स्वर्ण-पात्र सामने रखा है, वह उसके ठीक रास्ते में पड़ेगा, वह उसको उठा ले, कोई रोकने वाला नहीं है, समृद्धशाली हो जाए, सदा की गरीबी मिट जाए। लेकिन जैसे-जैसे वह आदमी करीब आया, सम्राट हैरान हुआ, उस आदमी ने आंखें बंद कर रखी हैं! वह पात्र से आकर टकराया,

अशर्फियां नीचे गिर गईं, आवाज हुई, लेकिन वह आदमी पात्र से बचकर, आंख बंद किए पुल पार करने लगा।
जब वह उस पार पहुंचा, तो सम्राट नहीं रोक सका अपने को। उसने उसको पकड़ा
और कहा कि मूढ़, आंख क्यों बंद किए है? उसने कहा, आज मुझे ऐसा ख्याल आया कि क्या मैं आंख बंद करके भी पुल पार कर सकता हूं कि नहीं? सदा आंख खोलकर पार करता हूं, आज ऐसा विचार आया। और निश्चित ही मैं पार कर सकता हूं, सिर्फ एक जगह बीच में कहीं थोड़ा-सा किसी चीज से टकराया था, बाकी अगर अंधा भी हो जाऊं, तो भी मुझे अड़चन आने वाली नहीं है। उस फकीर ने कहा कि देखें।
बुद्ध तुम्हारे रास्ते में खड़े हों, तुम टकराकर निकल जाओगे। उस दिन तुम पक्का तय करोगे कि देखें, आंख बंद करके भी रास्ते से निकल सकते हैं कि नहीं।
इसलिए मैं कहता हूं कि चूक जाना आसान है। संभावना अति दुर्लभ है और चूक जाना बिल्कुल आसान है। पर ये जो दोनों छोर हैं, विपरीत दिखाई पड़ने वाले, इन दोनों को अगर तुम ठीक से समझ लो, तो स्थिति बिल्कुल उलटी हो जाती है। तब संभावनाओं को चूकना आसान नहीं है, और तब बुद्धत्व का साक्षात्कार भी इतना कठिन नहीं है। अगर तुम दोनों बातों को ठीक से समझ लो, तो तुम्हें शायद रोज भी मार्ग पर बुद्ध मिल सकते हैं। और एक बार भी तुम्हें मिल जाएं, तो तुम द्वार से प्रवेश कर जाओगे, उसे चूकने का कोई कारण नहीं है।
ध्यान के सारे प्रयोग मैं इसीलिए करवा रहा हूं, ताकि तुम्हारे लिए यह संभव हो जाए कि बुद्ध जब तुम्हें मिलें तो तुम पहचान लो, कि द्वार जब खुले तब तुम पीठ किए हुए न खड़े रहो, कि द्वार क्षणभर को भी खुले तो तुम उसके भीतर प्रवेश हो जाओ, तुम चूक न सको। ध्यान तुम्हें गुरु को पहचानने में सहाई होगा।
अब यह बड़ा मुश्किल है। क्योंकि आमतौर से हम ध्यान गुरु के पास सीखने जाते हैं। लेकिन मैं तुमसे कहता हूं कि तुम गुरु को ध्यान के बिना पहचान ही न पाओगे। तुम जाओगे कहां? ध्यान ही तुम्हें गुरु को पहचानने में समर्थ बनाएगा। तुम विचार से गुरु को पहचानने जाओगे, चूक जाओगे।
मेरे पास बहुत से लोग आते हैं, उनको मैं देखता हूं कि वे अपने विचारों
से इतने भरे हैं कि मेरा उनसे कोई संपर्क नहीं हो सकता, हजारों मील का फासला है जैसे। उनके विचार इतने ज्यादा हैं! और उनके विचार से ही वे मुझे तौलते हैं, उनके विचार से ही वे मुझे समझते हैं, उनका विचार जो कहता है, वही वे मानते हैं। तुमने कभी सोचा ही नहीं कि तुमने अपने विचारों के प्रति कितना समर्पण कर रखा है! उन विचारों के प्रति जिनसे सिवाय दुख के तुम्हें कुछ कभी नहीं मिला। तुम अपने विचार पर कभी संदेह नहीं करते।
लोग आते हैं, जो कहते हैं, हम संदेहवादी हैं, हम स्केप्टिक हैं, हम बुद्धिवादी हैं, हम श्रद्धा नहीं कर सकते। और मैं देखता हूं कि अपनी खोपड़ी पर उनकी श्रद्धा परम है, उस पर वे कभी संदेह नहीं करते। जिससे कभी कोई सुख की एक बूंद नहीं मिली और जहां कभी कांटों के सिवाय फूल नहीं खिले, उस खोपड़ी पर उनका भरोसा बहुत ज्यादा है। और वे कहते हैं, हम अश्रद्धालु हैं, हम संदेह करते हैं, हम सोचते-विचारते हैं, हम बिना सोचे-विचारे कोई निर्णय न करेंगे।
यह निर्णय तुमने कैसे किया कि तुम्हारा सिर जो कहता है, वह ठीक है? यह निर्णय तुमने निश्चय ही बिना सोचे-विचारे किया है। क्योंकि जिसने भी सोचा-विचारा है, उसने सबसे पहले तो अपने सिर पर श्रद्धा छोड़ दी। जीवन, अनंत जीवनों का अनुभव यह कह रहा है कि इस सिर ने तुम्हें सिर्फ भटकाया है।
तुम अगर बहुत विचारों से भरे हुए हो, मैं द्वार खोले खड़ा रहूं, तुम चूक जाओगे। क्योंकि तुम्हारा सिर इतने विचारों की पर्त से भरा है कि खुला हुआ द्वार भी तुम्हें बंद ही दिखाई पड़ेगा। तुम कोई न कोई तरकीब निकाल लोगे, तुम कोई न कोई तर्क खोज लोगे, तुम समझोगे अपनी ही बुद्धि से, और भ्रांति हो जाएगी।
बुद्धत्व को तुम तभी समझ पाओगे जब तुम सोचो मत। यह न सोचने की अवस्था
ही ध्यान है। ध्यान के क्षण में ही गुरु पहचाना जाएगा। सोच-विचारकर नहीं,

तर्क से नहीं, गणित से नहीं, हिसाब से नहीं, शांत-मौन बैठकर गुरु पहचाना जाएगा।
इसलिए पुरानी परंपरा थी कि जब कोई गुरु के पास आए, तो वह दो-चार वर्ष
तक सिर्फ चुप बैठा रहे, पूछे भी न, मन को जरा भी हलन-चलन न दे, सिर्फ बैठे चुपचाप, प्रतीक्षा करे। दो-चार साल लगते हैं, तब जन्मों-जन्मों के मन का ऊहापोह चुप होता है। जब तुम्हारे भीतर का उपद्रव बंद होता है, जब दौड़ शांत होती है, जब भीतर का बाजार, जैसे रात हो गई, दुकानें बंद हो गईं, सब सन्नाटा हो जाता है, ऐसे दो-चार वर्ष लग जाते हैं। इसको हम सत्संग कहते थे। सत्संग का अर्थ था कि चुपचाप किसी के पास जाकर बैठ जाना।
और मजे की बात यह है कि वह आदमी गलत हो या सही हो, यह बड़ा सवाल नहीं है-- तुम्हारे चुप बैठने से लाभ होगा। अगर वह गलत है, तो दिखाई पड़ जाएगा कि गलत है, तुम उससे मुक्त हो जाओगे। अगर वह सही है, तो दिखाई पड़ जाएगा कि सही है और तुम उसमें प्रवेश कर जाओगे।
ध्यान आंख खोल देता है। इसलिए यह तुम चिंता मत करना कि हम चुपचाप बैठे हैं, न मालूम किसी गलत आदमी के पास बैठे हों! गलत और सही निष्प्रयोजन है, तुम्हारा चुप बैठना सही है। इसे समझ लो! अगर तुम सही आदमी के पास भी विचार कर रहे हो, तो चूक जाओगे, विचार चुकाता है। अगर तुम गलत आदमी के पास भी चुप बैठे हो, पहुंच जाओगे, क्योंकि निर्विचार आंख खोल देता है। तुम देख पाओगे कि यह आदमी गलत है।
और ध्यान रहे, जो देख पाता है कि क्या गलत है, वह सही को भी देखने में समर्थ हो गया। इसलिए गलत गुरु के द्वार से भी तुम खाली नहीं लौटोगे। विचार से भरे रहे, सही गुरु के द्वार से भी खाली लौट जाओगे। तुम्हारा विचार ही तुम्हारा कारागृह है। और तुम्हारे विचार पर कितनी ही मैं खटखट करूं, कुछ बहुत फर्क नहीं पड़ेगा। तुम कुछ मतलब निकालोगे। तुम उसमें से कुछ व्याख्या करोगे।
रवींद्रनाथ ने एक गीत लिखा है। एक मंदिर है बड़ा, उस मंदिर के बड़े पुजारी को स्वप्न आया कि मंदिर का जो देवता है, वह कल आने वाला है। ऐसा कभी न हुआ था। मंदिर सदा से था, बहुत प्राचीन था, स्वर्ण की प्रतिमा थी, यह देवता कभी आया नहीं था। पुजारी को भी भरोसा नहीं आया।
और ध्यान रहे, पुजारी को सबसे कम भरोसा आता है। आमतौर से लोग सोचते हैं कि पुजारी तो मंदिर में है, इसका भरोसा पक्का होगा। मैं तुमसे कहता हूं, पुजारी को भरोसा होता ही नहीं। क्योंकि वह इस पत्थर की मूर्ति को नहलाता है, धुलाता है, गिरा भी देता है कभी और यह कुछ नहीं कर पाती; जो अपनी रक्षा नहीं कर सकती, वह क्या मेरी रक्षा करेगी? पुजारी भलीभांति धंधे को जानता है। उस पर श्रद्धा पुजारी को नहीं होती, श्रद्धा बाहर के लोगों को होती है, जिन्हें भीतर के राज का कोई पता नहीं है।
इसे कुछ भरोसा तो नहीं आया, सोचा सपना ही है, कहूं दूसरों से, न कहूं! मंदिर बड़ा था, सौ पुजारी थे। फिर उसे यह भी डर लगा कि कहीं सच ही निकल जाए! यह दुनिया इतनी अजीब है कि कभी-कभी सपने भी सच निकल जाते हैं। कहीं ऐसा सच ही हो कि देवता आता हो, तो मैं फसूंगा। तो उसने कहा, बेहतर है, चाहे हंसी- मजाक हो, लेकिन कह देना उचित है।
पुजारी इकट्ठे करके उसने कहा कि भरोसा मुझे नहीं है, सपना ही मालूम पड़ता है, लेकिन कह देना जरूरी है--रात देखा कि देवता खड़ा है और कह रहा है कि कल मैं आ रहा हूं मंदिर में। सब हंसने लगे, उन्होंने कहा कि तुम भी पागल हो गए इस उम्र में, कहीं कोई देवता आता है? सपना है! बड़े पुजारी ने कहा, अब तुम सोच लो, जिम्मेवारी मेरी न रही, तुम सभी तय कर लो।
तब उन सबको भी लगा कि नाहक हम जिम्मेवारी अपने सिर क्यों लें? सपने कभी-कभी सच भी हो जाते हैं। जहां सभी सच सपने जैसा है, वहां सपना भी कभी सच हो सकता है, झंझट लेनी ठीक नहीं है। और हर्ज क्या है, तैयारी थोड़ी कर लो। तो उन्होंने कहा, बेहतर है, हम तैयारी कर ही लें। जानते तो हैं कि देवता-वेवता कोई आएगा नहीं, न कभी आता है। लेकिन तैयारी करने में हर्ज क्या है!
मंदिर धोया गया, साफ किया गया, पूजा के थाल सजाए गए, दीए जलाए गए और सब संदेह से प्रतीक्षा कर रहे थे। लेकिन संदेह की कोई प्रतीक्षा होती है? सब

जानते थे कि कोई आना नहीं है, लेकिन फिर भी उन्होंने सोचा, भोजन बनाओ, मिष्ठान्न बनाओ, नहीं आएगा भगवान, तो भी भोग हम तो लगाएंगे ही।
फिर सांझ भी हो गई, सूरज भी ढल गया, अब कौन आएगा? भगवान आता तो दिन में आता, रात में तो आने का कोई कारण नहीं है। फिर रात होने लगी, देर होने लगी, तो उन्होंने कहा, बंद करो, अब बहुत हो गया। द्वार-दरवाजे बंद करके उन्होंने ठीक से भोजन किया, जो भगवान के लिए बनाया था। दीए बुझा दिए, मंदिर के पट बंद करके वे सब दिनभर के थके-मांदे--सफाई, तैयारी, समारोह का आयोजन और फिर सब व्यर्थ हो जाना--फिर सब हंसते हुए, मजाक करते हुए कि हम भी कैसे पागल हैं, सपने की बातों में पड़ गए! सब सो गए।
रात रथ आया, द्वार पर रथ की आवाज सुनाई पड़ी, बड़े पुजारी को नींद में लगा कि आ गया, देवता आ रहा है। उसने कहा, सुनो, कोई रथ की आवाज सुनता है? दूसरे पुजारियों ने कहा, अब बंद भी करो बकवास। दिनभर सताया, अब भी पीछा कर रहे हो? तुम्हारा मस्तिष्क खराब हो गया, कोई रथ नहीं आ रहा, बादलों की गड़गड़ाहट है। फिर वे निश्चिंत सो गए।
फिर रथ से कोई उतरा, सीढ़ियां कोई चढ़ा, द्वार पर किसी ने दस्तक दी। फिर किसी एक पुजारी को लगा कि कोई द्वार पर दस्तक दे रहा है। आशंका तो मन में छिपी थी, डांवाडोल तो मन था ही कि शायद कौन जाने सपना सही हो! फिर कोई नींद में बड़बड़ाया, उसने कहा कि लगता है, कोई द्वार पर दस्तक देता है।
अब तो बड़े पुजारी ने भी कहा कि हद हो गई, मैं ही सपने में नहीं उलझा हूं, दूसरे भी उलझे हैं! यह हवा का झोंका है, जो दरवाजे को खटखटाता है। आधी रात कौन दरवाजे पर धक्का देने आएगा! और परमात्मा कोई चोर है कि आधी रात आए? भरे बाजार, उगे हुए दिन में, सूरज के नीचे परमात्मा आता है। अब चुपचाप सो जाओ और अब कुछ भी हो, कोई बीच में बाधा न डाले। सोने दोगे या न सोने दोगे? फिर सुबह पुजारी उठे, द्वार खोला, छाती पीटकर रोने लगे। रथ के पहियों
के चिह्न थे, कोई सीढ़ियों पर चढ़ा था, उसके पदों के चिह्न थे, सीढ़ियों की धूल पर बन गए थे।
लेकिन तब रोने से कुछ भी नहीं हो सकता था, अवसर चूक गया था। रवींद्रनाथ की कविता का शीर्षक है, अवसर चूक गया। देवता आया था, लेकिन पुजारी सोए थे।
जब मैं कहता हूं कि दस्तक देता हूं, अगर तुम विचार से भरे हो, तो मैं सुनता हूं कि तुम व्याख्या कर रहे हो, बादलों की गड़गड़ाहट है, कि हवा का झोंका है, कि अपनी ही कोई भ्रांति है।
मेरे पास एक युवक आया और उसने कहा कि आपकी बातें अच्छी लगती हैं। इतनी अच्छी लगती हैं कि--मैं मनोविज्ञान का विद्यार्थी हूं--कि मुझे शक होने लगता है कि कहीं मैं आपसे हिप्नोटाइज तो नहीं हो गया हूं! कहीं आपने मुझे सम्मोहित तो नहीं कर लिया है!
इसका मन इसे कह रहा है, भागो यहां से, यहां सम्मोहित हो जाने का डर है।
और निश्चय ही सम्मोहन तो बड़ी बुरी चीज है। सुनते हो मेरी बातों को, अगर तर्कयुक्त हो, तो मन कहता है कि ठीक है, बातें तर्कपूर्ण हैं, लेकिन बातें ही हैं। बातों का क्या भोजन करोगे? बातों के क्या कपड़े पहनोगे? वर्षा होगी, तो बातें क्या छाया करेंगी? बातों में मत पड़ जाना, मन कहता है। जीवन के यथार्थ से मत भटक जाना।
एक युवती संन्यासी दो दिन पहले ही मुझे आकर कही कि मेरे पिता बड़े चिंतित हैं। वे कहते हैं, कब तक यह ध्यान और संन्यास? अब वापस लौट आओ, सामान्य हो जाओ। और जैसे सब जीते हैं, वैसे जीओ। सब जैसा जीते हैं, उसे हम सामान्य मानते हैं। सब चाहे पागल ही हों, लेकिन सब जैसा जीते हैं, वह सामान्य लगता है।
निश्चित ही, जब मैं तुम्हारे ऊपर दस्तक देता हूं, तो मैं तुम्हें पुकार रहा हूं कुछ असामान्य हो जाने को, जैसा कि और लोग नहीं जी रहे हैं। एक ऐसे जीवन के लिए पुकारता हूं, जिसे कि तुम जीओगे, जो बेजोड़ होगा, जो नया होगा, अनजाना होगा। साहस चाहिए।
मन तुम्हें समझा लेता है। इस मन की समझाहट से तुम जब तक न बचोगे, न पार
हो पाओगे, तब तक अनंत जन्मों तक यह वर्तुल ऐसे ही घूमता रहेगा। व्याख्या

मत करो, तथ्यों को देखो। आलस्य मत करो, काफी देर वैसे ही हो गई है, जागो, सुबह हो चुकी है।
लेकिन जो सोया है, उसे तो रात ही बनी रहती है। जागे हुए को पता चलता है
कि सुबह हो गई। और यहां जो भी मैं तुमसे कह रहा हूं, उसमें कहने पर मेरा जोर नहीं है, सिर्फ तुम्हें हिलाने पर, तुम्हें झकझोरने पर, तुम्हारी नींद टूट जाए। तो बहुत बार मुझे वह भी करना पड़ता है, जिसे मनस्विद शॉक ट्रीटमेंट कहते हैं। जैसे कोई आदमी बिल्कुल ही विक्षिप्त हो जाए, तो फिर बिजली के शॉक देने पड़ते हैं, तब कहीं वह होश में आता है।
तुम्हें भी बड़े बिजली के शॉक की जरूरत है। इसलिए बहुत बार मैं ऐसी बातें भी कहता हूं, जो तुम्हारे हृदय को झकझोर देंगी और शॉक देंगी। और जिसको मैं ध्यान की प्रक्रिया कह रहा हूं, वह ठीक इलेक्ट्रिक शॉक ट्रीटमेंट है। तुम्हारे भीतर इतने धक्के उससे पैदा होंगे कि तुम एक भूकंप बन जाओगे। और जब तक भूकंप न आए, तुम्हारी नींद न टूटेगी।
मैंने सुना है कि एक आदमी को सुबह उसकी पत्नी ने कहा कि रात बड़े बादल गरजे, बिजलियां चमकीं, बहुत बिजलियां गिरीं, कई लोग मर गए, जमीन कंपी, भूकंप भी आ गया, बाढ़ आ गई। उस आदमी ने कहा, मुझे जगाया क्यों नहीं, मैं भी देख लेता। अगर ऐसा हो रहा था, तो मुझे जगाया क्यों नहीं? मैं भी देख लेता। कुछ लोग हैं, जो बिजली के धक्कों को भी आत्मसात कर जाते हैं। उनकी नींद नहीं टूटती, उन्हें और बड़ा वोल्टेज चाहिए।
अगर तुम राजी हो, तो जितने बड़े वोल्टेज की जरूरत हो, वह मैं तुम्हें दूंगा। लेकिन तुम्हें राजी करने के लिए भी मुझे धीरे-धीरे छोटे वोल्टेज से शुरू करना पड़ता है, अन्यथा तुम भाग ही जाओगे।
झेन फकीर, झेन गुरु, जब उसके शिष्य ध्यान करते होते हैं, तो डंडा लेकर घूमता रहता है। और जरा ही वह देखता है कि कोई झपकी खा रहा है--क्योंकि छह घंटे, आठ घंटे ध्यान के लिए बैठना पड़ता है एक ही आसन में, नींद स्वाभाविक है--जैसे ही कोई लगता है कि झपकी खा रहा है, उसका डंडा उसके सिर पर पड़ जाता है। कई बार ऐसा हुआ है कि उसके डंडे का पड़ना और साधक की यह झपकी ही नहीं टूटी, नींद ही टूट गई। अनेक बार ऐसा हुआ है कि उसके डंडे के पड़ने का क्षण संबोधि का क्षण हो गया।
जब पहली दफा झेन फकीरों की कथाएं पश्चिमी भाषाओं में अनुवादित हुईं,
तो उनको भरोसा न आया कि ऐसा कहीं हो सकता है कि कोई सिर पर डंडा मार दे और ज्ञान उपलब्ध हो जाए! क्या ज्ञान इतना आसान है! और डंडे मारने से ज्ञान का संबंध क्या? ज्ञान उपलब्ध होता है बाइबिल के पढ़ने से, कुरान के पढ़ने से, गीता के पढ़ने से, सिर पर डंडा पड़ने से ज्ञान कैसे उपलब्ध होगा? और झेन फकीरों की कथाएं बड़ी अनूठी हैं कि किसी शिष्य को उन्होंने खिड़की के बाहर फेंक दिया और जब वह नीचे गिरा जमीन पर, ज्ञान को उपलब्ध हो गया। कि शिष्य भीतर प्रवेश कर रहा था, उसका हाथ दरवाजे के भीतर था और गुरु ने जोर से दरवाजा बंद कर दिया और उसका हाथ दो दरवाजों के बीच पिस गया, लहूलुहान हो गया और वह ज्ञान को उपलब्ध हो गया।
बोकोजू के संबंध में प्रसिद्ध कथा है कि बोकोजू जब भी बोलता था, तो बोलते वक्त उसकी एक उंगली सदा ऊपर उठी रहती थी, लोगों को समझाते वक्त। अद्वैत का प्रतीक था वह उसकी एक उंगली। उसके शिष्य इस पर पीठ पीछे मजाक भी करते थे, चर्चा करते थे तो एक उंगली उठाकर करते थे। कुछ हर्ज भी न था।
एक छोटा बच्चा, जो बोकोजू की सेवा में रहता था, बोकोजू के लिए चाय ले आना, पानी ले आना, उसका आसन बिछा देना, वह बिल्कुल निष्णात हो गया था इस उंगली में। वह बोकोजू की नकल बिल्कुल वैसे ही करता था, जैसे बोकोजू भी नहीं कर सकता था। कहीं भी एकांत में यहां-वहां किसी को भी वह उंगली से खड़ा होकर उपदेश करता था।
बोकोजू को सब पता था। क्योंकि बुद्ध पुरुषों की पीठ के पीछे भी जो होता है, वह भी उनकी आंख के आगे है। उनसे छिपाने का कोई उपाय नहीं। और अगर आपको लगता है कि आप छिपा रहे हैं, तो उसका कुल कारण इतना है कि वे आपको पता नहीं चलने दे रहे हैं कि उनको पता है, बस इतना ही।

एक दिन बोकोजू बोल रहा था। वह बच्चा उसके पीछे कुर्सी पर बैठा था। और उसने उंगली उठाई, बोकोजू ने, उस बच्चे ने भी कुर्सी के पीछे उंगली उठाई। बोकोजू मुड़ा, उसने चाकू खीसे से निकाला और उंगली काटकर फेंक दी, उस बच्चे की उंगली काट दी। एकदम धक्का लग गया, सारे लोग घबड़ा गए, बच्चा चीख मार उठा। उंगली टूटकर गिर गई, खून नीचे गिरने लगा। बोकोजू ने बच्चे को पकड़कर सामने लाया और बोकोजू जोर से हंसा। जब बोकोजू जोर से हंसा, तो बच्चे को भी कुछ समझ में नहीं आया कि वह रोए कि हंसे, और एक क्षण को वह भूल ही गया कि उंगली कट गई है। और तब बोकोजू ने उंगली उठाई और उस बच्चे से कहा, तू भी उठा। उस बच्चे ने भी उंगली उठाई और कहते हैं, वह ज्ञान को उपलब्ध हो गया। वह बच्चा उसी क्षण ज्ञान को उपलब्ध हो गया।
ये कथाएं बड़ी अनूठी हैं और बेबूझ हैं। और देखने पर बड़ी कठोर मालूम पड़ेंगी। यह बोकोजू बड़ा दुष्ट मालूम पड़ता है, एक छोटे बच्चे की उंगली काट दी। लेकिन उंगली काटने का शॉक नींद तोड़ सकता है। और अगर उंगली कटने से नींद टूटती हो, तो यह कीमत चुकानी बुरी नहीं है।
लेकिन यह बोकोजू ही जानता है कि किस क्षण में यह घटना घट सकती है, जब
कि नींद की पर्त बिल्कुल पतली हो, जरा-सी धुंध हो, चोट में टूट जाए। इसलिए झेन गुरु तभी चोट करता है, जब बिल्कुल पतली-सी पर्त होती है। अन्यथा आप चोट को भी पी जाएंगे। उंगली टूट जाएगी, कोई जागेगा नहीं।
ध्यान की सारी प्रक्रियाएं तुम्हें हिलाने और झकझोरने की प्रक्रियाएं हैं। और मैं उस क्षण की प्रतीक्षा में सदा रहता हूं कि कब तुम्हारी पर्त इतनी धीमी होगी कि जरा-से इशारे से टूट जाएगी। और एक बार भी तुम आंख खोलकर देख लो, तो बस बात हो गई।
जो मैं बोल रहा हूं, वह तुम्हें सिर्फ परसुएड करना है। वह सिर्फ तुम्हें राजी करना है, एक यात्रा के लिए, जिससे तुम अपरिचित हो; एक ऐसी यात्रा के लिए, जिसका तुम्हें कोई कूल-किनारा पता नहीं है; जहां हो भी सकता है, तुम खो जाओ, भटक जाओ; जहां हो भी सकता है, तुम मंजिल पर पहुंच जाओ। मैं एक ऐसी संपदा की तलाश पर तुम्हें ले जा रहा हूं, जिसका तुमसे कोई परिचय नहीं है। और जिसे तुम संपदा मानते हो, उसे छोड़कर जाना होगा। इसलिए तुम्हारा मोह स्वाभाविक है। तुम पीछे लौट-लौटकर देखते हो, यह बिल्कुल स्वाभाविक है। जो व्यर्थ है, उसको भी तुम साज-सम्हालकर अपने साथ ले जाना चाहते हो, यह स्वाभाविक है।
तुम्हारी नींद स्वाभाविक है, मेरा झकझोरना स्वाभाविक है। तुम्हारी नींद टूटनी कठिन, यह मुझे पता है। और फिर भी मैं जानता हूं कि एक क्षण में टूट सकती है। ठीक क्षण की तलाश है, कब तुम्हारे द्वार को दस्तक देनी है। तुम अगर आते ही गए, तुम अगर जरा जिद्दी साबित हुए, बीच से न भाग गए, तुम अगर आए ही चले गए, तुम कब तक सोचोगे? तुम थक जाओगे सोचने से, तुम धीरे-धीरे सोचना बंद कर दोगे। और जब तुम सोचना बंद करोगे, स्वप्न बंद हो जाएंगे। किसी क्षण, जब मैं तुम्हें पाऊंगा कि तुम बस बैठे हो, सोच नहीं रहे हो, तुम्हारे भीतर विचार की तरंगें नहीं हैं, उस क्षण जरा-सी चोट, जरा-सी खटखटाहट, हवा का जरा-सा झोंका, एक सूखे पत्ते का गिर जाना भी काफी है, तुम जाग जाओगे। एक बार तुम आंख खोलकर देख लो, फिर सारा जगत और हो जाता है। फिर लौटकर तुम वापस नहीं हो सकते, जो तुम सदा थे।
और यह भी सच है कि मैं यहां सदा नहीं रहूंगा, इसलिए तुम खो भी सकते हो अवसर। तुम्हें बहुत निश्चिंत भी नहीं होना चाहिए। क्योंकि निश्चिंतता अक्सर नींद को बढ़ाती है। तुम्हें यह पता होना चाहिए कि किसी भी क्षण यह दरवाजा बंद हो सकता है। इसलिए तुम्हारी त्वरा, तुम्हारी तेजी में कमी नहीं आनी चाहिए। तुम मुझे खो सकते हो बिना पाए। पा लो, तब तो खोने का कोई उपाय नहीं है, लेकिन तुम बिना पाए मुझे खो सकते हो। यह द्वार तुम्हें दिखाई ही न पड़े और बंद हो जाए। यह तुम्हें स्मरण में रहे, ताकि तुम निश्चिंत होकर सो न जाओ। द्वार इस क्षण खुला है, तुम शांत हो तो देख सकते हो, तुम मौन हो तो प्रवेश कर सकते हो। सारा आयोजन एक बात के लिए है कि तुम कैसे मिट जाओ।

शास्त्रों ने गुरु को मृत्यु कहा है। गुरु वही है, जो तुम्हारी मृत्यु बन जाए। और उस मृत्यु के पार ही महाजीवन है। जो मिटेगा, वही उस महाजीवन को पा सकेगा। इसलिए बहुत बार मैं तुम्हें शत्रु जैसा भी लगूंगा। तुम्हारी धारणाएं तोड़ता हूं, वह भी तुम्हें मारने की तरकीब है। तुम्हारे विचार तोड़ता हूं, वह भी तुम्हें मारने की तरकीब है। तुम्हारे ठीक-सही का हिसाब तोड़ता हूं, वह भी तुम्हें मारने की तरकीब है। तुम्हारे कपड़े ही नहीं बदलता, नाम ही नहीं बदलता, तुम्हारी पूरी आत्मा बदल देना चाहता हूं, वह भी तुम्हें मारने की तरकीब है। तुम्हें मिटा देना है।
तुम जैसे मिटे, वहीं तुम्हारे भीतर परमात्मा प्रगट हो जाता है। तुम बीज हो, तुम भूमि में खो जाओ और मिट जाओ, तो अंकुर निकल आएगा। तुम बीज की खोल को पकड़े हो, तुम शायद सोचते हो, यह तुम्हारा प्राण है, यह मिट गया, तो तुम मिट जाओगे। बीज की खोल तुम्हारा प्राण नहीं है, तुम्हारा प्राण खोल के भीतर छिपा है; बीज की खोल टूटेगी तो अंकुरण होगा। बीज तो मुर्दा है, अंकुर जीवित होगा। और एक बीज को खोने से डरो मत, जिस दिन तुम वृक्ष हो जाओगे, करोड़ बीज तुममें लग जाएंगे। लेकिन बीज को कैसे समझाओ, बीज डरता है कि कहीं टूट न जाए।
अभी मैं एक पुस्तक पढ़ रहा था, सीक्रेट लाइफ आफ द प्लांट्स। एक अनूठी पुस्तक पश्चिम में अभी-अभी लिखी गई। सर जगदीशचंद्र बसु ने जो काम शुरू किया था, वह अब पश्चिम में पूरा होने के करीब आ रहा है। पौधे भी उसी तरह सोचते हैं, जैसे तुम।
एक छोटा-सा तुम प्रयोग करो, तो तुम्हें ख्याल में आ जाए। दो गमले रखो
या तीन गमले रखो, तीनों गमलों में एक सी मिट्टी डालो, एक सा खाद डालो और कोई भी मौसमी फूल के बीज, जो जल्दी ही चार-छह सप्ताह में अंकुरित हो जाते हैं, वे भी तीनों में बराबर मात्रा में डाल दो। एक गमले के ऊपर धन का निशान लगा दो, एक गमले के ऊपर ऋण का निशान लगा दो, एक गमले के ऊपर शून्य बना दो। धन का मतलब है कि बीजों से तुम रोज कहोगे कम से कम पंद्रह मिनट, कि घबड़ाओ मत, डरो मत, टूटो, बिखरो, मिट्टी में मिल जाओ, जल्दी ही अंकुरण होगा और महाजीवन प्रगट होगा। भय की कोई भी जरूरत नहीं, सूरज तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है। भय की कोई भी जरूरत नहीं, खुला आकाश तुम्हारे स्वागत को तैयार है। तुम्हें पहले तो पागलपन जैसा लगेगा कि ये क्या बातें कर रहे हो! लेकिन घबड़ाओ मत, जल्दी ही तुम्हारा पागलपन परिणाम लाएगा। एक गमले को--दूर रखो तीनों गमलों को कम से कम आठ-आठ फीट के फासले पर, ताकि एक गमले को दिए गए सुझाव दूसरे को सुनाई न पड़ें--एक गमले के पास रोज सुबह बैठकर यह सुझाव दो धन, पाजिटिव, कि डरो मत, टूटो, अंकुरित हो जाओ, स्वागत के लिए सब तैयारी है, कोई भय की जरूरत नहीं, मैं तुम्हारे साथ हूं।
जिस पर तुमने ऋण का निशान लगाया है, उसको भी पानी उतना ही दो, धूप उतनी
ही दो, सब पूरा उतना ही दो, सिर्फ सुझाव निगेटिव, नकारात्मक। उससे कहो कि फूटने की कोई जरूरत नहीं, मिटोगे, कोई अंकुरण होने वाला नहीं है। और महीनों से सूरज छिपा है, आकाश में कोई स्वागत की तुम्हारे लिए तैयारी नहीं है, नाहक कष्ट में पड़ोगे, मुसीबत होगी और मरोगे। इसलिए अपने को सम्हालो और बीज को बचाओ।
और तीसरे गमले को कोई सुझाव मत दो, शून्य छोड़ दो।
चार-छह सप्ताह के भीतर तुम परिणाम देखने शुरू कर दोगे। जिस गमले को तुमने बुलाया स्वागत से, उसके अंकुर सबसे पहले आएंगे, उस गमले में सबसे पहले बीज टूटेंगे--दूसरे दो गमलों में इतने जल्दी नहीं--सबसे पहले अंकुर होंगे, वे जल्दी से अंकुर बढ़ेंगे। उसके बाद उस गमले का नंबर आएगा, जिसको तुमने कोई सुझाव नहीं दिया। मगर उसके अंकुर छोटे होंगे, देर से टूटेंगे, उसके पौधों में उल्लास न होगा। और जिसको तुमने नकारात्मक सुझाव दिए हैं, उसमें तो अंकुर आएंगे ही नहीं। और अगर एकाध अंकुर आया भी, तो मुर्दा आएगा और जल्दी ही मर जाएगा। यह तुम छोटा-सा प्रयोग खुद करके देख सकते हो। तुम्हारे ऊपर मैं यही कर रहा हूं। तुम्हारे गमले पर मैंने धन लगा रखा
है और तुमसे कह रहा हूं, डरो मत, टूटो, मिटो, सूरज तैयार है, आकाश स्वागत करने को राजी है। और फिर मैं यहां बैठा हूं, घबड़ाओ मत, चलो, उठो, आगे बढ़ो।

छोटा बच्चा भी बाप का हाथ पकड़कर चल लेता है। चलना नहीं जानता, तो भी बाप का हाथ है, तो बस भरोसा है। बस गुरु इससे ज्यादा नहीं कर सकता, वह तुम्हें हाथ दे सकता है। अगर तुम्हें भरोसा हो, तुम चल लोगे। फिर जल्दी ही हाथ की जरूरत न रह जाएगी। बच्चा थोड़ी ही देर में बाप से हाथ छुड़ाना चाहता है, स्वाभाविक है। जब वह चलने ही लगा, तो वह कहता है, अब छोड़ो! अब मैं खुद चलकर देखना चाहता हूं। और जो बाप सच में प्रेम करता है बच्चे को, वह जल्दी ही हाथ छोड़ देना चाहता है। क्योंकि बच्चा चले, इसीलिए हाथ पकड़ा था, हाथ पकड़ने के लिए कोई बच्चा नहीं था, बच्चे के लिए हाथ पकड़ाना था। जैसे ही तुम्हारे बीज टूटने शुरू हुए, फूटने शुरू हुए, जैसे ही तुम्हारा अंकुर आना शुरू हुआ और तुम्हें कोई जरूरत न रही मेरे आश्वासन की, मैं अपना हाथ खींच लूंगा।
गुरु शिष्य को जल्दी ही अपने से मुक्त कर देता है। लेकिन वह मुक्ति तभी हो सकती है, जब तुम पहले बंधने को राजी हो। नहीं तो मुक्त किसको करूंगा? तुम कभी बंधे ही नहीं, मुक्त किसे करूंगा? बेटे ने कभी बाप का हाथ पकड़ा ही नहीं, छोड़ने का कोई सवाल नहीं, बेटा चार हाथ-पैर से जंगली जानवर की तरह ही चलता रहेगा।
तुम्हारा द्वार खटखटाता हूं, तुम्हें आश्वासन देता हूं, तुम्हें भरोसा देता हूं कि डरने का कोई भी कारण नहीं है। जो तुम छोड़ोगे, वह कचरा है। जो तुम पाओगे, वह महान संपदा है।

प्रश्नः ओशो, कल आपने बताया कि द्वंद्व मन का स्वभाव है, यहां विपरीत हमेशा मौजूद रहता है। फिर तो समर्पण असंभव ही मालूम पड़ता है। क्योंकि समर्पण में भी अश्रद्धा, घृणा या संदेह मौजूद रहेंगे। और हम तो मन ही हैं। फिर द्वंद्वातीत समर्पण कैसे घटित हो सकता है? या फिर समर्पण की अमृत-वर्षा मन के पार कहीं होती है और वहां से उसकी अमृत-बूंदें झर-झरकर मन को रूपांतरित करती हैं? कृपया समझाएं।

निश्चय ही मन तो द्वंद्व है, मन तो किसी चीज में पूरा नहीं हो सकता, आधा ही होगा। अगर प्रेम करेंगे तो आधा ही प्रेम होगा, आधी घृणा होगी। श्रद्धा करेंगे, तो आधी श्रद्धा, आधी अश्रद्धा होगी। भरोसे में भी आधा संदेह होगा। फिर क्या करें? फिर समर्पण कैसे हो?
अश्रद्धा को भी समर्पित करें। श्रद्धा ही मत दें, अश्रद्धा भी दे दें। ऐसा मत कहें गुरु को कि मेरा भरोसा ही तुम्हें देता हूं, मेरा गैर-भरोसा भी देता हूं। मेरा संदेह भी तुम्हें देता हूं। अब तुम ही सम्हालना मेरे संदेह को भी और मेरे समर्पण को भी। संदेह मैं करूंगा, क्योंकि मन का स्वभाव है। लेकिन संदेह भी तुम्हारे चरणों में रखता हूं।
एक बहुत प्रसिद्ध ईसाई फकीर हुआ तरतूलियन। वह रोज परमात्मा से प्रार्थना करता था। उसकी प्रार्थना समझने जैसी है। वह रोज सुबह कहता था, आई बिलीव इन यू, नाऊ यू हेल्प माई डिसबिलीफ। मैं तुममें भरोसा करता हूं, मेरी आस्था तुममें है, अब मेरी अनास्था की फिक्र तुम करो। वह है। उसको झुठलाएंगे, तो मुश्किल में पड़ेंगे। उसको छिपाएंगे, तो मुश्किल में पड़ेंगे। ऐसा अपने को समझाएंगे कि नहीं, मैंने पूरी-पूरी श्रद्धा कर ली, अब मुझमें कोई अश्रद्धा नहीं, और अश्रद्धा है, तो जाल खड़ा होगा।
न, ठीक से अपने को समझें। श्रद्धा भी वहां है, अश्रद्धा भी वहां है। शुभ भी वहां है, अशुभ भी वहां है। वहां सदवृत्ति भी है, असदवृत्ति भी है। दोनों को गुरु के चरणों में रख दें, दोनों को कह दें कि अब तुम सम्हालो। और साफ है कि संदेह भी मुझमें है, लेकिन उसे भी तुम्हें देता हूं, अब तुम जानो।
अगर तुम अपना संदेह भी दे पाओ, तो तुम्हारे भीतर एक नई आस्था का जन्म होगा, जो द्वंद्वातीत है। क्योंकि तब तुमने बुरे को छिपाया नहीं। बुरे को हम छिपाते क्यों हैं? बुरे को हम इसीलिए छिपाते हैं कि हम नहीं चाहते कि कोई जाने कि बुरा भी हममें है।

लेकिन गुरु से तुम छिपाओगे, तो तुम पूर्ण नग्न न हुए, तुमने कुरूपता ढांक ली, सौंदर्य प्रगट किया। जो दिखाने योग्य था, दिखाया। जो न दिखाने योग्य था, वह नहीं दिखाया। तो तुमने गुरु के साथ भी बाजार का व्यवहार किया। उसके सामने तुम्हारे फूल ही तुम्हें नहीं रख देने हैं, कांटे भी रख देने हैं। तुम करोगे क्या? कांटे हैं और गुरु भलीभांति जानता है। जब तुम कहते हो, मेरी श्रद्धा पूरी है, संदेह बिल्कुल नहीं, तब वह जानता है कि तुम झूठ बोल रहे हो। भला तुम्हें पता न हो कि तुम झूठ बोल रहे हो। यह झूठ है, क्योंकि यह हो ही नहीं सकता।
जिस दिन तुम कहते हो, यह संदेह भी है, यह श्रद्धा भी है, ये दोनों आपके पास ले आया। ये मेरे घाव हैं, ये मेरी खुशियां हैं, दोनों आपके चरणों में रखता हूं, अब मैं अपने भीतर कुछ भी नहीं बचाता, पूर्ण नग्न। तब गुरु जानता है कि तुम सच्चे हो। यह आथेंटिसिटी है, यही प्रामाणिकता का अर्थ है। और इस प्रामाणिकता से ही कुछ घटना घट सकती है।
मन द्वंद्व है। इसलिए जब तुम किसी को प्रेम करो, तब उसे बताना कि घृणा
भी तुम्हारे भीतर है। यही सच्चे प्रेमी का लक्षण है कि वह छिपाएगा नहीं, वह सब खोल देगा, बुरे-भले का भेद भी नहीं करेगा। वह निपट अपने मन को उघाड़ देगा और कहेगा, यह रहा मन, इससे दुर्गंध भी आती है, कभी सुगंध भी आती है। और मैं भरोसा नहीं दे सकता कि सदा सुगंध ही आएगी, क्योंकि इससे दुर्गंध कभी आती है। और कभी-कभी मैं संदेह करूंगा, और कभी-कभी मैं गुरु के खिलाफ लडूंगा, कभी-कभी मैं गुरु की निंदा करूंगा, यह भी है।
अगर तुम इतनी सरलता से दोनों छोड़ दोगे, तुम दोनों के पार हो जाओगे। श्रद्धा और अश्रद्धा को विरोध में खड़ा ही मत करो। दोनों तुम्हारे अंग हैं। दोनों को ही जाकर समर्पित कर दो। अगर तुमने बिल्कुल न बचाया, कुछ भी न बचाया, बिल्कुल रिक्त कर दिया अपने को, द्वंद्व पूरा रख दिया, तुम निर्द्वंद्व हो गए, उसी क्षण तुम पाओगे कि तुम पार हो गए हो। अब न श्रद्धा की जरूरत है, न अश्रद्धा की।
और ऐसी घड़ी में जो घटना घटती है, वही वस्तुतः समर्पण है। वहां द्वंद्व नहीं है। वहां दो नहीं हैं, वहां एक ही है। वहां गुरु और शिष्य नहीं बचता। वहां समर्पण करने वाला और समर्पण लेने वाला नहीं बचता। वहां सिर्फ समर्पण की ही घटना रह जाती है। गुरु एक छोर होता है, शिष्य एक छोर होता है, दोनों के बीच एक ही विस्तार रह जाता है। जैसे तुम्हारा बायां और दायां हाथ और दोनों के भीतर एक ही प्राण का फैलाव है, ऐसा शिष्य और गुरु के बीच एक ही फैलाव हो जाता है।
एक झेन गुरु मर रहा था। उसने अपने बड़े शिष्य को बुलाया और उसने कहा कि सुन, यह शास्त्र है, यह मेरे गुरु ने मुझे दिया था, उनके गुरु ने उन्हें दिया था, सात पीढ़ियों से हम इस शास्त्र को सम्हालकर रख रहे हैं। इसमें जो भी महत्वपूर्ण है, वह सब लिखा है। जो भी सार है, इसमें अंकित है। इसके अतिरिक्त कुछ भी जरूरत नहीं है। यह एक शास्त्र बचे, तो धर्म बच जाएगा। इसे अपने प्राणों से ज्यादा सम्हालकर रखना। तू मेरा उत्तराधिकारी है, इसलिए यह शास्त्र तुझे देता हूं।
शिष्य ने शास्त्र की तरफ देखा भी नहीं और उसने कहा कि जो भी मुझे मिलने योग्य था, वह बिना शास्त्र के मिल गया; और जो भी जानने योग्य था, वह मैंने इस शास्त्र के बिना जान लिया। इसलिए शास्त्र तुम ही अपने साथ ले जाओ। इसका मैं क्या करूंगा?
गुरु ने फिर भी जोर दिया कि मेरे मरने की घड़ी है और व्यर्थ विवाद खड़ा
मत कर और मेरा तुझ पर भरोसा है, इसलिए यह शास्त्र सम्हालने को देता हूं, यह ले। और यह मेरी आखिरी घड़ी है, और उपद्रव खड़ा मत कर।
शिष्य ने इस हाथ से शास्त्र लिया, सर्दी के दिन थे, सामने ही आग जल रही थी, उस आग में शास्त्र को फेंक दिया। उसने खोलकर भी नहीं देखा।
गुरु खिलखिलाया, हंसा और उसने कहा, तेरी श्रद्धा पूरी है। उस शास्त्र में कुछ भी नहीं था, वह एक कोरी किताब थी। तू अगर खोलकर भी उसे देख लेता, तो तूने कुछ बचाया था, तो तेरा ज्ञान संदिग्ध था, तो तेरी संबोधि पूरी न हुई थी।

बड़ी मुश्किल बात है। गुरु दुखी होता, अगर यह शास्त्र को सम्हाल लेता। गुरु प्रसन्न है, क्योंकि इसने शास्त्र को जला दिया। गुरु यह अनुभव करना चाह रहा है मरते क्षण में कि यह बिल्कुल मुझसे एक हो गया है या नहीं हो गया है। अगर एक हो गया है, तो मैं जानता हूं कि शास्त्र कचरा है, यह भी जानेगा। अगर एक हो गया है, तो मैं जानता हूं, शास्त्र कोरा है, उसमें कुछ भी लिखा नहीं, यह भी जानेगा। अगर यह न जान पाए, तो अभी बीच में बाधा रह गई है। इस झेन परंपरा में वह शास्त्र हमेशा गुरु के द्वारा सात पीढ़ियों से दिया जा रहा था, और हमेशा शिष्य उसे जला रहे थे। वह एक कोरी किताब थी, जो हमेशा गुरु अंतिम परीक्षा के लिए उपयोग में ला रहा था।
जब शिष्य और गुरु बिल्कुल एक हो जाते हैं, तब समर्पण है। पर एक वे कब होंगे? जब तुम पूर्ण नग्न हो जाओगे, जब तुम कुछ भी न छिपाओगे। छिपाने का मतलब ही है कि हमारे सामने जो है, उससे हमारा विरोध है, दुश्मनी है, डर है, भय है, प्रेम नहीं है। छिपाना क्या है गुरु के सामने? और गुरु की आंखों में तुम्हारे बुरे को देखकर निंदा तो नहीं होगी, क्योंकि तुम्हारे छिपाने से भी उसे दिखाई पड़ रहा है, इसलिए कोई फर्क तो पड़ता ही नहीं। तुम नाहक अपनी कुशलता, अपनी समझदारी दिखा रहे हो।
मन द्वंद्व है, इसलिए पूरे द्वंद्व को ही तुम समर्पित कर देना। मन को समर्पण करना, उसमें से आधे को नहीं। ध्यान रहे, आधे को बचाया, आधे को समर्पित किया, समर्पण हुआ ही नहीं! यह ऐसे ही, जैसे मेरे पास एक रुपया है, एक सिक्का है सोने का, उसका एक पहलू तुम्हें देता हूं और एक पहलू मैं बचाता हूं। वह रुपया मेरे ही खीसे में रहेगा, क्योंकि दो पहलू अलग-अलग होने वाले नहीं हैं। तो मैं तुम्हें दिखा सकता हूं एक पहलू कि यह रहा और खीसे में रख लूंगा, क्योंकि दूसरा पहलू मुझे बचाना है। या तो सिक्का पूरा ही देना पड़ेगा, या सिक्का पूरा ही बचाना पड़ेगा, आधा-आधा कोई उपाय नहीं है।
समर्पण का अर्थ है, मन का समर्पण। मन द्वंद्व है। इसलिए द्वंद्व का समर्पण, बिना कुछ बचाए, बिना किसी सुरक्षा के। स्वयं को पूरा का पूरा खोल देना है। उसी क्षण शिष्य-गुरु मिट जाते हैं। गुरु तो मिटा ही हुआ है, उस क्षण शिष्य भी मिट जाता है। एक ही बचता है। दो छोर होते हैं, बीच में एक ही हवा होती है, एक ही हवा का झोंका दो पत्तों को हिलाता है। वे दो पत्ते अलग होंगे, लेकिन हवा का झोंका एक है। दो देह अलग होंगी, लेकिन चेतना का झोंका एक है।
आज इतना ही।

नहिं राम बिन ठांव
सोलहवां प्रवचन

नहिं राम बिन ठांव

प्रश्नः ओशो, आपके वचनों से संकेत मिलता है कि आने वाले दस वर्ष मनुष्य-जाति के लिए बहुत संकटपूर्ण, सांघातिक और निर्णायक होने वाले हैं। और आपका आगमन भी शायद इस बात से संबंधित है कि इस आसन्न विपदा से मनुष्य को कम से कम क्षति हो तथा संस्कृति और धर्म के मूल्यों को अधिक से अधिक बचाया जाए। इस दिशा में क्या हमारा मार्ग-दर्शन आप करेंगे?

मनुष्य-जाति का इतिहास, मनुष्य की चेतना, कोई सीधी रेखा में यात्रा नहीं करते। पश्चिम में ऐसी ही धारणा है कि एक सीधी रेखा में मनुष्य विकास कर रहा है। डार्विन, मार्क्स और अन्यों की भी वैसी ही धारणा है। लेकिन उस धारणा में बहुत बल नहीं है। पूरब की धारणा है कि जीवन का विकास रेखा-बद्ध नहीं है, वर्तुलाकार है, सरक्युलर है। हम किसी सीधी रेखा में आगे नहीं बढ़ रहे हैं, हम एक वर्तुल में घूम रहे हैं। और यह बात ज्यादा उचित भी मालूम पड़ती है।
बच्चा पैदा होता है। जन्म से एक रेखा शुरू होती है और ब.ुढापे में आकर वहीं मृत्यु घटित होती है, जहां जन्म हुआ था, वर्तुल पूरा हो गया। हम बच्चे से बूढ़े तक के विकास में सीधा विकास नहीं देखते, एक ऊंचाई आती है, फिर उतार शुरू होता है।
मौसम बदलते हैं प्रकृति के तो सीधी कोई रेखा नहीं है--गर्मी जाती है, गर्मी फिर आती है; वर्षा जाती है, वर्षा फिर आती है--एक वर्तुलाकार, जैसे कोई चाक गाड़ी का घूमता हो।
सूरज, चांद-तारे, पृथ्वी, सभी वर्तुलाकार घूमते हैं।
तो वर्तुल जीवन की व्यवस्था मालूम होती है। मनुष्य का इतिहास भी वर्तुलाकार है। ऊंचाइयां आती हैं, नीचाइयां आती हैं; विकास होता है, पतन होता है। और जहां से शुरू होती है यात्रा, वहीं पूरी भी होती है। ऐसी ही घड़ी में, जब जीवन एक छलांग लेता है वर्तुल में, संकट उपस्थित होता है।
ऐसा संकट आज उपस्थित है। इस संकट को समझने के लिए दो बातें समझ लेनी जरूरी हैं। जैसा जीवन वर्तुलाकार है, ऐसा ही जीवन द्वंद्वात्मक भी है, डायलेक्टिकल है। और कोई भी चीज अकेली नहीं है, उसका विपरीत साथ में सदा मौजूद है।
जब पूरब धार्मिक होता है, तो पश्चिम बौद्धिक होता है। जब पश्चिम धार्मिक होता है, तो पूरब बौद्धिक हो जाता है। और ये पूरब और पश्चिम एक पूर्णता को दो हिस्सों में विभाजित करते हैं।
पूरब धार्मिक था अतीत में, आज पूरब बौद्धिक हो रहा है। पश्चिम कल तक बौद्धिक था, आज धार्मिक हो रहा है। पश्चिम में आज सबसे बड़ी जो तलाश है, वह ध्यान की है। पश्चिम से लोग पूरब की तरफ आ रहे हैं ध्यान की खोज के लिए, शांति की खोज के लिए। आत्मा-परमात्मा की क्या कोई प्रतीति संभव है--यह जीवन का जैसे महत्वपूर्ण से महत्वपूर्ण बिंदु हो गया है।
पूरब में लोग हंसते हैं। धन बड़ी चीज है। और अगर पूरब से कोई पश्चिम की तरफ जाता है, तो विज्ञान की खोज में जाता है, धर्म की खोज में नहीं। पूरब से भी पश्चिम की तरफ लोग जा रहे हैं, लेकिन विश्वविद्यालय, विज्ञान, टेक्नालाजी, अणुविज्ञान, इसकी तलाश में जा रहे हैं। पश्चिम से लोग पूरब की तरफ आ रहे हैं आत्मा और परमात्मा की खोज के लिए। यह बड़ी अनूठी घटना है कि पश्चिम पूरब के चरणों में बैठने को राजी है, अगर धर्म मिल सकता हो। और पूरब पश्चिम के चरणों में बैठने को राजी है, अगर धन मिल सकता हो।
एक संकट की घड़ी है, जहां गाड़ी का चाक पूरा का पूरा घूमने को तैयार है।
जो ऊपर था, वह नीचे आ जाएगा; और जो नीचे था, वह ऊपर आ जाएगा। मूल्य रूपांतरित हो जाएंगे। गाड़ी के चाक में जो आरा ऊपर है, वह नीचे जा रहा है, जो नीचे है, वह ऊपर आ रहा है। यह संकट की घड़ी है, क्राइसिस है। इसमें सभी पुरानी व्यवस्थाएं अस्तव्यस्त हो जाएंगी, इसमें अराजकता सघन हो जाएगी।

और ऐसी ही अराजकता पैदा हो गई है। इसमें नीति के मापदंड टूट जाएंगे, इसमें पुरानी धारणाएं नष्ट हो जाएंगी। इसमें जो अब तक हमने व्यवस्था जमाई थी, वह सब की सब जैसे एक भूकंप आ जाए और जहां जमीन थी, वहां गड्ढे हो जाएं; जहां पहाड़ियां थीं, वहां मैदान हो जाए; जहां झीलें थीं, वहां पहाड़ियां आ जाएं--ऐसी अवस्था है। यह जो सदी का अंतिम चरण है, बीसवीं सदी का, इसमें बड़ा भयंकर रूपांतरण होने के करीब है।
खतरा क्या है? खतरा यह है कि पूरब के पास जो बड़ी गहरी संपदा है, पूरब
खो सकता है। खो रहा है। आप कितनी ही गीता पढ़ते हों, लेकिन आपके मन में गीता का मूल्य नहीं है। आप गुरु की तलाश में भी जाते हों, लेकिन गुरु के पास भी आप जाते हैं कि कहीं स्वास्थ्य मिल जाए, यश मिल जाए, पद मिल जाए, चुनाव जीत जाएं।
एक मित्र दो दिन पहले मेरे पास आए, कहा कि बड़ा मेरा व्यवसाय था, फिर आंखें कमजोर होकर खत्म हो गईं, अब मुझे दिखाई नहीं पड़ता, तो सब व्यवसाय से हट जाना पड़ा है। कुछ आप करें कि मेरी आंखें ठीक हो जाएं।
साठ के ऊपर उम्र जा चुकी है। मैंने उनसे कहा कि अब भीतर की आंख खोजनी चाहिए। प्रभु की कृपा कि बाहर की आंख बंद हुई, तो अब सारी शक्ति भीतर घूम सकती है। जो आंख बाहर देखती थी, अब भीतर देख सकती है। पर उनको बात जंची नहीं। उनके चेहरे से लगा, उनके भाव से लगा कि यह सुनने को नहीं आए। मैंने उनसे कहा, छोड़ो भी अब, काफी है तुम्हारे पास। उससे तुम्हारा बाहर का काम बड़े मजे से चल रहा है। और ज्यादा कमा कर भी क्या करोगे?
नहीं, उन्होंने कहा, बड़ा धंधा था और सब दूसरों के हाथों में देना पड़ा है।
वे दूसरे लूट भी लेंगे, तो भी कुछ उनको फर्क पड़ने वाला नहीं; काफी है, फिर भी मजे से जीवन चल सकता है। मेरी बात सुन लेते थे, लेकिन उन्होंने एक दफे सिर भी हां में नहीं हिलाया। चलते वक्त फिर बोले, इतना आशीर्वाद दें कि फिर से धंधा कर सकूं। मैंने कहा, क्या करोगे धंधे कर-कर के? जैसे धंधा आत्मा है!
यह पूरे पूरब की स्थिति है। अगर गुरु के पास भी हम जाते हैं, तो कुछ खोजने जा रहे हैं, जिसे खोजने हमें गुरु के पास जाना ही नहीं चाहिए। इसलिए जिन गुरुओं के पास कुछ मदारीगिरी है, वहां लाखों की भीड़ इकट्ठी हो जाती है। किसी के हाथ से भस्म निकलती है, तो लाखों लोग इकट्ठे हो जाते हैं। क्योंकि वहां भरोसा मिलता है कि इस आदमी की अगर अपने पर कृपा हो जाए, तो कुछ भी हो सकता है, यह चमत्कारी है। जब चमत्कारी गुरु के पास लोग इकट्ठे होने लगें, तो समझना कि धर्म से लोगों की प्रतिष्ठा-भावना चली गई। चमत्कार से धर्म का क्या संबंध है!
एक झेन फकीर हुआ लिंची। एक दिन बोल रहा था अपने शिष्यों के बीच, एक आदमी बीच में खड़ा हो गया और उस आदमी ने कहा कि बातचीत तो बहुत सुनी है, कोई चमत्कार! मेरे गुरु थे, अब तो वे नहीं रहे, धर्म तो उनके पास था! नदी के एक तरफ मैं खड़ा हो जाता था हाथ में कागज लेकर, नदी के दूसरे किनारे पर वे खड़े हो जाते थे, आधा मील का फासला, और वहां से कलम से लिखते थे और मेरे कागज पर अक्षर आते थे--ऐसा कोई चमत्कार हो तो दिखाओ।
लिंची ने कहा, ऐसा कोई चमत्कार हमारे पास नहीं। हम तो सिर्फ एक छोटा-
सा चमत्कार जानते हैं और वह चमत्कार यह है कि हम संतुष्ट हैं। बस, इतना-सा चमत्कार जानते हैं कि हम संतुष्ट हैं। और इतना ही हम दे सकते हैं कि जो हमारे पास आए, वह संतुष्ट हो जाए।
शायद वह आदमी तो समझ ही न पाया होगा। संतोष भी कोई चमत्कार है! लेकिन मैं भी आपसे कहता हूं, संतोष ही चमत्कार है। और पूरब असंतुष्ट है धन पाने को, पद पाने को, प्रतिष्ठा पाने को। भारत ने भी अणु-बम का विस्फोट किया, तो पूरा भारत का मानस बड़ा प्रफुल्लित है, बड़ा प्रसन्न है। जैसे हमने कोई बड़ी उपलब्धि कर ली! हमें यह ख्याल भी नहीं आता कि अणु की शक्ति तुम उपलब्ध भी कर लोगे, तो भी तुम दुनिया में थर्ड रेट ताकत ही रहोगे, छठवां ही नंबर रहेगा, कोई अणु की शक्ति में तुम प्रथम कभी भी नहीं हो सकते। तुम पिछलग्गू,

पीछे कतार में ही खड़े हुए रहोगे। इसमें कुछ प्रसन्न होने का मामला नहीं है।
लेकिन जहां तुम प्रथम हो सकते हो, वहां से तुम्हारे पैर डगमगा रहे हैं। जहां दुनिया में तुम्हारा कोई मुकाबला नहीं कर सकता, लाखों वर्षों की मेहनत के बाद जहां तुम्हें खड़ा कर गई है भारत की परंपरा, वहां से तुम डगमगा रहे हो। और एक क्यू में खड़े हो रहे हो छठवें नंबर, और सोच रहे हो, बड़ी खुशी की बात है।
कोई उपाय है, तुम सोचते हो? कोई उपाय है कि तुम रूस या अमरीका से कभी प्रथम खड़े हो जाओगे भौतिक समृद्धि में? वहां तुम दीन भिखारी ही रहोगे। और वह जो अणु-बम का तुमने विस्फोट भी कर लिया है, वह भी उधार है, वह भी दूसरों की सहायता पर है। उनकी सहायता बंद हो जाएगी, कल तुम वह भी न कर पाओगे। और वह निपट मूढ़तापूर्ण है। वह ऐसा है, जैसा गरीब अपने घर को बेचकर दीवाली मना ले फुलझड़ी-पटाखे चलाकर, और प्रसन्न हो ले। घर में बच्चे भूखे मर रहे हों और बाहर फुलझड़ी-पटाखे चल रहे हों। वह फुलझड़ी-पटाखा है! लेकिन हमारी उस तरफ उत्सुकता है आज।
धन में, पद में, शक्ति में हमारी उत्सुकता है। और जब पश्चिम से लोग
आते हैं धर्म की तलाश में पूरब की तरफ, तो हमको हंसी आती है कि ये पागल हो गए हैं, इनका दिमाग खराब हो गया। और जब पूरब से लोग पश्चिम जाते हैं इंजीनियर बनने, डॉक्टर बनने, अणु-वैज्ञानिक बनने, तो पश्चिम के लोग थोड़े चिंतित होते हैं कि इनकी भी खोज भौतिक ही है! निराश होते हैं। लगता है कि इनके पास जाकर हमें क्या मिलेगा, जो हमसे सहायता मांगने चले आते हैं! जो रोटी-रोटी के लिए मोहताज हैं और जिनका मन पूरे समय भौतिकता के लिए लगा हुआ है।
यह संकट है कि पूरब खो रहा है, जो उसने पाया था; और पश्चिम उसे पाने को उत्सुक हो रहा है, जिसे उसने पिछली सदियों में खोया है। खतरा क्या है? खतरा यह है कि तुम्हारे पास जो तैयार है, वह नष्ट हो जाएगा। और पश्चिम को अ, ब, स से शुरू करना पड़ेगा, जो कि बड़ा खतरा है। क्योंकि लाखों वर्ष में धर्म प्रतिष्ठित होता है। क्योंकि धर्म कोई साधारण बीज नहीं है।
एक तो बीज होते हैं मौसमी कि तुमने बोए नहीं कि अंकुर आने शुरू हो गए। पंद्रह दिन बाद अंकुरित हो जाएंगे, महीनेभर बाद फूल लग जाएंगे, दो महीने में नष्ट हो जाएंगे। भौतिकता के सभी फूल मौसमी हैं। धर्म कोई मौसमी फूल नहीं है। हजारों साल लगते हैं, उसका बीज अंकुरित होता है। सैकड़ों बुद्ध पैदा होते हैं, तब कहीं उसका बीज अंकुरित होता है। वह कोई एक दिन की बात नहीं है, जिसे तुम आज कर लोगे। लंबा, बड़ा लंबा प्रयोग चेतना को थोड़ा-सा रूपांतरित कर पाता है।
तो अगर थोड़ी-सी धर्म की संभावना है पूरब के पास, तो उसमें महावीर, बुद्ध, कृष्ण, राम के हाथ हैं।
और एक बड़े मजे की बात है कि विज्ञान तो साधारणजन भी पैदा कर लेते हैं, उसके लिए कोई विशिष्ट आत्मा की जरूरत नहीं पड़ती, सिर्फ नो-हाऊ, सिर्फ तकनीकी ज्ञान चाहिए। और तकनीकी ज्ञान के लिए तो आत्मा की भी जरूरत नहीं है, कंप्यूटर भी कर लेगा। भविष्य में आने वाली विज्ञान की खोजों के लिए आइंस्टीन की जरूरत नहीं है, कंप्यूटर को सारा का सारा ज्ञान तुम दे दोगे, फीड कर दोगे, कंप्यूटर नए सिद्धांत निकाल लेगा। भविष्य के लिए तो आइंस्टीन की विज्ञान को जरूरत नहीं पड़ेगी, कंप्यूटर करने लगेगा यह काम, यंत्र ही कर देगा खोजबीन का काम। अभी भी यंत्र ही करता है। अभी भी जो मस्तिष्क खोजबीन करता है विज्ञान की, वह यांत्रिक अंग है तुम्हारा।
और धर्म तुम्हारी चेतना है, उस पर जब तक बुद्ध जैसी शुद्धता न हो, जब
तक महावीर जैसा निर्दोष भाव न हो, जब तक कृष्ण जैसा नृत्यपूर्ण, समाधिस्थ चित्त न हो, तब तक उसकी झलक ही नहीं मिलती। विज्ञान तो सीधी-सपाट जमीन पर चलकर भी खोजा जाता है, धर्म के लिए तो गौरीशंकर के शिखर छूने पड़ते हैं, तभी उसकी उपलब्धि होती है। हजारों-हजारों साल लगते हैं, तब कभी धर्म के बीज जमीन में गहरे जाते हैं, उनमें अंकुर आते हैं।

और भारत ने एक प्रयोग किया था, न केवल अंकुर आए थे, बल्कि फूल भी आए। उस फूलों की विराट संपदा को तुम खोने को तैयार हो। और खो दोगे, क्योंकि तुम्हें वहां कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता, तुम पीठ किए खड़े हो। तुम्हें उसमें कुछ सार भी मालूम नहीं पड़ता। और पश्चिम को अ, ब, स से शुरू करना पड़ेगा। पश्चिम अगर धर्म की यात्रा शुरू करेगा, तो वहां से शुरू करेगा, जो हमने कोई पांच हजार साल पहले, वेद के समय में जहां से शुरू की थी। जहां तक हम पहुंचे, वहां तक पहुंचने में पश्चिम को फिर पांच हजार वर्ष लग जाएंगे। इस बीच आदमी का बचना असंभव हो जाएगा।
इसलिए मैं कहता हूं कि भारत के हाथ में एक बड़ा नियतिपूर्ण कृत्य है।
और वह यह है कि जो हमने खोजा है, जो सूत्र, जो मनुष्य की चेतना में प्रवेश के नियम हमने विकसित किए हैं, अगर तुम उन्हें छोड़ना भी चाहो, तो छोड़ने के पहले किसी को सौंप देना। इतना कम से कम कर जाना।
लेकिन ध्यान रहे, तुम सौंप वही सकते हो, जो तुम्हारे भीतर घटित हुआ हो। हम गीता दे सकते हैं पश्चिम को, गीता कचरा हो जाएगी, क्योंकि गीता में थोड़े ही है। गीता में शब्द हैं, उनका तो अनुवाद पश्चिम की सब भाषाओं में हो गया है, उससे कुछ हल होने वाला नहीं है। लेकिन कृष्ण में जो था, वह हम कैसे देंगे? गीता तो उसकी छाया-मात्र है, प्रतिध्वनि है। कृष्ण में जो घटा था, वह हम कैसे देंगे? वह तो हमारे भीतर कृष्ण पैदा होते रहें, तो ही दिया जा सकता है।
यही मेरा प्रयोजन है कि तुम्हारे भीतर ध्यानी का जन्म हो जाए। अगर भारत दस-पचास ध्यानी भी पैदा कर सके, जिनमें बुद्ध की प्रज्ञा का प्रकाश हो, फिर कोई हर्जा नहीं है। क्योंकि यह सवाल नहीं है कि भारत में धर्म बचे कि पश्चिम में बचे, यह सवाल नहीं है--बचे। किस जमीन पर उसका मंदिर बनेगा, यह भी कोई बड़ी बात नहीं है, जमीन सब एक-सी हैं।
लेकिन तुम उस मंदिर को खंडहर किए दे रहे हो। पश्चिम के लोग अगर उसे ले
भी जाएंगे, तो उनके हाथ में ईंट-गारा लगेगा, खंडहर, टूटे हुए टुकड़े। और पश्चिम अगर उनको सम्हालकर मंदिर बनाएगा भी, तो वह मंदिर म्युजियम में रखने योग्य होगा, जीवन का नहीं होगा। वही हो रहा है। वह मुर्दा होगा। म्युजियम में जाकर लोग उसको देख लेंगे, बाकी और उसका कोई प्रयोजन नहीं। उसमें से जीवन निकल गया होगा।.
एक मंदिर तुम्हारे पास है, जो अभी भी गिर नहीं गया है। और जिनके पास आंखें हैं, उन्हें अभी भी वह जीवंत दिखाई पड़ता है। पर वह जल्दी गिर जाएगा, क्योंकि तुम उसे गिराने में लगे हो, तुम उसे मिटाने में लगे हो। तुम उस मंदिर की ईंटें निकालकर अपने घर की सीढ़ियां बना रहे हो। तुम उस मंदिर की मूर्ति को बेचकर तिजोरी भर रहे हो। तुम्हें ख्याल भी नहीं है कि तुम क्या कर रहे हो! उसका कारण है। जैसे मछली सागर में पैदा होती है, तो उसे सागर दिखाई नहीं पड़ता। वह वहीं पैदा होती है, सदा से परिचित होती है, भूल ही जाती है। ऐसे ही तुम एक मंदिर में ही पैदा हुए हो, जो तुम्हें दिखाई नहीं पड़ता, तुम भूल ही गए हो।
मेरी पूरी चेष्टा यह है कि तुम्हें वह जीवंत मंदिर दिखाई पड़ने लगे।
या तो तुम उस मंदिर के पुजारी हो जाओ फिर, जो कि सहज है तुम्हारे लिए। अगर यह असंभव ही हो, तो उस मंदिर को जीवंत दशा में उन्हें दे दो, जिनकी उसमें आकांक्षा है, जिनकी उसमें प्यास जग गई है। इसके पहले कि धर्म का मंदिर गिरे, या तो तुम उसे सम्हाल लो या वह मंदिर पश्चिम सम्हाल ले, लेकिन वह खंडहर न हो जाए और म्युजियम की चीज न बन जाए। उसके माध्यम से मनुष्य के बचने की संभावना का द्वार खुलेगा।
क्योंकि धन की दौड़ सिर्फ मिटाती है, महत्वाकांक्षा सिर्फ नष्ट करती
है और अंततः पागलपन लाती है। कोई महत्वाकांक्षा से कभी संतुष्ट नहीं हुआ। कितनी ही बड़ी महत्वाकांक्षा सफल हो जाए, हर सफलता और असंतोष लाती है। सिकंदर भी मरता है, तो रोता हुआ ही मरता है, सब पाकर भी कुछ पाने जैसा नहीं मालूम पड़ता। सिर्फ धर्म संतोष लाता है, इसलिए संतोष चमत्कार है। और भिखारी भी संतुष्ट हो सकता है और हम देखते हैं कि सिकंदर भी असंतुष्ट मरता है।

धर्म के पास कोई रहस्यपूर्ण कुंजी है, जिससे हृदय के वे द्वार खुल जाते हैं, जहां से अमृत की वर्षा हो सकती है। उन कुंजियों को ही मैं ध्यान कह रहा हूं। और इस ध्यान से एक ही चमत्कार घटित होगा कि तुम परम संतुष्ट हो जाओगे। पर इससे बड़ी कोई घटना ही जगत में नहीं है। इससे बड़ा कोई रहस्य इस जगत में नहीं है कि एक व्यक्ति संतुष्ट हो जाए।
थोड़ा सोचो, थोड़ा सोचो इस बात को कि तुम संतुष्ट हो गए हो। कैसी वह घड़ी होगी जहां कि एक भी आकांक्षा नहीं उठती; जहां आगे एक क्षण में भी तुम्हारा रस नहीं है; तुम यहां और अभी और पूरे हो, जैसे सब फूल हृदय के खिल गए और तुम सुगंध से भर गए हो। और सुगंध ऐसी है कि एक अहोभाव पैदा हो रहा है, कि तुम परमात्मा को धन्यवाद दे सकते हो। कि तुम कह सकते हो कि एक श्वास भी मिल जाए इस आनंद की, तो बस काफी है, होना सार्थक हुआ। ऐसी परम धन्यता और सार्थकता की स्थिति को तुम सिर्फ सोचो, कल्पना करो, एक क्षण को भी वह मिल जाए, तो तुम्हारी जन्मों-जन्मों की पीड़ा झेलने जैसी थी।
इसलिए लिंची कहता है, एक ही चमत्कार हम जानते हैं। एक ही चमत्कार मैं जानता हूं।
मित्र हैं मेरे पास, जो कहते हैं कि आप कुछ ऐसा क्यों नहीं करते कि हाथ
से भस्म पैदा हो जाए? लाखों लोग आ जाएंगे। लेकिन वे गलत होंगे। लाखों आ जाएंगे, लेकिन लाखों ही गलत होंगे। और उन लाखों की भीड़ में जो ठीक थोड़े से मेरे पास हैं, वे भटक जाएंगे, वे खो जाएंगे। क्योंकि जो ठीक मेरे पास हैं, वे उस लाखों की भीड़ में आगे न टिक पाएंगे, वह भीड़ आगे आ जाएगी। क्योंकि वह महत्वाकांक्षियों की भीड़ होगी, वह पागलों की भीड़ होगी। वह जो राख हाथ से गिरती देखकर इकट्ठे होते हैं, वे पागल हैं, उनको पागलखाने में होना चाहिए था। रोगग्रस्त हैं। और एक बार रोगी को बुला लो, तो फिर स्वस्थ को वह वहां नहीं टिकने देगा।
अर्थशास्त्र का सीधा-सा नियम है कि खोटे सिक्के असली सिक्कों को चलन
के बाहर कर देते हैं। अगर तुम्हारे खीसे में एक नकली रुपया है, तो पहले तुम उसको चलाओगे, असली को दबाकर रखोगे। तो नकली सिक्के असली सिक्कों को चलन के बाहर कर देते हैं, उनको कोई चलाता नहीं, पहले नकली को चलाता है; वह न चले तो फिर असली को चलाता है। और जहां भी नकली आदमी आ जाए, असली आदमी को पीछे कर देगा। क्योंकि नकली पहले चलना चाहता है।
धर्म का लाखों से कोई संबंध भी नहीं है, धर्म का संबंध तो बहुत थोड़े से लोगों से है। लेकिन ध्यान रहे, एक आदमी भी धार्मिक हो जाए, तो लाखों लोगों के जीवन में शांति की अनजानी किरणें उतरनी शुरू हो जाती हैं। वह आदमी एक सूरज की भांति हो जाता है, जिससे प्रकाश बहने लगता है। एक आदमी भी संतुष्ट हो जाए, तो इस जगत के असंतुष्ट पागलपन में दरार पड़ जाती है। एकशृंखला टूट जाती है। एक आदमी भी बुद्ध हो जाए, तो सभी लोगों की विक्षिप्तता की मात्रा कम हो जाती है। क्योंकि बुद्ध का शांत हो जाना संक्रामक है, बुद्धत्व संक्रामक है।
जैसे रोग फैलते हैं और एक आदमी रोग से भर जाए, तो सारे गांव को रोग से
भर देता है। वैसे ही बुद्धत्व संक्रामक है और एक आदमी बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाए, तो यह पूरी पृथ्वी और ढंग की होती है। इसकी सारी चाल, इसके जीवन की शैली, सब बदल जाती है। बुद्ध तुम्हारे गांव से भी निकल जाएं, तुम अपने घर में सोए रहो, तो भी तुम वही नहीं होते, जो तुम बुद्ध के निकलने के पहले थे। तुम वही हो नहीं सकते, तुम घर में ही सोए रहो।
आज भारत असंतुष्ट है, बड़ी पीड़ा से भरा हुआ है, लेकिन फिर भी पश्चिम के लोग आकर तुममें भी शांति का अनुभव करते हैं। तुम खुद हैरान होओगे, पश्चिम के यात्री जाकर खबरें लिखते हैं, किताबें लिखते हैं कि अगर शांत देखना हो किसी व्यक्ति को तो भारत में व्यक्ति हैं।
बड़ी हैरानी की बात है। हमको भी चकित होना पड़ता है। क्योंकि तुममें कैसी शांति उन्हें दिखाई पड़ती होगी? तुममें कोई शांति नहीं है। लेकिन फिर भी तुम्हारे बीच से बहुत बुद्ध गुजरे हैं, उनकी छाया तुममें थोड़ी छूट गई है। उसका तुम्हें भी पता नहीं है। तुम्हारी हड्डी में, मांस-मज्जा में, तुम्हारे अनजाने, तुम्हारी बिना चेष्टा के, तुम्हारे विरोध के बावजूद,

बुद्धों की छाया पड़ी है। जैसे कोई आदमी अनजाने बगीचे से गुजर जाए और उसके वस्त्रों में फूलों की सुगंध आ जाए, जिसका उसे पता भी न हो। यह भी हो सकता है, जिसकी उसे सुगंध ही न आती हो, क्योंकि उसकी नाक दुर्गंध की आदी हो।
एक आदमी गिर पड़ा है एक रास्ते पर बेहोश होकर। कड़ी धूप थी। भीड़ इकट्ठी
हो गई। किसी ने जूता सुंघाया। रास्ता जो था, वह सुगंध का बाजार था। तो एक दुकानदार एक कीमती इत्र लेकर भागा हुआ आया और उसने कहा कि इसे सुंघाने से बेहोशी तत्क्षण दूर हो जाती है। उसने इत्र सुंघाया नहीं कि वह आदमी बेहोश तो था ही, बुरी तरह तड़फने भी लगा, हाथ-पैर फेंकने लगा, जैसे उसके प्राण घुटते हों।
तो भीड़ में खड़े एक आदमी ने कहा कि मार मत डालना उस आदमी को, यह मत करो, उसे मैं जानता हूं। उस आदमी की टोकरी--जो नीचे गिर पड़ा था, उसकी टोकरी--बगल में पड़ी थी। वह एक मछुआ था, मछलीमार, मछली बेचने वाला। उस दूसरे आदमी ने कहा कि मैं जानता हूं उसकी तकलीफ। यह उसकी जो टोकरी है, जिसकी मछलियां यह बेच चुका है, इस पर थोड़ा पानी छिड़को और यही सुगंध उसकी सुगंध है। जैसे ही उसके मुंह पर टोकरी रखी गई, जिससे मछलियों की बदबू आ रही थी, उस आदमी ने गहरी श्वास ली, वह होश में आ गया। उसने कहा कि दुष्ट मुझे मारे डालते थे। मछली की गंध जिसे सुगंध हो, वह फूलों के बगीचे से ऐसे निकल जाएगा, जैसे दुर्गंध से निकल रहा है।
तुम बुद्धों के पास से ऐसे ही निकल गए हो। मगर फिर भी, तुम्हारे अनजाने, तुम्हारे विरोध के बावजूद भी उनकी सुगंध तुम्हें पकड़ गई है। वह तुम्हारी हड्डी-मांस-मज्जा में हो गई। इसलिए पश्चिम के लोग आकर तुममें शांति देख लेते हैं। तुमको खुद शांति दिखाई नहीं पड़ती। उनकी तलाश है। वे बुद्ध की खोज पर निकले हैं। तुममें उन्हें थोड़ी सी भी किरण मिल जाती है, उन्हें लगता है... ।
मगर उसमें तुम्हारा कोई गुण-गौरव नहीं है। तुम तो अभागे हो इस अर्थ में कि जहां तुम खुद बुद्ध हो सकते थे, वहां तुम सिर्फ एक छाया लेकर घूम रहे हो। और उस छाया को भी बेचने को तैयार हो। कोई दो रुपए तुम्हें दे दे, तो तुम बुद्धत्व को बेचने को तैयार हो। अगर बुद्ध हमारे पास हों और पश्चिम खरीदना चाहे, तो हम उनको एक एटम बम में दे देंगे। एटम बम ले लेंगे और छोड़ देंगे बुद्ध को। करेंगे भी क्या बुद्ध का? कोई युद्ध लड़ा जाता है उनसे! कि बुद्धत्व से कोई खेती-बाड़ी होती है! कि बुद्धत्व से कोई फैक्टरी बनती है! यह संकट है कि पूरब के पास बना हुआ मंदिर है, जिसमें हजारों बुद्धों
की मेहनत है। पश्चिम के पास वैसा मंदिर नहीं है। पश्चिम की तलाश है और तुम बेहोश हो। तो या तो यह मंदिर जीवंत पश्चिम को दे दो। ध्यान रहे, मंदिर उसी का है, जो प्रार्थना करने को तैयार है। मंदिर की कोई बपौती नहीं होती।
एक चर्च था जबलपुर में। वह बहुत दिन से बंद पड़ा था। उस चर्च के जो पूजक थे, वे जब अंग्रेज भारत छोड़कर गए, तो वे भी चले गए। थोड़े से ही लोग थे उस पंथ के, वह चर्च बंद ही पड़ा था। उसका प्रधान पुजारी तो लंदन में है। मेरे पास कुछ ईसाई आए, जो उस पंथ को, उस चर्च को नहीं मानते। पर उन्होंने कहा, हमारे पास कोई चर्च नहीं है। आप क्या कहते हैं, अगर हम इसमें पूजा शुरू कर दें? तो मैंने कहा कि चर्च तो उसी का है, जो वहां पूजा करता है। तुम शुरू करो। मगर पुलिस तो नहीं मानती इस बात को, अदालत भी नहीं मानती। उन्होंने ताला खोलकर पूजा शुरू कर दी, मैं उनके चर्च का उदघाटन भी कर आया। फिर मुझे अदालत में जाना पड़ा। क्योंकि वह लंदन से उन्होंने दावा किया कि यह गैर-कानूनन है और हमने दूसरों की संपत्ति पर कब्जा कर लिया है।
अदालत से मैंने इतना ही कहा कि मैं इतना ही जानता हूं कि मंदिर उनका है, जो पूजा करते हैं। मंदिर की और क्या बपौती हो सकती है? मंदिर कोई जमीन-जायदाद है? जो लंदन में बैठे हैं, वे यहां पूजा तो कर नहीं सकते, ताला डालकर बैठे हैं। तो ताला डला हुआ मंदिर बेहतर है कि ताला खुला हुआ मंदिर, जिसमें कि लोग पूजा कर रहे हों?
मजिस्ट्रेट ने कहा कि इन गंभीर बातों में हम न पड़ेंगे। हमें कानून से मतलब है, यह जमीन-जायदाद किसी और की है। मैंने कहा, तुम्हें होगा कानून से मतलब, मुझे प्रार्थना से मतलब है। अब हम क्या करें?

अगर भारत न सम्हाल सकता हो इस मंदिर को, तो जीवंत उन्हें दे दे, जो इसकी खोज में हैं।
मुझसे लोग पूछते हैं कि आपके पास बहुत से विदेशी दिखाई पड़ते हैं, उतने देशी नहीं दिखाई पड़ते!
इसमें मैं क्या करूं? मैं उनको मंदिर सौंप रहा हूं। मंदिर तुम्हारा है, मगर तुमने पूजा बंद कर दी है। और यह मंदिर कोई दिखने वाला नहीं है। दिखाई पड़ने वाला होता, तो अदालत में झंझट खड़ी होती। यह अदृश्य मंदिर है, इसको मैं सौंप दूंगा उनको। जो इसकी पूजा करना चाहते हैं, वे इसको ले जाएंगे। भारत ने जो खोजा है, उसे जीवंत पश्चिम पहुंचाना है। और या फिर भारत को सजग करना है। तो उसे पहुंचाने की कोई जरूरत न रह जाए।
मगर वह बचना चाहिए। बुद्ध, महावीर, कृष्ण, राम की जो खोज है, वह बचनी चाहिए--उसे खोकर फिर पांच हजार साल मेहनत करनी पड़ेगी--यही मेरी चेष्टा है।

प्रश्नः ओशो, एक पखवाड़े तक और अनेक आयामों से आपने हमें समझाया कि नहिं राम बिन ठांव। और इसके लिए हम आपके अत्यंत आभारी हैं। अंत में हम एक बार फिर आपसे प्रार्थना करेंगे कि सार और असार के प्रति हमारा विवेक जागे तथा नहिं राम बिन ठांव की हमारी प्रतीति गहरी और अचल रहे, इसके लिए हमें कुछ और समझाने की कृपा करें।

सार और असार का बोध सबसे बड़ी संपदा है, लेकिन मन इस भेद को कभी कर नहीं पाएगा। मन असार है, यही अड़चन है।
तो मन तुमसे जो भी कहे सार है, उसे तुम समझना कि असार है। मन की मत सुनना। साधक की बड़ी से बड़ी तपश्चर्या यही है कि वह मन की न सुने। और मन सलाह दिए ही चला जाता है, तुम मांगो या न मांगो। तुम सुनो या न सुनो, मन दोहराए ही चला जाता है, जो उसे कहना है। और कठिनाई यह है कि बार-बार दोहराने से तुम सुन लेते हो। तुम इतने होशपूर्ण तो नहीं हो कि बार-बार दोहराई जाए बात, तो तुम उससे चूक जाओ; तुम सुन लेते हो। सलाह कोई देता ही चला जाए, तो वह सलाह तुम्हारी हो जाती है। और मन सलाह देने में बड़ा कुशल है। मन कहता है यह सार है। क्या है सार मन के हिसाब से?
इंद्रियों का भोग सार है, स्वाद सार है, कामवासना सार है, सौंदर्य-रूप सार है। मन का सार इंद्रियों से जुड़ा है। जिस-जिसमें इंद्रिय भोगती है, वहीं सार है। और इंद्रिय के सारे भोग कहीं भी नहीं ले जाते, सिर्फ तुम्हें चुकाते हैं। तुम रिक्त होते हो, खाली होते हो। इंद्रियों के सारे सुख ऐसे हैं, जैसे खाज की खुजलाहट।
जब खाज तुम्हें हुई हो--न हुई हो, तो अनुभव करने जैसी है एक दफा खाज, किसी तरकीब से खाज पैदा करो--तब खुजलाहट में बड़ा रस आता है। और जैसे-जैसे तुम खुजलाते हो, बड़ी मिठास पैदा होती है, एक मधुरिमा फैल जाती है। जैसे कोई एक बड़े सुख की गहन अनुभूति करीब आ रही है। और जितने ज्यादा तुम खुजलाते हो, एक घड़ी आती है कि वह जो मधुरिमा थी, वह जो माधुर्य मालूम हो रहा था, वह सब तिक्त और कड़वा हो जाता है, लहूलुहान हो जाता है। पीड़ा हाथ लगती है।
शुरू में मधुर लगता है इंद्रिय का भोग, पीछे पीड़ा हाथ लगती है। सभी इंद्रिय का भोग खाज की खुजलाहट है। लेकिन तुमने खाज खुजला भी ली हो, कष्ट भी पाया हो, खून भी निकल आया हो, फिर भी दुबारा जब खाज खुजलाएगी, तब फिर तुम्हारे हाथ खुजलाने को तत्पर हो जाएंगे।
मन की एक खूबी है कि वह प्रथम और अंत को जोड़ता नहीं, वह कार्य और कारण
को संयुक्त नहीं करता। वह जो पीड़ा पीछे आई, वह शुरू में आने वाली मधुरिमा का फल है, ऐसा मन नहीं निर्णय लेता।
जिस मन ने ऐसा निर्णय ले लिया, वह संन्यस्त हो गया। जिसने देख लिया कि सभी सुख अंत में दुख हो जाते हैं, उसके लिए संसार असार हो गया। यही सूत्र है। सभी सुख, जिनको मन कहता है सुख हैं, अंततः दुख हो जाते हैं। जहां-जहां मन कहता है सुख है, वहां-वहां दुख उत्पन्न होता है। हां, ऊपर से आभास मिलता है। लेकिन जब तुम खोदते हो, तो दुख मिलता है।

अगर मन की तुम सुनते रहे, जैसा कि तुम जन्मों-जन्मों से सुनते रहे हो, जैसा कि तुम सुन रहे हो, मन फिर उन्हीं-उन्हीं सुखों में ले जाता है, जिनको तुमने कल जाना था और तुम दुख भोग चुके हो। लेकिन तुम कभी अंत और प्रथम को जोड़ते नहीं। प्रथम को और अंत को ठीक से जोड़ लेने पर, सभी सुख छिपे हुए दुख मालूम पड़ेंगे।
तब ऐसा लगेगा कि सुख तो सिर्फ निमंत्रण है दुख का। तब ऐसा लगेगा, सुख
तो केवल द्वार है सजा हुआ नरक का। लेकिन द्वार की सजावट तुम्हें इतना आकर्षित कर लेती है कि तुम नरक में प्रवेश कर जाते हो और तुम कभी यह नहीं सोच पाते कि द्वार की सजावट ही तुम्हें नरक में ले आई है।
नरक का द्वार सजा हुआ होना ही चाहिए, नहीं तो प्रवेश कौन करेगा? स्वर्ग का द्वार बिल्कुल गैर-सजा है। इसलिए अगर तुम सोच रहे हो कि स्वर्ग का द्वार तुम्हें सजा हुआ मिलेगा, तो तुम कभी स्वर्ग न पहुंच पाओगे। स्वर्ग का द्वार बिल्कुल गैर-सजा है। वहां कोई सजावट तुम्हें न मिलेगी।
वहां कोई तख्ती पर लिखा हुआ भी नहीं होगा कि यह रहा स्वर्ग, आओ, स्वागत है! इतना भी वहां नहीं होगा। इसकी कोई जरूरत नहीं है।
असल में झूठ प्रचार करता है, दुख स्वागत करता है, नरक निमंत्रण देता है।
काशी की एक दुकान पर, एक घी की दुकान पर एक तख्ती लगी है--असली शुद्ध घी
की दुकान, और जो नकली सिद्ध करेगा, उसे पांच सौ रुपया तत्क्षण इनाम। फिर नीचे लाल अक्षरों में लिखा है कि ऐसे इनाम यहां कई बार बांटे जा चुके हैं। यानी आप कोई शक न करें, इनाम भी पक्का है, घी भी शुद्ध है।
जितना असत्य हो, उतना आयोजन है। सत्य सीधा-साफ है, असत्य का बड़ा प्रपंच है। नरक में कोई जाएगा ही कैसे अगर वहां सुगंध बुलाती न हो, द्वार पर स्वागत के लिए कोई खड़ा न हो?
मैंने सुना है, एक आदमी मरा, पहुंचा नरक और स्वर्ग के द्वार पर। उसने बीच में पूछताछ की, होशियार आदमी था, एकदम स्वर्ग में प्रवेश करूं कि न करूं, कि नरक में जाऊं। जैसा कि आदमी है, पूछताछ की यात्रियों से, इधर-उधर जाते लोगों से, कि भई कहां! एक दफे चले गए अंदर, तो बाहर आना हो न हो, पहले पक्का करके--अनुभवी आदमी था, संसार जान चुका था, परखकर--कहां जाएं?
तो एक देवता ने कहा कि इसमें तो बहुत मुश्किल पड़ेगी, मैं तुम्हें दोनों दिखा देता हूं, तुम पसंद कर लो। तो उसे स्वर्ग में ले गया। वहां इतनी शांति थी कि उस आदमी को उदासी मालूम पड़ी।
तुम अगर शांति में जाओगे, तुम्हें उदासी मालूम पड़ेगी। क्योंकि तुम इतने बड़े घने पागलपन के बाजार से आ रहे हो, उस बाजार को तुम जीवन समझे हो, तो शांति तुम्हें उदास मालूम पड़ेगी। उस आदमी को लगा, यह स्वर्ग तो मरघट जैसा है। क्योंकि हम सिर्फ मरघट पर ही शांत होते हैं और तो कहीं हम शांत होते ही नहीं। मरघट ही हमारा थोड़ा सा सन्नाटा सम्हाले हुए है, बाकी जिंदगी से तो सब तरफ से हट गया है। मौत में ही थोड़ी सी शांति है, जीवन तो हमने इतना अशांत कर डाला है।
उस आदमी को लगा कि यह सब उदास-उदास है, न कोई रौनक, न कोई राग-रंग, न कोई गीत, न कोई संगीत, कुछ भी नहीं है, एकदम सन्नाटा है। उसने कहा, यह तो कुछ मन को भाता नहीं। पर अभी निर्णय करना ठीक नहीं, पहले नरक देख लेना चाहिए। तो वह देवता के साथ नरक भी गया। वहां स्वर्ग में उसने लोग देखे, न कोई हंस रहा है, न कोई खिलखिला रहा है।
ध्यान रहे, खिलखिलाहट नरक में मिल सकती है, स्वर्ग में नहीं। क्योंकि जहां दुख है, वहां लोग हंसते हैं। हंसना दुख को छिपाने का ढंग है। जहां शांति, सुख परिपूर्ण है, वहां कोई हंसेगा किसलिए? इसलिए जब तुम किसी आदमी को बहुत खिलखिलाते देखो, तो यह मत समझ लेना कि बहुत परम अवस्था को प्राप्त आदमी हो गया। वह खिलखिलाहट पीछे किसी दुख को छिपा रही है, वह तरकीब है, वह अपने को भुला रहा है, वह मनोरंजन कर रहा है।
इसलिए दुनिया में जितना दुख बढ़ता है, उतने मनोरंजन के साधन बढ़ते हैं। फिल्म है, टेलीविजन है, रेडियो है, संगीत है, नाटक है, क्लब है--ये दुखी आदमी की ईजादें हैं। अगर आदमी सुखी हो, तो किसलिए क्लब जाएगा? वह अपने आंगन में

बैठकर इतना सुखी होगा कि कहीं जाने का सवाल क्या! वह किसलिए रेडियो का उपद्रव और आवाज शुरू करेगा? क्योंकि वह सारी आवाज, वह संगीत जो उसके पास था, उसे छिन्न-भिन्न कर देगी। वह किसलिए आंखें दुखाएगा टेलीविजन पर? खाली आकाश काफी है, पर्याप्त है, जरूरत से ज्यादा है। नहीं, दुखी आदमी सुख और मनोरंजन की ईजादें करता है।
स्वर्ग में सब सन्नाटा था, लोग बैठे थे, उदास लगते थे। न कोई बातचीत कर रहा था, न कोई गपशप थी। अखबार तक नहीं छपता स्वर्ग में, क्योंकि कोई खबर नहीं। खबर के लिए तो उपद्रवी चाहिए। नरक में घर-घर अखबार छपते हैं। बड़े शानदार! जैसे अखबार वहां पढ़ने को मिलेंगे, कहीं नहीं मिलेंगे। क्योंकि घटनाएं वहां घटती हैं।
वह आदमी ने कहा कि जरा नरक और दिखा दो, फिर मैं तय करूं। नरक गया, तो बैंडबाजा, स्वर्ग दिखाई पड़ा नरक में। द्वार से ही शान, जैसे कोई बारात चल रही हो। और हर आदमी मस्ती में दिखाई पड़ा। खुद शैतान ने आकर स्वागत किया। स्वर्ग गया तो भगवान का तो कोई पता ही न चला। पूछा भी उसने, तो लोगों ने कहा, भई कुछ पता नहीं। होंगे, अपने में होंगे, हमें कुछ पता नहीं कहां हैं। हमें तो बस अपना ही पता है। जिसको अपना पता है, वहीं भगवान हैं। लेकिन स्वर्ग में कोई पता न चला, नरक में स्वागत करने के लिए शैतान द्वार पर खड़ा था अपने सब शागिर्दों के साथ। बड़ा गले लगाया। उस आदमी ने कहा कि जगह तो यह है! बड़ी उलटी हालत है, तख्ती गलत लगी है। जहां स्वर्ग लगा है वहां नरक मालूम पड़ता है, जहां नरक है वहां स्वर्ग मालूम पड़ता है। उसने कहा कि मैं यही चुनता हूं।
देवता बाहर चला गया, दरवाजा बंद हो गया। शैतान ने उसकी गर्दन पकड़ ली।
वह बोला, यह क्या करते हो? उसने कहा कि वह तो सिर्फ अतिथि का आयोजन था,
अब असली नरक शुरू होता है। अब तुमने जो शास्त्रों में पढ़ा है नरक, अब वह शुरू होता है। वह तो सिर्फ स्वागत था, वह तो मेहमान के लिए आयोजन था, वह कोई असली नरक थोड़े ही था। यह हिस्सा तो सिर्फ मेहमानों के लिए है, अब आओ असली नरक में। तब उसे दिखाई पड़ीं लपटें, जल रहे कढ़ाए, उबल रही आग, लोग फेंके जा रहे हैं।
यही इंद्रियों की अवस्था है। वहां स्वागत है द्वार पर अतिथि का, फिर नरक है।
सार-असार का भेद अगर करना हो, तो जहां-जहां इंद्रियां कहें सार है, वहां सचेत हो जाना, वहां सावधान हो जाना, यही साधना है। और जहां-जहां इंद्रियां कहें यहां कुछ सार नहीं, वहां से भागना मत, वहां खोदना, वहीं तुम सार को पाओगे।
जब तुम ध्यान करने बैठोगे, तुम्हारा मन, तुम्हारी इंद्रियां सब कहेंगी, क्या कर रहे हो! इसमें कुछ सार नहीं, क्यों समय खराब कर रहे हो? इतनी देर में तो अखबार ही पढ़ लेते, कि रेडियो सुन लेते, कि इतनी देर में मित्र से गपशप कर आते, कि होटल हो आते, क्यों समय खराब कर रहे हो? सारी इंद्रियां कहेंगी कि बेकार बैठे हो, ऐसा बेकार बैठने से कुछ फायदा नहीं है। कुछ करो। ऐसा खाली बैठने से क्या होगा? तुम्हारा मन कहेगा, उठो, चलो, कुछ काम में लगो, इतनी देर को तो तुम धन में बदल ले सकते हो, इतना समय तो सिक्के बन सकता है।
ऐसे लोग मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं, समय नहीं है ध्यान करने के लिए। और इन्हीं को मैं सुनता हूं, बैठे बाजार में, ये कहते हैं, गपशप कर रहे हैं। क्या कर रहे हो? पान की दुकान पर पान चबा रहे हैं, सिगरेट पी रहे हैं।
क्या कर रहे हो? कहते हैं, समय काट रहे हैं। ये, यही सज्जन समय काट रहे हैं।
अगर मैं उनसे कहता हूं, ध्यान करो, वे कहते हैं कि समय नहीं है।
यह समय नहीं है, इनको पता नहीं कि इनकी इंद्रियों ने इनको समझाया है।
क्योंकि जहां इंद्रियों को रस है, वहां तो वे कहती हैं काटो समय, क्योंकि समय का उपयोग ही यह है कि काटो। जब ये ध्यान करने बैठते हैं, तब इनका मन, इनकी इंद्रियां इनसे कहती हैं, समय कहां है, क्यों खराब कर रहे हो? न मालूम कितना सुख लूट लेते अभी इतनी देर में तो! और ऐसा बैठे-बैठे तो जड़ हो जाओगे।

जहां तुम्हारी इंद्रियां और मन कहें यहां कुछ भी नहीं, सचेत हो जाना, वहां कुछ है। वहीं खोदना। उस खोदने का नाम ही साधना है। और अगर यह खोदना ही तुम्हारे जीवन की चर्या और शैली हो जाए, तो इसका नाम संन्यास है।
सुख जहां द्वार पर मिले, वहां पीछे दुख मिलता है। दुख को झेलने को जो द्वार पर राजी हो, वह सुख के स्रोत को उपलब्ध हो जाता है। प्रथम जो दुख को झेलने को राजी हो, वह सुख को उपलब्ध हो जाता है। प्रथम जो सुख की मांग करता है, वह दुख को उपलब्ध हो जाता है।
सार का अर्थ है, जहां दुख शायद पहले मिले, सुख पीछे मिलेगा। असार का अर्थ है, जहां सुख पहले मिलता है, मिलता मालूम पड़ता है कम से कम, और पीछे दुख मिलेगा। सार का अर्थ है, द्वार बिल्कुल रौनक-विहीन होगा, लेकिन पीछे स्वर्ग छिपा है। असार का अर्थ है, द्वार पर बड़ा स्वागत-समारोह है, दीवाली है, होली है, पीछे नरक है, पीछे दुख और पीड़ा है। कांटे के पीछे छिपा है फूल, फूल के पीछे छिपे हैं कांटे।
और जो अंत में मिलता है, वह साथ रह जाता है। इसलिए अंत को जो ध्यान में रखता है, वह सार को खोज लेता है। जो प्रथम को ध्यान में रखता है, वह असार में भटकता रहता है।
इस असार में भटकने की लंबी यात्रा हमारा संसार है। इस असार से छलांग सार में लगा लेने का नाम मोक्ष कहें, निर्वाण कहें, राम कहें, जो कहना चाहें। और जिसको यह दिख गया कि इंद्रियां भटकाती हैं, भ्रामक हैं, वह राम की शरण में चला जाता है। वह कहता है, नहिं राम बिन ठांव।
तुम इंद्रियों की शरण में हो।
इसे एक तरफ से और देख लेना चाहिए। इंद्रियां बहुत हैं, कम से कम पांच
तो तुम गिनती कर ही लेते हो। और पांच पर ही अंत नहीं है, क्योंकि हर इंद्रिय के अनेक रूप हैं, एक-एक इंद्रिय खुद भी एक भीड़ है। तो जो इंद्रियों की शरण में जाता है, वह खंड-खंड हो जाता है, क्योंकि बहुत मालिक हैं। दो ही मालिक हों, तो मुश्किल हो जाती है; बहुत मालिक हों, तुम्हारी क्या गति होगी?
ईसाइयों की पुरानी कथा है कि परमात्मा जोब की परीक्षा ले रहा था--उसकी श्रद्धा की, आस्था की, समर्पण की--तो उसने सब छीन लिया, सब छीन लिया उसका, लेकिन उसके मन से शिकायत न निकली। सिर्फ उसकी पत्नी छोड़ दी, सब छीन लिया, कोई शिकायत न निकली। इस कथा पर बहुत विचार चलता रहा है, जोब की कथा पर बहुत विचार चलता रहा है कि परमात्मा ने ऐसी परीक्षा क्यों ली? और सब छिन गया और जोब ने शिकायत न की!
लेकिन एक आदमी ने एक हसीद फकीर से पूछा कि और सब तो समझ में आता है, लेकिन परमात्मा ने पत्नी क्यों न छीनी? सभी छीन लिया था तो पत्नी भी छीननी थी, तो परीक्षा पूरी होती, पत्नी क्यों न छीनी? मतलब यह हुआ कि कुछ तो छूट गया था, कुछ बच रहा था उसके पास।
उस हसीद फकीर ने बड़ी अनूठी बात कही। उसने कहा कि तुम्हें पता नहीं, इसके पीछे राज है। और वह राज यह है कि परमात्मा ने सब छीन लिया जोब का और जब पाया कि वह परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया, तो सब चीजें दुगुनी करके लौटाईं-- पत्नी इसीलिए नहीं छीनी कि फिर दो पत्नी लौटानी पड़तीं। और एक पत्नी ही सहना इतना मुश्किल है, दो तो जोब के लिए भी मुश्किल हो जातीं, वह जो इतना आस्थावान था। दो पत्नियां, दो हिस्सों में तोड़ देंगी तुम्हें, क्योंकि दो मालिक हो गए।
और इंद्रियां, हर इंद्रिय मालिक है, तुम खंड-खंड हो जाते हो, तुम टुकड़े-टुकड़े हो जाते हो, तुम्हारे सब खंड अलग-अलग चलने लगते हैं। तुम एक ऐसी बैलगाड़ी हो जाते हो, जिसमें सब तरफ बैल जुते हैं। हर बैल अपनी तरफ खींचता है, कभी एक बैल ले भागता है एक गड्ढे में, कभी दूसरा बैल ले भागता है। रास्ते पर चलना तो असंभव ही है। जिस बैलगाड़ी में सब तरफ बैल जुते हों, उसका रास्ते पर चलना कैसे संभव है? कभी एक ताकतवर पड़ जाता है, कभी दूसरा शिथिल होता है, कभी दूसरा उदास होता है, कभी एक पगला जाता है, चलता रहता है। बैलगाड़ी के अस्थिपंजर ढीले होते जाते हैं, पहुंचते कहीं भी नहीं। वहीं मृत्यु होती है, जहां थे।

सब इंद्रियां तुम्हें अपनी-अपनी तरफ खींच रही हैं। आंख कहती है, आओ, रूप में रस है। कान कहते हैं, सुनो। उस ध्वनि के सिवाय और कोई सुख नहीं। कामवासना बुलाती है, भोजन पुकारता है। रस, गंध, सब खींच रहे हैं। तुम सब तरफ खिंचते हो। इस सबके बीच तुम्हारी जो दशा है, वह संताप की है, ऐंग्विश। कुछ फल नहीं, सिर्फ हड्डियां ढीली होती हैं। खिंचते हैं, टूटते हैं, नष्ट होते हैं। कहीं पहुंच भी नहीं पाते। कोई किनारा भी दिखाई नहीं पड़ता। यह तुम्हारी इंद्रियों के प्रति शरण की स्थिति है। तुमने इंद्रियों को अपना ठांव बनाया हुआ है। और जिसने बहुत मालिक चुने, वह पागल हो जाएगा।
इसलिए ऐंद्रिक व्यक्ति की जो आखिरी अवस्था है, वह विक्षिप्तता है। और तुम्हारी आखिरी मंजिल पागलखाना है। न पहुंचो वहां तक, उसका कुल मतलब इतना है कि तुम जो भी कर रहे थे, वह तुमने पूर्णता से न किया। मध्य में अटके रह जाओ, कुनकुने रह जाओ, बात अलग है। बाकी अगर तुम ठीक से चलो इंद्रियों की मानकर, तो तुम पागलखाने पहुंचोगे। वह उसका शुद्ध अंत है।
सांसारिक व्यक्ति अगर पागल न हो, तो उसका कुल मतलब इतना है कि वह सांसारिक भी था और पूरी तरह से सांसारिक नहीं था, तो अधूरे में लटका रह गया। बैल खींच भी रहे थे, लेकिन बैलों को ठीक भोजन नहीं दे रहा था। इसलिए खींचतान भी मची रही, रास्ते पर किसी तरह टिके भी रहे। यात्रा तो नहीं हुई, लेकिन रास्ते पर टिके रहे, गड्ढे में न गिरे, भटके न। इसी को हम अच्छा आदमी कहते हैं, जो किसी तरह टिका है। बस थोड़ा-थोड़ा देता है भोजन इंद्रियों को, ज्यादा नहीं देता। जितना तुम दोगे, उतनी मात्रा में पागलपन पैदा होगा। इसलिए हमारे बीच पागलों की जो भीड़ है, उसमें मात्राओं के भेद हैं, कोई बुनियादी भेद नहीं हैं। कोई थोड़ा ज्यादा पागल, कोई थोड़ा कम, कोई पचास डिग्री का, कोई साठ डिग्री का, कोई सत्तर डिग्री का पागल, कोई बिल्कुल निन्यानबे डिग्री पर खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब पार हो जाएं। बस, डिग्री के फर्क हैं। जहां बहुत मालिक होंगे, वहां विक्षिप्तता परिणाम होगी। विक्षिप्तता का अर्थ है, खंड-खंड, टूटे हुए।
राम की शरण जाने का अर्थ है एक मालिक। इसलिए राम से तुम यह मत समझना कि दशरथ के बेटे राम का कोई संबंध है। राम से तुम्हारे भीतर छिपे हुए ब्रह्म का संबंध है। तुम राम हो। तुम शरीर नहीं हो, तुम आत्मा हो। शरीर हो, तो इंद्रियां तुम्हें विक्षिप्त कर देंगी। अगर अब तुम आत्मा हो, तो इंद्रियां धीरे-धीरे इस आत्मा के प्रति समर्पित हो जाएंगी।
ऐसा नहीं है कि यह जो राम के प्रति समर्पित व्यक्ति है, यह भोजन न करेगा। ऐसा भी नहीं है कि यह आंख खोलकर आकाश के सौंदर्य को नहीं देखेगा। ऐसा भी नहीं है कि इसके कान संगीत को सुनकर आनंदित न होंगे, होंगे। लेकिन एक क्रांतिकारी फर्क हो गया, इसकी इंद्रियां राम के प्रति समर्पित हैं, इसका राम इंद्रियों के प्रति समर्पित नहीं। आत्मा इंद्रियों की गुलाम नहीं है, इंद्रियां आत्मा की सेवक हैं।
और तब एक बुनियादी फर्क पड़ेगा। तुम धीरे-धीरे पाओगे, जब इंद्रियां मालिक होंगी, तो जितना कामोत्तेजक संगीत होगा, उतना तुम्हें अच्छा मालूम पड़ेगा। जब इंद्रियां राम के प्रति शरणागत होती जाएंगी, तो तुम पाओगे, धीरे-धीरे कामोत्तेजक संगीत संगीत नहीं मालूम पड़ता, उपद्रव मालूम पड़ता है, विसंगीत मालूम पड़ता है। उससे बाधा पड़ती है, उससे स्वर सधता नहीं, टूटता है। वह चोट की तरह मालूम होता है। इसलिए पश्चिम का संगीत है, वह चोट की तरह है। ऐसा लगता है कि तुम्हें झकझोरता है, शांत नहीं करता। जैसे-जैसे तुम्हारी इंद्रियां भीतर की तरफ समर्पित होंगी, तुम्हारा संगीत कीर्तन और भजन हो जाएगा, तुम्हारे संगीत में अध्यात्म प्रवेश कर जाएगा। तब तुम्हारा संगीत भी तुम्हें शांत करेगा, तो ही संगीत मालूम पड़ेगा; अशांत करेगा, तो विसंगीत मालूम पड़ेगा।
और एक घड़ी ऐसी आएगी कि जब सिर्फ शून्य की अवस्था में ही तुम्हें संगीत मालूम पड़ेगा। तभी तुम्हें, जब सब तरफ सन्नाटा होगा, एक स्वर भी नहीं बोलता होगा, तभी तुम पाओगे, परम संगीत हो रहा है। तब परम नाद है। उसको हमने ओंकार कहा है। वह कोई स्वर नहीं है, वह कोई वीणा के तारों पर उठाई गई चोट नहीं है।

क्योंकि वह भी चोट है, वीणा के तार पर भी हम चोट ही कर रहे हैं। माना कि चोट इस तरह कर रहे हैं कि दो चोटों के बीच एक लयबद्धता है, पर चोट ही है।
जैसे-जैसे इंद्रियां भीतर की तरफ समर्पित होंगी, शून्य का संगीत अनुभव होगा। जैसे-जैसे इंद्रियां भीतर की तरफ समर्पित होंगी, कामवासना क्षीण होगी, प्रेम सघन होगा। संगीत में स्वर खो जाएंगे, शून्य रह जाएगा। कामवासना में काम खो जाएगा, प्रेम रह जाएगा।
और ऐसा ही सभी इंद्रियों में होगा। आंखें आकार को धीरे-धीरे देखने में रस न लेंगी, निराकार को देखने में रस लेंगी। आंखों के लिए सौंदर्य फिर आकार में नहीं रहेगा, बल्कि आकार के कारण ही सौंदर्य में बाधा पड़ेगी। अगर तुम किसी व्यक्ति को सच में ही देख सको, तो तुम पाओगे, उसका शरीर चाहे कितना ही सुंदर हो, उसके शरीर के कारण ही उसका सौंदर्य कम हो रहा है। क्योंकि शरीर कितना ही सुंदर हो, सुंदर हो नहीं सकता। शरीर के कारण उसके सौंदर्य में बाधा पड़ रही है। सौंदर्य पूर्ण तो तभी होगा, जब शरीर बिल्कुल नहीं होगा। तब बाधा डालने वाला कोई भी नहीं होगा।
चीन में फकीर कहते हैं कि जब संगीत पूरा हो जाता है, तो संगीतज्ञ वीणा
को तोड़ देता है, क्योंकि अब वीणा से बाधा पड़ती है। जब मूर्तिकार परम निष्णात हो जाता है, तो छैनी को फेंक देता है, क्योंकि अब छैनी से जो भी बनेगा, वह सुंदर नहीं हो सकता। क्योंकि निराकार छैनी से तो नहीं बन सकता, आकार ही बन सकता है। फिर आकार कितना ही सुंदर हो, उसमें कमी रह जाएगी। क्योंकि आकार कभी पूर्ण नहीं हो सकता, उसमें सुधार किया ही जा सकता है। उसमें और सुधार, और सुधार की संभावना है। निराकार पूर्ण है, उसमें कोई सुधार की संभावना नहीं है।
आंखें तुम्हारी फिर भी सौंदर्य को देखेंगी, लेकिन आकार में सौंदर्य नहीं, निराकार में होगा। भोजन में तुम तब भी रस लोगे, लेकिन तब भोजन का पदार्थ अर्थहीन हो जाएगा, भोजन के भीतर जो छिपा प्राण है, वही सार्थक हो जाएगा। उसी अवस्था में उपनिषद के ऋषिओं ने कहा, अन्न ब्रह्म है। तुम सोच भी नहीं सकते कि कैसे अन्न ब्रह्म होगा! रोटी कैसे ब्रह्म होगी! और पंडितों से पूछोगे, तो वे व्यर्थ की बातें बता रहे हैं।
अन्न ब्रह्म है, यह उस स्थिति की अनुभूति है, जब इंद्रियां समर्पित हो
गई हैं भीतर की आत्मा के प्रति। तब रोटी में भी राम दिखाई पड़ेगा। तब रोटी तो खोल रह जाएगी, राम उसमें सत्व रह जाएगा। तब रोटी तो शरीर में आएगी और निकल जाएगी, राम भीतर रह जाएगा। तब तुम्हारी सारी इंद्रियां संसार में ब्रह्म को पाने लगेंगी।
अभी तुम जब तक इंद्रियों के प्रति समर्पित हो, तुम्हें ब्रह्म में भी संसार दिखाई पड़ता है। जिस दिन तुम राम के प्रति समर्पित हो जाओगे, तुम्हें संसार में भी ब्रह्म दिखाई पड़ने लगेगा।
नहिं राम बिन ठांव का अर्थ है, तुम्हारी ठांव तुम्हारे भीतर है, तुम्हारी मंजिल तुम अपने साथ लिए घूम रहे हो। और तुम व्यर्थ यहां-वहां खोज रहे हो। और इंद्रियों की सुनकर तुमने कितनी यात्रा कर डाली, कितनी पृथ्वियां, कितने चांद-तारे तुम चले, कितने जन्म, कितने ढंग, कितने रूप, कितने आकार तुमने लिए! इंद्रियों ने जो कहा, तुमने वही पूरा किया। पहुंचे तुम कहीं भी नहीं हो, थक गए हो, फिर भी इंद्रियों की सुने जा रहे हो।
मैं रात निरंतर यात्रा करने के कारण कान बंद करके सोता हूं, इयर-प्लग लगा लेता हूं। तो सब आवाजें बंद हो जाती हैं। एअरकंडीशनर आवाज करता रहता है, पर मुझे सुनाई नहीं पड़ती। मुझे अक्सर सर्दी की तकलीफ होती है, तो जब कभी सर्दी की तकलीफ हो जाती है तो मेरी श्वास में आवाज आने लगती है। तब मुझे इयर-प्लग अलग करने पड़ते हैं। क्योंकि इयर-प्लग लगे रहें, तो फिर इयर-प्लग स्टेथोस्कोप का काम करने लगते हैं, फिर मुझे भीतर की आवाज बहुत ज्यादा सुनाई पड़ने लगती है, फिर सोना असंभव हो जाता है। तब इयर-प्लग अलग कर लेता हूं, कंडीशनर की आवाज आने लगती है, सड़क का ट्रैफिक सुनाई पड़ने लगता है, फिर मुझे भीतर की आवाज नहीं सुनाई पड़ती। वह चलती रहती है, मुझे सुनाई नहीं पड़ती।

बस, ऐसी ही अवस्था है। जब तक तुम्हारी इंद्रियां बाहर की सुन रही हैं,
तब तक भीतर की आवाज नहीं सुनाई पड़ेगी। और जिस दिन भीतर की आवाज सुनाई पड़ने लगेगी, इंद्रियां अंतर्मुखी हो जाएंगी, बाहर खो जाएगा।
दो तरह की अवस्थाएं हैं। इंद्रियों में ठांव है, यह एक मनोदशा है। इंद्रियों में ठांव नहीं, पड़ाव भी नहीं है, मंजिल तो दूर, यात्रा भी नहीं है, व्यर्थ है सब, तब राम में ठांव है। राम तुम्हारे भीतर हैं। तुम राम हो। तो जब मैं तुमसे कह रहा हूं, छोड़ दो सब राम पर, तो मैं तुमसे यह कह रहा हूं, छोड़ दो सब भीतर पर। बाहर को जाने दो भीतर की तरफ, होने दो समर्पित भीतर की तरफ। केंद्र की तरफ परिधि का समर्पण हो--यह अर्थ है नहिं राम बिन ठांव का। तुम केंद्र को समर्पित कर रहे हो परिधि के लिए। घर को बरबाद कर रहे हो बागुड़ के लिए। महल को मिटा रहे हो ताकि फेंसिंग ठीक बन जाए। शरीर को सम्हाल रहे हो, खुद को खो रहे हो।
जागो! और ध्यान केवल इतना ही करेगा कि थोड़ी देर को बाहर को बंद करेगा, ताकि भीतर के स्वर भी सुनाई पड़ने लगें। एक दफा सुनाई पड़ जाए भीतर का स्वर, फिर तुम पागल की तरह मदमस्त होकर दौड़ने लगोगे।
सुना है तुमने कि कृष्ण की बांसुरी बजती है, तो फिर गोपियां अपने घरों में काम नहीं कर पातीं, उनके हाथ-पैर डगमगा जाते हैं, गगरी छूट जाती है, मथनी भूल जाती है, भागती हैं मदहोश। यह कथा तो केवल प्रतीक है। इंद्रियां प्रतीक हैं गोपियों की। इंद्रियां स्त्रैण हैं। और जिस दिन भीतर की बांसुरी बजने लगती है, सुनाई पड़ने लगती है--बांसुरी तो बज ही रही है, लेकिन जिस दिन तुम थोड़ा सा ध्यान उस तरफ लगाते हो और बांसुरी सुनाई पड़ती है--बस इंद्रियां फिर भूल जाती हैं अपनी मथनी, अपना दूध, अपनी गगरी, अपना काम, मदमस्त होकर भागने लगती हैं। वह अंतिम दशा है, जहां भीतर के कृष्ण की बांसुरी बज रही है, और सारी इंद्रियां उनके आस-पास नाचने लगीं, परिधि नाचने लगी केंद्र के पास। इसको हमने रास कहा है, जो कृष्ण नाच रहे हैं और गोपियां चारों तरफ नाच रही हैं।
तुम्हारी हालत उलटी है, गोपियां भाग रही हैं, तुम उनके पीछे भाग रहे हो। और ध्यान रखें, कोई गोपी उससे राजी नहीं होती, जो उसके पीछे भागता है। तुम भागे गोपी के पीछे कि गोपी गई किसी और के पीछे, कि तुम बेकार हुए। वह तुम्हारा भागना ही बता देता है कि तुम अपने भी मालिक नहीं, दूसरे के मालिक होने का हक कहां से पाओगे! इंद्रियों के पीछे भागता हुआ आदमी, इंद्रियां भी समझ जाती हैं कि कैसे बेकार हो तुम! कुछ भी तुम्हारे पास नहीं! तुम क्षुद्र के लिए भाग रहे हो!
सचेत होओ। ध्यान तुम्हें सचेत करेगा। ध्यान तुम्हारी यात्रा का आयाम बदलेगा। और एक बार तुम्हें भीतर का स्वर सुनाई पड़ने लगे, क्रांति घटित हो गई। इंद्रियां अपनी जगह होंगी और स्वस्थ होंगी। उनका नाच भी चलता रहेगा, क्योंकि उनके नाच से कुछ बाधा नहीं है। लेकिन वे परिधि पर होंगी, अपने स्थान पर होंगी, तुम्हारे साथ चलेंगी, तुम्हारी छाया होंगी। और जिसने भीतर के इस राम को पा लिया, इस भीतर के केंद्र को पा लिया, उसे पाने को फिर कुछ शेष नहीं रह जाता। तभी संतोष फलित होता है, उसके पहले संतोष नहीं होगा।
इसलिए लिंची ठीक कहता है कि एक ही चमत्कार हम जानते हैं और वह है संतोष। यही मैं तुमसे कहता हूं, एक ही चमत्कार मेरे पास है और वह है संतोष। और जिस दिन तुम भी थोड़े से संतुष्ट होओगे, उसी दिन तुम पाओगे कि बाकी सब चमत्कार मदारी के हैं, सब बचकानी बातें हैं। प्रौढ़ता के लक्षण नहीं।
प्रौढ़ता तो एक ही आकांक्षा करती है कि ऐसी तृप्ति हो जाए, जिस तृप्ति में रत्तीभर कमी न हो। तृप्ति ऐसी पूर्ण हो जाए कि उसके पार पाने को कुछ न बचे। तृप्ति इतनी समग्र हो कि तुम्हारे पूरे रोएं-रोएं से धन्यवाद, अहोभाव, परमात्मा के प्रति कृतज्ञता प्रगट हो।
वह हो सकता है, उसके होने का पूरा इंतजाम तुम्हारे भीतर है, सिर्फ थोड़ा आयोजन बदलना है। सब उपकरण मौजूद हैं, सिर्फ थोड़ी सी व्यवस्था बदलनी है। आटा तुम्हारे पास है, पानी तुम्हारे पास है, आग जल रही है। उस आटे को जरा गूंथना है पानी में, रोटियां तैयार करनी हैं, आग पर सेंकनी हैं और भूख

मिट जाएगी। लेकिन तुम बैठे हो, आटा रखे, पानी रखे, आग जल रही है, और रो रहे हो। सब तुम्हारे पास है, थोड़ी सी व्यवस्था!
वही व्यवस्था साधना है।
आज इतना ही।